द्विभाषी राष्ट्रसेवक

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 74 अंक : 01 अप्रैल, 2024

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 74 **अंक : 01** **अप्रैल, 2024**

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

डॉ. किरण हाजरिका
सम कुलपति, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-68

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : बिहू नृत्य का एक दृश्य

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		*7*
1.	हिंदी आलोचना में छायावाद संबंधी आलोचना का विकास	✍ डॉ. जावेद आलम	6
2.	जिन्हें पहली पंक्ति में जगह नहीं मिली	✍ डॉ. अरविन्द कुमार यादव	14
3.	समकालीन दलित कविता में दलित जीवन संघर्ष	✍ डॉ. प्रीति के.	27
4.	द वेल डिगर्स डॉटर : प्रेम, परिवार और परंपरा की एक मार्मिक यात्रा	✍ डॉ. आनंद कुमार सोनी ✍ उत्कर्ष कुमार मिश्रा	32
5.	असम की तिवा जनजाति	✍ डॉ. जोनाली बरुवा	37
6.	राभा जनजाति की परंपरागत वेशभूषा और उनका बायखो उत्सव	✍ डॉ. अखिल चन्द्र कलिता	43
7.	गांधी : भाषा-चिंतन	✍ डॉ. प्रकाश कोपार्डे	49
8.	वेदों में पर्यावरण संरक्षण : एक समीक्षात्मक अध्ययन	✍ डॉ. निलाक्षी मिलि मेदक	55
9.	असमीया संस्कृति : परंपरा और परिवर्तन (असम की बिहू परम्परा के आधार पर)	✍ डॉ. कणिमा पाठक	61
10.	हिंदी उपन्यास एवं आत्मकथा में दिव्यांग विमर्श का परीक्षण	✍ वैशाली सिंघल	65
11.	पूर्वोत्तर भारत की कार्बी जनजाति के लोक गीत : एक विवेचन	✍ लोंगबिर इंग्ती	69
12.	हिंदी नाटक की विकास यात्रा : भारतेंदु युग से अब तक	✍ सिमरन कुमारी	75
13.	चित्रा मुद्गल की कहानियों में निम्न वर्ग का आर्थिक संघर्ष	✍ शशि कुमारी ✍ प्रो. (डॉ.) सुधा जितेन्द्र	79
14.	'पहरुआ जन' में अभिव्यक्त सामाजिक और वर्ग चेतना	✍ केशव कुमारी ✍ डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री	83
15.	मामोनी रायसम गोस्वामी के उपन्यास 'दँताल हातिर उये खोवा हाओदा' में वर्णित गिरिबाला का जीवन-संघर्ष	✍ दीपिका दास	88
16.	शरद जोशी के हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्य की भाषा-शैली	✍ अर्जुन पासवान	93
17.	विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में चित्रित स्वातंत्र्योत्तर ग्राम्य जीवन का यथार्थ	✍ देबी देबांगना ✍ प्रो. एच. सुवदनी देवी	101

অসমীয়া বিভাগ

18. উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য ঃ স্বৰূপ আৰু প্ৰত্যাহ্বান	✍ ডঁ মণিকা চুতীয়া	108
19. টাই খাময়াং জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ধৰ্মীয় জীৱনৰ এক বিশেষাত্মক অধ্যয়ন	✍ ডঁ দীপক কুমাৰ গগৈ	115
20. টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ	✍ ডঁ পংকজ্যোতি বৰা	121
21. অসমৰ মেচ-কছাৰীসকলৰ পৰম্পৰাগত গীত-মাত ঃ হুৰই ৰাঙলী গীতৰ বিশেষ উল্লিখন	✍ ডঁ প্ৰয়াসী দত্ত	127
22. প্ৰাক্-স্বাধীনতা কালছোৱাত পূৰ্ববংগৰ পৰা অসমলৈ ঘটা জনপ্ৰব্ৰজনৰ গতি-প্ৰকৃতি	✍ ডঁ মনালিছা কছাৰী	131
23. উত্তৰ পূৱ ভাৰতৰ ধৰ্মীয় নেতা আৰু স্বাধীনতা আন্দোলন ঃ পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী আৰু ৰাণী গাইডালুৰ কাৰ্য্যৱলীৰ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন	✍ ডঁ বিনয় কুমাৰ নাথ	138
24. সংস্কৃত সাহিত্যৰে প্ৰভাৱিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্য	✍ ডঁ নয়নমণি বৰুৱা	144
25. পা�ৰিৱেশিক সমালোচনা সাহিত্য, গভীৰ পাৰিৱেশিক তত্ত্ব, পাৰিৱেশিক আধ্যাত্মিকতা আৰু ৰৰ্ডছৱৰ্থৰ নিৰ্বাচিত কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন	✍ ডঁ জ্ঞানেন্দ্ৰ বৰ্মন	153
26. ঐতিহ্যমণ্ডিত কলিয়াবৰ ঃ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ জোৱাৰ আৰু গুণেশ্বৰী দেৱী	✍ ডঁ অকুণ্ঠিতা বৰঠাকুৰ	158
27. বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপৰ সৈতে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ তুলনা	✍ ডঁ মলয়া গগৈ	163
28. বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্বমূলক আলোচনা ঃ এটি চমু আভাস	✍ জ্যোৎস্না বড়ো	168
29. বিহু সংস্কৃতিত বয়নশিল্প — এক আলোকপাত	✍ অনুভা কলিতা ✍ ডঁ চম্পাকলি তালুকদাৰ	175
30. ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ পটভূমি আৰু পৰিচয়	✍ নীলাক্ষি দাস	180
31. লিংগ আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰৰ ভিত্তিত গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ এক অধ্যয়ন	✍ প্ৰিয়াঙ্গী কৌশিক ✍ ডঁ ফুনু দাস শৰ্মা	186
32. ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ 'অন্তৰীপ' উপন্যাসৰ চলচ্চিত্ৰ অভিযোজনা 'অগ্নিস্নান'	✍ পূজা বৰা ✍ ডঁ কল্পনা শৰ্মা কলিতা	192
33. অসমীয়া সাধুকথাৰ ভাষাশৈলী ঃ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ৰবী কলিতা	195
34. উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান ঃ এক বিশ্লেষণ	✍ অৰ্ণৱ শৰ্মা	198

❑ ❑ ❑

संपादकीय

बिहू-बिहू लगता है

चैत्र के जाते ही बैशाख आ गया है। पेड़ों पर कपौ फूल खिल गए हैं। इस मनोहारी मौसम के साथ मनुष्य संगति करने को तैयार है। बिहू वस्तुत: ऋतुओं की वय:संधि का द्योतक है। कहते हैं कि विषुव (संक्रांति) प्रकृति में सृजनशीलता तथा रागात्मकता को प्रोत्साहन करता है। लताएँ तथा वृक्ष कुसुमित होते हैं, नदियाँ प्रसन्नसलिला हो उठती हैं। फिर इन सबसे मनुष्य अछूत किस प्रकार रह सकता है। प्रकृति के रुखसार में हुए इस परिवर्तन का कारण है – ऋतुचक्र। भारतीय त्योहार प्राय: ऋतुचक्र के उल्लेखनीय परिवर्तन के स्वागत में आयोजित किए जाते हैं। यही वजह है कि आम तौर पर हम कड़ाके की ठंड में या चिलचिलाती धूप के मौसम में कोई उत्सव नहीं मनाते। हमारे उत्सव मुख्यत: शरद तथा वसंत ऋतुओं में मनाए जाते हैं। ये दोनों ही खुशनुमा ऋतुएँ हैं। वर्षा के बाद आती है शरद ऋतु तथा ठिठुरती ठंड से निष्कृति है – वसंत। दोनों ही ऋतुएँ उत्सवों के अनुकूल पड़ती हैं। इस समय भारतीय किसान कृषिकार्य से मुक्त रहते हैं।

बिहू शब्द किस भाषा के किस शब्द से निकला है तथा इसका मूलार्थ क्या है, इस पर विद्वानों के बीच मतैक्य नहीं है, परंतु इस बात को लेकर पूरा मतैक्य है कि रंगाली बिहू असम की नाना जातियों-उपजातियों के समन्वय तथा उसके फलस्वरूप गठित हुई रूढ़िमुक्त बृहत्तर असमीया समाज की मुक्तावस्था है। घर-परिवेश की सफाई करके, गोधन तथा गुरुजन की पूजा करके, नए कपड़े पहनकर बिहू का स्वागत करने जब हम निकलते हैं तो प्रकृति भी हमारे साथ हो लेती है। शीत की विदाई देती हुई गुनगुनाती हवाएँ, कपौ, तगर आदि से कुसुमित परिवेश, कोयल की कूक से गूँजता दिगंत बिहू का वातावरण है। बिहू के अवसर पर आंधी पानी को साथ लेकर 'बरदैसिला' भी आ धमकती है। युवतियों के मूगा, रेशम के सुनहरे वस्त्र और पारंपरिक आभूषण से सुशोभित बिह के सौंदर्य को सौभाग्य प्रदान करते हैं। रंगाली बिहू आनद का सागर बन जाता है तथा हमारी सभी ज्ञानेंद्रियों को परितृप्त करता है। हमारा मन भी बाग-बाग हो उठता है। 'बहागीर बिया' शीर्षक कविता के कवि रघुनाथ चौधुरी ने बहाग बिहू माह के उल्लासमय परिवेश का वर्णन इन शब्दों में किया है –

जड़ जगतत जीव जगतत
पाओं सकलोते देखा
महाविश्व जुरि बिरिंडिसे जेन
आनंदर पूर्ण रेखा।

(अर्थात् कवि इस प्रकार देख रहा है कि अखिल विश्व के जड़-चेतन जगत में आनंद का पारावार लहरा रहा है।)

रंगाली बिहू असमीया नववर्ष का उत्सव भी है। बैशाख महीने में आयोजित होने के कारण इसका एक सार्थक नाम बहाग बिहू भी है। कड़कड़ाती ठंड से छुटकारा पाकर प्रफुल्ल वन-प्रांतों के बीच जाकर, मन-मयूर का नाच उठना ही तो स्वाभाविक है। किसी के लिए श्रद्धा से विनत हो जाना, किसी के रूप-जाल में बंध जाना, उन्माद हो नाच उठना, किसी के लिए पीठा-लारू बनाने बैठ जाना, किसी के लिए बिहुवान बुनने में खो जाना रंगाली बिहू में सहज ही संभग है। यदि कुछ असंभव है तो बिहू के महाभाव से अपने को बचा पाना। भूपेन हजारिका ने गाया है –

बहाग माथो एटि ऋतु नहय
बहाग नहय एटि माह
असमीया जातिर ई आयुष रेखा
गण जीवनर ई साह।

आखिर क्या है ऐसा जिससे रंगाली बिहू एक जादू की तरह छा जाता है। क्या यह जादू प्रकृति में है, क्या यह जादू मनुष्य में है या फिर इसकी वजह बिहू के गीत-नृत्य संगीत में है? वास्तव में, रंगाली बिहू प्रकृति तथा मानव की अंत:क्रिया का स्वाभाविक उद्गार है। रंगाली बिहू मानवीय संबंधों को मजबूत बनाता है। रंगाली बिहू परंपरा की अजस्र धाराओं को बहाता चला जा रहा है। हम जब नहीं होंगे, बिहू तब भी रहेगा, क्योंकि बिहू कोई तिथि नहीं है, यह महाभाव है, प्रकृति तथा पुरुष के एकीकरण से यह महाभाव उतरता है। जब यह महाभाव उतरता है तो सारी सृष्टि नई-नई लगती है। सब कुछ बिहू-बिहू लगता है। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

साहित्य

हिंदी आलोचना में छायावाद संबंधी आलोचना का विकास

डॉ. जावेद आलम

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश-202002
9760473454
jajavedamu@gmail.com

बीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में 'छायावाद' का विशिष्ट महत्व है। यह काव्यधारा अपने समय में अत्यंत नूतन भाव एवं शैली के लिए जितना प्रसिद्ध रही, हिंदी आलोचना में उतने ही उस पर साहित्यिक वाद-विवाद हुए। इन विवादों ने हिंदी आलोचना को खूब समृद्ध किया। सन 1920 ई. से लेकर डॉ. रामविलास शर्मा तक, कई आलोचकों ने छायावाद संबंधी अपने विचार एवं अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। उन्हीं में कुछ प्रमुख विद्वानों की मान्यताओं का विश्लेषण करने का विनम्र प्रयास प्रस्तुत शोधालेख में किया गया है। वस्तुत: यहाँ छायावाद संबंधी साहित्यिक वाद-विवादों के जरिए हिंदी आलोचना कितनी समृद्ध हुई है, इसे देखने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

नवजागरण, रहस्यवाद, छायावाद, प्रतीक योजना, क्रोचे का अभिव्यंजनावाद, हिंदी आलोचना।

मूल आलेख :

सन 1920 के बाद का हिंदी साहित्य अपने सभी रूपों में भावना और अभिव्यंजना व्यापार में अपने पूर्व की परंपरा से आश्चर्यजनक रूप से बदला हुआ दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में सन 1918 से 1936 के समय को काव्य के संदर्भ में 'छायावाद युग', कथा साहित्य के क्षेत्र में 'प्रेमचंद युग', आलोचना के क्षेत्र मे 'शुक्ल युग' एवं नाटक के क्षेत्र में 'प्रसाद युग' के वृहत्तर अर्थ में व्यंजित किया जाता है। वास्तव में भारतीय राजनीति में भी यह नवीन परिवर्तन का युग है। ऐसे समय में हिंदी आलोचना का पूरा-का-पूरा स्वरूप बदला हुआ दिखाई देता है। वास्तव में हिंदी आलोचना के मानदंड व काव्य-रुचि दोनों ही बड़ी तेजी से परिवर्तित हुए। जबकि इसके पूर्व के युग में *''बदलाव जिस तेजी से रचनात्मक साहित्य में आया, उसी बराबरी से आलोचना में नहीं आया था।''*[1]

छायावाद युग में यह परिवर्तन अस्वाभाविक-सा लगता है कि इससे पूर्व के युग में काव्य-अभिरुचि व आलोचनात्मक मूल्य प्राय: रीतिवादी संस्कारों से युक्त थे। इस युग में सिर्फ बदलाव ही नहीं है, बल्कि उस रीतिवादी संस्कार के विरुद्ध गंभीर प्रतिक्रिया भी देखने को मिलती है। छायावादी युग से ही हिंदी आलोचना में नवीन

स्वरूप का आरंभ देखने को मिलता है। तद्युगीन *''कविता और गद्य दोनों में नवीन प्रवृत्तियों के उदय ने जैसे आलोचना के सामने एक चुनौती प्रस्तुत की। यह बात एक बार में ही स्पष्ट हो गई कि इस साहित्य का मूल्यांकन रीतिकालीन मानदंडों से नहीं किया जा सकता है। इस नए साहित्य के माध्यम से आने वाले सवाल नए थे। अत: मूल्यांकन के पैमाने और दृष्टिकोण का भी नया होना जरूरी था। इसके अतिरिक्त साहित्य के क्षेत्र के अलावा इसी समय शैक्षिक जगत में भी एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसने हिंदी आलोचना को बहुत दूर तक प्रभावित किया।... भारत के विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का सिलसिला आरंभ हुआ। यह घटना हिंदी आलोचना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई।''*[2] वस्तुत: छायावाद वह प्रस्थान-बिंदु है, जहाँ से विशुद्ध आलोचना की शुरुआत होती है-इस संदर्भ में अशोक वाजपेयी का मत है कि *''जिसे हिंदी में हम आधुनिक आलोचना कहते हैं उसकी शुरुआत छायावाद के युग से ही हुई। लगभग उसी समय से आलोचना का प्रमुख सरोकार समकालीन साहित्य होना शुरू हुआ।''*[3]

हिंदी आलोचना का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि हिंदी के अधिकांश बड़े आलोचक छायावादी काव्य-धारा और कवियों के पाठ एवं अनुशीलन में निरत रहे हैं। छायावाद के निरीक्षण-परीक्षण आदि से जुड़कर ही उनका आलोचनात्मक व्यक्तित्व निर्मित होता हुआ दिखाई पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा छायावाद की गंभीर आलोचना से वाद-विवाद का परिवेश निर्मित हुआ। आचार्य शुक्ल ने छायावाद की जो आलोचना की, उसके विरोध या समर्थन में अनेक विद्वानों ने अपनी मान्यताओं एवं विचारों को प्रकट किया। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की प्रसिद्धि भी छायावाद के समर्थन में आने व आचार्य शुक्ल की मान्यताओं की सीमाओं को उद्घाटित करते हुए हुई। डॉ. नगेंद्र की आलोचना-दृष्टि सबसे पहले छायावाद पर ही जाकर रुकी, जिनकी पहली ही कृति थी-'सुमित्रानंदन पंत', जो आचार्य शुक्ल को 'ठीकाने' की मालूम हुई थी। डॉ. देवराज की पहली और व्यापक पहचान 'छायावाद का पतन' (वर्ष 1948 ई.) से बनी। नामवर सिंह की आलोचकीय प्रतिभा भी 'छायावाद' (1955 ई.) में प्रखर रूप में सामने आई। डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना-कर्म में छायावाद के प्रमुख स्तंभ और उनके प्रिय कवि 'निराला' की केंद्रीय भूमिका है। मुक्तिबोध 'कामायनी : एक पुनर्विचार' के नाम से पुस्तक लिखते हैं, जिससे छायावाद के अन्य पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। छायावादी कवियों जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा ने जिस प्रकार से अपनी सर्जनात्मकता एवं काव्य-कला आदि आपत्तियों पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं; हिंदी आलोचना में इस प्रकार की रचनात्मक घटना पहली बार सामने आई। छायावादी कवियों ने खुलकर अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। सारांशत: 'छायावाद' और उसका संपूर्ण युग अपने तत्कालीन समय से लेकर अपने परवर्ती काल में भी हिंदी आलोचना में चर्चा का विषय निरंतर बना हुआ है।

हिंदी आलोचना में छायावादी कविताओं की आलोचना का प्रारंभ श्री मुकुटधर पांडेय द्वारा सन 1920 ई. में 'श्री शारदा' पत्रिका (जबलपुर) में छपे एक लेखमाला से होता है। *'हिंदी में छायावाद' के नाम से चार लेखों की एक लेखमाला-जिसको लिखने का आधार-''हिंदी में उस कविता पर आलोचनात्मक लेखन का अभाव था। उन्होंने हिंदी आलोचना में समसामयिक साहित्य पर कुछ इधर-उधर की टीका टिप्पणियों के सहारे यह निबंध प्रस्तुत किया था।''*[4]

मुकुटधर पांडेय जी की लेखमाला से यह पता चलता है कि 'छायावाद' शब्द 'मिस्टिसिज्म' का समानार्थी है। वे इस मिस्टिसिज्म को प्राचीन अध्यात्म से जोड़कर देखते हैं। इसके अतिरिक्त *''छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय मानते है।''*[5] उन्होंने *''छायावाद को वस्तु की दृष्टि से पुराना ही अर्थात रहस्यमूलक मानते हुए भी उसकी विशिष्ट प्रकार की शैली के कारण उसे इस नाम से अभिहित किया था...छायावाद से मेरा अभिप्राय मिस्टिसिज्म के विषय-वस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्ति की प्रणाली या शैली से था।''*[6] यह लेखमाला उनकी आलोचकीय दृष्टि एवं क्षमता का स्पष्ट बोध कराता है। ध्यातव्य है कि मुकुटधर पांडेय का यह लेख छायावाद युग के ठीक उदय के समय का है, जिस समय छायावादी कविता का स्वरूप अभी पूर्णतया

स्पष्ट नहीं हो पाया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' भी अभी प्रकाश में नहीं आया था। लेकिन छायावाद के जिस स्वरूप की चर्चा 'मिस्टिसिज्म' अध्यात्म, रहस्यवाद-जैसे शब्द विषय-वस्तु के अर्थ में एवं 'छायावाद' शब्द उसकी अभिव्यंजना-शिल्प के अर्थ में उन्होंने चलाई, आज सौ वर्ष बाद भी 'छायावाद' सुनते ही पहले-पहल उसी प्रकार की कविता का बोध होता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद पर अत्यंत सुचिंतित विचार अपनी आलोचना में प्रस्तुत किए। उन्होंने उसके स्वरूप, उसकी काव्यगत अंत:प्रवृत्तियों और कवियों की विशेषताओं को उद्घाटित करने का काम किया। किंतु आचार्य शुक्ल की आलोचना को मुकुटधर पांडेय की आलोचना के क्रमिक विकास के रूप में भी देखा जा सकता है। छायावाद का अर्थ बताते हुए शुक्ल जी स्पष्ट करते हैं कि *''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है।''*[7] कहना सही होगा कि छायावाद के स्वरूप चर्चा में 'कथ्य' अथवा 'विषय-वस्तु' के जिस वैशिष्ट्य को शुक्ल जी महत्वपूर्ण समझते हैं, उसे लेकर उनमें और उनके पूर्ववर्ती आलोचकों में कोई विशेष अंतर नहीं है। जिस अभिव्यंजना के व्यापार की चर्चा वे 'बड़ी सहृदयता' से करते हैं, आंशिक रूप से उसका भी संबंध पूर्ववर्ती आलोचकों के मानदंड से जुड़ा हुआ दिखाई पड़ता है।

यहाँ स्पष्ट करना उचित होगा कि शुक्ल जी व उनके पूर्ववर्ती आलोचकों ने छायावाद की जिन कुछ विशिष्टिताओं को स्वीकार किया है वह प्रकारांतर से एक ही हैं; अंतर उस वैशिष्ट्य के उजागर करने की प्रक्रिया या पद्धति में है। उसके स्वीकार-अस्वीकार तथा खंडन-मंडन में है। मुकुटधर पांडेय जिस विषय-वस्तु को प्राचीन अध्यात्मवाद से जोड़ते हैं, उसी को शुक्ल जी ने मिस्टिसिज्म शब्द के अर्थ में प्रयुक्त किया है। शुक्ल जी ने उसे भारतीय काव्य-परंपरा से बाहर की वस्तु माना है। उनके यहाँ छायावाद का एक अर्थ काव्य-शैली के रूप में मिलता है, यह स्वीकार एकदम स्पष्ट स्वरों में मिलता है कि *''छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।''*[8] यह भी कि *''छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं।''*[9] शुक्ल जी के मत में यह सब पाश्चात्य व बांग्ला साहित्य के संपर्क में आने के कारण हुआ। उसमें भी कलावाद, प्रतीकवाद और अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से इन सबका पहला प्रभाव यह पड़ा कि ''काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा गया... दूसरा प्रभाव यह देखने में आया कि अभिव्यंजना-प्रणाली या शैली की विचित्रता ही सब कुछ समझी गई। नाना अर्थभूमियों पर काव्य का प्रसार रुक-सा गया।''[10]

इस प्रकार आचार्य शुक्ल छायावाद को अभिव्यंजना पक्ष व रहस्यवाद तक सीमित करते हुए उस पर अनेक प्रकार के पश्चिमी 'वादों' का प्रभाव लक्षित करते हैं तथा इन प्रभावों से प्रचलित काव्य ही बंगाल में छायावाद कही जाने लगी; इस प्रकार की स्थापना देते हैं। किंतु आगे के आलोचकों ने यह साबित किया है कि शुक्ल जी कलावाद एवं प्रतीकवाद के प्रभाव की चर्चा जिस अर्थ में करते हैं, वह कुछ अंश में ही छायावाद में दिखता है। शुक्ल जी छायावाद के संदर्भ में क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की बात करते हैं। उस अर्थ में वस्तुत: क्रोचे की अभिव्यंजना है ही नहीं। क्रोचे की यहाँ अभिव्यंजना सहजानुभूति है, जिसमें कला का चरम रूप मानसिक स्तर पर ही घटित हो जाता है। उसकी बाह्य अभिव्यक्ति गौण है। वहाँ सहजानुभूति ही कला है। जबकि छायावाद में काव्य की अभिव्यक्ति कौशल ही केंद्रीय भूमिका निभाता है।

आचार्य शुक्ल की दूसरी मान्यता यह थी कि ईसाई संतों के फैंटासमाटा से प्रभावित बंगाली कविताओं को 'छायावाद' कहा जाता था। इसका निरसन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने निम्न शब्दों में किया-*''इसी नवीन प्रकार की कविता को किसी ने छायावाद नाम दे दिया है। यह शब्द बिल्कुल नया है। यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बंगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिंदी में आया है।''*[11]

शुक्ल जी के इतिहास का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि शुक्ल जी छायावाद की परिभाषा व स्वरूप

उसकी प्रारंभिक रचनाओं के आधार पर गढ़ते हैं। इसी आधार पर वे 'छायावाद' और 'स्वाभाविक स्वच्छंदतावाद' को अलगाते भी हैं। इसके साथ-साथ इस छायावादी रहस्यवाद और अनुकरण-पद्धति की कटु आलोचना करते हैं, जिससे *''नाना अर्थभूमियों पर काव्य का प्रसार रुक-सा गया।''*[12] पर दूसरी तरफ यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि छायावाद के नाम से रची जाने वाली परवर्ती रचनाओं को देखकर शुक्ल जी को उसके अर्थ-विस्तार पर संतोष भी था। उन्होंने छायावाद के अर्थ में क्रमश: विकास की अवस्था पर हर्ष भी प्रकट किया, *''हर्ष की बात है कि अब कई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकल कर जगत और जीवन के और मार्मिक पक्षों की ओर बढ़ते दिखाई दे रहे हैं।... इसी के साथ काव्य शैली में प्रतिक्रिया के प्रदर्शन वा नएपन की नुमाइश का शौक भी घट रहा है....सारांश यह कि अब शैली के वैलक्षण्य द्वारा प्रतिक्रिया प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थभूमि के रमणीय प्रसार के चिह्न भी छायावादी कहे जाने वाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।''* [13] शुक्ल जी ने बाद के समय में रचित छायावाद के कवियों की प्रौढ़ एवं परवर्ती रचनाओं पर सहृदयता से विचार किया होता तो शायद छायावाद की इतनी सीमित परिभाषा नहीं गढ़ी जा सकती थी। यही कारण है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावाद शब्द को शुक्ल जी के ठीक विपरीत ग्रहण किया और बताया कि-*''छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के जोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है।''*[14]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी को छायावाद के समर्थक व सहृदय आलोचक के रूप में जाना जाता है। आचार्य वाजपेयी के समीक्षा कर्म को देखकर कह सकते हैं कि जिन मुद्दों एवं तर्क आदि के आधार पर आचार्य शुक्ल ने छायावाद की कटु आलोचना की है, उन्हीं का उपयोग आचार्य वाजपेयी ने छायावाद के काव्य-सौष्ठव का उद्घाटन करने के लिए किया। यहाँ आचार्य शुक्ल के विचारों का खंडन हिंदी आलोचना में उनके समकालीन आलोचक द्वारा किया गया; यह हिंदी आलोचाना में उस समय का सबसे सशक्त समकालीन साहित्यिक बहस के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

आचार्य वाजपेयी की समीक्षा-पद्धति को देखते हुए कहा जा सकता है कि उन्होंने सूक्ष्म तथ्यों को पकड़ने का काम किया। वे तद्युगीन परिवेश, परिस्थितियों आदि के गंभीर विश्लेषण के बाद अपनी आलोचनात्मक मान्यताओं को रखते हैं। *आचार्य शुक्ल ने मुकुटधर पांडेय और मैथिलीशरण गुप्त को नई कविता धारा के प्रवर्तक के रूप में स्थापित किया था।*[15] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी इस संदर्भ में तर्क देते हैं कि *''कुछ लोगों ने यह समझ रखा है कि द्विवेदी युग के कुछ कवि छायावादी शैली की रचना भी कर चुके हैं। उदाहरण के लिए मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ अथवा उनके 'साकेत' के गीत कुछ लोगों की राय में छायावादी हैं, किंतु काव्य-शैलियों की परख रखने वाले सभी साहित्यकार यह बता सकते हैं कि गुप्त जी की इन रचनाओं का छायावादी काव्य-शैली से कुछ भी संबंध नहीं है।''*[16] वाजपेयी जी ने 'कुछ लोगों' शब्द-युग्म का जो प्रयोग किया है, यहाँ उनका इशारा आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यताओं की तरफ है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह स्थापना दी थी कि छायावाद का एक अर्थ उसकी अभिव्यंजना-व्यापार या काव्य-शैली के विशेष अर्थ में है। इस पर आचार्य वाजपेयी का यह मत द्रष्टव्य है-*''कुछ समीक्षकों ने इस शब्दावली को ही नए काव्य की विशेषता मान ली है, किंतु नवीन काव्य-रूप का निर्माण केवल शब्दावली के परिवर्तन से ही नहीं हो जाता, वह तो काव्यानुभूति और जीवन-दृष्टि के परिवर्तन का एक उपलक्षण मात्र है।''*[17]

इसी प्रकार आचार्य शुक्ल ने छायावादी कवियों की नारी के प्रति दृष्टि को प्रणय वासना व मधुचर्या के अतिरेक के रूप में देखा था। आचार्य वाजपेयी ने इसका उत्तर इन शब्दों में दिया कि *''नारी भावना का विकास इस युग में द्रुत गति से हुआ और नारी के क्रमागत स्वरूप में आमूल परिवर्तन हो गया। कल्पना-प्रधान कवियों ने समाज के इस तिरस्कृत अंग के प्रति हृदय की समस्त सहानुभूति बिखेर दी और नारीत्व को पुरुषत्व से भी ऊँचा स्थान प्रदान किया।''*[18]

आचार्य वाजपेयी छायावाद को स्वातंत्र्य चेतना से जोड़कर देखते हैं-*''छायावाद-युग में देश की तत्कालीन*

स्वातंत्र्य-चेतना का पूरा प्रभाव देखा जाता है। प्राचीन गौरव की अभिव्यक्ति तथा रहस्यात्मक दार्शनिकता इसी स्वातंत्र्य और सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है।'' [19] इसके अतिरिक्त उन्होंने छायावाद में अभिव्यक्त वैयक्तिकता, भाव-प्रवणता आदि के साथ-साथ उसकी प्रगीत-पद्धति के वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया। यह तद्युगीन युवा आलोचनात्मक विवेक का प्रमाण है।

छायावादी काव्यधारा का अपने वैशिष्ट्य एवं काव्य-सौष्ठव के अत्यंत महत्तम तक पहुँचकर उसका पर्यवसान हुआ। उसके पर्यवसान के कारणों की पड़ताल डॉ. देवराज ने अत्यंत निर्वैयक्तिक एवं वस्तुवादी आलेचना दृष्टि से किया। उन्होंने अपने अध्ययन में छायावाद के महत्व एवं वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया; वहीं वह 'छायावाद के पतन' को एक तथ्य मानकर चलते हैं। डॉ. देवराज की छायावाद संबंधी आलोचना कई अर्थों में अपने पूर्ववर्ती आलोचकों से भिन्न है। पं. मुकुटधर पांडेय, आचार्य रामचंद्र शुक्ल व नंददुलारे वाजपेयी जैसे विद्वान आलोचकों ने छायावाद का संबंध रहस्यवाद, रहस्यभावना अथवा आध्यात्मिकता से जोड़ा था। परंतु डॉ. देवराज के मत से छायावाद में रहस्यवाद को जोड़कर देखना *''काव्यात्मक अभिव्यक्ति की भंगी या शैली मात्र है।''* [20] यही बात उन्होंने महादेवी वर्मा के मूल्यांकन के संदर्भ में कही है-*''समीक्षक की दृष्टि में उनकी रहस्यवादी दृष्टि उनकी अनुभूति और शिल्प को प्रभावित करने वाली एक भंगी मात्र है।''* [21]

'छायावाद के पतन का कारण उसका विषय' था इस मत का डॉ. देवराज ने जमकर विरोध किया है। उनके अनुसार उसके पतन का मूल कारण छायावाद की विषय-वस्तु न होकर उसके शिल्प की कमजोरी है। ज्ञातव्य है कि 'छायावाद का पतन' पुस्तक में छायावाद के अवसान के कारणों का उल्लेख किया गया है। विरोधाभास की स्थिति यह है कि छायावाद की विशेषताएँ ही यहाँ पतन के कारणों के रूप में उल्लिखित हैं।

डॉ. देवराज के मत से छायावाद की काव्य-शैली में शब्दों, चित्रों और अलंकारों का मोह है। यहाँ शब्द-मोह का प्रयोग वे आवश्यकता से अधिक शब्दों के प्रयोग के अर्थ में करते हैं। *''छायावादियों का शब्द-मोह उनके गद्य और पद्य दोनों रचनाओं से प्रकट होता है।''* [22] छायावादी कवियों के गीतों काव्य-रचनाओं में 'केंद्रापगामी व्यंजना प्रवृत्तियाँ' मिलती हैं, अर्थात उसकी रचनाओं से किसी केंद्रीय भाव के अनुक्रम का अभाव मिलता है। यह अभाव उसी प्रकार का है कि जब किसी पैराग्राफमें कई तरह की बातें हों, पर उसमें केंद्रीय तथ्य क्या है वही पता नहीं चल पाए। डॉ. देवराज के मतानुसार यह प्रवृत्ति यह भी स्पष्ट करती है कि छायावादी कवियों का मुख्य ध्येय अनुभूति को व्यक्त करना नहीं है, शब्दों, चित्रों का अलंकारों की आकर्षक प्रस्तुति करना है। इसी कारण छायावादी कविता का आशय दुरूह बन जाता है।

तीसरा कारण है कविता में 'विचारगत और रागात्मक असामंजस्य'। डॉ. देवराज के मत में कविता में रसानुभूति तथा रागात्मक सामंजस्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए। वहीं विचारगत सामंजस्य का भी होना अत्यावश्यक है। यहाँ डॉ. देवराज छायावाद के पतन के कारणों की तलाश साहित्य के बाहर से नहीं, बल्कि भीतर से करते हैं। इसे कविता का मूल्यांकन साहित्यिक मानदंडों पर करने का सफल प्रयास कहा जा सकता है। आजकल इसकी बहुत चर्चा हो रही है कि आलोचना का आधार काव्यकृति या रचना ही होनी चाहिए। इस प्रकार की आलोचना का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण प्रयत्न डॉ. देवराज के यहाँ ही मिलता है।

'छायावाद के पतन' के बाद सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक जो आईं, वे हैं नामवर सिंह की पुस्तक 'छायावाद' (1955 ई.) व 'कविता के नए प्रतिमान' (1968 ई.)। इन तीनों कृतियों को एक-दूसरे के साथ रखकर देखें तो छायावाद संबंधी अनेक अर्थ छवियों एवं उसके विभिन्न आयामों पर प्रकाश पड़ता है।

नामवर सिंह की 'छायावाद' (1955 ई.) पुस्तक मुख्यत: ''छायावाद की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए छाया-चित्रों में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन करने के लिए लिखा गया है।''[23] हिंदी आलोचना में जब छायावाद के पतन की घोषणाएँ हो रही थीं, उस समय उसके वैशिष्ट्य एवं उसमें निहित सामाजिक तथ्यों आदि को ढूँढ़ने का काम नामवर सिंह की आलोचना की

महत्ता को स्पष्ट करता है। छायावाद की चर्चित प्रवृत्तियाँ जैसे-स्वच्छंद कल्पना, वैयक्तिक्ता, स्वानुभूति, प्रकृति का मानवीकरण आदि पहले की कविताओं में भी मिलती हैं। फिर उनमें और छायावाद में मूलभूत अंतर क्या हैं? यह पुस्तक इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करती है। इस पुस्तक की पद्धति यह है कि *''सामाजिक सत्य कविता से खोज निकालने का प्रयास किया गया है, ऊपर से आरोपित करके देखने का प्रयास नहीं किया गया है।''*[24]

नामवर सिंह की आलोच्यकृति 'छायावाद' अत्यंत भाव-प्रवण शैली में लिखी गई 'आलोचना-कृति' है। इसकी भावप्रवण शैली का पता इस कृति के अध्यायों के शीर्षक ही दे देते हैं, जो छायावादी कविताओं की प्रसिद्ध पंक्तियाँ ही हैं। इस पुस्तक में छायावादी काव्य में निहित वैशिष्ट्य का निरूपण किया गया है। इन विशेषताओं को तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक संदर्भों से मिलाकर देखने का प्रयास किया गया है, तत्पश्चात निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

नामवर जी छायावाद के अर्थ-विस्तार के विषय में स्पष्ट करते हैं कि ''छायावादी कविताओं में राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का पर्याप्त आभास मिलता है। इस जागरण में जिस तरह क्रमश: विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और उसके इसके फलस्वरूप छायावाद संज्ञा का भी अर्थ-विस्तार होता गया।'' वह स्पष्ट करते हैं कि *''छायावाद नामकरण जिन कविताओं के आधार पर हुआ था वैसी ही कविताएँ अगले वर्षों में नहीं होती रहीं।''*[25]

छायावाद की आलोचना में एक नया मोड़ तब आता है, जब नामवर सिंह की पुरस्कृत पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' (1968 ई.) प्रकाशित होती है। इस पुस्तक के लेखक नामवर सिंह, 'छायावाद' (1955 ई.) नामक पुस्तक के रचनाकार से एकदम अलग दिखाई पड़ते हैं।

यह पुस्तक 'कविता के मूल्यांकन का आधार कविता और उसकी भाषा ही हो सकती है' आदि रूपवादी विचारों के इर्द-गिर्द घूमती है। हालाँकि इसमें कविता की 'स्वायत्तता' की बात नहीं है, लेकिन 'सापेक्ष स्वतंत्रता' पर जोर स्पष्ट है। नामवर सिंह 'छायावाद' नामक कृति में जिस भाव प्रबलता या भावावेश व स्वानुभूति की बात करते हैं, उसका विरोध 'छायावादी संस्कार' कहकर 'कविता के नए प्रतिमान' कृति में करते हैं। इस पुस्तक में नामवर जी का विचार 'रागात्मकता' से अधिक 'रागात्मक संबंध' से संपृक्त हो जाता है। उनका विचार है कि सिर्फ अनुभूति की बात करते हुए हम छायावादी संस्कारों से मुक्त नहीं हो सकते हैं। यहाँ ''उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती 'छायावादी-संस्कार' हैं।'' यह छायावादी संस्कार भाववादी या रोमानी दृष्टि ही है। इस छायावादी संस्कार से उस समय के प्रख्यात आलोचक आचार्य शुक्ल भी नहीं बच पाए थे। *नामवर सिंह के मतानुसार शुक्ल जी की आलोचना-दृष्टि निर्माण में छायावादी संस्कार का प्रबल योगदान है।*[26]

''हिंदी आलोचना में एक अरसे से काव्य-भाषा के आधार पर संपूर्ण काव्य-कृति के मूल्यांकन की इस विधि की उपेक्षा होती आ रही है।''[27] इसका सबसे ज्यादा शिकार छायावादी काव्य ही रहा है, क्योंकि छायावादी कविता के शिल्प व लाक्षणिकता की सराहना तो की गई, लेकिन उसके कथ्य को नगण्य ठहराया गया। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का मत है-*''आचार्य शुक्ल जैसे समर्थ आलोचक भी इस युगनिर्मित सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सके। उन्होंने छायावादी काव्य की भाषागत लाक्षणिक मूर्तिमत्ता की प्रशंसा की, किंतु उसके भावपक्ष को प्राय: मूल्यहीन माना।''*[28]

यह बात तर्कसंगत है कि-*''छायावाद के समर्थन में जो आलोचना पैदा हुई, उसमें छायावादी कथ्य के बखान का प्रयास ही अधिक है।...किंतु इस कथ्य को प्राप्त करने के लिए जो विधि अपनाई गई, वह अनजाने ही छायावादी कविता के लिए घातक सिद्ध हुई।...छायावाद के इन समर्थक आलोचकों का ख्याल था कि कविता के अंदर मिलने वाले ब्योरे सजावट भर हैं, जिनकी चर्चा अलग से भी की जा सकती है। उनके सामने मुख्य समस्या प्रत्येक कविता का बोधगम्य कथ्य ढूँढ़ने की थी, क्योंकि उसे प्राय: अस्पष्ट और दुर्बोध समझा जा रहा था। चुनौती और दबाव की हड़बड़ी में शायद सबसे आसान तरीका यही था।''*[29] किंतु ऐसा नहीं है यदि नामवर जी ने डॉ. देवराज की

आलोचना पर गंभीरता से ध्यान दिया होता तो यह अवश्य पता चलता कि-'कृति के कथ्य पर दिए गए प्रत्येक निर्णय को कथन-संबंधी निर्णयों की संगति' व आलोचना का 'एकमात्र अवलंब उस कविता की भाषा है' जैसे जिन निष्कर्षों पर वे सन 1968 ई. में पहुँचे हैं, उन पर कोई बीस-इक्कीस वर्ष पहले डॉ. देवराज पहुँच चुके थे। डॉ. देवराज न सिर्फ काव्य-भाषा के आधार पर छायावाद के पतन कारणों का अन्वेषण करते हैं, बल्कि छायावादी कविता की दुर्बोधता के क्या कारण हैं उसकी ओर भी इसी माध्यम से संकेत करते हैं। यह अलग बात है कि डॉ. देवराज के इन काव्यालोचना-पद्धति एवं निष्कर्षों पर नामवर सिंह कोई विचार नहीं प्रकट करते हैं।

हिंदी आलोचना में छायावाद के संदर्भ में इस पर भी जमकर बहस हुई है कि 'छायावाद' काव्यधारा तक सीमित है अथवा साहित्य के अन्य रूपों तक उसका प्रसार देखा जाए। छायावाद पर जब पहले-पहल चर्चा की शुरुआत हुई तब उसका संबंध 'कविता' से जोड़कर ही देखा गया था। पं. मुकुटधर पांडेय की लेखमाला से इस बात का स्पष्ट पता लगता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी 'छायावाद' को अपने साहित्य के इतिहास-ग्रंथ में तृतीय उत्थान की काव्यगत प्रवृत्तियों के अंतर्गत चर्चा करते हुए उसे 'कविता' तक ही सीमित करते हुए चलते हैं। किंतु डॉ. नामवर सिंह का स्पष्ट विचार है कि-*''यों तो छायावाद संज्ञा कविता के लिए ही प्रयुक्त होती है, तथापि यह एक व्यापक जीवन-दृष्टि थी। इसकी अभिव्यक्ति कविता के ही क्षेत्र में सबसे अधिक हुई। परंतु कहानी, उपन्यास, नाटक यहाँ तक कि आलोचना भी इससे काफी प्रभावित हुई।''*[30]

छायावाद का सम्यक पर्यालोचन करने हेतु कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्य-रूपों का सर्वाधिक उपयोग डॉ. रामविलास शर्मा ने किया। छायावाद के अध्ययन के लिए तद्युगीन कवियों की कविताएँ, उपन्यास नाटक, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथ्य तथा निबंध व अन्य अकाल्पनिक गद्य आदि सबका उपयोग उन्होंने किया है। इस प्रकार रामविलास जी ने छायावाद के अध्ययन को विस्तार देने का काम किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने छायावाद के जिस स्वरूप की चर्चा की है, वह इनसे पूर्व के सभी आलोचकों से कुछ भिन्न आधार पर खड़ी है। डॉ. शर्मा छायावादी स्वरूप के संदर्भ में उसकी प्रारंभिक रचनाओं को कुछ विशेष महत्व देते हुए नहीं दिखते हैं, बल्कि वे छायावाद की परिधि में प्रेमचंद को भी शामिल कर लेते हैं। 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' आदि की गद्य-रचनाओं को भी डॉ. शर्मा छायावाद की कविता तक सीमित नहीं करते हैं, बल्कि उस युग के संपूर्ण साहित्य को छायावाद के रूप में ग्रहण करते हुए दिखाी पड़ते हैं और उसका संबंध हिंदी नवजागरण की व्यापक संकल्पना से जोड़ते हैं। उनका मत है कि-*''छायावादी साहित्य द्विवेदी युग के प्रति विद्रोह का साहित्य माना जाता है। थोड़ी देर के लिए कलात्मक साहित्य छोड़कर छायावादी कवियों की विचारधारा पर ध्यान दीजिए। निराला ने अंग्रेजी राज, जमींदारी प्रथा, किसान आंदोलन, वर्णाश्रम धर्म, नारी की पराधीनता भाषा की समस्या आदि-आदि पर जो कुछ लिखा है, उस पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि हिंदी नवजागरण के संदर्भ में निराला का यह लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है। इस प्रकार छायावादी चिंतन सर्वत्र द्विवेदी युग का विरोधी नहीं उसका अनुवर्ती है।''*[31]

डॉ. शर्मा के अनुसार *''छायावाद साम्राज्य-विरोधी चेतना के निखार का साहित्य है।''*[32] इसके अतिरिक्त उनकी मान्यता है कि छायावाद का गांधीवाद से कोई संबंध नहीं है, जिसे कभी शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'गांधीवाद का साहित्यिक संस्करण कहा था।' रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-*''छायावादी साहित्य की साम्राज्यविरोधी चेतना सन 30 के बाद और निखरती है। इसका एक लक्षण यह है कि छायावादी कवि किसान जीवन को आधार बनाकर नया साहित्य रचते हैं। जो साहित्य सन 30 के पहले भी गांधीवाद का अनुयायी नहीं था, वह सन 30 के बाद उससे अधिक दूर हट जाता है।''*[33]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावाद वह काव्यधारा रही है, जिसने न केवल हिंदी काव्यधारा को समृद्ध किया है, बल्कि उस पर हुई साहित्यिक बहसों ने हिंदी आलोचना को भी समृद्ध किया। हिंदी के लगभग सभी आलोचकों ने इस काव्यधारा पर अपने विचार और अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। मुकुटधर

पांडेय, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. देवराज, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रामविलास शर्मा के साथ-साथ छायावादी कवियों ने भी छायावाद संबंधी बहसों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आरंभ में छायावाद को जहाँ आध्यात्मिकता, रहस्यवाद एवं काव्यशैली मात्र के सीमित अर्थ में ग्रहण किया गया था, वहीं आगे चलकर उसे राष्ट्रीय जागरण, हिंदी नवजागरण तथा साम्राज्यवाद विरोधी काव्य के व्यापक संदर्भों में रखकर व्याख्यायित किया जाने लगा। वस्तुत: छायावाद संबंधी होने वाली बहसों से छायावाद की अर्थ-व्यंजना एवं अर्थगांभीर्य का निरंतर विस्तार होता हुआ दिखाई पड़ता है। आशा है भविष्य में उसके निहितार्थों के अन्य गवाक्ष खुलेंगे। ❑

संदर्भ :

1. निर्मला, जैन; हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-दूसरी आवृत्ति-2006, पृ. 11
2. वही, पृ. 30
3. वाजपेयी, अशोक; कविता का गल्प, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-1997, पृ. 108
4. नवल, नंदकिशोर; छायावाद और पं. मुकुटधर पांडेय-आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका) जुलाई-सितंबर-1972, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 79
5. वही, पृ. 85
6. वही, पृ. 84
7. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम लोकभारती संस्करण-2002, पृ. 456
8. वही, पृ. 456
9. वही, पृ. 447
10. वही, पृ. 446-47
11. द्विवेदी, हजारी प्रसाद; हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवीं आवृत्ति-2003, पृ. 242
12. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 447
13. वही, पृ. 448
14. द्विवेदी, हजारी प्रसाद; हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवीं आवृत्ति-2003, पृ. 242
15. शुक्ल, रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास-देखें, आधुनिक काल: प्रकरण-04, काव्यखंड: नई धारा: तृतीय उत्थान, पृ. 444-445
16. नंददुलारे वाजपेयी, सं. उदयभानु सिंह, छायावाद, पृ. 33
17. वही, पृ. 34
18. वही, पृ. 35
19. वही, पृ. 35
20. डॉ. देवराज; छायावाद: उत्थान, पतन, पुनर्मूल्यांकन, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ-1975, पृ. 21
21. वही, पृ. 18
22. वही, पृ. 86
23. सिंह, नामवर; छायावाद; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवीं आवृत्ति-2006, पृ. 152
24. देखें, वही, भूमिका
25. देखें, वही, भूमिका, 'जागो फिर एक बार', जिसके आगे राह नहीं शीर्षक अध्याय
26. सिंह, नामवर, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवीं आवृत्ति-2002, पृ. आरंभ से पृ. 55 तक देखें
27. वही, पृ. 102
28. वही, पृ. 102
29. वही, पृ. 102
30. सिंह, नामवर; आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1998, पृ. 35-36
31. शर्मा, रामविलास; महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा छात्र संस्करण, 2018, पृ.18
32. शर्मा, रामविलास; निराला की साहित्य साधना, भाग-3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति-2005, पृ. 553
33. वही, पृ. 558

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

जिन्हें पहली पंक्ति में जगह नहीं मिली

डॉ. अरविन्द कुमार यादव

सहायक आचार्य
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय,
सांबा-181143 (जम्मू एवं कश्मीर)
9425157244
kumar.arbind15@gmail.com

समकालीन हिंदी कविता अपनी परिधि एवं परिवेश में सृजित है, उसी परिधि एवं परिवेश की उपज अनिल मिश्र और उनका काव्य संग्रह 'भूखे पेट की रात लंबी होगी' (लेबर चौराहा) है, जो तद्जनित परिस्थितियों, मानवीय संवेदनाओं, संघर्षों के तमाम प्रश्नों से अनुस्यूत है। 'भूखे पेट की रात लंबी होगी 'लेबर चौराहा' कविता संग्रह के संदर्भ में अमिताभ राय कहते हैं कि *'यह जितना अभिधात्मक पदबंध है, उतना ही लाक्षणिक! अभिधात्मकता और लाक्षणिकता कविता की भवता की अनिवार्यता है। भूखे पेट की रात की लंबाई प्रसंगों और संदर्भों पर निर्भर करेगी। अमीरी और गरीबी के लिए इसके मायने अलग-अलग होंगे, वैसे ही अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक के लिए...ऐसे अनेक द्वित्वों का संदर्भ प्रस्तुत किया जा सकता है। किंतु, इनकी कविताओं की खासियत यह है कि ये अनेक द्वित्वों को कविता में सहज ही उभारती हैं पर साथ सदैव कमजोर, वंचित, विपक्ष या अल्पसंख्यक के होती हैं। कविता में यह कवि की गहरी अंतर्दृष्टि के कारण निर्मित होता है। गहरी अंतर्दृष्टि के बावजूद कवि ने अपनी पक्षधरता छुपायी नहीं है। जीवन के रोजमर्रापन का संदर्भ इन कविताओं के संभव होने का कारण है। त्याज्य और स्वीकार्य सबको कवि की गहरी संवेदना प्राप्त हुई है। चाहे घर का कबाड़ बेचने का ही संदर्भ क्यों न हो! जिन संदर्भों से हम प्रायः तटस्थ होते हैं या दिखने की कोशिश करते हैं, कवि अनिल मिश्र प्रायः वहीं सक्रिय होते हैं। कहने की बात नहीं है कि यह सूक्ष्म अवलोकन के द्वारा ही संभव हो सका है। इस प्रक्रिया में और इस प्रक्रिया द्वारा वे आस्था के जीवन को प्रस्तावित करते हैं, उसका साक्षात्कार करते हैं। बड़े सत्यों और बृहत् लक्षणों के संधान में कई बार जीवन के लघु सत्य और लक्षण छुट जाते हैं, दृष्टि के ओझल हो जाते हैं। पर कवि अनिल मिश्र के संदर्भ में यह नहीं कह सकते। लक्ष्य उनका बृहत् है और संदर्भ सामान्यता से निर्मित हैं। राजनीतिक समझ और चेतना के बिना ऐसा होना संभव नहीं होता! सरसरी तौर से देखने पर इन कविताओं में राजनीतिक अंतर्दृष्टि का अभाव दिखाई देता है। वह ठोस या प्रत्यक्ष नहीं, पर उसकी उपस्थिति कविताओं में प्रसंग निर्मित करती है। राजनितिक व्यवहार इन कविताओं में तरल अंतः सलिला की तरह है। इस कारण ही इन कविताओं में समाज की समानांतर गतियाँ हैं। ये समानांतर गतियाँ इनकी काव्य-चेतना का आधार हैं। चूँकि इनकी कविताओं में*

रोजमर्रापन का सौंदर्य है, इसलिए यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कविताओं के विषय विविध हैं। इसमें बहुत से किरदार हैं। मानव समाज के भीतर से भी और बाहर से भी, प्रकृति से भी। प्रकृति अभिधा में भी है और मनुष्य की प्रकृति के वाच्यार्थ रूप में भी। इन कविताओं में दूसरे अर्थ में प्रकृति बहुत है।'[1]

अनिल मिश्र के काव्य-संग्रह 'भूखे पेट की रात लंबी होगी (लेबर चौराहा)' में जीवनानुभूति, समाज की वास्तविक तस्वीर, नए समाज की संकल्पना, संयुक्त परिवार की संकल्पना, मानवीय संवेदना, आत्मीयता एवं संबंधों में जीवंतता, प्रेम की प्रगाढ़ता, संवेदनाओं का क्षरण, ग्रामीण जीवन एवं संस्कृति, मिथक और भारतीय संस्कृति, उद्योगपतियों का व्यवहार एवं श्रम संस्कृति, राजनीति का चरित्र एवं सत्ता की निरंकुशता, नगरीय जीवनबोध, प्रकृति, मौसम एवं ऋतु, जल संकट एवं रेगिस्तान का चित्रण, वृद्ध, किन्नर, अल्पसंख्यक, आदिवासी संस्कृति, किसानी जीवन एवं संस्कृति, स्त्री जीवन, बेरोजगारी की पीड़ा, विस्थापन, बाजारवाद, संचार-संस्कृति, आधुनिकता एवं आतंकवाद जैसे तमाम प्रश्नों से हमें रूबरू करता है।

अनिल मिश्र समाजबोध एवं जीवनानुभूति के कवि हैं, इनकी कविताएँ अमानवीयता, मानवीय मूल्यों में गिरावट, व्यक्ति का दोहरा चरित्र, समाज की वास्तविक तस्वीर, वंचित समाज की दारुण दास्तां, समाज में पनपती विसंगतियाँ, व्यक्ति एवं समाज में घुटन, तनाव एवं संशय से अनुस्यूत हैं, जिसमें मानव इतिहास के क्रूरता का ब्यौरा, सत्ता की निरंकुशता, समाज एवं व्यक्तियों के बीच पनप रही विद्वेष की भावना, गरीब-वंचित समाज के प्रति अमीरों, पूँजीपतियों, उद्योगपतियों एवं मिल मालिकों के दोयम दर्जे का व्यवहार, भूख से त्रस्त वंचित-गरीब समाज के लोग, जलाहत भरी जिंदगी का कटु यथार्थ है। समाज के पूँजीपतियों, सामंतवादी समाज के लोग एवं अमीर व्यक्ति कचरा घरों में एकत्रित हुए जूठन पर कुत्तों की तरह अपना अधिकार जमाते हुए गरीब-वंचित लोगों से अमानवीय व्यवहार करते हुए ये लोग अनेक रूपों में अपना किरदार की भूमिका निभाते हैं। गरीब बाप अपने संतानों की इच्छाओं एवं सपनों को पूरा नहीं कर पाते हुए बेबसी का जीनव

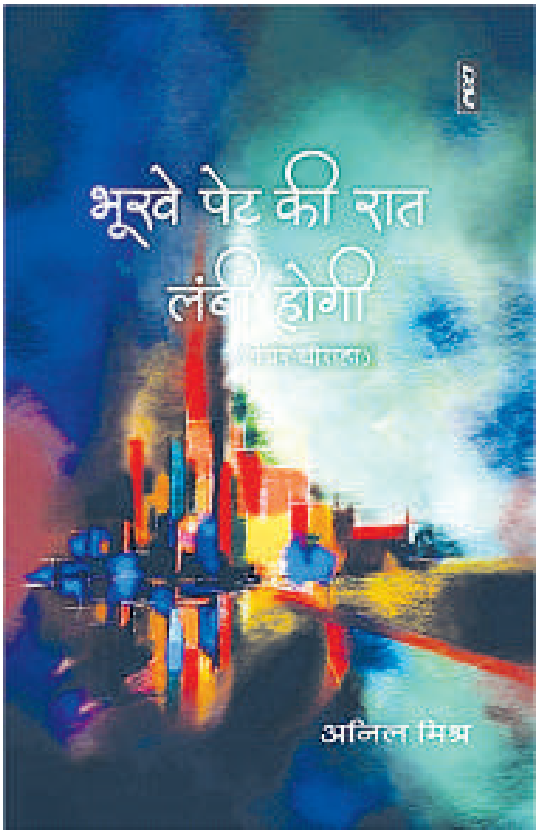

भोगने के लिए अभिशप्त है। उसे विश्वास है कि तीरथराज के कमंडल से निकलती हुई रोशनी गरीब-वंचित समाज के लोगों के जीवन के स्याहपन को समाप्त कर उनके जीवन को सुखमय बनाने में मदद करेगी, लेकिन शाम होते ही इनके सपने गुब्बारे की तरह फूटकर बिखर जाते हैं। ये लोग फुटपाथों पर अपने मैले-कुचैले बिस्तरों को बिछाकर किसी तरह रात गुजारते हैं। यही वजह है कि इनके भूखे पेट की रात इतनी लंबी हो गई है कि इंतजार करते हुए इनका इहलीला समाप्त हो जाता है। वंचित-गरीब व्यक्ति जीवन का गुजर-बसर करने के लिए अथक परिश्रम करते हुए अपने दारुण भरे जीवन के उत्तरकांड का इतिहास लिखता है। भाप के इंजन के दहकते अंगारों की तरह जीवन भर लड़ता-जूझता रहता है। कवि कहता है कि मैंने बचपन में व्याकरण की किताब का अध्ययन करते हुए यह पाया एक से अधिक वर्णों के शब्द की निर्मिति होती है। तो मेरे मस्तिष्क में बार-बार यह प्रश्न कौंधता

रहा है कि सभ्य समाज से क्यों वंचित समाज की बस्तियों को निकालकर दक्षिण की ओर बसाया जाता रहा है। समाज रूपी व्याकरण एवं उसके कार्याशाला के विषय में विचार करते हुए कवि ने यह पाया कि अपनी श्रेष्ठता एवं समाज में अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए उन्होंने अपनी सुविधानुसार परिभाषाओं को निरंतर रचते-गढ़ते रहे हैं। व्यक्ति एवं समाज आज स्वार्थी होता जा रहा है कि वह घर में बैठकर उब रहा होता है, लेकिन वर्चस्ववादी लोगों के विरुद्ध आवाज नहीं उठता है। वह अपने मुँह में दही जमाकर शांति से बैठा रहता है। वर्चस्ववादी समाज के लोगों द्वारा वंचित-गरीब समाज पर किए गए दुष्कर्मों को भुलाकर वंचित-गरीब समाज के व्यक्ति अपनी अस्तित्व को बचाए रखने की यथासंभव कोशिश करते हैं। व्यक्ति उनकी घुड़कियों से गरदन की ओर बढ़ते हाथों से दूसरे के रौंदे जाने पर निस्तब्ध रहते हैं। समाज में भेड़िए रूपी वर्चस्ववादी लोगों ने बकरी के बच्चे रूपी निसहाय, बेबस एवं लाचार जनता को कुचलते हुए कहती है कि यह प्रकृति का दस्तूर है। प्रकृति में ईश्वर का रूप निहित होता है। प्रकृति रूपी खूंखार भेड़िए के प्रति वंचित-गरीब लोग उसके विरुद्ध प्रतिरोध करने में असमर्थ एवं मजबूर हैं। वह इस समाज के लोगों के साथ सरेआम चौराहों पर दुष्कर्म करते हैं, क्योंकि चुप्पियाँ अँधेरे की तरह होती हैं। वह न कुछ करती हैं और न दूसरों को कुछ करने देती हैं। यही वजह है कि कमजोर तबके के लोग वर्चस्ववादी शक्ति के आगे घुटने टेक देते हैं। किसी जाँच समिति में शामिल होकर अपने आक्रोश के सारे हथियार को दफन कर देते हैं। कवि इस स्थिति को देखते हुए कहता है कि वंचित, गरीब एवं कमजोर समाज इसलिए हारा हुआ महसूस करता है कि उसके समाज के लोग अपने स्वार्थ में समाज को होम करते जा रहे हैं। जब उनका असली चेहरा कमजोर समाज के समक्ष आता है तो धरती भी उनके दुष्कर्मों एवं स्वार्थीपन को देखकर फटने को तैयार नहीं होती है, जिसमें वह अपना कलंकित चेहरा छिपा सकें। ऐसे लोगों के जीवन पर प्रतिबंध लगाया जाना ही समाज की वास्तविक तस्वीर है। साथ ही समाज एवं व्यक्ति घड़ी के समय की टिक-टिक के साथ परिवर्तित होता रहता है। घंटाघरों में निवास करने वाली मानसिक बीमार जनता पतंगों की तरह बदलते समय के साथ अपने को बदलती रहती है। समाज के लोगों के मन-मस्तिष्क में आकाश एवं पहाड़ की तरह व्याप्त सामाजिक विद्रूपता एवं वैमनस्यता को समाप्त करती हुई नदी की स्वच्छ धारा रूपी जीवन की तरह वर्तमान पीढ़ियाँ अतीत के दास्ताँ को भुलाकर एक स्वस्थ समाज की स्थापना करने में अपनी अहम भूमिका निर्वहन कर रही है। 'शब्द और संधि-पत्र' कविता से जीवनानुभूति एवं नए समाज की संकल्पना का नमूना प्रस्तुत है-

''कितनी रातों के बाद आयी है ये सुबह
अपनी-अपनी टाई ठीक करते
बैठ गये हैं शब्द मेज के चारों ओर
पीछे छोड़ आए हैं चीखती घाटियाँ
जले घर
इस हाल तक पहुँचने के रास्ते में
नागफनियों के जंगल थे
काँटों की खरोंच के निशान लिये
दर्द भी आया है उनके साथ
संधि-पत्र पर बैठते समय
इस बात का ध्यान रखा कि
किसी तरह फिर से फूलों की खेती हो
अंगारा थोड़ा ठंडा हो जाए
और वज्र हो जाए थोड़ा मुलायम
कौन ऊपर होगा कौन नीचे
कौन किसके साथ
ऐसी तमाम तलवारों को म्यानों में रख कर
आपस में गले मिल रहे हैं शब्द।''[2]

अनिल की कविताएँ संयुक्त परिवार की संकल्पना का तानाबाना गढ़ती है, जिसमें भाई-बहन, पति-पत्नी, माता-पिता, बाप-बेटी, देवर-भाभी, फुआ एवं बाबा-आजी का प्रेम, सौहार्द, संबंधों की जीवंतता एवं रिश्तों की अहमियत है। माता-पिता घर-परिवार की धुरी होते हैं। यही कारण है कि घर-परिवार के सदस्यों में आत्मीयता का भाव ही परिवार को एक सूत्र में पिरोकर रखता है। देश-दुनिया की हालातों को देखकर माताएँ अपने बच्चों के प्रति चिंतित रहती हैं। माँ प्यार भरी उलाहना देती हुई

कहती है कि तुम सब कब तक सोते रहोगे। माँ अपने बच्चों के टूटते सपनों को देखकर आहत है। वह सपनों को साकार करने की उन्हें ढाँढ़स देती हुई अथक परिश्रम करती है। एक पिता के लिए दुनिया में सबसे खूबसूरत मेरी बेटी की मुस्कुराना है, बेटी का हृदय निष्कलुष है तथा झरने की राग की तरह बेटी की हँसी पिता-पुत्री के पारिवारिक सबंधों का चित्रण है। 'मेरे बाबा' कविता में बाबा सुबह होते परिवार के सभी सदस्यों को जागने की हाँक लगाते हुए कहते हैं कि घर-परिवार समूचे सदस्यों अपने दायित्व को निभाने की नसीहत देते हैं। घर-परिवार के लोगों को डाँटते हुए उन्हें अपने समीप बैठकर समाज एवं देश-दुनिया के उदाहरणों द्वारा परिवार को परिवार समझने की सीख देते हुए दादी के चिल्लाने एवं नाराज होने पर भी सई नदी को तैरकर उस पार जाकर वहाँ से वस्तु को लाकर घर-परिवार के सदस्यों देना ही पारिवारिक एकजुटता की नसीहत है। मुघुना फुआ का अपने भाई के घर-परिवार के सदस्यों के साथ मिल-जुलकर रहना संयुक्त परिवार की अवधारणा है। 'आँगन' कविता से संयुक्त परिवार की संकल्पना का नमूना प्रस्तुत है-

''पीढ़ियों का एक साथ बैठाते हुए
हमेशा ऐसा लगा
मैंने युगों के अंतराल को पाट दिया है
मेरे जीवन में कोई अर्द्धविराम नहीं है
सोने या बैठने का कमरा नहीं
किसी घर का फेफड़ा होता हूँ
मैं बनता हूँ ईंट और सीमेंट की दीवारों से
दुनिया की कच्ची समझ से
मैं बनता हूँ दरअसल
अपने पिता को दिए जा रहे
बच्ची के सबसे मासूम चुंबन से
मेरे पास आना घुटन भरे बंद कमरों से
खुद अपने को आँगन में बदलने के लिए।''[3]

अनिल मिश्र की कविताएँ मानवीयता, संबंधों की जीवंतता, आत्मीयता, अपनों से बिछुड़ने की छटपटाहट, रिश्ते-नाते एवं प्रेम की प्रगाढ़ता की कहानी कहती हैं, जिसमें समाज की विसंगतियों को देखकर संवेदनशील व्यक्ति का हृदय द्रवित हो जाता है। वह जीव-जंतु एवं पक्षियों से सीखते हुए कहता है कि जिस प्रकार पक्षी रात्रि को गुजारने के लिए घोंसलों का निर्माण करती हैं। उसी प्रकार मैं/व्यक्ति गरीब-वंचित समाज के लोग के गुजर-बसर करने के लिए घर का निर्माण करता है। मैंने अपनी आँखों में पानी को बचाकर रखा है। जहाँ समाज पर मंडराते चील-कौवों की भांति हिंसक एवं परभक्षी मानसिकता वाले व्यक्तियों से शोषित, वंचित एवं गरीब जनता को बचाए रखने का कर्तव्य ही मनुष्यता है। कवि कहता है कि घर-परिवार, पड़ोसी एवं जीवन के सफर में बनते रिश्ते-नातों में विश्वास ही आत्मीयता की परिभाषा है। व्यक्ति अपनों से दूर होते जाने की छटपटाहट को देखते हुए उससे पुन: मिलने का आसार भले ही बहुत कम नजर आता है। परंतु उसके हृदय रूपी खाली कोष्ठक में संबंधों एवं रिश्तों में आत्मीयता के अनमोल धन के आने की संभावना सदैव बनी रहती है। उसके हृदय में अपनों के बिछुड़ जाने वाले ऋण की संभावना नाम मात्र की रहती है। एक-दूसरे के प्रति हृदय के किसी कोने में मद्धिम ज्योति की तरह जीवन भर जलती हुई संबंधों में आत्मीयता की आस को बनाए रखने की छटपटाहट उनमें हमेशा बनी रहती है। भौतिकतावादी दौर में बहुत तीव्र गति से संबंधों में बिखराव देखने को मिलता है। इनकी कविताओं में बाबा का घर-परिवार के लोगों को दयानत डाँटना और उनको अपने पास बैठाकर जीवन में संबंधों की अहमियत को समझना आत्मीयता का द्योतक है। घर-परिवार का गुजर-बसर करने के लिए व्यक्ति या परिवार का सदस्य जैसे बेटा परदेश चला जाता है। वहाँ से माँ से फोन करता है। माँ बेटे को घर-परिवार का हाल-समाचार बताते हुए कहती है कि मुलुवा सायन हो गई है। उसका अगले वर्ष हाथ पीले करना है । दमा मेरे जीव का जंजाल बन गया है। जब परदेश से घर को लौटना तो बेटा परताप सुंघनी जरुर लेते अना। मैं देख रही हूँ कि परदेश से जो गाँव में आ रहे हैं वह सुटुक्की हो गए हैं। बेटा परताप को खाने-पीने एवं अपने स्वास्थ का ध्यान रखने की हिदायत देती हुई माँ कहती है कि मर्द को मुसई होना शोभा नहीं देता है। शहर जोगिनों का डेरा है। बेटा कदम फूँक-फूँककर रखना। माँ बेटा का चिंता करती हुई लोकमाता उजरी देवी से उसके

सुख-शांति के लिए कमाना करती है। माँ का बेटे के सुखमय जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखना ही संबंधों एवं रिश्तों की आत्मीयता का जीवंत प्रमाण है। 'डायलिसिस' कविता में देवर-भाभी के रिश्तों में प्रेम की प्रगाढ़ता दृष्टिगोचर होती है। भाभी की दोनों किडनी खराब हो गई है। देवर रोज भाभी का हाल-समाचार लेने के लिए अस्पताल जाता है। भाभी मरीजों के बीच बिस्तरों पड़ी देवर को देखर फफक पड़ती है। अस्पताल के विशाल कक्ष की चीकट-चुप्पी में वह अपनी स्थिति को बयां करती है। आत्मीयता की छटपटाहट एवं संबंधों की प्रगाढ़ता की बानगी 'मेंड़ों पर घास' कविता में देखा जा सकता है-

''तुमने कहा था जिंदगी बहुत छोटी है
हम अवश्य पहुँचेंगे एक-दूसरे के सुख-दुख में
लाख अकाज होता हो चाहे अपना
तुम्हारे दुख को अपना वस्त्र समझ कर पहन लेंगे
इस तरह कि तुम्हारा था ही नहीं
इस तरह हम भाग्य को उसके मुँह पर ही ललकारेंगे।''[4]

अनिल की कविताएँ श्रम संस्कृति एवं मेहनतकश लोगों के जीवन से संपृक्त हैं जिसमें पूँजीपतियों, मिल मालिकों एवं उद्योगपतियों के दोयम दर्जे के व्यवहार, श्रमिक एवं मेहनतकश लोगों के शोषण एवं कामगार के जीवन का यथार्थ है। 'परदेश की नौकरी' कविता में कामगार की इच्छा है कि उसे रोज दिहाड़ी मिलती रहे, जिससे वह अपने घर-परिवार का गुजर-बसर करता रहे। 'वरली सी फेस की एक शाम' कविता में मछुआरे मछलियों को हबर-हबर बटोरकर हुए जहाज की भाँति अपनी पीठ पर लादकर बोरी बंदर में लोगों के बीच बेचकर उनसे प्राप्त पैसों से खाद्य पदार्थों का इंतजाम करते हुए प्याज, हरी मिर्च एवं सूखी रोटी द्वारा लोगों की क्षुधा तृप्ति करते हैं। 'नींद के लिए नींद (पहरेदार)' कविता में कवि कहता है कि मेहनतकश एवं श्रमिक घर-परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनी नींद को गिरवी रख देते हैं। मेहनतकश लोग बाहर/परदेश जाकर काम-धंधा करके घर को लौटते समय अपने मेहनत से कमाए हुए धन को सिरहाने लगाकर अगोरते हैं, जिससे इनके धन कोई लेकर भाग न जाए। इस धन से ये लोग अपने घर-परिवार की जरूरतों की आपूर्ति करते हैं। इलाहबाद का लेबर कामगारों के जीवन का रंगमंच है। कामगार जीवन का गुजर-बसर करने के लिए अथक परिश्रम करते हैं। मोची जूतों की मरम्मत करते हुए तात्कालिक समय की नब्ज को समझता हुआ तिजहरी बेला में हठयोग की मुद्रा में रिक्शा वाले सीट पर पैर टिकाए हुए सुस्ताते हैं। क्षुधा की तृप्ति के लिए रात-दिन काम करते हुए मजदूर धन के अभाव में सड़कों के किनारे गमछा बिछाकर रात गुजारते हैं। सेठ-साहुकार के वफादार लोग लेबर चौराहे में एकत्रित हुए कामगारों को अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं का हवाला देते हुए चीनी-नमक की तरह मेहनतकश लोगों के श्रम का मोलभाव करते हुए उनके साथ छल करते हैं। इस संदर्भ में 'भूखे पेट की रात लंबी होगी (लेबर चौराहा) कविता से मेहनतकश लोग के जीवन के यथार्थ को देख सकते हैं-

''यह चौराहा है या इसे एक रंगमंच कहें
दिनभर यहाँ किनारे बैठा एक मोची होगा
जो जूतों की मरम्मत करते-करते
समय की मरम्मत करने लगेगा
तिजहरी कहीं उस तरफ अपने पैर सिट पर रख कर
सुस्ताते रिक्शा चालक हठयोग करेंगे
और मजदूर गमछा बिछा कर सो जाएँगे फुटपाथ पर
भूखे पेट की रात लंबी होगी।''[5]

अनिल मिश्र की कविताएँ मिथक एवं भारतीय संस्कृति की वकालत करती हैं जिसमें तुलसी, दूब, अक्षत, अर्घ, देवी-देवताओं से मनौती, पेड़ में धागे बाँधना, संतों-महात्माओं की वाणियाँ के साथ वेद-पुराण एवं धार्मिक ग्रंथ हैं। कवि कहता है कि सेवा निवृत्ति के समय धार्मिक ग्रंथों को प्रदान कर लोग व्यक्ति को धर्म से संपृक्त करते हुए अयोध्याकांड-लंकाकांड के साथ जीवन के उत्तरकांड को समझने की नसीहत देते हैं। घर-परिवार के किसी व्यक्ति को सुल्तानपुर मुकदमे की पैरवी करने जाना होता है तो घर की मालकिन एक भरा जल-पात्र घर की डेहरी पर रख देती है। घर की बुजुर्ग दादी-अम्मा बच्चों से कहती है कि जाकर देख आओ रास्ता में कोई अपशकुन तो नहीं हैं। बच्चे बताते हैं कि डगर साफ है। व्यक्ति शुभ

कार्य के लिए प्रस्थान करता है। व्यक्ति गाढ़े दिनों में ईश्वर से विनती करते हुए 'दीन दयाल विरिदु संभारी हरंहु नाथ मम संकट भारी' जैसी पंक्तियों को बुदबुदाता रहता है। सभ्यता को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए ऋषि-मुनि सुभाषित वाणियों में मंत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञ-हवन करते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि हविश-प्रेमी जीभ निकाले हुए खड़े हैं कि मैं इस कार्य के लिए हजारों के बीच चुना गया हूँ। दमित वासना से उत्कंठित व्यक्ति स्वर्ग पहुँचने के लिए पशुबलि देते हुए शांति की साँस लेता है। काशी में पंचकोशी की परिक्रमा करते हुए व्यक्ति अपने कंधों पर काँवर रूपी श्रद्धा को रखकर घर-परिवार के सुखमय जीवन को व्यतीत करने के लिए ईश्वर से वरदान माँगता है। वह आवारा बादल की तरह आँख मिचकाते हुए अपने दुख-तकलीफों के साथ जीवन में किए गए अनैतिक कार्यों के अनुभवों का पश्चाताप करते हुए वह रामनामी लपेटे हुए मंदिर की चौखट रोज पर आरती करने एवं दीपक प्रज्वलित करने पहुँच जाता है। वह मंदिर से लौटते हुए जले हाथ लिए तिरस्कार भरे घावों के साथ एक और घाव का इलाज समझकर देवता के समक्ष यह भरोसा लिए हुए बैठ जाता है कि जीवन में सब कुछ अच्छा हो जाएगा। यही गाँव-घरों में प्रचलित मान्यता भारतीय संस्कृति की प्रमाण है। 'खाली जगह' कविता से मिथक एवं भारतीय संस्कृति का नमूना प्रस्तुत है-

''अपनी पहली संतान होने पर
बरगद के पेड़ में धागे बाँधते समय
माँगी गयी तुम्हारी मेरी मनौतियाँ हैं
बेहद ऊसम भरी रात में
पस्त पड़े हौसलों को
अपनी बाँहों का सहारा देकर उठाती
सुबह के सूरज की किरणें हैं
भविष्य में वहाँ अँधेरे और प्रकाश की
बनी पगडंडी पर
चला आ रहा है रूठा मनु
एक श्रद्धा सी लगाने वाली स्त्री
पोटली में रखे बीजों को
छितरा रही है दासों दिशाओं में
लेकिन उससे भी ज्यादा हैं बाँसुरी के स्वर।''[6]

अनिल मिश्र की कविताएँ ग्रामीण जीवनबोध एवं संस्कृति से लैस हैं। विरासत, परंपरा एवं गँवई जीवन शैली में गाँव अपनी कहानी कहता है, जिसमें पास-पड़ोसियों की आत्मीयता, खेत-खलिहान, खेतों में लहलहाती फसलें, लोक देवी-देवता, लोकसंगीत, लोकगाथा, लोक-परंपराओं, लोकभाषा-शैली एवं चौपाल पर देश-दुनिया के स्थितियों का व्यौरा एवं बदलते परिदृश्य का चित्रण है। सुबह की पहली किरण गाँव के नैरंतर्य जीवन शैली को रेखांकित करती हुई कँटीली झाडियाँ भूखी बकरियों के क्षुधा की तृप्ति के लिए अपनी टहनियों को झुका देती हैं। गाएँ थान में दूध ली हुई अपने बछड़ों के लिए सुबह होने की राह अगोर रही हैं। गाँव के बच्चे आपस में क्षणिक लड़ाई करते हुए लड़ाई को भुलाकर निश्चित भाव से बैठकर प्यार से गुट्टी खेलते हैं। गाँव की दलित-उपेक्षित स्त्री मुघुना की राष्ट्रपति की भाँति आम के बगीचे की रखवाली के लिए नियुक्ति की जाती है, जिसे गाँव के बच्चे प्यार से फुआ कहकर पुकारते हैं। हवाएँ, पेड़-पौधे एवं जीव-जंतुओं ने अपनी-अपनी आवाज में मुघुना फुआ का ताजपोशी करते हुए स्वागत किया। सुबह की पहली किरण फुआ को आम में पियराई उतर आई की सूचना देने धमक पड़ी। फुआ अपनी कुटिया में बैठकर सजल स्नेह भाव से गाँव से नर-नारियों एवं बच्चों को आते हुए देखकर कहती है कि आप लोग एक-दो आम खा सकते हैं और बच्चों के प्रति अधिक स्नेह होने के कारण उन्हें एक-दो के अतरिक्त आम खाने की अनुमति देती है। प्रतीकात्मक शैली में कहा जा सकता है कि गाँव का सेंवार अपनी अदम्य इच्छा की आपूर्ति के लिए मनुष्य का शरीर धारण करके फसलों के अतिरिक्त खर-पतवार की फुनगियों पर तड़के सुबह की ठंडी-ठंडी ओस की बूँदों के साथ फसली लोक संगीत को गाते हुए गाँव की हवा-मिट्टी से दोस्ती का नाता जोड़ लेता है। वह गाँव की स्थितियों एवं ग्रामीणवासियों के बत्तर जीवन को देखकर उसके मौन में शेर की दहाड़ सुनाई पड़ती है। कवि कहता है कि मुझे खबर मिली की घर के आँगन में लगे छोटे-छोटे बिरवे वृक्ष का रूप धारण कर लिए हैं। गाँव एवं घर-परिवार के बुजुर्ग अपनी दालान के झरोखों को खोलकर पेड़ की डालियों पर खिलते फूलों

को देखर प्रसन्नता की मुद्रा में सुबह होते उन्हें निहारने लगते हैं। घास काटने आती लड़कियाँ अधपकी बेरियों का रस पान करते हुए हाथ पीले करने योग्य हो गई हैं। उनकी अँगुलियों के पोरों में चुभते बेरियों के काँटों ने उन्हें जीवन के दुख-दर्द से लड़ने-जूझने का हिम्मत प्रदान करते हैं। पक्षियों द्वारा पेड़ों पर निर्मित घोसलों में उनके जन्मे नवजात बच्चों को आसमान में उड़ते हुए देखकर गाँव के बच्चे अपने सपनों को साकार करने के लिए तूफानों की भाँति कठिन से कठिन परिस्थितियों से टकराने की हौसला रखते हैं। पक्षियों के बच्चों की तरह घर-गाँव के लोग कहीं-कहीं मुझसे टकरा जाते हैं। गाँव के बुजुर्गों से बहुत पहले सुना था कि जीवन एवं दुनिया बहुत छोटी होती है। व्यक्ति किसी न किसी मोड़ पर मिल जाता है। गाँव के लोग अपनी लोक धुनों में इसे निरंतर गाते रहते हैं। गाँव में झाड़ियों के बीच गँवई डगर के किनारे मिट्टी से निर्मित घर ऐसा प्रतीत हो रहा है, जो सावधान यात्री की तरह अपनी उम्र की ढलान की ओर बढ़ता जा रहा है। बारिश के दिनों में घर भीगे बैल की तरह सहमा हुआ आसमान की तरफ से अपनी आँखें चुराते हुए वरुण एवं पवन देव के गुंडों के आतंक से बेबस दिखाई दे रहे हैं, जिसमें घर-परिवार के लोग एकत्रित होकर अपनी जान बचाते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। ये लोग अपने मेहमानों का स्वागत गुड़, पानी एवं मौसमी आहारों द्वारा करते हैं। 'पुश्तैनी कच्चा मकान' कविता से ग्रामीण जीवनबोध एवं संस्कृति का नमूना देखा जा सकता है-

''ग्रीष्म में तपती दोपहर सा
जब भी आ धमकता सुबह-सुबह
वसूलने मालगुजारी
तहसीलदार का चपरासी
दौड़ कर अंदर से लाते हम
उसके लिए गुड़ और पानी
इधर-उधर झाँकते
करने लगता घर
दुर्गा सप्तशती का पाठ
वैशाख और जेठ में
महुए की लपसी
सावन में बनते ठोकवे उसी के
काट देते काठ के दिन
काले पहाड़ सी भादों की रातों में
पकती घनी नींद की कोदो
और नीम के गिरते फलों के बीच
देश और दुनिया की
बड़ी-बड़ी बातों के रस में डूबा।''[7]

अनिल की कविताएँ ऋतु, मौसम एवं प्रकृति से साबद्ध हैं, जिसमें बारिश के दिनों में घरों का दुबके रहना, ग्रीष्म में तपती दोपहर सी सुबह, जाड़े की ठिठुरन मौसमों की याद दिलाते हुए वैशाख-जेठ की तपिश एवं सावन-भादों माह में पहाड़ सी घनघोर काली रात्रि द्वारा बारहमासा एवं ऋतुओं का चित्रण है। तेज हवाओं में फसलें एक-दूसरे के गले मिल रही हैं। मनुष्यों की तरह फूल आपस में प्यार कर रहे हैं। सूरज की किरणे सोने की तरह प्रतीत हो रही हैं। चाँद लोगों को शीतलता प्रदान कर रहा है। पेड़ मनुष्य की भाँति मुर्च्छित पड़े हैं। वृक्षों के फूल पीली धूप में अपनी आभा बिखेर रहे हैं। मानव की तरह अँधेरी रात को काटते हुए चाँद-तारे घरों की छतों पर बैठकर सुबह होने की बाट निहार रहे हैं। ऋतुएँ पिचकारियों से निकल रहे रंगों के फूलों के समान मुलायम दिशाओं के बसन पर अपनी छाप अंकित कर रही हैं। गर्मी के दिनों में गाँव की छोटी सी पहाड़ी से टकराकर हवाओं के साथ आसमान ड्रैगन की मुँह की तरह रात भर आग उगलता रहता है। चाँदनी रात में हरित प्रदेश हवाओं के साथ मदमस्त होकर झूम रहा है। शाम एक सवारी की तरह गतिशील है। ठंडी-ठंडी हवाएँ समुद्र की लहरों के छीटों द्वारा दिन भर से सूख रहे मनुष्य के मुख की तरह पत्थरों को सींचते हुए उनके ऊपर बादल की चादर ओढ़ा रहे हैं, जिसे देखकर सूरज को पछतावा हो रहा है। शाम का रंग गाढ़ा होता जा रहा जिससे धरती आसमान के जोड़े रात रूपी मेहमान को रंगभूमि के नियम-कायदे की कहानी सुना रहे हैं। अपने घरों से एक-एक करके मनुष्य रूपी तारे बाहर निकल रहे हैं। अनमना चाँद अपनी दालान के ओसारे में बैठे करघे पर चाँदनी को बुन रहा है। जलचर अथाह जल राशि में तपस्या कर रहे हैं। समुद्र किनारों को छोड़कर दूर चला

गया है, जिसमें असंख्य जलचर जीव-जंतु तड़प रहे हैं। सूरज शाम में समुद्र से बहुतेरे रंगों को ग्रहण करके चालाक मनुष्य की तरह जाकर कहीं छिप गया है। नारियल के वृक्षों के झुरमुटों से समुद्र में उठ रही लहरों की आवाजें सुनाई दे रही हैं। पेड़ों की बिलकुल स्थिर पत्तियाँ ध्यान मुद्रा में पक्षियों की तरह उड़ रही अपनी स्मृतियों को सजोकर रख रही हैं। धरती के आँचल में कुछ अवकाश को बिताकर बादल अपने देश को लौट रहे हैं। दिशाओं के गालों पर जीवन की उम्मीद की सिंदूरी चमक है। जहाँ धान की सुनहरी बालियाँ अपनी धुन में नृत्य कर रही हैं। कातिक महीने की ओस की बूँदों से नहाई हुई सुबह हवा रूपी स्त्री के सामान पके धानों की ताल पर नाच रही है। बगुले अपनी चोंच में दिन भर की मजदूरी लिए हुए अपने घर की ओर लौट रहे हैं। शरद की सुबह में सूरज का मिजाज नरम हो रहा है। बेलें दरवाजों एवं दीवारों पर अपना संसार बसा रही हैं। गौरैया तिनको को जोड़-जोड़कर अपना नया घोंसला बना रही हैं। 'जब आयी बारिश तो आए' कविता से प्रकृति की बानगी देखी जा सकती है-

''जब आयी बारिश तो आए
उजले बगुले
आवाजों के जंगल आयी
सोंधी-सोंधी खुशबू आयी
मछली आयी मेढक आए
डरी हुई एक चिड़िया आयी
बहुत दूर खेतों तक फैले
डब-डब ताल तलैया आए
घोड़े चढ़ी हवाएँ आयीं
गाते गीत झकोरे आए
उजले आए काले आए
बादल संग टहलते आए
हरे-हरे कल्ले धानों के
किसी बहाने वो भी आयी लट सुलझाती
उजले आभूषण कानों के
धो डाली बूँदों ने शिकवे
कुछ अब के कुछ पिछले।''[8]

अनिल की कविताएँ रेगिस्तान एवं जल संकट की समस्या को उठाती हैं। इनकी कविताओं में थार के मरुस्थल में चल रही हवाओं द्वारा खड़ी फसलों, खिले फूलों, घर के दरवाजों, चूल्हे, बर्तनों, सूरज-चाँद एवं रेत के ऊपर रेत के कण गिरने का चित्रण है। मरुस्थल के आसमान में रेत के बादल उड़ने लगे हैं, जिसे देखकर यहाँ के निवासियों के समक्ष दुख का पहाड़ टूट पड़ता है। मौत उनके सामने चमकती हुई दिखाई पड़ रही है। यहाँ निवास कर रहे पशु-पक्षियों के झुंडों में से कुरजों के झुंड सूखती झील को देखकर दूसरे देश को पलायन कर रहे हैं। साँप बिलों से निकलकर टीलों पर फन फैलाए हुए नृत्य कर रहे हैं। कालबेलिया स्त्रियों के नृत्य को देखते हुए यहाँ के लोगों के मन में मृत्यु का भय उत्पन्न हो रहा है। ज्वार-बाजरे की फसल ललहाती हुई रात दिन नाच रही है। यहाँ लोग जल की समस्या को देखकर अपना जी को छोटा करते हुए कह रहे हैं कि तालाबों पर पीतल-मिट्टी के घड़े भविष्य में नाचते हुए दिखाई रहे हैं। रेगिस्तान का कहे जाने वाला जहाज जल के अभाव में अपने दम तोड़ रहे हैं। रेगिस्तान में उड़ते गुबार को देखकर कलाकार की मूँछें नाचती हुई नर्तकी की सिर पर जलती दिए की लौ थार के नाचने की घोषणा कर रही है। धरती रेत के कणों को खींचकर अपने उजड़े आँचल में सुला रही है। यहाँ के लोग हवा के तेज झोंकों की व्यथा से उजड़ जाने के भय से आपस में रिश्ता नहीं होते हुए भी एक-दूसरे के शरीर को पकड़कर दिन रात सिसकते रहते हैं। मरू प्रदेश में लोगों की साँसों का चलते रहना ही जीवन का उद्यम है। थार के मरुस्थल क्षेत्र में बढ़ते हुए यह देखने को मिल रहा है कि पेड़ों की डालें, पशुओं के गले एवं गड्ढे की आँत में पानी को बचाए रखने के लिए जगह-जगह भयंकर लड़ाइयाँ हो रही हैं। सरेआम दिन-दहाड़े चिड़िया रूपी मनुष्यों को मौत के फरमान सुनाए जा रहे हैं। पश्चिम की हवाएँ घुड़सवार के दस्ते की तरह हाथ में लहराती हुई तलवारों द्वारा यहाँ के हरियाली के वंशजों के सिर को काट रही हैं। इस दृश्य को देखकर मेरे मन में डर बैठ गया है। एक लोकगायक की अवधारणा है कि मरुस्थल केवल संगीत से डरता है। अपराजित मरुस्थल के सिने पर सूर्यास्त होते ही खेजड़ी

छम-छम करके नृत्य करने लगती है। रेगिस्तान में वृक्षों की टहनियों पर खिलते हुए फूल इतना दिखाई नहीं पड़ते हैं। दूसरे क्षेत्रों के समान यहाँ बसंत दिखाई नहीं पड़ता है। परंतु रंगरेज घाघरे-चोली को बड़े चटकीले रंगों से रंगता है। यह ऊँटों की धरती है। गोडवान बड़ी बेसब्री से नंदन-कानन वन के समान हरियाली को खोजते रहते हैं। आसमान में काल को पराजित करके चाँद ड्योढ़ी के रास्ते घीरे-धीरे उतरते हुए बेफिकर होकर भेड़ के साथ बची-खुची घास को चरता हुआ दूर तक निकल जाता है। यहाँ प्रकृति भी पचास डिग्री तापमान को देखकर असमंजस की मुद्रा में रहती है। ठोस वस्तुएँ द्रव में परिवर्तित होकर हवा के साथ वाष्प बनकर उड़ने लगती हैं। मरुस्थल के करीब आते-जाते मुसाफिरों के मुफलिसी के दिन दुभर हो जाते हैं। 'खेजड़ी' कविता से जल संकट और रेगिस्तान के दृश्य को देखा जा सकता है-

''देखा मैंने घूम-घूम कर
बचा नहीं है किसी कुएँ में
होंठ भिगोने तक को पानी
लौट रही हैं घर की बहुएँ
खाली घट लेकर पनघट से
तीखी किरणों के हमले में
सुख गयीं हैं सेवण धामण
भट्टी बनकर धधक रही है
सूखी धरती थार-थार कर
झोर झपट कर मार दिये हैं
मौसम के नाजुक चिड़ियों को
अपनी कातर आँखों से
ऊँटों-भेड़ों भूखे-प्यासों की सेना को जगा रही है
मैंने पूरी कोशिश की कि दो-चार दिन के लिए ही सही
अपने को रेगिस्तान का मौलिक बाशिंदा समझूँ
और रेगिस्तान मुझे अपना ले थोड़े दिनों के लिए
लेकिन लू के थपेड़े पस्त कर देते थे सारा हौसला
पंद्रह मिनट पानी न मिले तो कुम्हला जाता हूँ
जैसे उड़ जाएँगे प्राण पखेरू किसी भी क्षण।''[१]

अनिल की कविताएँ राजनीति का चरित्र, नेताओं के काले कारनामे एवं सत्ता की निरंकुशता से सांगोपांगावित हैं। कवि कहता है कि किसी भाषा के व्याकरण में संज्ञाएँ अधिष्ठ होकर सत्ताधीश एवं सत्ता विमर्श को तय करती हैं। राजा रूपी नेता का हरेक स्थान पर दिखाई देता है तो उसके प्रभाव एवं रहस्य में उत्तरोत्तर गिरावट होता रहता है। वह संज्ञाओं रूपी नेता एवं अधिकारियों की अनुपस्थिति में समूचा अकारथ कार्य को संपादित करता है। उसके कारनामों को देखकर भीड़ एकत्रित नहीं होती है। समाज एवं जनता अब उसका गुणगान नहीं कर रही है। लोग उसके कार्यों से असंतुष्ट होकर तालियाँ नहीं बजा रहे हैं। सत्ताधीश एवं नौकरशाह जनता की गालियों को सुनकर राजनिष्ठा का धर्म निभाते हुए सर्वनाम की तरह कार्य कर रहा है। उनके पास फूलों के रंग, महक, बदसूरत चेहरा एवं रंगमंच सजाते लोग हैं। राजा और उनके कारिंदों का गुणगान करने वाली साँझबाती के दिए की तरह अंधभक्त जनता है। लोगों के घरों को कथित तौर पर रोशन करने वाले एवं इतिहास से टपकते जनता के रक्त के पीछे बहुत हद तक जिम्मेदार बहरूपिया नेताओं का वास्तविक चरित्र है। नेताओं द्वारा किए गए चोरी, डकैती, हत्या एवं बलात्कार के प्रति जनता अपनी आवाज बुलंद करती है तो सरकारें नेताओं द्वारा किए गए काले कारनामे को देखकर उन्हें सारे इल्जामों से बरी करने में अपनी ताकत झोंक देती है। सत्ता किसी भी सरकार की रहे वे हरेक स्थिति में सुरक्षित रहते हैं। सता के वर्चस्व से किसी भी देश का कोई न्यायालय अछूता नहीं है कि जहाँ कसूरवार न्यायालय स्वयं जाकर गुनाह की फरियाद करे। संसद से सारे कानून निरस्त कर दिए गए हैं। वह निष्कलुष नागरिको के लिए अब अर्थहीन हो गए हैं। नेता एवं सरकारें संविधान के नियमों एवं जनता के प्रदत्त अधिकारों को कुचल रही हैं। ये लोग जनता के अधिकार एवं विकास के लिए झूठी योजनाएँ बनाकर समाधान ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि समाधान फाइलों में बनकर शीत निद्रा में निश्चिंत होकर सो रहा है। मंत्री-अधिकारी झूठे दिखावा करते हुए लोगों से घूम-घूमकर पूछ रहे हैं कि क्या आपने समाधान को देखा है। यही चुनाव ही लोकतंत्र की असली समस्या है, जिससे नेता एवं सरकारें घबराई हुई हैं। 'चुनाव के दृश्य' कविता से नेताओं के चरित्र एवं चुनावी राजनीति का असली

चेहरा प्रस्तुत है-

''नेता आए परेता आए
पैर छुए गले लगाया
मंत्री जोर-जोर हँसे
संतरी मंद-मंद मुसकाया
सांसदी लड़ रहे माननीय के
स्वागत में बिना अन्न-जल के
बैठा था पूरा गाँव
प्रसाद के लड्डुओं की तरह एक थाल में
गरीबी, शिक्षा और विकास के
जोरदार भाषण के बाद
लोग ताक रहे हैं
एक-दूसरे का मुँह।''[10]

अनिल की कविताएँ उत्तर सदी के विमर्शों का तानाबान बुनती हैं, जिसमें भौतिकतावाद, बदलते जीवन शैली एवं एकल परिवार की अवधारणा द्वारा घर-परिवार के बूढ़े बुजुर्ग उपेक्षित एवं निस्सहाय महसूस कर रहे हैं। उनकी तकलीफों-दुखों को देखकर नई पीढ़ी उनको नजर अंदाज कर रही है। ये लोग प्यार को पाने के लिए कुसुम चाची की दुकान पर दुखते माथा एवं खरासते गले को लिए हुए पँहुचकर अपने उम्र के बुजुर्गों के साथ अपनी अनुभूतियों को साँझा कर रहे हैं। ये स्थितियाँ वृद्ध विमर्श का द्योतन कराती हैं। 'वरली सी फेस की एक शाम' कविता के बहाने कवि कहता है कि समाज के लोग क्रूर एवं निर्दयी होते जा रहे हैं। स्त्री-पुरुष लिंग के इतर पैदा हुई संतानों को घर-परिवार एवं समाज के लोग इन्हें उपेक्षित की दृष्टि से देखते हुए अपनों के बीच से बाहर कर रहे हैं। इस संतान को समाज किन्नर के नाम से संबोधित करता है। सभ्य कहे जाने वाले समाज के स्त्री-पुरुषों लोगों को किन्नरों को समाज अपने जीवन में हस्तक्षेप करने के लिए पाबंदी लगा रखी है, जिसे सभ्य समाज के लोग नाबालिक समझकर इन्हें अपने समाज ने उपेक्षित, बाहर एवं दूर कर रखा है। व्यक्ति कामयाबी प्राप्त करने के लिए किन्नर समाज के लोगों से अपने सिर पर हाथ रखवाकर उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए क्या इस समाज के लोगों को शर्म नहीं आती है। किन्नर अपना गुजर-बसर करने के लिए तालियाँ चटकते हुए स्त्री-पुरुषों से कुछ कहे बिना अपने जीवन के पथ पर अग्रसर होते रहते हैं। यही प्रश्न किन्नर विमर्श को द्योतित करते हैं। उद्योगपति कंपनियों को स्थापित करने के लिए जंगलों एवं पहाड़ों को काटते जा रहे हैं। पहाड़ी के पेड़ से अचानक किसी दिन आवाज आती है। लाख चाहते हुए भी मेरा भू-स्खलन अब नहीं रुक सकता है, क्योंकि मेरे नीचे गहरी खाई बनती जा रही है। मेरे शिलाखंड निराधार होते जा रहे हैं। यही पर्यावरणीय चिंतन है। कालबेलिया स्त्रियाँ लोक धुनों पर नृत्य करती हुई संगीत को गाती रहती हैं। बंजारों के मंदिरों में फूल, अक्षत, रोली एवं सजदे में लोग शीश नहीं झुकाते हैं। इनके मंदिरों में केवल टेसू के फूल चढ़ते हैं। इनकी आँखों के कोने से निकली हुई प्रकृति के प्रति लगाव ही आदिवासी संस्कृति एवं चिंतन का बोधक है। किसान भिनसारे जागकर खेतों की सिंचाई करते हुए गेहूँ, चना, धान एवं सरसों की फसलों की निराई-गुड़ाई करता है। लोगों का कहना है कि आजादी की लड़ाई में इनका योगदान नहीं रहा है। इनमें फिल्मों की तरह नायकत्व ढूँढ़ने वाले जरुर निराश होंगे। उन्हें पता नहीं हैं कि ये अपनी लाठी से दस लोगों को एक साथ परास्त करते हुए मिट्टी में दफना दिया था। ये मेड़ों पर उगते जिद्दी मोथे की हरी घास की तरह सदैव चेहरे पर मुस्कान लिए हुए लोग के क्षुधा की तृप्ति करते हैं। यह आजादी की लड़ाई से कम महत्वपूर्ण कार्य नहीं है। पलिहर के खेतों बोए गए बीजों को अँखुआते एवं सुनहरी धान की नृत्य करती बालियाँ को देखकर किसान का हृदय अह्लादित होता है। जब अहंकारी घमासान ठंड के दिनों में उनके घरों की हांडियों एवं अन्न रखने वाले वर्तनों में अनाज खत्म हो जाते हैं तो घर-परिवार का भरण-पोषण करना उनके लिए दूभर हो जाता है। 'मौसम' कविता से किसान के जीवन की पीढ़ा को देखा जा सकता है-

''उमस में पसीने से तर
थक कर चूर हो गया किसान
एक कान बंद करके बिरहा गाता है
खेत के दुख हवा में फेंकता
बहुत देर तक देखता रहता है
ऊपर से गुजर रहे बादलों की ओर।''[11]

इनकी कविताएँ स्त्री जीवन के मुद्दों को रेखांकित करती हैं। दलित-उपेक्षित स्त्री मुधुना फुआ अपने पेट-पर्दा को चलने के लिए बगीचे को अगोरती है। मुधुना को विधवा होने के कारण मंगल कार्यों से वंचित रहना पड़ता है, जिसकी पीड़ा उसे निरंतर सालती रहती है। यही वजह है कि इस प्रश्न का जबाब वह कुएँ, तालाब एवं चाँद-तारे से पूछती रहती है। कामगार स्त्रियाँ अपनी कमर में डलिया को बाँधे हुए पहाड़ों से जड़ी-बूटियों एवं बहुमूल्य पदार्थों को एकत्रित करके उन्हें बेचकर घर-परिवार का भरण-पोषण करती हैं। दफ्तरों एवं अन्य क्षेत्रों में काम करने वाली स्त्री के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार हो रहा है। समाज में उनकी अस्मत को कुचला जा रहा है। आँचल से बेटी के पसीना को पोछती हुई माँ कहती है कि घूम रहे भेड़िए के रूप में मनुष्यों की बात को अनसुना करके अपनी निगाह को नीचे करके राह पर चलती रहने का सलाह देती हुई विषधारी मनुष्यों, आदमखोरों एवं वहशी इरादे वाले लोगों से बेटी की अस्मिता को समाज में बचाए रखने का डर निरंतर माँ को सताता रहता है। 'नया फैशन' कविता से स्त्री जीवन के दंश को देख सकते हैं-

''कॉलेज के लिए निकलते समय
लड़की की स्मृति में
विष की पिचकारी मारते
साँप आते हैं
कुछ आदमखोर जानवर आते हैं
जिनके नुकीले दाँतों में खून लगे हैं
और जिनके पंजों में बहशी इरादे हैं
एसिड फेंक कर जला दिये गये चेहरे वाली
अखबार में छपी
एक लड़की की तस्वीर आती है।'' [12]

अनिल मिश्र की कविताएँ रोजगार की तलाश, नौकरी के लिए स्थानांतरण एवं विस्थापन का जीवन एवं संस्कृति को चित्रित करती हैं। युवा नौकरी के लिए देवी-देवताओं से विनती कर रहा है। फिर भी उन्हें नौकरी नहीं मिल रही है। युवा पीढ़ी रोजगार के लिए प्रधानमंत्री के ट्वीट एवं घोषणा का इंतजार कर रही है। सरकारें सिर्फ स्टैण्डर्ड एवं पुअर्स की रेटिंग में लगी हुई युवाओं के कैरियर के साथ धोखाधड़ी कर रही हैं। रोजगार की तलाश में अपने सपनों को साकार करने के लिए भटकते हुए युवा शहरों की ओर पलायन करते जा रहे हैं। 'नया मकान और पहचान' कविता में कवि का स्वयं की नौकरी के दौरान बदलते घरों से विस्थापित जीवन की अनुभूति है। कवि का पिछले घरों में व्यतीत किए गए दिनों की स्मृतियों का एलबम एवं विस्थापित होने की पीड़ा है। नए मकान में पहुँचते ही सामानों को उचित स्थान पर रखते हुए नए घर में परिचित होने का अहसास है। 'मैं घर हूँ बहुत घरों का' कविता में कवि एक घर को छोड़कर नए घर एवं शहर में नौकरी के लिए विस्थापित होते हुए शरीर में उपस्थित मांस-मज्जे की तरह उसके हृदय में कई घर बस जा रहे हैं। साथ ही ऑफिस लौटते हुए कवि देखता है कि दीवारें और छत बच्चों के साथ छू-सत्ता एवं गेंद खेल रही हैं। तीन पत्तियों वाला पौधा शिशु की तरह मुस्कुराते हुए मुझे ताक रहा है। दूब की फुनगी सूरज को दिए गए अरघ की तरह चमक रही है। यही वजह है कि कवि का नौकरी में घर-शहर से विस्थापित होने की पीड़ा साफ झलकती है। 'फुलगेन' कविता से रोजगार की तलाश एवं विस्थापित जीवन की बानगी देखी जा सकती है-

''एक गली से दूसरी
दूसरी से तीसरी
फिर ढूँढ़ने लगा पहली
दाखिल हुआ था जिससे
भूल गया मैं खोज रहा था
इसीपुर गाँव से आया
रोजगार की तलाश में एक युवक
या अँधेरी सुरंग के अँधवलय में छिपता
अपना ही कोई चेहरा।'' [13]

अनिल की कविताएँ संचार-क्रांति, बाजारवाद, भौतिकतावाद, बदलते जीवन शैली, शहरी जीवन एवं संस्कृति के साथ यांत्रिकता से आधुनिकता की प्रवृत्तियों को उजागर करती हैं। प्रिंट, इलेक्ट्रानिक एवं सोशल मीडिया सूचनाओं को व्यक्तियों के बीच परोस रहा है। मोबाइल लोगों को आपस में जोड़ रहा है। सुल्तानपुर चांदा वाले फुलगेन इसीपुर गाँव से शहर आए युवक को मोबाइल

द्वारा सूचना संप्रेषित करने की बात करते हैं। यही संचार-क्रांति है। शहरों में किसी तरह की दुर्घटना होने पर यांत्रिक मशीने यथास्थान पर पहुँच के लिए अपनी आवाज को महाशोर में बदलती हुई आगे बढ़ती रहती हैं। बम्बई शहर के हजारों-हजार दीवाने मनोरंजन एवं मन बहलाने के लिए शाम में जूही-चौपाटी जाते हैं। ये लोग बिनाका गीतमाला के नगमों पर थिरकते हुए 'ये है बॉम्बे, ये है बॉम्बे, ये है बॉम्बे मेरी जान' गीत को गाते हुए झूमते रहते हैं। मैं लकुट-कमरिया लिए हुए गाँव से दिल्ली, मुंबई या किसी और शहर को चला जाता हूँ तो मुझे शहर गमलों के रंग की तरह अपने रंग में रंग देता है। शहर के लोगों की सुबह चाय से प्रारंभ होती है। कॉलोनी में निवास करने वाले लोग अपनी सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए कॉलोनी के पहरेदार की सीटी की आवाज एवं उसका गली में गश्त लगते रहने से निश्चिंत मुद्रा में रात्रि गुजरते हैं। यह बदलते जीवन शैली एवं शहरी जीवन एवं संस्कृति का अनूठा उदहारण है। व्यक्ति दुकानदार से घर के लिए राशन, बच्चों के जरूरत की सामान एवं अन्य वस्तुओं को खरीदते हुए मोलभाव करता है। बाजारबाद वस्तुओं को अपनी आवश्यकतानुसार रच गढ़ रहा है। मिट्टी से निर्मित गमले में गुलाब बाजार में अपनी उपस्थिति दर्ज करता हुआ लोगों के घरों में सजावट की जरुरत की वस्तु बनता जा रहा है। भौतिकवादी दौर में बाजारवाद लोगों पर इस कदर हावी होता जा रहा है कि घरों में पड़ी वस्तुओं को लोग पहले इस तरह स्पर्श करते थे कि वस्तुओं पर खरोंच न आ जाए। बाजारवाद एवं समय की माँग को ध्यान में रखते हुए लोग घर की पुरानी वस्तुओं को रद्दी समझकर उसे कबाड़ी को कम दामों में सुपूर्द कर देते हैं। 'रद्दी' कविता से आधुनिकता एवं बाजारवाद का नमूना देख सकते हैं-

''इस व्यावहारिक संसार में
आखिर छोड़नी होती है पुरानी वस्तुओं को
नयी वस्तुओं के लिए जगह
ओल्ड आर्डर चेंजेथ यिल्डिंग प्लेस टू न्यू
दिल का पता नहीं
तो अब हम उन्हें
सुविधा के लिए रद्दी कहेंगे।''[14]

अनिल की कविताएँ जीवन में तनाव एवं संशय के साथ आतंकवाद से जुड़ मुद्दों की पड़ताल करती हैं। बस या ट्रेन में यात्रा करते समय बगल वाली सीट पर बैठा अनजान यात्री जब मुझसे मेरा नाम पूछता है तो अचानक मेरे शरीर में डर-सी सिहरन दौड़ जाती है। उसके शब्द काँच की किर्चियों से ज्यादा नुकीले होते हुए समय के गर्भ में सीधे गढ़ जाते हैं, जिससे भविष्य में खून-खराबा होने की आशंका बनी रहती है। बहेलिए रूपी आंतकवादी भोली-भाली चिड़िया रूपी जनता को अपनी जाल में फँसाता जा रहा है। वे अखबारों की नजरों से अपने को ओझल रखते हुए उसके आत्मघाती पदार्थों के दरकने से जनता में दहशत का माहौल बनता जा रहा है। आतंकवादियों के युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि एवं खूनी नारों की आवाज से जनता की आत्मा लहुलुहान हो रही है। ये लोग अनेक किरदार भूमिका को अदा करते हुए लोगों की जान ले रहे हैं। शक्तिशाली देश कमजोर देशों पर अपना अधिपत्य स्थापित करने के लिए एक-दूसरे से लड़ रहे हैं। जहाँ जनता खून से लथपथ है। उसके चिथड़े हवा में उड़ रहे हैं। 'अच्छा है सबकुछ नहीं जानते हम' कविता से जीवन में संशय एवं आतंकवाद का मजमून प्रस्तुत है-

''हजारों येजदी लड़कियाँ
बन चुकी हैं बंधक
आईएसआईएस लड़कों की
मौसम के बदलते तेवर से
आधी दुनिया में
बर्फ जैम चुकी है।''[15]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनिल की कविताएँ संवेदनाओं का क्षरण, सामाजिक विद्रूपतता, व्यक्ति एवं समाज में फैलती वैमनस्ता, गरीब-वंचित समाज की जलाहत भरी जिंदगी के साथ दूसरे दुखों में सरीख होते लोगों द्वारा नए समाज की संकल्पना प्रस्तुत करती हैं। प्रेम, सौहार्द, भाईचारे, संबधों की जीवंतता एवं घर-परिवार के सदस्यों में आत्मीयता के भाव को रेखांकित करती हुई इनकी कविताएँ संयुक्त परिवार की अवधारणा का जीवंत उदाहरण पेश करती हुई अपनों से बिछुड़ने की पीड़ा, पड़ोसियों के संबंधों में विश्वास एवं

प्रेम की प्रगाढ़ता द्वारा रिश्ते-नातों का तानाबाना बुनती हुई उद्योगपतियों का श्रमिकों के प्रति क्रूर व्यवहार, श्रमिकों के बदहाली की जिंदगी एवं घर-परिवार का भरण-पोषण करने के लिए अथक परिश्रम करते कामगारों द्वारा श्रम संस्कृति को रेखांकित करती हैं। साथ ही अक्षत, दूब, अर्घ, साँझा संस्कृति एवं संतों-महात्माओं की वाणियों द्वारा भारतीय संस्कृति को स्पष्ट करती हुई लहलहाती फसलों का आकर्षण, गाय का अपने बछड़े के लिए रंभाने, गाँव के चौपाल में लोगों की बतकही, लोक गीत एवं परंपराओं द्वारा ग्रामीण जीवन एवं संस्कृति को गढ़ती हुई समुद्र के लहरों के गर्जन, चाँदनी रात में हरित प्रदेश का झुमना, चाँद का बादल की चादर को ओढ़कर जाड़े की रात गुजारने द्वारा प्रकृति का चित्रण को रेखांकित करती हैं। गला को सींचने के लिए जल का अभाव, हवा के साथ रेतों का उड़ियाना, ठोस पदार्थों का हवा में भाँप बनकर उड़ने एवं थार में लोगों का जीवन दुभर होने द्वारा जल संकट की समस्या एवं रेगिस्तान की स्थिति को अंकित करती हुई सरकार की योजनाओं के झूठे आँकड़े, संसद द्वारा जनता के अधिकारों के कानूनों को निरस्त करने एवं नेताओं के काले कारनामे एवं दोहरे चरित्र द्वारा राजनीति को चित्रित करती हैं। समकालीन विमर्श के तमाम प्रश्नों एवं मुद्दों को अंकित करती हुई बेरोजगारी का दंश, युवाओं का गाँव से शहर, देश-विदेश की ओर पलायन द्वारा विस्थापन की संस्कृति को उजागर करती हैं। साथ ही संचार-माध्यम, बाजारवाद, लोगों के बदलते जीवन शैली एवं फिल्मी गीतों के तराने द्वारा आधुनिकता को रेखांकित करती हुई कमजोर देशों पर अधिपत्य जमाने, खूनी नारों की आवाज से जनता की लहूलुहान होती आत्माएँ एवं लोगों में दहशत का माहौल द्वारा आंतकवाद के मुद्दों को परोसती हुई इनकी कविताएँ वेद-पुराण एवं धार्मिक ग्रंथों में लोक जीवन एवं संस्कृति से जुड़े मुद्दों को दरकिनार करते हुए इन्हें पहली पंक्ति में स्थान नहीं दिए जाने की कहानी ही जिन्हें पहली पंक्ति में जगह नहीं मिली की महाख्यान रचती हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. अनिल मिश्र : भूखे पेट की रात लंबी होगी (लेबर चौराहा), फ्लैप से
2. वही, पृ. 82
3. वही, पृ. 89-90
4. वही, पृ. 34
5. वही, पृ. 10
6. वही, पृ. 20-21
7. वही, पृ. 92-93
8. वही, पृ. 131
9. वही, पृ. 36-37
10. वही, पृ. 45-46
11. वही, पृ. 150
12. वही, पृ. 111-112
13. वही, पृ. 120
14. वही, पृ. 146-147
15. वही, पृ. 105

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विवेचन

समकालीन दलित कविता में दलित जीवन संघर्ष

डॉ. प्रीति के.

एसोसिएट प्रोफेसर एवं
हिंदी विभागाध्यक्ष
कण्णूर विश्वविद्यालय
केरल-670567
8289918100
preethamandeep@gmail.com

दलित कविताओं के मूल में सामाजिक भेदभावजनित पीड़ा और हर प्रकार की वंचनाएँ हैं। लेकिन वे केवल इस तक सीमित नहीं हैं। दलित कविताओं में शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति के स्वर भी हैं । समकालीन हिंदी दलित कविता अपनी यातनाओं के अतीत के साथ अपने समसामयिक जीवन और परिवेश के साथ गहराई के साथ जुड़ी हुई है, जिससे उसकी प्रासंगिकता अधिक है।

दलित साहित्य का दायरा बहुत विस्तृत है। यह सिर्फ एक दलित या शूद्र का साहित्य नहीं है, दलित साहित्य अपने आप में बेहद व्यापक अर्थ रखता है। दलित शब्द के भीतर छिपा गूढ़ अर्थ, जिस भाव की व्याख्या करता है, वह एक पहचान है उन लोगों की ,जो सदियों से दबे ,कुचले, प्रताड़ित, उपेक्षित लोग हैं, जिन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी रचनात्मकता, दृढ़ता और मौलिकता सिद्ध की है। इस देश के निर्माण में अपना जीवन स्वाहा किया है। किंतु सत्ता और उसके इर्द-गिर्द बिखरे स्वार्थी तत्वों ने उन्हें कभी भी स्वीकार नहीं किया। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में दलित वर्ग को अब तक तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित किया गया है। हिंदी दलित कविता इसी व्यवस्था के प्रति, दलित समाज की वेदना को अपने विद्रोह द्वारा प्रकट करती है। साथ ही अपने सुंदर सकारात्मक भविष्य की कल्पना रखती है। समकालीन दलित कविता परंपरागत तिरस्कार तथा अपमान की बेड़ियों को तोड़कर स्वयं को समृद्ध, सशक्त तथा संपन्न बनाने का आग्रह कर रही है -

प्रचलित परिपाटी से हटकर
मैं भागती हूँ— सब ओर एक साथ
विद्रोहिणी बन चीखती हूँ
गूँजती है आवाज सब दिशाओं में—
मुझे अनंत असीम दिगंत चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए!
मुझे अनंत आसमान चाहिए! [1]

समकालीन दलित काव्य परंपरा के अंतर्गत अनेक कवियों ने अपनी रचना से दलित काव्य जगत को समृद्ध किया है। इन रचनाकारों की कविताओं में युगीन

सरोकारों का निरूपण मिलता है। दलित कविता जाति विशेष से उठकर अपने सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति कर नजर आती है। विगत लगभग पच्चास वर्षों में दलित रचनाकारों की जो पीढ़ी तैयार हुई है, वह अपने समाज के दर्द और अनुभव का इतिहास रचकर दलितों की उन्नति के लिए समाज में वांछित परिवर्तन लाना लक्ष्य करता है। भारत की सभी भाषाओं में दलित जीवन का एक ही इतिहास है। पीड़ा का दंश एक-सा है, वैचारिक जमीन एक है, परिप्रेक्ष्य एक है। बस भाषा का तेवर भिन्न हैं। सभी के प्रेरणा स्रोत डॉ. अंबेडकर ही हैं। समकालीन हिंदी दलित कविता का आंदोलन चेतना के स्तर पर बहुत गहराई से जुड़ा है, जिसकी जड़ में सदियों का अन्याय, अत्याचार और शोषण का इतिहास है। वह वर्ण-व्यवस्था के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक वर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोधात्मकता का अपना नया मोर्चा निर्मित कर अपने उज्ज्वल भविष्य की महत्वाकांक्षा करती है।

सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र, समान गरिमा तथा अधिकारों से युक्त है। फिर दलित लोगों को सभी क्षेत्र में असमानता भोगना उनकी नियति बन गई है। इस असमानता का अंत कर दलितों की पहचान बनाने का आग्रह यहाँ मिलता है –

''यह सब नहीं चलेगा / अब हर क्षेत्र में होगी / समान रूप से हिस्सेदारी /शासन-प्रशासन से लेकर / मैला ढोने, जूती गाँठने /और झाड़ू लगाने तक के काम में भी /बाँटनी होगी समानता।''[2]

दलित शोषण आज भी जारी है । प्रतिदिन ऐसी घटनाएँ घट रही हैं। सवर्ण जातियाँ आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार करती हैं। कहीं उन्हें जिंदा जलाया जाता है तो कहीं उनकी बस्तियों में आग लगा दी जाती है। कानून और पुलिस की सुरक्षा व्यवस्था सवर्णों की मदद करती है। यह अनुभव सुशीला टाकभौरे की कविता की पृष्ठभूमि है। अपनी कविताओं से वे व्यवस्था पर चोट कर रही हैं। सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की पूर्ति करके एक मंगलमय भविष्य की कामना उनका लक्ष्य है। उनके प्रसिद्ध कविता संग्रह हैं- 'स्वाति बूँद और खारे मोती' (1992), 'यह तुम भी जानो' (1994), 'तुमने उसे कब पहचाना' (1995), 'हमारे हिस्से का सूरज' (2005) आदि । उगते अंकुर की तरह जियो कविता की पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं। यातना से विद्रोह तक और विद्रोह से भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न तक पहुँचाने की प्रेरणा इसमें निहित है-

''स्वयं को पहचानो
चक्की में पिसते अन्न की तरह नहीं /उगते अंकुर की तरह जियो
धरती और आकाश सबका है /हवा प्रकाश किसके वश का है
फिर इन सब पर भी /क्यों नहीं अपना हक जताओ
सुविधाओं से समझौता करके /कभी न सर झुकाओ
अपना ही हक माँगो/नयी पहचान बनाओ
धरती पर पग रखने से पहले /अपनी धरती बनाओ।''[3]

सुशीला टाकभौरे की इन कविताओं की सृजन भूमि है -जातीय उत्पीड़न तथा स्त्री जीवन का दोहरा अभिशाप। उनकी कविता 'तेरे अन्याय से तंग आकर' में वह पूरे दलित स्त्री वर्ग को अपने सपनों को पूरा करने के लिए सबला बनकर स्वयं अपने अस्तित्व और अधिकार खोजने की सलाह दे रही हैं-

''अबला पर शासन किया तुमने
उसके जीवन-मृत्यु पर अधिकार
तेरे अन्याय से तंग आकर
खोज रही है
अब यह सबला
अपना अस्तित्व
अपना अधिकार।'' [4]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता 'नया इतिहास रचेंगी' दलित समाज के प्रति सदियों से अपनाए गए घृणित रवैये को बेपर्दा करती है। दलित के शोषण के दो मुख्य कारण हैं- गरीबी और अशिक्षा। समकालीन दलित कविता व्यापक परिवर्तनकारी उद्देश्यों को लेकर चल रही है। वह समाज में सकारात्मक परिवर्तन कर नए इतिहास का निर्माण करना चाहती है-

''मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद दिया है संघर्ष

जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोपड़ी से उठते धुएं में
तनी मुट्ठियाँ
तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेंगी।''[5]

यह जाति एवं वर्ण व्यवस्था सवर्ण समाज की सुनियोजित एवं सुखाकांक्षी तथा सुविधाप्रद सामाजिक व्यवस्था है, जिसके तहत उच्च वर्गों को निम्न जातियों के उत्पीड़न के अधिकार स्वत: प्राप्ता हैं। कवि राजेश कुमार रवि अपनी कविता 'हमको मिला जियावनहारा' में ऐसी असमानता के प्रति आक्रोश व्यक्त कर इससे मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं–

''असमानताओं के दुराग्रही अन्धकार में
अग्नि-लपटों से बबकते
बाबासाहेब का कहा / लिखा
हर शब्द है ऐसे
किन्तु फिर भी यह
हमारी आंखें नहीं चौंधियाता है
हां, शोषण से मुक्ति की
हमें राह अवश्य दिखाता है..... ''[6]

दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत एवं कांतिकारी विचारक बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर की मानवतावादी, समाजवादी विचारधारा ने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की तथा इस विचारधारा ने दलित समाज में विद्रोह, क्रांति और संघर्ष की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर दी, जिसके फलस्वरूप दलित समाज अब सिर्फ भोगे हुए सत्य को ही नहीं, बल्कि मनुवादी वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए संघर्षरत है। इस संदर्भ में कवि विश्वप्रताप भारती अपनी कविता 'मुझे इंतजार है उस दिन का' के माध्यम से बता रहे हैं कि एक दिन सभी दलित अपनी गुलामी की जंजीरें तोड़कर अपने अधिकार के लिए, सवर्णों से संघर्ष कर आगे बढ़ेंगे–

''रोज-रोज / नीच अछूत / सुन-सुनकर मैं निश्चल
पत्थर सा / हो गया हूँ / अत्याचार सह के / सिर झुकाए

/ गुलामी की जंजीरों से बंधा हूँ। मुरझा गई है / मेरे प्राणों की ज्योति / लेकिन फिर भी जला रहा हूँ / क्योंकि / मुझे इंतजार है उस दिन का जिस दिन मैं / अपनी सिसकियों से अपने अन्दर की चिंगारी को / भड़कने पर मजबूर कर दूँगा। और फिर / उन गुलामी की जंजीरों को तोड़कर उस पाखंड से लडूंगा / जो आदर्शों के / विभिन्न रूपों का चोला पहनकर / तमाशाई बनकर / तथाकथित धर्म की किताबों में सजा है / जिसके कारण मेरी शानो- शौकत में / धब्बा लगा है।''[7]

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब समानता का अधिकार न सिर्फ कानूनी तौर पर, बल्कि वास्तविक रूप में लागू हो जाएगा, छूत-अछूत का भेदभाव समाज से मिट जाएगा और सभी मानव समान हो जाएँगे। कवि ने यहाँ आशावादी दृष्टि से यह बतलाया है कि एक-न-एक दिन उनको अपने अधिकार मिलेंगे तथा वे समर्थ होंगे-

''मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन
जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है।
कितने ताज्जुब की बात है
वह दिन कब आएगा
जब बामन नहीं जनेगी बामन
चमार नहीं जनेगी चमार
भंगी नहीं जनेगी भंगी
तब नहीं चुभेंगे
जातीय हीनता दंश''[8]

डॉ. राजवीर सिंह कमल की 'अन्ना हजारे' नामक कविता राष्ट्रीय एकता मजबूत कर, सामाजिक भेदभाव तोड़ने का आह्वान देती है, जिससे दलितों का जीवन सुखमय एवं संतोषप्रद बनता है-

''अब तुम अपनी मुहिम में /
तमाम भ्रष्टाचारों के साथ-साथ /
मानवीय भ्रष्टाचार को भी जोड़ दो /
इन्सानियत को बांटने वाली /
दीवारों को तोड़ दो /जाति, धर्म, भेदभाव भुला
सब एक हो /राष्ट्र एकता हेतु
पूरे आवाम को / एक कड़ी से जोड़ दो।'' [9]

शिक्षा का अभाव दलितों की स्थिति और दयनीय बना देता है। जातिवादी वातावरण उनके शिक्षा हासिल करने में रोड़ा बनता है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'लड़की ने डरना छोड़ दिया' कविता में शिक्षा से मिले आत्मविश्वास की झलक दिखाई देती है-

''अक्षर के जादू ने /उस पर असर बड़ा बेजोड़ किया
चुप्प रहना छोड़ दिया /लड़की ने डरना छोड़ दिया
हँसकर पाना सीख लिया/ रोना-पछताना छोड़ दिया/
घुट-घुटकर/ अब नहीं मरेगी, मंच पै चढ़कर बोलेगी
समय और शिक्षा/ ने उसके चिंतन का रुख/मोड़ दिया।''[10]

सवर्णों को दलितों का आरक्षण काँटे की तरह चुभता है। यहाँ कवि ने इस प्रकार की घिनौनी मानसिकता का पर्दाफाश किया है, जहाँ पर वर्णवादी सामाजिक व्यवस्था की सभी सुविधाएँ सवर्णों के लिए आरक्षित हैं, बाकी असुविधाएँ दलितों के हिस्से में। इस अव्यवस्था को तोड़कर एक व्यवस्थित समाज की कल्पना एवं प्रतीक्षा कर रहा है-

सीखना होगा दलितों को भी
कलम का महत्व
हथियार के रूप में उसका प्रयोग
क्योंकि कलम से लिखे जा सकते हैं
परिवर्तन के गीत,
ध्वस्त किए जा सकते हैं अन्याय के किले।''[11]

यहाँ दलित कवि सिर्फ कलम का सिपाही नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और जागरण का कार्यकर्ता भी रहा है। अंबेडकर के सपनो को दलितों के जीवन में साकार कर सामाजिक परिवर्तन लाना वह लक्ष्य करता है-

''सदियों से शोषित पीड़ित
दिवा स्वप्नों को
साकार करना चाहते हैं
बाबा साहब के सपनों को
जीवन में यथार्थ करना चाहते हैं।''[12]

अत: समकालीन हिंदी दलित कविता अपनी यातनाओं के अतीत के साथ अपने समसामयिक जीवन और परिवेश के साथ गहराई के साथ जुड़ी हुई है, जिससे उसकी प्रासंगिकता अधिक है। उनके स्वर में सच्ची संवेदना और गहरे दर्द निहित हैं। साथ ही मानवाधिकारों की जोरदार वकालत करती है। अब दलितों ने शिक्षा के माध्यम से अपने हक और अधिकारों को पहचान कर अपने स्वर्णिम भविष्य के निर्माण के लक्ष्य में अन्याय, दमन, शोषण तथा अपमान के खिलाफ आवाज उठाना शुरू कर दिया है। दलित कविता में अभिव्यक्त आक्रोश, संघर्ष, नकार, विद्रोह, अतीत की स्थापित मान्यताओं से है, वर्तमान के छद्म से है, लेकिन मुख्य लक्ष्य जीवन में घृणा की जगह प्रेम, समता, बंधुता, मानवीय मूल्यों का संचार कर समाज में दलितों को सब के साथ समानता प्रदान करना है। दलित कवि अपने सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ रचना कर्म में जुड़कर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाईचारे की भावनाओं को स्थापित कर समाज में सकारात्मक परिवर्तन कर अपने स्वर्णिम भविष्य को साकार करने के लिए नए इतिहास का निर्माण करना चाहते हैं । ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. दलित निर्वाचित कविताएँ, संपादक : कँवल भारती (रचनाकार -सुशीला टाकभौरे), पृष्ठ 142
2. जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नही था मैं, पृष्ठ 17
3. सुशीला टाकभौरे, प्रतिनिधि कविताएँ, पृष्ठ 36
4. दलित निर्वाचित कविताएँ, संपादक : कँवल भारती (रचनाकार -सुशीला टाकभौरे), पृष्ठ 145
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ 49
6. जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य (वार्षिकी -2013), पृष्ठ 321
7. मोहनदास नैमिशराय (संपादक), बयान, अगस्त 2012, पृष्ठ 29
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ 103
9. जयप्रकाश कर्दम (संपादक) ,दलित साहित्य (2012),पृष्ठ 420
10. श्यौराज सिंह 'बेचैन', क्रौंच हूँ मैं, पृष्ठ 48
11. जयप्रकाश कर्दम, तिनका तिनका आग, पृष्ठ 30
12. डॉ. सुशीला टाकभौरे, हमारे हिस्से का धूप, पृष्ठ 48

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

द वेल डिगर्स डॉटर : प्रेम, परिवार और परंपरा की एक मार्मिक यात्रा

डॉ. आनंद कुमार सोनी

असिस्टेंट प्रोफेसर
अमिटी विश्वविद्यालय, पटना-801503
9628729204
aksoni@ptn.amity.edu

उत्कर्ष कुमार मिश्रा

ट्रेंड ग्रेजुएट शिक्षक
सर्वोदय विद्यालय
नई दिल्ली-110006
9120969635
utkarsh.mishra.bhu@gmail.com

शोध सार :

मार्सेल पाँइयोल फ्रेंच सिनेमा के लिए एक मील का पत्थर हैं। फ्रेंच सिनेमा को उसकी बुलंदियों तक ले जाने का श्रेय इन्हीं को जाता है। तभी तो उनकी मृत्यु के 50 साल बाद भी उनके उपन्यासों और चलचित्रों को आज भी सराहा जाता है। पाँइयोल समय-समय पर अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की असंवेदनाओं पर गहरा प्रहार करते रहे हैं। उन्होंने अपने चलचित्र और अपने लेखन के बीच के अंतर को अधिक-से-अधिक कम करने की कोशिश की है।

प्रस्तावना :

सुबह का समय है, सूर्य धरा तथा वृक्षों पर स्वर्ण बिखेर रहा है। नदी का कलकल, पक्षियों की चहचहाहट के साथ मिल कर एक मधुर उन्नाद उत्पन्न कर रहा है।

26 वर्षीय जैक नदी किनारे बैठा मछलियों की प्रतीक्षा कर रहा है तथा प्रकृति के इस सौंदर्य का आनंद ले ही रहा होता है, तभी देखता है कि एक सुंदर युवती सरिता तट पर खड़ी उसे पार करने का प्रयास कर रही है। युवक उसे देख बहुत रोमांचित हो उठता है, उसकी आँखों में चमक आ जाती है, वो चाह कर भी खुद को रोक नहीं पाता है और उसकी सहायतार्थ वहाँ पहुँचता है तथा उसे नदी पार करा देता है।

पर जब हम इसका चलचित्र देखते हैं तो ये दृश्य उपन्यास के अक्षरों की तुलना में धूमिल प्रतीत होता है। यहाँ पर हम वर्णन कर रहे हैं, प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक 'मार्सेल पाँइयोल' कृत एक बहुचर्चित उपन्यास 'द वेल डिगर्स डॉटर' का। यह उपन्यास मार्सेल ने 1940 में लिखा तथा इस पर एक फिल्म स्वयं के निर्देशन में बनाई। फिर 2011 में डेनियल ऑतोइल के निर्देशन में इसे दोबारा उजागर किया गया।

मार्सेल का ये उपन्यास नायिका के अंतर्द्वंद्व, पिता के संघर्ष तथा समाज के अमानवीय बंधन को सीधे तौर पर उदीप्त करता है। यह एक कालजयी कहानी है,

जो प्रेम, नैतिकता और सामाजिक उपेक्षाओ की पड़ताल करती है। इस उपन्यास का केंद्र पैट्रिसिआ है, जो एक कुआँ खोदने वाले 'पास्कल' की पुत्री है। पास्कल एक विधुर है, जिसकी 5 और पुत्रियाँ होती हैं, परंतु घर की आर्थिक स्थिति संघर्षशील होती है। पास्कल का साथी फेलिप पैट्रिसिआ को पसंद करता है और उसे अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहता है।

विशिष्ट शब्द :

पारंपरिक भयादोहन, परंपरा, नायिका, माजेल, प्रेम, संवेदनाएँ।

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के कई उद्देश्य हैं, जिसमें उपन्यास और चलचित्र के बीच अंतर , प्रमुख किरदारों का चरित्र चित्रण, पारिवारिक संवेदनाएँ और समाज का उदासीन रवैया और उसके प्रभाव शामिल हैं।

मूल आलेख :

पैट्रिसिआ को एक 26 वर्षीया फ्रांसीसी सेना के विमान चालक 'जैक माजेल' से प्रेम हो जाता है। जैक के पिता शहर के एक प्रतिष्ठित व्यवसायी होते हैं। दोनों मिलते हैं, साथ में वक्त बिताते हैं और कालांतर में वो जैक से गर्भवती हो जाती है। जैक को इस बात का पता लगे, इससे पहले उसकी सेना की टुकड़ी विश्व युद्ध में भाग लेने हेतु उसे वापस बुला लेती है। जैक सारी स्थिति से अपनी माँ को अवगत कराता है, और एक स्वहस्तलिखित पत्र पैट्रिसिआ को देने को कहता है। उधर फेलिप भी युद्ध में चला जाता है।

जैक की माता पास्कल की सामाजिक और आर्थिक असमानता की वजह से पैट्रिसिआ को कुछ नहीं बताती है और इधर पैट्रिसिआ को लगता है कि जैक उसको जातीय बंधनों के कारण अपनाना नहीं चाहता है। वह अपने इस अंतर्द्वंद्व के मध्य सहायता हेतु अपने पिता को सारी स्थिति से अवगत कराती है। पास्कल पहले तो स्तब्ध रह जाता है, पर अपनी पुत्री के सुरक्षित भविष्य हेतु सपरिवार माजेल परिवार से मिलने पहुँचता है। पहले एक-एक कर माजेल परिवार को अपनी सभी पुत्रियों से मिलवाता है और आखिरी में पैट्रिसिआ को सामने लाता है। वो माजेल परिवार को सारी स्थिति से अवगत करता है। श्रीमती माजेल पास्कल और पैट्रिसिआ को अपमानित करती है।

महोदया माजेल कहती है, ''लेकिन यह पारंपरिक भयादोहन है! किसी शरीफ घर के लड़के को फँसाने के लिए ये एक बहुत ही सरल उपाय है, हमारे साथ, यह काम नहीं करेगा!''[1]

माजेल परिवार पैट्रिसिआ को जैक से गर्भवती मानने से इनकार कर देता है और घर से निकाल देता है। लोक लाज और क्रू समाज के ठेकेदारों के भय से पास्कल अपनी पुत्री को सुदूर अपने एक बहन के पास भेज देता है। जहाँ प्रसव के दौरान वो एक सुंदर बालक को जन्म देती है। एक दिन माजेल परिवार को जैक की मृत्यु का समाचार मिलता है और धीरे-धीरे शहर में जैक की मृत्यु की जनश्रुति होती है, माजेल परिवार बहुत हतोत्साहित हो जाता है।

उधर एक दिन पास्कल अपनी पुत्री (पैट्रिसिआ) से मिलने जाता है। वहाँ वो जैक और पैट्रिसिआ के बच्चे को देखता है। उसके लिए वो पल कुछ रुक-सा जाता है, बच्चे का मासूम चेहरा देखकर वो मोहित हो जाता है, उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वो पैट्रिसिआ को घर ले आता है। अब उसे किसी भी सामाजिक लांछन की परवाह नहीं है। वो अपने घर में सभी बच्चों के साथ खुश है।

पैट्रिसिआ की खबर मिलते ही माजेल परिवार बच्चे को देखने आता है। वो अपने घर के अंतिम चिराग को अपनाना चाहता है, जिसके लिए वो पास्कल को प्रलोभन भी देता है।

जब श्रीमती माजेल बच्चे को गोद में उठाती हैं तो पूछती हैं, *''लेकिन उसके पिता, क्या आप जानते हैं कि वह मेरा बेटा था?''*[2]

और वो यह भी कहते हैं कि, *''हमारे पास पैसा है... जो अब हम दोनों के लिए पर्याप्त है... हम उसके लिए छोटी-छोटी चीजें खरीद सकते हैं... ''*[3]

पैट्रिसिया कहती है कि ये बच्चा जैक का नहीं है।

वो जैक से कभी मिली ही नहीं। तब जैक की माँ नाटक से पर्दा उठाती है और बताती है की जैक मुझे सब बता कर गया था तथा पैट्रिसिआ लिए एक पत्र भी छोड़ कर गया था।

''ये मैं थी जिसको तुमसे मिलना था। मैं वहाँ गई थी। तुमको देखा था। और वो पत्र, मैंने उसको जला दिया था।''[4]

पर लोक-लाज के भय से उसने पैट्रिसिआ को कुछ नहीं बताया था। पर अब ये बच्चा उनकी आखिरी उम्मीद है, जिसे वो खोना नहीं चाहते हैं। उनकी ये स्वार्थी भावना जानकर पास्कल और क्रोधित हो जाता है और उन्हें जाने को कह देता है।

पैट्रिसिआ एक प्राज्ञ युवती होती है, जो माजेल परिवार के दु:ख को समझती है। वो ये समझती है कि उनके जीवन का ये अंधकार केवल ये बच्चा ही दूर कर सकता है, क्योंकि वो खुद उस दु:ख से गुजर रही होती है। इसलिए वो करुणामयी स्त्री अपने बच्चे को लेकर अक्सर माजेल परिवार के घर में आने-जाने लगती है। पास्कल भी अपनी पुत्री को दूर रखकर वो दर्द महसूस कर चुका होता है, इसलिए वो भी पैट्रिसिआ को माजेल परिवार के पास जाने से नहीं रोकता है। बस अपना ख्याल रखने की हिदायत देता है।

फेलिप युद्ध से वापस आ जाता है। अभी भी वो पैट्रिसिआ से बहुत प्रेम करता है और उसको बच्चे समेत अपनाना चाहता है। पर पैट्रिसिआ अब जान चुकी थी कि उसकी छोटी बहन 'अमांडा' फेलिप को पसंद करती है। और अगर उसने फेलिप से शादी की तो अमांडा का दिल टूट जाएगा। इसलिए वो फेलिप के प्रस्ताव को शालीनता से मना कर देती है। फेलिप पैट्रिसिआ को खुश देखना चाहता है।

एक दिन वो एक सुखद समाचार लेकर आता है कि जैक जीवित है। अपने शहर में देखा गया है। यह सुनकर सभी के अंदर एक नई ऊर्जा का संचार होता है और अगले क्षण जैक उनके सामने होता है। पैट्रिसिआ, जैक को देखकर भाविभोर हो जाती है और अपनी भावनाओ पर काबू नहीं कर पाती है। घबराकर वो अपने घर भाग जाती है।

जैक को सारी परिस्थितियों से अवगत कराया जाता है। पिता बनने का एहसास उसके लिए बहुत अलग और भावनात्मक होता है। जैक अपने परिवार के साथ पैट्रिसिआ

के घर जाता है। माजेल परिवार जैक का विवाह पैट्रिसिआ से कराने की अनुमति माँगता है , जिस पर सभी एकमत हाँ बोलते हैं। उसी क्षण फेलिप भी अमांडा से विवाह की इच्छा जताता है।

फेलिप कहता है, *''आपकी राय मे शायद जैसा कि मेरे जीजा आपको परेशान करेगा तो क्या होगा ?''*[5]

''आप जानते हैं, यदि आप हमें आमंत्रित नहीं करेंगे, तो हम आपसे कभी नहीं मिलेंगे। और फिर, अगर आपको मेरी अमांडा से शादी पसंद नहीं है, तो मैं इंतजार करूँगा।''[6]

अमांडा फेलिप को पहले से पसंद भी करती है। सभी जन दोनों की विवाह की सहमति देते है।

इसी के साथ ये उपन्यास एक सुखद मोड़ पर समाप्त हो जाता है।

प्रमुख किरदार :

पैट्रिसिआ : कहानी का मुख्य किरदार पैट्रिसिआ है। सारी घटनाएँ उसी के इर्द गिर्द गढ़ी जाती हैं। यह 18 वर्षीय नायिका है। उपन्यास में इसका दृश्य मिलता है कि बचपन में एक संभ्रांत कुटुंब के विवाहित दंपति पैट्रिसिआ को अपनी दत्तक पुत्री मानकर अपने साथ ले गए थे।

कालांतर में उनकी मृत्यु के पश्चात वह अपने पिता पास्कल के पास वापस आ जाती है। हालाँकि हमें चलचित्र में इस बात का बस एक छोटा-सा जिक्र मिलता है।

पैट्रिसिआ एक प्राज्ञ युवती होती है। 18 वर्ष की हिलोरे मारने वाली उम्र में उसे एक युवक से प्रेम हो जाता है और वो उससे गर्भवती हो जाती है।

वो अपने ऐसे कमजोर हालात में फेलिप से भी विवाह कर सकती है, पर अपनी अनुजा अमांडा की खातिर तटस्थ्य रहती है। माजेल दंपति द्वारा अपमानित होने पर भी वो चुप रहती है।

महोदया माजेल कहती है, *''मुझे डर है कि इन अच्छी बहनों ने तुम्हारे साथ अपना समय बर्बाद नहीं किया, क्योंकि आखिरकार, अगर मैं सही ढंग से समझूँ तो तुम मेरे बेटे के के बच्चे की बिन ब्याही माँ होने का दावा करती हो ?''* [7]

पैट्रिसिआ अपनी गर्दन नीचे ही रखती है और कुछ नहीं कहती है। यहाँ तक कि वो अपने पिता को अत्यधिक अपमान से बचाने की राह पर, प्रसव के दौरान वो अपने दूर की रिश्तेदार के यहाँ चली जाती है। इस संघर्ष में वो अपनी आंतरिक पीड़ा कभी नहीं दिखाती है। अपने मन मष्तिष्क में चल रहे अंतर्द्वंद्व का वो डट कर सामना करती है। समाज की आलोचनाओं का भी वो साहसपूर्वक सामना करने को तत्पर रहती है, जो कि उसका अपने पिता, बहन तथा प्रेमी के प्रति, निरा प्रेम को प्रदर्शित करता है और उसके अदम्य साहस का परिचय देता है। अपमानित होने के बाद भी अपने शिशु को वो उसके दादा-दादी से मिलाने ले जाती है, जो ये दर्शाता है कि वह एक प्रज्ञा युवती है, जो अपने से अधिक अपनों की भावनाओ का सम्मान करती है। वो अपने प्रेम के विरह में रहकर माजेल का जैक के प्रति प्रेम और करुणा समझ रही थी। उम्र में छोटी होने पर भी उसका समर्पण सभी बुद्धिजीवियों पर भारी है।

पास्कल : पास्कल कुआँ खोदकर अपनी जीविका चलाने वाला इंसान है। उसकी 5 पुत्रियाँ होती हैं। कहानी में उसे अपनी आर्थिक स्थिति से जूझता हुआ देखा गया है। यहाँ पर यह दर्शाया गया है कि सामाजिक दबाव और लांछन के चलते वो अपनी प्रिय पुत्री को प्रसव के दौरान ही दूर कहीं अपनी बहन के घर भेज देता है। अपनी पुत्री के प्रति दु:ख, सामाजिक संघर्ष के बीच क्षैतिज में वह अपनी बाकी पुत्रियों के भरण-पोषण के दायित्व का निर्वहन भी करता है। कालांतर में पैट्रिसिआ के अबोध बच्चे को देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है। वो पैट्रिसिआ को अपने घर बुलाने हेतु सारी सामाजिक दरारों को भर देता है, जो कि दर्शाता है कि परंपरा-नियम एक सभ्यता के लिए होते हैं, परंतु जब परंपराओं और नियमों से मानसिक कुठाराघात होने लगे तो मानव इससे निजात पाने हेतु इसे दरकिनार भी कर देता है। आंतिल का अभिनय इस किरदार में प्राण फूँक देता है।

माजेल परिवार : पास्कल समानांतर माजेल परिवार होता है, जो सामाजिक दिखावे में अपनी जीवन शैली, उच्च एवं जीवन स्तर को स्थिर बनाए रखना चाहता है। इसी भय से वो पैट्रिसिआ को अपना नहीं पाते, पर जैक

की मृत्यु का समाचार उन्हें गहन शोक में डाल देता है। उनके जीवन में अंधकार छा जाता है।

एक दिन जब वो पैट्रिसिआ और जैक के बच्चे को देखते हैं तो उनके अंधकार पूर्ण जीवन में उजाले की एक किरण दिखाई देती है।

उनको इतना मानसिक आघात पहुँच चुका है कि वो उससे उबरने के लिए सारे सामाजिक दबावों से परे पैट्रिसिआ और उसके बच्चे को अपनाने पास्कल के घर तक चले जाते हैं। वो ये बात समझ चुके हैं कि जब परिवार ही नहीं तो ये शान ओ शौकत किस बात की, ये सामाजिक दिखावा किसके लिए?

फेलिप : फेलिप प्रेम और त्याग की मूरत बनाकर हमेशा मदद करता रहता है। वह समझता है कि प्रेम का मतलब खुशी देना और आजाद करना है न कि कोई पाश जो आपको आपकी मनमर्जी के विरुद्ध ही बांध ले। वो पैट्रिसिआ से निश्च्छल प्रेम करता है, यद्यपि वो ये भी जानता है कि पैट्रिसिआ जैक से प्रेम करती है। फिर भी वो पैट्रिसिआ की मदद करता है। जब उसे ज्ञात हुआ कि पैट्रिसिआ जैक के बच्चे की माँ बनाने वाली है और जैक उसको कभी नहीं मिलेगा, तब इस दु:ख की घड़ी में वो पैट्रिसिआ का साथ देने आगे आ जाता है। पैट्रिसिआ से विवाह कर वो बच्चे को अपनाना चाहता है। ये उसकी निश्च्छल प्रेम की भावना को दर्शाता है।

एक दिन वो स्वयं जैक के जीवित होने की खबर देता है ताकि सब खुश हो सकें। फेलिप को अपना प्रेम नहीं मिला। अमांडा फेलिप से प्रेम करती है। अमांडा के इस प्रेम विरह को इसीलिए शायद वो समझता है, और उसके प्रेम का सम्मान करते हुए उसको अपनाने की इजाजत माँगता है।

जैक : जैक एक 26 वर्षीय सीधा, सरल और आकर्षक युवा होता है, जो किसी पुरातन दुखदायी सामाजिक बंधन या आर्थिक जीवन स्तर पर विश्वास नहीं रखता है। तभी तो एक संभ्रांत व्यापारी पुत्र होते हुए भी उसने एक कुआँ खोदने वाले की पुत्री से प्रेम किया और शादी भी करना चाहता है। अपने कर्मों के लिए वो बहुत ही दृढ़ है, इसलिए वो पैट्रिसिआ के बारे में अपनी माँ को बता देता है और अपनी माँ से, एक स्वहस्तलिखित पत्र पैट्रिसिआ को देने के लिए कहता है।

वो सभी को खुश देखना चाहता है। इसलिए सभी की स्वीकृति लेकर विवाह करना चाहता है और अपने बच्चे पर भी सभी को सामान अधिकार देता है।

निष्कर्ष :

इस उपन्यास में मार्सेल ने पारिवारिक रिश्तों की महत्ता तथा प्रेम को बखूबी दर्शाया है। और उजागर किया है एक प्रश्न कि क्या कोई सामाजिक बंधन या दीवार इतनी मजबूत हो सकती है, जो कि पिता को अपनी पुत्री से, माता-पिता को पुत्र से, बच्चे को अपने परिवार से दूर कर अंत:कलह में जीवन जीने हेतु बाध्य कर दे। ऐसी मनोस्थिति के साथ लोग एक सुदृढ़ भविष्य की क्या कल्पना कर पाएँगे।

इस कहानी में सामाजिक मूल्यों का सख्ती से पालन दिखाया गया है और इस बात पर ध्यान केंद्रित किया गया है कि क्या पैट्रिसिआ द्वारा सामना किए गए संघर्ष और चुनौतियाँ अभी भी प्रासंगिक हैं? ❑

*नोट : *1, 2, 3, 4, 5, 6 व 7 किरदारों की वार्ता से अनूदित।*

संदर्भ सूची :

- La fille du puisatier. Marcel Pagnol. Éditions de Fallois.
- https://en.wikipedia.org/wiki/The_Well-Digger%27s_Daughter_(1940_film)
- https://m4uhd.tv/watch-movie-the-well-diggers-daughter-2011-275565.html
- https://www.rogerebert.com/reviews/the-well-diggers-daughter-2012
- Thecrimson.com/article/1958/3/4/the-well-diggers-daughter-pithe-well-diggers/ Taylor & Francis online Marcel Pagnol, Vichy and Classical French Cinema Ginette
- Vincendeau Pages 5-23 | Published online: 03 Jan 2014
- https://www.npr.org/2012/07/19/156732403/a-stubborn-old-soul-stumbling-into-modernity

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

संस्कृति

असम की तिवा जनजाति

डॉ. जोनाली बरुवा

असम विविध रंगी और विविध जनजातीय समूहों की कला-संस्कृति की लीलाभूमि है। इसके पहाड़ों, मैदानों में विस्तारित है इंद्रधनुषी कला संस्कृति का रंग, रूप और गंध। अनेक जनजातियों की अपनी विशिष्ट रीति-नीति भाव-भंगिमा से समृद्ध है असम। अनूठी विशेषताओं से परिपूर्ण प्रत्येक जनजाति की कला-संस्कृति असम के आभूषण स्वरूप हैं। इन आभूषणों से अलंकृत असम वर्षों से आकर्षण का केंद्र रहा है। विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से ही वृहद असमीया जाति गठित है। प्रकृति की रम्य भूमि असम में प्राचीन समय से ही ऑस्ट्रिक, मंगोलीय, अल्पाइन और आर्य जाति के लोगों का आगमन होता रहा है। फलस्वरूप एक विशाल संस्कृति की मिलन भूमि और सांस्कृतिक केंद्र बन गया है असम। अनेकानेक जाति, जनजातियों के अपनी-अपनी विशिष्ट संस्कृतियों से समृद्ध असम में एक लघु भारत का रूप पा चुका है। समन्वय का ऐसा उदाहरण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। आडंबरहीन और उत्कृष्ट कला-संस्कृति की ज्योति बिखेर कर प्राचीन समय से ही असम भूमि में ये जनजातियाँ निवास करती रही हैं। पर्वत मैदान को एक कर, समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण यहाँ देखने को मिलता है।

असम में निवास करने वाली इन्हीं जनजातियों में से एक उल्लेखनीय जनजाति है तिवा जनजाति। बोडो जनजाति के अंतर्गत आने वाली तिवा जनगोष्ठी अपनी अलग भाषा, संस्कृति और गौरवशाली इतिहास से समृद्ध है। असम के मोरीगांव, नगांव, कामरूप कार्बी आंग्लोंग और धेमाजी जिले के अतिरिक्त सदिया जिले में भी तिवा जनजाति के लोग निवास करते हैं। निवास स्थान की भौगोलिकता के आधार पर तिवा लोगों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, पहाड़ी तिवा और मैदानी तिवा।

विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर
मरिधल महाविद्यालय
धेमाजी, असम-787057
9864108413
jonaliboruah7@gmail.com

कार्बी आंग्लोंग जिले के हामरेन महकमे के आमला और आमरी इलाके में निवास करने वाले लोगों को पहाड़ी तिवा कहा जा सकता है। दूसरी ओर, मैदानी क्षेत्र में निवास करने वाली तिवा जनजाति के लोगों को मैदानी तिवा कहा जा सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाली पहाड़ी तिवा जनजाति के लोग ही अपनी मूल भाषा, परंपरा, रीति-नीति, रहन-सहन, खानपान आदि को संरक्षित रखे हुए हैं और आधुनिकता के प्रभाव से पुरानी परंपराएँ बची हुई हैं। इन पहाड़ों में ही तिवा संस्कृति बची हुई है। दूसरी ओर मैदानी तिवा जनजाति के लोग वृहत

असमीया जाति की भाषा, संस्कृति, आचार-व्यवहार को अपनाकर अपना मूल परिचय लगभग खो चुके हैं। इनमें से कई लोगों ने वैष्णव संस्कृति को अपना लिया है और असमीया भाषी समाज के साथ एकाकार हो गए हैं।

तिवा लोगों का प्रव्रजन :

असम के तिवा अथवा लालुंग यहाँ के मूल आदिवासी हैं, लेकिन इतिहास के पन्नों में तिवा जनजाति के बारे में विस्तार से कोई उल्लेख नहीं मिलता। एडवर्ड केट साहब के A History of Assam पुस्तक के द्वितीय संस्करण में लालूंग शब्द का उल्लेख मात्र किया गया है। डॉ. सूर्य कुमार भुयाँ जी ने भी अपने देवधाई असम बुरंजी में महज दो-तीन स्थानों पर ही लालुंग जनजाति का उल्लेख मात्र किया है। देवधाई असम बुरंजी, सातसरी असम बुरंजी आदि में भी तिवा लोगो का सीमित परिचय प्राप्त होता है। तिवा जनजातीय लोगों की उत्पत्ति और निवास स्थान के बारे में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक प्राचीन मत के अनुसार ये पहले इलाहाबाद के समीप यमुना नदी के तट पर निवास करते थे। किंतु कुछ बुजुर्ग लोगों का कहना है कि आर्य जाति के लोगों ने इन्हें अपने मूल निवास स्थान से इलाहाबाद की ओर खदेड़ दिया था। फिर वो हिमालय के पूर्वी दिशा की ओर चले। एक दीर्घ यात्रा के बाद वे प्रागज्योतिषपुर इलाके में आकर बस गए और स्वशासन की घोषणा करते हुए वहाँ कई वर्षों तक राज किया। पौराणिक शास्त्रों के अनुसार इस जनजाति को किरात कहा जाता था और इस जनजाति के लोग टिकरा के नाम से जाने जाते थे।

राजा नरकासुर ने इन्हें पूर्व की ओर खदेड़ दिया और ये लोग आकर कपिली नदी के तट पर निवास करने लगे। इन्होंने कपिली नदी के तट पर एक राज्य की स्थापना की, जिसे 'त्रिवेग' के नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ के प्रथम राजा का नाम 'प्रत्यार्दन' था। 'त्रिवेग' राज्य की सीमा की कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

प्रव्रजन के संबंध में तिवा लोगों के बीच प्रचलित जनश्रुति के अनुसार तिवा लोगों के मुख्य उपास्य देवता 'चारिकराई' हैं। ये देवता चार भाई हैं, जिसके कारण इन्हें 'चारिकराई' कहा जाता है। इनका निवास स्थान 'माखा खाजम' या हिमालय पर्वत था। 'चारिकराई' देवता कृषि और गृह निर्माण का काम जानते थे, जबकि आदमी ये काम करना नहीं जानते थे। देवताओं ने एक बार एक सभा का आयोजन किया, जिसमें 'नरमनिष' को भी आमंत्रित किया गया था। 'नरमनिष' को देवताओं द्वारा दो कार्य अर्पित कर दायित्व भार दिए जाने के प्रस्ताव पर 'नरमनिष' ने आपत्ति की, बाद में इन दो कार्यों का प्रशिक्षण मनुष्यों को दिया गया। चार देवताओं को कृषि कर्म के देवताओं के रूप में मान्यता प्रदान की गई और उन्हें पूजा करने के नियम बनाए गए। माखा खाजम के उस स्थान पर की जाने वाली खेती को 'माखा महिहा' अथवा 'जूम' कहा जाने लगा। जू अर्थात ऊँचा स्थान, माखा अर्थात पर्वत, महि अर्थात धान और हा का अर्थ है मिट्टी। इस प्रकार माखा महिहा का अर्थ हुआ पहाड़ी मिट्टी में की जाने वाली धान की खेती। इस तरह कृषि कर्म करते हुए उर्वर भूमि की तलाश में वे मैदानी भागों की ओर आते गए। जहाँ-जहाँ तिवा लोग खेती करते थे, वहाँ-वहाँ वे एक देवस्थान स्थापित करते थे। हिमालय की पहाड़ियों से ये लोग जब दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे तो रास्ते में इन्हें एक बड़ी नदी मिली, यह ब्रह्मपुत्र था। ब्रह्मपुत्र को तिवा लोग 'लेउति' कहते थे। तिवा भाषा में 'ले' का अर्थ है लंबा और 'ति' का अर्थ है पानी। यह 'लेउति' शब्द ही कालांतर में 'लुइत' में परिवर्तित हो गया।

अन्य एक जनश्रुति के अनुसार 'तिलाओ' (लुइत) के उत्तरी तट पर तिवा लोगों के हालाली राज्य के प्रतापी राजा रामचंद्र का शासन था। उन्होंने कार्बी कुँवरी चामदै से विवाह किया था। राजा रामचंद्र ने एक दिन स्वप्न में देखा कि लुइत कुँवर उनसे कह रहे हैं कि वे अपनी छोटी रानी चामदै को लुइत को अर्पित कर दे। राजा ने स्वप्न की बात मानने से इनकार कर दिया, जिसके कारण कुछ दिनों में पूरे राज्य में संकट छा गया। खड़ी फसलें नष्ट हो गईं, चारों ओर दुर्भिक्ष और अकाल फैल गया। राजा ने ज्योतिषियों से मंत्रणा की। ज्योतिषियों ने सलाह दी कि छोटी रानी चामदै को लुइत को अर्पित कर दिया जाए। परामर्शानुसार छोटी रानी चामदै को एक 'भूर' में रखकर लुइत में बहा दिया गया। रानी के साथ अनेक प्रजा भी भूर में उठकर चली गईं। ये ही लोग बाद में भूरबांधा, मीकिर गाँव,

बैद्यबाड़ी आदि स्थानों में निवास करने लगे। लुइत कुँवर के सान्निध्य से रानी ने 'आरिमत्त' नामक एक बालक को जन्म दिया। आरिमत्त का पोता 'जंगालबलहू' था, जिसने पितृ हत्या के बाद 'रहा' में अपने राज्य की स्थापना की थी। इन्होंने कछारी राजा की पुत्री से विवाह किया था। लेकिन परवर्ती समय में कछारी राजा के साथ विवाद होने पर युद्ध में जंगालबलहू की मृत्यु हो गई।

दूसरी ओर, हालाली राज्य में हुए दुर्भिक्ष के कारण कई लोगों ने लेउति नदी पार कर कछारी राज्य में प्रवेश किया। वहाँ भी वे लोग अधिक दिन नहीं रुके और दैया उपत्यका की ओर रवाना होकर कपिली और यमुना नदी के तटों में त्रिवेग राज्य स्थापित किया। बाद में आपसी कलह के कारण इनमें से अनेक लोग भागकर जयंतीया राज्य में आ गए और हजारों वर्षों तक वहीं निवास किया। जयंतीया राज्य से अलग-अलग समय में पृथक-पृथक समूहों में ये लोग निकलते गए और उपयोगी स्थान खोजकर अपना निवास स्थान बनाया।

लालुंग नाम की उत्पत्ति :

लालुंग नाम की उत्पत्ति के संबंध में भी अनेक पौराणिक कहानियाँ प्रचलित हैं। ऐसा माना जाता है कि भगवान शिव ने एक ईश्वर की सृष्टि की, जिनका नाम लुंग्लू महादेव रखा गया।

प्रभु लुंगला और जयंती देवी (दुर्गा देवी) के मिलन से तीन कन्याओं का जन्म हुआ। ज्येष्ठ पुत्री ने कार्बी लोगों की सृष्टि की, द्वितीय पुत्री ने कछारी लोगों की और छोटी पुत्री ने लालुंग लोगों की सृष्टि की। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार लालुंग लोगों का शासन असुर राज बाली के हाथ में था। बाली प्रभु विष्णु का भक्त था। राजा ने सभी लोगों को उसके धर्म का अनुयायी बनने का आदेश दिया था। लेकिन कुछ लालुंग लोगों को यह स्वीकार्य नहीं था। परिणामस्वरूप राजा ने क्रोधित होकर उन्हें सजा का ऐलान किया। उनके मस्तक में लाल चिह्न बनाकर उन्हें देश निकाला दे दिया गया। मस्तक में लाल चिह्न होने के कारण ही वे बाद में लालुंग कहलाए।

लालुंग लोगों की उत्पत्ति के संबंध में एक और किंवदंती सुनी जाती है। एक बार भगवान शिव नशे में चूर होकर रास्ते में ही निद्रामग्न हो गए। निद्रा के दौरान भगवान शिव के मुँह से लार की बूँदें निकलीं। लार की बूँदों से भगवान शिव ने दो पुरुषों की रचना की। भगवान शिव के लार से निर्मित होने के कारण इन्हें लालुंग कहा गया।

इस कहानी के साथ मिलती-जुलती अन्य एक कहानी भी है। एक बार भगवान शिव और पार्वती मानसरोवर की प्राकृतिक सुंदरता का उपभोग कर रहे थे। मानसरोवर की मनमोहक सुंदरता का उपभोग करते हुए झील के किनारे

ही भगवान शिव सो गए। जागने पर उन्होंने देखा कि जहाँ वे लेटे थे, उस स्थान पर लार की पाँच बूँदें पड़ी हुई हैं। भगवान शिव ने लार की इन पाँच बूँदों से पाँच मानवों की सृष्टि की। लार से जन्म होने के कारण ही इन मानवों का नाम लालुंग पड़ा।

तिवा समाज में प्रचलित एक अन्य जनश्रुति के अनुसार लालुंग शब्द कार्बी लोगों द्वारा दिया हुआ है। इसके अनुसार लांग और लुंग इन दो शब्दों के संयोजन से लालुंग शब्द का गठन हुआ है। इस संदर्भ में एन के श्याम चौधुरी और एम एम दास का कथन उल्लेखनीय है – Lalung is a mikir word, formed of two parts, Lang and Lung, with separate meaning . Lang is water and Lung means to sink it.

ताई आहोम भाषा के शब्दकोश आहोम लैक्सिकन के अनुसार 'लालुंग शब्द ताई भाषा का हो सकता है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। ताई भाषा में लाइ का अर्थ है नीचे की ओर जाना और लुंग का अर्थ है बड़ा दल।

तिवा लोग खुद को तिवा लिविंग कहते हैं। लिविंग का अर्थ है आदमी। यह लिविंग शब्द ही कालांतर में लालुंग में परिवर्तित हो गया होगा, ऐसा माना जा सकता है। इस तरह लालुंग नाम की उत्पत्ति के संबंध में अनेक जनश्रुतियाँ और किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

तिवा नाम की उत्पत्ति के संबंध में भी कई मत प्रचलित हैं। लालुंग लोग अपना परिचय तिवा के रूप में देते हैं। लालुंग शब्द का प्रयोग उनके लिए गैर लालुंग लोगों ने किया है। 'ति' का अर्थ है पानी और 'वा' का अर्थ है श्रेष्ठ। जब लालुंग लोग पहाड़ी से उतर कर ब्रह्मपुत्र नद के किनारे निवास करने लगे, तब वह अपना परिचय तिवा के रूप में देने लगे।

संभवत: तिवा शब्द तिब्बतिया शब्द से आया है। तिब्बतिया लोग वे हैं, जो तिब्बत से आकर असम के विभिन्न स्थानों पर रहने लगे और परवर्ती काल में यह अपना परिचय तिवा के रूप में देने लगे। ऐसा कहा जाता है कि पुराने समय में तिब्बत की झीलों के आसपास के इलाकों में टिफ्रा, तिवा और डिमासा लोग निवास करते थे। कई वर्षों के बाद ये असम की ओर आ गए। स्थानीय लोग टिफ्रा शब्द का सही ढंग से उच्चारण नहीं कर पाते थे, जिसके परिणामस्वरूप यह शब्द तिफ्रा और फिर तिप्रा के रूप में विकसित हुआ।

समय के साथ-साथ तिवा शब्द छूट गया और लिविंग अथवा लिबुंग, लालुंग के रूप में प्रचलित हो गया। डिमासा कछारी लोग अपने मूल नाम से ही जाने जाते रहे। लालुंग और कछारी लोगों के आराध्य देवता महादेव हैं। लालुंग और कछारी समाज के बीच बड़ा ही घनिष्ठ संबंध है।

तिवा समाज जीवन पर एक नजर :

असम के विभिन्न जनजातियों के बीच एक उल्लेखनीय जनजाति है तिवा जनजाति। पूर्वोत्तर भारत की अन्य जनजातियों और जन-गोष्ठियो की तरह ही तिवा लोग भी सहज-सरल जीवन यापन करते हैं। विनम्र स्वभाव के भोले-भाले तिवा लोग घर-आँगन खूब साफ रखते हैं। शांतिप्रिय और सरल तिवा लोग अतिथि परायण होते हैं और अतिथियों की सेवा का आनंद उठाते हैं। भाषा के क्षेत्र में अब अधिकतर तिवा लोगों ने असमीया भाषा को ही अपना लिया है। तथापि अपनी पुरानी परंपराओं को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास भी तिवा समाज में दिखाई देता है। विभिन्न प्राचीन परंपराएँ और लोकाचार आज भी तिवा समाज में दिखाई देते हैं।

तिवा लोग तिब्बत बर्मी गोष्ठी के बोडो परिवार के हैं। घर आदि निर्माण करने की विधि दोनों जनजातियों में एक जैसी है। चामादि या डेकाचांग ही तिवा लोगों के गृह निर्माण पद्धति का प्राचीन नमूना है।

डेकाचांग से ही क्रमागत रूप में उन्नत प्रणाली के घर बनाने की प्रक्रिया विकसित हुई। तिवा समाज के किसी व्यक्ति विशेष के घर निर्माण के दौरान सबसे पहले 'नोवार' अर्थात उपासना स्थल का निर्माण किया जाता है। मुख्य घर के सामने पूर्व-पश्चिम दिशा में पूजा स्थल का निर्माण किया जाता है, जिसे 'बरघर' भी कहा जाता है। इस 'बरघर' का स्थान निर्धारित होने के पश्चात ही अन्य घर बनाने की योजना बनाई जाती है।

तिवा समाज अपनी भाषा, संस्कृति से समृद्ध होकर वृहतर जाति के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तिवा लोग वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के उत्सव आदि का पालन करते हैं। विविध रंगी इनके पूजा उत्सव आदि खेती, फसल, धर्मीय आचार-व्यवहार, सामाजिक रीति नीतियों से संपृक्त हैं। तिवा समाज में प्रचलित उन विभिन्न पूजा उत्सव आदि से जुड़ा एक महत्वपूर्ण अंग है 'चामादि' या 'डेकाचांग'। यहाँ डेकाचांग का अर्थ वह नहीं है, जो साधारणतया इसके नाम से हमारे मस्तिष्क में उभर आता है। तिवा लोगों का डेकाचांग किसी एक गाँव के युवकों द्वारा अपने अवसर विनोदन तथा रात को विश्राम करने के लिए निर्माण किए जाने वाले घर जैसा है। इसी घर में सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि आयोजित होते हैं। युवकों द्वारा बनाए जाने के कारण इसे डेकाचांग कहा जाता है। युवाओं के इस डेकाचांग में महिलाओं की कोई भूमिका नहीं होने के कारण यहाँ महिलाएँ नहीं जातीं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि डेकाचांग में महिलाओं का प्रवेश वर्जित है।

आमतौर पर गाँव के ठीक बीचो-बीच डेकाचांग का निर्माण किया जाता है। चामादि की देख-रेख के लिए एक समिति भी बनाई जाती है, जिसे तिवा भाषा में 'पांठाई खेल' कहा जाता है। पांठाई खेल के सदस्य चांगदलै, चांगमाजि, सुरुमा, खुरामुल, खुराछा और मुंसिप होते हैं। चामादि निर्माण में कई प्रकार के नीति-नियमों का पालन किया जाता है। इसके निर्माण के लिए पेड़ काटने से लेकर अंत तक कुछ परंपरागत नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता है। कार्य समाप्ति के एक सप्ताह बाद रविवार के दिन चबा चामादि में 'चांगतुवा' अनुष्ठान का आयोजन किया जाता है। इस दौरान नृत्य गीत आदि का भी आयोजन किया जाता है। रात के ठीक बारह बजे लामफा राजा के नाम भात, मदिरा, चावल के आटे के साथ मिलाकर बनाया गया मुर्गे का मांस आदि चढ़ाया जाता है। इस दौरान वहाँ उपस्थित सभी लोग मौन रहते हैं, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि उनके चढ़ावे को स्वीकार करने लामफा राजा स्वयं वहाँ पधारते हैं। इस प्रकार चामादि का चांगतुवा अनुष्ठान संपन्न होता है।

चामादि या डेकाचांग की कुछ विशेषताएँ होती हैं। इसके चारों ओर कोई दीवार नहीं होती। चामादि का निर्माण गाँव के ठीक बीचों-बीच अथवा गाँव के एक किनारे पर किया जाता है ताकि वहाँ से गाँव के एक छोर से दूसरी छोर तक आसानी से देखा जा सके।

तिवा लोग विभिन्न ऋतुओं में होने वाली खेती के साथ तालमेल बिठाते हुए तीन मुख्य उत्सवों का पालन करते हैं। उसी प्रकार ये लोग विभिन्न देव-देवियों की उपासना भी करते हैं। खेती का कार्य आरंभ करने के पूर्व जंखंग पूजा का आयोजन किया जाता है। उसके बाद आरकोर अथवा आरकटा उत्सव का पालन किया जाता है और खेत से जंगल आदि काटकर जमीन को कृषि योग्य बनाया जाता है। तृतीय चरण में देवी लक्ष्मी की पूजा की जाती है और रोपाई का काम आरंभ किया जाता है। तिवा लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि महादेव ही सृष्टि के आदि किसान हैं और उनके निर्देश से ही चार भाई चारिकराई देवों ने मनुष्यों को कृषिकर्म का ज्ञान दिया था। जंखंग पूजा के दौरान चार भाई चारिकराई की पूजा की जाती है और खेती में प्रयोग होने वाले औजारों के लिए भगवान से स्तुति की जाती है। पूजा समाप्त करने के पश्चात सभी लोग एक साथ मिलकर जंगल आदि काटने और जमीन को फसलोपयोगी बनाने का कार्य करते हैं।

तिवा लोगों का प्रधान उत्सव है बिहू और छग्रा। पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाले तिवा लोग छग्रा उत्सव के अलावा जंखंग, वासि, रावाने फूजा, यांगलि निसावा, लांगखन, मिमावा, वानसुवामिसावा आदि उत्सवों का पालन करते हैं। वर्तमान मैदानी भागों में ये लोकोत्सव धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं, लेकिन पहाड़ी तिवा आज भी इन उत्सवों को नियमानुसार पालन करते हुए अपनी पुरानी परंपराओं को अक्षुण्ण रखे हुए हैं।

ऐसा नहीं है कि ये तिवा समाज केवल पूजा उत्सव आदि के क्षेत्र में ही समृद्ध है, बल्कि विभिन्न दंतकथाओं, किंवदंतियों, लोक गीत, पहेली, मंत्र आदि लोक साहित्य के मामले में भी यह समाज समृद्ध है। विभिन्न लोकाचारों के आधार पर लोक गीतों की रचना की गई है। शिशु के जन्म, विवाह आदि पर गाए जाने वाले लोक गीतों के अलावा लोरी, प्रणय गीत आदि भी तिवा समाज में गाए

जाते हैं। तिवा समाज में हारिकुँवरी की भूमिका भी उल्लेखनीय हैं। बरघर का कार्य हारिकुँवरी और बरजेला दोनों के सहयोग से संपन्न किया जाता है। घर के संपूर्ण कार्य का दायित्व बरकुँवरी के जिम्मे ही होता है।

तिवा समाज में लोकाचार के आधार पर अनेक लोक गीतों की रचना हुई है। लालि हिलाली तिवा लोगों का एक प्राचीन गीत है। इस गीत में भी तिवा लोगों के पुराने निवास स्थानों का वर्णन मिलता है। कृषि कर्म से संबंधित विभिन्न लोक गीतों से तिवा लोक साहित्य भरा हुआ है, जो लोक संस्कृति के भंडार को और समृद्ध करता है। तिवा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पौराणिक कहानियाँ लोक साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना योगदान देती हैं। तिवा लोगों की उत्पत्ति से आरंभ कर विभिन्न लोकाचारों, लोक उत्सवों के संबंध में रोचक कहानियाँ पाई जाती हैं। लालुंग राज्य 'गोभा' के संबंध में भी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। यांगलिंग उत्सव, बरत उत्सव, चामादि आदि उत्सवों के मूल में भी अनेक पौराणिक कहानियाँ विद्यमान हैं। तिवार जनजातीय समाज के सांस्कृतिक विस्तार में लोक संस्कृति के अनेक घटक छिपे हुए हैं। तिवा जनजाति के पर्व-उत्सव आदि बहुत व्यापक हैं। यद्यपि इन पर्व-उत्सवों की परंपरा अब शहरों में निवास करने वाले तिवा लोगों में कम होती जा रही है, लेकिन पहाड़ी तिवा लोगों ने अब भी अपनी पुरानी परंपराओं को संरक्षित रखा हुआ है। पूँजीवादी संस्कृति का प्रतिरोध करते हुए एक स्वस्थ सांस्कृतिक धारा का ये लोग प्रतिनिधित्व करते हैं।

कृषिजीवी तिवा लोगों का चावल ही मुख्य आहार है, तथापि पूर्वोत्तर की अन्य जनजातियों की तरह ही ये भी मांस और मछली का सेवन करते हैं और घर में तैयार की जाने वाली मदिरा का प्रयोग मांगलिक कार्यों में किया जाता है। तिवा लोगों द्वारा चावल से तैयार किए जाने वाले इस मदिरा को लाउपानी कहा जाता है। इस लाउपानी के बारे में भी कुछ कहानियाँ प्रचलित हैं। मछली पकड़ने में माहिर तिवा लोग मछली पकड़ने के लिए चेपा, पल, जाकै, जुलुकी, जाल, डिडरा आदि खुद ही तैयार करते हैं। सूखी मछली खाने का चलन भी तिवा समाज में देखा जा सकता है। मसालेदार खाना तथ दूध-चाय आदि का प्रचलन भी अब तिवा समाज में धीरे-धीरे देखा जाने लगा है। असम के अनार्य तथा मंगोलीय जनमानस में महादेव को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। तिवा जनजाति के इष्टदेव हैं 'फा महादेव'। महादेव के अलावा विभिन्न देवी-देवताओं की भी पूजा तिवा समाज में की जाती है। तिवा समाज की एक विशेषता यह है कि वे किसी भी शुभ कार्य के लिए सोम अथवा मंगलवार को शुभ दिन मानते हैं। तिवा लोग विभिन्न देवी-देवताओं को कुछ विशेष नाम देकर धार्मिक नियमों और परंपरा अनुसार उनकी पूजा करते हैं।

तिवा समाज में सामूहिक कुल के इष्ट देवता सूर्य हैं। सौरजगत की शक्ति के मूल केंद्र सूर्य देवता का तिवा समाज में विशेष स्थान है। हिंदू धर्म में उल्लेखित तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं को भी तिवा लोग अपनी भाषा में नामाकरण करते हुए मंत्र जप आदि और बलि-विधान के साथ पूजा-अर्चना करते हैं।

यही है विविधरंगी स्वप्न की लीलाभूमि असम, जिसके हृदय में हमेशा जातीय कला और संस्कृति अठखेलियाँ करती रहती हैं। ❑

संदर्भ सूची :

The Lalungs (Tiwas), Dr. G.S. Thakur, Page-2
तिवा समाज, मानेश्वर देउरी, पृष्ठ - 4
The Lalungs (Tiwas), Dr. G.S. Thakur, Page-7
The Lalungs Society, Page-7
तिवा संस्कृतिर जिलिकनि, संपा. मिलेश्वर पातर, पृष्ठ - 12
एनाजरी (प्रतिदिन के सौजन्य से) महेश्वर पातर, 5 मार्च, 2008
तिवा संस्कृतिर जिलिकनि, संपा. मिलेश्वर पातर, पृष्ठ - 131

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विरासत

राभा जनजाति की परंपरागत वेशभूषा और उनका बायरवो उत्सव

डॉ. अखिल चन्द्र कलिता

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
लामडिंग कॉलेज, लामडिंग
होजाई, असम-782447
9774126252
ackalita1983@gmail.com

सारांश :

वेशभूषा या पोशाक व्यक्ति या समूह की पहनावे की विशिष्ट शैली है। आवरण ही व्यक्ति के दर्जा, लिंग, पेशा, जातीयता, राष्ट्रीयता, गतिविधि या युग को दर्शाता है। भारत विविधता का देश है, लेकिन सिर्फ समावेशी तरीकों से एकता का प्रतीक है। भारत के विभिन्न राज्यों में प्रचलित विभिन्न संस्कृतियों की अलग-अलग पहचान नजर आती है। असम पूर्वोत्तर भारत का एक प्राकृतिक राज्य है। असम भूमि विभिन्न जाति-जनजाति का मिलन स्थल है। असम की विभिन्न जनजातियों में से 'राभा' जनजाति भी एक विशेष संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त जाति है। राभा जनजाति मुख्य रूप से असम के कामरूप, ग्वालपाड़ा, धुबड़ी आदि जिलों में बसी है।

राभा जनजाति की भाषा एवं संस्कृति की एक विशेष पहचान है। राभा जाति की अपनी स्वतंत्र भाषा है, संस्कृति है और लोक-संस्कृति की दृष्टि से यह जनजाति अत्यंत समृद्ध है। यह जनजाति अपनी भाषा और संस्कृति के जरिए स्वयं को 'राभा' कहकर परिचय देने में सक्षम हुई है। अपने हाथों से कपड़े बुनकर पहनना राभा जाति की परंपरा है। घर में ही वे कपास के पेड़ लगाते है और उसका धागा तैयार करके फुलाम कपड़े बुनते हैं।

राभा समाज में जो महिला बुनाई-कटाई में अक्षम है, उसे किसी काम के लिए योग्य नहीं माना जाता। पहले जमाने की ओर अगर दृष्टि डालें तो यह भी सुनने को मिलता है कि जिन युवतियों को बुनाई-कटाई नहीं आता था, उन्हें विवाह के योग्य नहीं माना जाता था। वस्त्र के माध्यम से लोक कला का निदर्शन होता है। वस्त्र के क्षेत्र में राभा जनजाति का अपना एक अलग ही अस्तित्व है। वस्त्र एवं वेशभूषा से ही किसी जाति एवं जनजाति का परिचय प्रस्फुटित हो उठता है।

मूल शब्द :

संस्कृति, वेशभूषा, समावेशी, पूर्वोत्तर, जनजाति, फुलाम, समृद्ध, सक्षम, बुनाई, कटाई, प्रस्फुटित।

भूमिका :

मनुष्य की अमूल्य निधि उसकी संस्कृति है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है। मनुष्य अपने प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है । सामान्य अर्थ में संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों की संपूर्णता है। संस्कृति की अवधारणा इतनी विस्तृत है कि उसे एक वाक्य में परिभाषित करना संभव नहीं है। वास्तव में मानव द्वारा अप्रभावित प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय शक्तियाँ हमें चारों ओर से प्रभावित करती हैं, उन सभी की संपूर्णता को हम संस्कृति कहते हैं। संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों, व्यवहार के तरीकों, अनेकानेक भौतिक एवं अभौतिक प्रतीकों, परंपराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और आविष्कारों को शामिल करते हैं। सर्वप्रथम वायु पुराण में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष विषयक मानवीय घटनाओं को संस्कृति के अंतर्गत समाहित किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मानव जीवन के दिन-प्रतिदिन के आचार-विचार, जीवन शैली तथा कार्य व्यवहार ही संस्कृति कहलाता है । मानव समाज के धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीति विषयक कार्यकलापों, परंपरागत प्रथाओं, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, संस्कार इत्यादि के समन्वय को संस्कृति कहा जाता है।

संस्कृति जीवन की विधि है। जो भोजन आप खाते हैं, जो कपड़े आप पहनते हैं, जो भाषा आप बोलते हैं और जिस भगवान की आप पूजा करते हैं, ये सभी संस्कृति के पक्ष हैं। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है, जिसमें हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। संस्कृति के अंतर्गत रीति-रिवाज, परंपराएँ, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित है।

मूल आलेख :

किसी भी समाज का मनुष्य अपनी सामाजिक स्वीकृति के लिए जो रीति-नीति, उत्सव, जीवन धारण की प्रणाली आदि व्यवस्था पर अपना अस्तित्व स्थापित करता है, वही संस्कृति है। लोक संस्कृति लोक जीवन का हृदय स्पंदन है। लोक संस्कृति या लोक विद्या का अंग्रेजी शब्द है - Folk – Lore । Folk शब्द का कोषीय अर्थ है 'साधारण मनुष्य या जन समूह' और Lore शब्द का अर्थ है 'ज्ञान या तजुर्बा'। अर्थात कोई भी जन समुदाय पारंपरिक रूप से जो भी ज्ञान या तजुर्बा मौखिक रूप से अर्जित करते आया है, उसी को साधारणत: 'Folk – Lore' या 'लोक संस्कृति' कह सकते हैं। किसी भी जनजाति का स्वयं के लोक उत्सव, लोकाचार, सामाजिक रीति-नीति, परंपरागत लोक विश्वास, गीत-पद, प्रवचन, लोकोक्ति इत्यादि समस्तता को लेकर जो संस्कृति का निर्माण होता है, वही लोक संस्कृति है। संस्कृति के द्वारा ही एक समाज का परिचय संभव है। संस्कृति एवं परंपरा ही किसी भी जाति एवं जनजाति को स्वीकृति प्रदान करने में सहायता करती हैं।

असम पूर्वोत्तर भारत का एक प्राकृतिक राज्य है। असम भूमि विभिन्न जाति-जनजाति का मिलन स्थल है। असम की विभिन्न जनजातियों में से 'राभा' जनजाति भी एक विशेष संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त जाति है। राभा जनजाति मुख्य रूप से असम के कामरूप, ग्वालपाड़ा, धुबड़ी आदि जिलों में बसी है। राभा जनजाति की भाषा एवं संस्कृति की एक विशेष पहचान है। राभा जाति की अपनी स्वतंत्र भाषा है, संस्कृति है और लोक-संस्कृति की दृष्टि से यह जनजाति अत्यंत समृद्ध है। यह जनजाति अपनी भाषा और संस्कृति के जरिए स्वयं को 'राभा' कहकर परिचय देने में सक्षम हुई है।

'वस्त्र या वेशभूषा' संस्कृति का एक विशेष अंग है। यह मनुष्य के मौलिक प्रयोजन के अंतर्गत शामिल है। असम में स्थित प्रत्येक जनजाति की तरफ अगर हम गौर करें तो यह दृष्टिगोचर होता है कि वे प्राय: तीन स्तरीय वस्त्र धारण करते हैं। तीन स्तरीय वस्त्र का तात्पर्य यह है- जैसे मेखला, चादर और एक आंगोचा। राभा लोगों की भी इसी प्रकार की वेशभूषा परिलक्षित होती है। बुनाई-कटाई करना राभा महिलाओं की एक कला है। इस शिल्प में राभा महिलाएँ अत्यंत निपुण हैं। राभा जनजाति की हर एक महिला बुनाई-कटाई सीखती है। उन्हें यह काम हर हाल में सीखना ही पड़ता है, क्योंकि राभा समाज में बुनाई-

कटाई के काम को जन्मगत और जातिगत कर्तव्य मानते हैं। अपने हाथों से कपड़े बुनकर पहनना राभा जाति की परंपरा है। घर में ही वे कपास के पेड़ लगाते हैं और उससे धागा तैयार करके फुलाम कपड़े बुनते हैं। राभा समाज में जो महिला बुनाई-कटाई में अक्षम है, उसे किसी काम के लिए योग्य नहीं माना जाता। पहले जमाने की ओर अगर दृष्टि डालें तो यह भी सुनने को मिलता है कि जिन युवतियों को बुनाई-कटाई नहीं आता था, उन्हें विवाह के योग्य नहीं माना जाता था।

असम राज्य के अंतर्गत विभिन्न अंचलों में राभा लोग निवास करते हैं। *'राभा जनजाति के अंतर्गत कई भाग परिलक्षित होते हैं। रांगडानि राभा, मायतोरी राभा, कोच राभा, पाति राभा, दाहुरी राभा, टोटला राभा और बिटोलिया राभा नाम से विभिन्न भागों में विभक्त हैं। अलग-अलग भागों में विभक्त होने के बावजूद सार्वभौमिक रूप से उनके कपड़ों के रंग और डिजाइन में समानता नजर आती है। राभा लोगों के कपड़ो में जो डिजाइन परिलक्षित होती है, वह साधारणत: प्राकृतिक फूलों की आकृति होती है। प्राकृतिक लताओं की डिजाइन भी उन लोगों के कपड़ों में मिलती है।'*[1] राभा पोशाक में जो भी डिजाइन अंकित करते हैं उन सभी डिजाइनों के निर्दिष्ट नामांकन भी हैं।

साधारणत: राभा महिलाएँ घर पर ही वस्त्र उत्पादन करना पसंद करती हैं। वे प्राचीन काल में एरी, मूगा, कपास के धागे से वस्त्र बुनते थे। आजकल विभिन्न रूपी धागा बाजार में मिलते हैं और उन्हीं से वे कपड़े बुनते हैं। वर्तमान युग में कम मूल्य में ही भिन्न-भिन्न रंगीन वस्त्रों का प्रचलन बाजार में विद्यमान है।

राभा जनजाति के पुरुष और महिला दोनों ही अलग-अलग वस्त्र धारण करते हैं। दोनों के वस्त्र अति आकर्षक होते हैं। पुरुष और महिला दोनों के वस्त्र का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:-

पुरुषों के वस्त्र :

(क) पाजाल : यह वस्त्र युवा, बूढ़ा सभी पुरुष के लिए उपयोगी है। इस पोशाक की लंबाई लगभग ढाई मीटर और चौड़ाई लगभग एक मीटर की होती है। पाजाल किसी भी रंग का बुन सकते हैं। लेकिन धर्मीय उत्सव, विवाह उत्सव, श्राध्द आदि में केवल गाढ़ा लाल रंग का पाजाल पहनना अनिवार्य है।

(ख) पाजार : असमीया संस्कृति में फुलाम गामोछा का महत्व जितना है, उतना ही महत्व राभा समाज में पाजार का है। असमीया बिहुवान की तरह ही इस वस्त्र की मर्यादा है। पुरुष लोग पाजार को बिहुवान की तरह ही पहनते हैं। इसकी लंबाई दो मीटर और चौड़ाई लगभग आधा मीटर तक होती है। पाजार से कभी-कभी पुरुष सर पर पगड़ी भी बांधते हैं और काम करते वक्त कमर बंधन के रूप में भी व्यवहार करते हैं।

(ग) बुकचिल : यह पुरुषों का एक विशेष वस्त्र है। वे इस पोशाक को स्वयं घर पर बुनके, सिलाई करके पहनते थे। यह पोशाक पुरुष का अर्द्धवस्त्र स्वरूप है।

महिला के वस्त्र :

(क) रुफान या पातनि : असमीया महिला जिस प्रकार मेखला चादर पहनती हैं, उसी प्रकार का यह एक राभा पोशाक है। रुफान दो तरीकों से पहना जाता है। इसे छाती से लपेट कर भी पहन सकते हैं अथवा कमर में बांधकर भी पहन सकते हैं। लेकिन यह वस्त्र बिना सिलाई के ही पहना जाता है। राभा महिलाएँ विभिन्न रंगों रुफान पहनती हैं, लेकिन विवाह के दिन दुल्हन को केवल लाल रंग का रुफान ही पहनाया जाता है।

(ख) रिफान छाक्काय या छाकवा : इस वस्त्र को राभा महिलाएँ पाँवों तक लंबा करके पहनती हैं। यह चद्दर जैसा है, इसलिए इसे चद्दर की तरह महिलाएँ पहनती हैं।

(ग) रिफान छाब्रा : यह वस्त्र एक छोटा-सा वस्त्र है। इसे राभा युवतियाँ सौंदर्य के लिए कमर में पहनती हैं। यह वस्त्र डिजाइन किया हुआ फूलों से भरा रहता है। देखने में यह वस्त्र बहुत सुंदर है।

(घ) सेमफता : यह वस्त्र राभा युवतियों एवं शादीशुदा महिलाओं का अति प्रिय है। इस वस्त्र को छाती से बांधकर पहना जाता है और यह नीचे पैरों तक फैला रहता है। एक प्रकार से यह एक लंबा मेखला है।

(ङ) यह एक 'रिहा' जैसी चद्दर है। राभा महिलाएँ इसे केवल छाती ढकने के लिए डेढ़ मीटर लंबा और आधा मीटर चौड़ा करके घर पर बुन लेती हैं। इसका इस्तेमाल छाती ढकने के लिए किया जाता है। इस वस्त्र को केवल तीन रंगों में बनाया जाता है-लाल, सफेद और कला/सफेद एक साथ।

(च) खदबांग : यह वस्त्र महिलाएँ माथे पर पहनती हैं। डेढ़ मीटर लंबा और आधा मीटर चौड़ा यह वस्त्र बालों को ढकने में इस्तेमाल किया जाता है।

राभा समाज में विवाह उत्सव का विभिन्न रीति-नीति से पालन किया जाता है। विवाह उत्सव में दुल्हन को राभा जनजाति का ही वस्त्र पहनाया जाता है, यह अनिवार्य है। आजकल राभा पुरुष-महिलाएँ राभा वस्त्रों के अलावा अन्य आधुनिक वस्त्र का भी इस्तेमाल करते हैं। आधुनिक युग के साथ-साथ राभा युवक-युवतियाँ भी आधुनिक वस्त्र को अपना रहे हैं। राभा जनजाति के तमाम वस्त्रों की डिजाइनों को आज आधुनिक पद्धति से जोड़ कर नवीन रूप से लोगों को आकर्षित कर रहे हैं।

'बायखो' उत्सव राभा जनजाति का एक महत्वपूर्ण उत्सव है। जिस प्रकार असमीया लोगों का 'बिहू' प्रधान उत्सव है, उसी प्रकार राभा जनजाति के लोग भी 'बायखो' उत्सव को जातीय उत्सव मानते हैं। इस उत्सव को बड़े ही उत्साह के साथ राभा लोग मनाते हैं। बायखो उत्सव वसंत ऋतु में मनाया जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि बायखो उत्सव से ही बिहू उत्सव का आविर्भाव हुआ। बिहू मूलत: कृषि उत्सव है। *'असम में निवास करने वाली जनजातियाँ प्राचीन काल से ही विभिन्न नामों से कृषि उत्सव का पालन करती आ रही हैं। राभा लोग इस उत्सव को बायखो कहते है, बोडो लोग 'बैशागु', वहीं कार्बियों ने दमाही, नागाओं ने मोवातचू आदि नाम से इस उत्सव का नामांकन किया है। प्राचीन काल से ही जनजातीय लोग*

इस कृषि उत्सव को मानते आ रहे हैं और जब से आहोमों का असम प्रदेश में पदार्पण हुआ, तब से इस उत्सव को बिहू नाम से मनाते आ रहे हैं।'[2] बायखो उत्सव बड़ा ही आकर्षक उत्सव है । इस उत्सव में ज्वलंत अंगारों के ऊपर नृत्य किया जाता है। जो व्यक्ति अंगारों के ऊपर नृत्य करते हैं, उन्हें विभिन्न प्रकार के नीति-नियमों को पालन करना पड़ता है । इस उत्सव में राभा युवक-युवती आनंद विह्वल होकर राभा नृत्य करते हैं। इस नृत्य के जरिए धरती की हरियाली के बारे में भी लोगों तक संदेश पहुँचाया जाता है। राभा समाज के लोग आत्मनिर्भर दिखाई पड़ते हैं। वे लोग बाजार से अधिक सामग्री खरीदने के बजाय हस्तशिल्प पर अधिक निर्भरशील हैं।

मछली पकड़ने की क्रीड़ा राभा जनजाति की लोक परंपरा का एक अंग है। लोक विश्वास के अनुसार प्राचीन काल में 'गोवालपारा' जिले के गाँव में एक बड़ा झील था। इस गाँव का अस्तित्व आज भी विद्यमान है। उस झील में गाँव के सभी पुरुष-स्त्री एक साथ मछली पकड़ने जाते थे। एक दिन की बात है। गाँव के सभी स्त्री-पुरुष 'देवकंगनांग' नामक झील में मछली पकड़ रहे थे। दो लड़कियों को छोड़ कर सब लोगों को मछली मिल रही थी। जिन दो लड़कियों को मछली नहीं मिल रही थी, वे दोनों बहने थीं। उन दोनों बहनों का नाम था थपे और नेचे। उन दोनों के जाल में मछली एक भी नहीं लग रही थी। मछली के बदले एक पत्थर का टुकड़ा बार-बार उनके जाल में आ रहा था । क्रोध के मारे उसी पत्थर के टुकड़े को ही वे घर ले आती हैं । घर में आकर दोनों उदास बैठ जाती हैं। जब उनके बड़े भाई ने उनकी उदासी का कारण पूछा तो उन्होंने झील में घटित घटना को व्याख्या सहित बता दिया। उसके बाद थपे और नेचे ने भाई को वह पत्थर का टुकड़ा दिखाया, जो उन्हें झील में मछली के बदले में मिला ।

बड़े भाई ने जब पत्थर के टुकड़े को देखा तो एक अजीब-सी विशेषता उसमें दिखाई दी। आम पत्थर के टुकड़ों से वह अलग था। पत्थर का टुकड़ा हीरे के टुकड़े जैसा चमक रहा था। पत्थर की चमक देख कर बड़े भाई ने उसे बखोरी (अनाज का भंडार) में संभालकर रख दिया। रात को सपने में दोनों बहनों ने एक देवी को देखा और उन्हें बुलाने लगी। देवी बोली - मैं पत्थर नहीं हूँ, मैं लक्ष्मी देवी हूँ। तुम लोग उस पत्थर के टुकड़े को संभालकर बखोरी में रखो। अगर उस पत्थर के टूकड़े को संभालकर पूजा-अर्चना करके रखोगे तो तुम्हारे घर वालों के साथ-साथ गाँव वालों का भी कल्याण होगा ।

सुबह उठकर जब दोनों बहनें बखोरी को देखने गईं तो वहाँ पर पत्थर का टुकड़ा नहीं था, बखोरी खून से सना था। वह सब देखकर थपे और नेचे का बड़ा भाई सब समझ गया था। दरअसल, वह कोई साधारण पत्थर नहीं था, असल में वह लक्ष्मी देवी का ही प्रतीक था। बड़े भाई ने उस पत्थर को खोज कर निकाला और उसे बहनों को बाँस से निर्मित पात्र में डालकर बखोरी में रखने का परामर्श दिया। इसलिए राभा जनजाति के लोग लक्ष्मी देवी के प्रतीक रूप में एक पत्थर का टुकड़ा बखोरी में रखने में विश्वास करते हैं।

'राभा भाषा में 'बाय' शब्द का अर्थ है देव या देवी, 'खोक' शब्द का अर्थ है पात्र और 'चि' शब्द का अर्थ है खून। इस प्रकार से इसका पूर्ण अर्थ होता है - बायखोकचि या लक्ष्मी देवी। बायखोकचि से ही बायखो नाम पड़ा है।[3] पत्थर के टुकड़े की नेचे और थेपे के घर वाले नीति-नियमानुसार पूजा अर्चना करने लगे और उनकी गृहस्थी के साथ-साथ समस्त गाँव का भी कल्याण होने लगा। इसलिए आज भी राभा समाज में कृषि कर्म के प्रारंभिक काल में बायखो देवी की पूजा करने की परंपरा प्रचलित है।

वसंत ऋतु के आगमन के साथ ही साथ बायखो उत्सव की तैयारी भी होने लगती है। इस समय प्रकृति का नवीन रूप लोगों में झलकता है। लोग नाच-गाना करके प्रकृति की खुशियों में शामिल हो जाते हैं। 'बायखो उत्सव प्रकृति का उत्सव है। बायखो उत्सव में पुजारी लोग मूल पूजा समाप्त करके एक विशेष प्रकार का नृत्य करते हैं। उस नृत्य को 'बारका नाककाय' नृत्य कहा जाता है। आग जलने के बाद उसके अंगारे बनते हैं, उन अंगारों पर नंगे पैर पूजारी नृत्य करते हैं, उन्हें कठोर नीति-नियम पालन करना पड़ता है। यह नृत्य राभा जाति का विशेष प्रकार का

चमत्कारपूर्ण नृत्य है। अगर नीति-नियम पालन करते समय कुछ भूल हो जाए तो नृत्य करने के समय पाँव जल भी सकते हैं। साधारणत: यह बारका नाककाय नृत्य करने वालों के पाँव जलते नहीं हैं। इसलिए इसे विशेष चमत्कारिक नृत्य कहा गया है।

'छाथार नृत्य और गीत' बायखो उत्सव का अन्य एक आकर्षक बिंदु है, जिसे प्रदर्शन करने के लिए राभा युवक-युवतियों को किसी भी प्रकार के मंच की आवश्यकता नहीं पड़ती हैं। पूर्णिमा की रात्रि युवक-युवतियाँ मुख्य पुरोहित के आँगन में दिन-रात छाथार नृत्य और गीत प्रदर्शन करते हैं। एक समय ऐसा भी था कि सात रात्रि, सात दिन छाथार नृत्य-गीत करके युवक-युवतियाँ अपनी जीवन संगी या संगिनी चुन लेते थे।[4] छाथार नृत्य को प्रदर्शित करने के लिए युवक-युवतियाँ दल में विभाजित होते हैं और सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। छाथार नृत्य बड़े ही मनमोहक होते हैं। युवक युवतियों के लिए और युवतियाँ युवकों के लिए छाथार गाते हैं, नृत्य करते हैं -

काने चोने ढोगोरे चिना नाके छापे
बायखो खादामि छाथार थामो
छारकाय लोगा छागे रे
हुरछाय हुरछाय।[5]

भावार्थ : बायखो उत्सव में साथ-साथ छाथार नृत्य करने के लिए सज-सँवर के घर से निकल आओ।

इस प्रकार बायखो उत्सव में युवक-युवतियाँ स्वत:स्फूर्त भाव से छाथार गीत गाकर नृत्य करते हैं। इन नृत्य और गीतों को संरक्षित करने से राभा लोक संस्कृति और भी अधिक धनी हो जाएगी।

निष्कर्ष : वस्त्र एक अमूल्य संपत्ति है। वस्त्र के माध्यम से लोक कला का निदर्शन होता है। वस्त्र के क्षेत्र में राभा जनजातियों का अपना एक अलग ही अस्तित्व है। वस्त्र एवं वेशभूषा से ही किसी जाति एवं जनजाति का परिचय प्रस्फुटित हो उठता है। वस्त्र देखकर कहे बिना ही हमें किसी भी जाति का परिचय ज्ञात हो जाता है।

बायखो उत्सव के माध्यम से राभा जनजाति के लोग अपने समाज को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करते हैं। साथ ही साथ राभा जनजाति की भावी पीढ़ी को कला-संस्कृति के प्रति आकर्षित करना इस उत्सव का उद्देश्य है। अगर आने वाली पीढ़ियाँ कला-संस्कृति, लोक-संस्कृति को जीवित नहीं रखेंगी तो राभा संस्कृति काल के चक्र में लुप्त हो जाएगी। इसलिए जातीय उत्सव को जीवित रखने के उद्देश्य से राभा आज तक बायखो उत्सव मानते आ रहे हैं और भविष्य में भी हमेशा मनाया जाता रहेगा। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. दास, नारायण, असमर संस्कृति कोष, असमीया विभाग, प्रागज्योतिष महाविद्यालय, 2009, प्रथम संस्करण, पृ. स. 46
2. राभा, मणि, राभा संस्कृतिर धारा, बांठो लाइब्रेरी, 1975, प्रथम संस्करण, पृ.स.60,61
3. राभा, राजेन, राभा जनजाति, बीना लाइब्रेरी, 1975, प्रथम संस्करण, पृ.स.15
4. हाकासाम, उपेन राभा, राभा लोक संस्कृति, असम प्रकासन परिसद, 2006, प्रथम संस्करण, पृ.स. 56
5. राभा, हेमंत (संपादक), रूपसांगछिनी, छयगाँव, कामरूप, असम, 2015, प्रथम संस्करण, पृ. स.14

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

प्रसंग

गांधी : भाषा-चिंतन

डॉ. प्रकाश कोपार्डे

सह प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-500046
7020929831
pkkoparde@uohyd.ac.in

राष्ट्रभाषा हिंदी, हिंदुस्तानी के हिमायती, संरक्षक, समर्थक और विरोधी भी रहे हैं। अर्थात हिंदी के संस्कृतनिष्ठ रूप और उर्दू मिश्रित रूप को लेकर काफी विवाद चला और आज भी उसे देखा जा सकता है। इसी के साथ अनेक भारतीय भाषाओं से उन्नत हुई और होती भाषा को किस नाम से अभिहित किया जाए को लेकर मत-मतांतर है। भारत की आजादी के साथ राष्ट्र संचालन की भाषा कौन-सी हो को लेकर राष्ट्र नायकों की जिरह का प्रतिफल हिंदी है। महात्मा गांधी एक राजनीतिक, स्वतंत्रता सेनानी, राष्ट्रपिता- इन रूपों के साथ हमारे लिए भाषाविद भी हैं। उनके अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज जैसे वैचारिक तथा आचरणात्मक मुद्दों के साथ भाषा को लेकर उनका विचार भी राष्ट्र, संघ-राज्य की एकता हेतु अति विशिष्ट है। इस रूप में गांधी को लोक भाषाविद मानना असंगत न होगा।

आदिकाल, मध्यकाल से आजादी तक जो हिंदी विभिन्न महानुभावों द्वारा प्रयुक्त एवं लिखी जाती रही, कई भारतीय बोलियों और विदेशी आक्रांताओं तथा शासकों की भाषा से प्रभावित, स्वीकृतियों को लेकर इस भाषा ने स्वयं को परिमार्जित किया है। इसीलिए गांधी ने हिंदी-उर्दू मिश्रित 'हिंदुस्तानी' को गुजराती होने के बावजूद उसे राष्ट्र-संवाद का माध्यम बनाया। सम्मेलनों, सभाओं तथा विभिन्न मंचों पर स्वतंत्रता के साथ-साथ इस देश की भाषा को लेकर भी उन्होंने अपना स्वतंत्र चिंतन प्रस्तुत किया। जैसे *''सन 1935 में जब सम्मेलन का अध्यक्ष मैं पुन: बना तब हिंदी को पुन: एक बार परिभाषित किया गया। वह यह जो भाषा हिंदू-मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है वह हिंदी है। ऐसी व्यापक परिभाषा बनाने का मेरा उद्देश्य था कि मौलाना शिबली की बेहतरीन उर्दू और पंडित श्यामसुंदर दास की साहित्यिक हिंदी उनका समावेश हिंदी में हो। उसके बाद भारतीय साहित्य परिषद बनी। वह सम्मेलन से जन्मी। मेरी विनती अनुसार हिंदी की जगह हिंदी-हिंदुस्तानी इस शब्द प्रयोग को मान्यता मिली।''*[1] हिंदुस्तानी गांधी के मतानुसार पूरा भारत बोलता है। संस्कृत प्रचुर हिंदी और फारसी से बोझिल उर्दू के गांधी हिमायती नहीं थे। वे महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी तथा बाबू भगवान दास जी के उदाहरण प्रस्तुत कर हिंदी-उर्दू के मिश्रित लोक प्रचलित रूप को सामने रखते थे। प्रेमचंद जिस 'हिन्दुस्तानी' को मानते थे, उसी को गांधी राष्ट्र

की भाषा स्वीकारते हैं। हिंदी-हिंदू की अथवा उर्दू मुसलमानों की इस बहस को गांधी अपने भाषणों से दूर करते थे। इसके लिए उन्होंने एक बार तेज बहादुर सप्रू की उर्दू पंडिती का उदाहरण भी प्रस्तुत किया था। कवि इकबाल की उर्दू के वे हिमायती थे। कुल मिलाकर गांधी राष्ट्र-समाज की भाषा के रूप में 'हिंदुस्तानी' की हामी भरते थे। गांधी राष्ट्र, समाज की भाषा के रूप में हिंदुस्तानी भाषा को स्वीकारते थे ।लोक सहज प्रयुक्त तद्भव शब्द तथा आसान उर्दू के शब्दों से युक्त बोली को वे राष्ट्रभाषा मानते थे। इससे उनका भाषा के प्रति लोक व्यावहारिक दृष्टिकोण भी स्पष्टत: परिलक्षित होता है।

22 जनवरी, 1920 के 'यंग इंडिया' नामक अपने पत्र में मद्रास के नाम एक अपील उन्होंने की थी, जिसमें उन्होंने अनुभव की कसौटी पर राष्ट्र की भाषा कौन-सी हो का जवाब दिया था- *''मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हजारों प्रेक्षकों से उसकी चर्चा की है... सभी लोग सेवकों की अपेक्षा में शायद सारे देश में ज्यादा घुमा फिरा हूँ और पढ़े लिखों व अनपढ़ों को मिलाकर सबसे ज्यादा लोगों से मिला हूँ और मैं सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कारोबार चलाने के लिए या विचार विनिमय के लिए हिंदुस्तानी को छोड़कर दूसरी कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके...''*[2] गांधी ने अपनी व्यापक अनुभूति को आधार बनाकर ही राष्ट्रभाषा को लेकर अपना मंतव्य मद्रास की जनता के सामने रखा; क्योंकि मद्रास उस समय एक बहुभाषी राज्य था तो संभव था हिंदुस्तानी का विरोध कर सकता था और आगे चलकर हुआ भी वही। विरोध से पूर्व ही मद्रास स्टेट की अपील इस ओर इंगित करती है कि वे भविष्य की आहटों के प्रति सचेत थे। व्यस्तताओं के बीच भी इतनी पैनी पकड़ यह सिद्ध करती है कि वे राष्ट्रीय भाषिक एकता के प्रति गंभीर थे।

सन 1929 में कांग्रेस अधिवेशन में गांधी ने आग्रह के साथ कांग्रेस-कामकाज की भाषा के रूप में 'हिन्दुस्तानी' भाषा प्रयोग का प्रस्ताव पारित करवाया। अर्थात हिंदुस्तानी राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की भाषा बनी। उस समय कांग्रेस कामकाज की भाषा अंग्रेजी थी। हिंदुस्तानी भाषा प्रयोग के प्रस्ताव ने कांग्रेस की कार्य विधि में गंभीर परिवर्तन लाए। नेहरू अंग्रेजी के पक्षधर थे, जिसके कुपरिणाम आगे चलकर राजभाषा के रूप में हिंदी मात्र अनुवाद की भाषा के रूप में ही दर्ज होती दिखती है। राजभाषा आयोगों ने हिंदी के प्रति जो उदासीनता बरती है, उसमें केंद्र की सत्ता कहीं-न-कहीं शामिल थी। गांधी अगर हिंदी को कामकाज की भाषा नहीं बनाते तो प्रशासनिक स्तर पर हिंदी की अवस्था और भी अधिक बेहाल होती या कांग्रेस की कामकाजी भाषा देश की राजभाषा बन जाती। अर्थात नेहरू और गांधी में देश की भाषा को लेकर मतैक्य नहीं था, यह तथ्य भी सामने आता है।

कांग्रेस द्वारा 'हिंदुस्तानी' को राष्ट्रीय जागरण की भाषा के रूप में मिली स्वीकृति के साथ व्यापक जनाधार प्राप्त हुआ। वहीं से उसे राष्ट्रीय आंदोलन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठा भी मिली। बंगाल तथा दक्षिण में वह संपर्क का अहम सूत्र बनी। हिंदुस्तानी के राष्ट्रभाषा स्वीकार को लेकर गांधी की धारणाओं पर अजय तिवारी प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, *''जिस तरह स्वदेशी का लक्ष्य आर्थिक क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता के विकास की शर्त है, उसी तरह राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी अपनाने का प्रश्न भी राष्ट्रीयता से जुड़ा है। ब्रिटिश वस्तुओं का प्रभुत्व भारत के उद्योग व्यापार के लिए विनाशकारी था ब्रिटिश भाषा का प्रभुत्व भारत की सांस्कृतिक उन्नति के लिए विनाशकारी था।''*[3] इसीलिए गांधी जी ने श्रम का महत्व बरकरार रखते हुए खादी को प्रचारित किया तथा श्रमिकों, सामान्य जनों की भाषा हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा माना। सीमित लोगों का राज्य अंग्रेजी भाषा स्थापित कर सकती है, किंतु सामान्यों हेतु लोकतांत्रिक स्थापना में जनभाषा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह धारणा गांधी की थी। यही कारण है कि राष्ट्रीय आंदोलन की भाषा हिंदुस्तानी बनी और आगे चलकर राजभाषा भी बनी।

हिंदुस्तानी का राष्ट्रभाषा बनकर उभरना कोई एकालाप नहीं है, उसका विरोध भी होता रहा। पहला विरोध उर्दू भाषियों ने लिपि और मिश्रित भाषा के रूप में एकता को नकार कर दर्शाया। वहीं दूसरा विरोध दक्षिण की प्रांतीय भाषाओं ने किया, लेकिन गांधी ने अपने पुत्र देवदास गांधी, जमनालाल बजाज जैसे लोगों के सहयोग से दक्षिण

में हिंदुस्तानी आंदोलन की भूमि निर्माण की। हिंदी के विरोधी स्वर पर जो तर्क दिए जाते हैं, उन पर जैनेंद्र लिखते हैं, *''हिंदी हिंदुस्तानी चीज क्या है, हिंदुस्तानी कहकर हम उर्दू के अधिपत्य को तो जाने-अनजाने निमंत्रित नहीं करते हैं। कम-से-कम उर्दू के मेल के खातिर हिंदी की गर्दन पकड़कर उसे भारतीयों के सामने झुकाया तो अवश्य जाता है और वह उर्दू डेढ़-दो प्रांतों को छोड़कर और है कहाँ कि जिसके यह आदमी हिंदी के आगे हिंदुस्तानी पद हटाठ बिठाया जाता है''*[4] -यह विरोधी स्वर आलापते लोगों के स्वर हैं, जिसे जैनेंद्र सुना रहे हैं। उन लोगों का तर्क है कि डेढ़-दो प्रांतों में बोली जाती उर्दू के साथ सामजंस्य बिठाने के लिए हिंदी का हिंदुस्तानी नाम क्यों रखा जाए। ऐसे कुतर्कों को रेखांकित कर जैनेंद्र उनकी खबर लेते हैं। गुजरात के वार्षिक उत्सव में लेखक जैनेंद्र हिंदुस्तानी भाषा का विरोध करने वालों की खबर लेते हैं। साथ ही उनके तर्कों को सिरे से नकारते हुए हिंदुस्तानी को ही वे स्वीकारते हुए दिखाई देते हैं। जैनेंद्र गांधी की हिंदुस्तानी परिभाषा को स्वीकारते हैं। उन सवालों का मानसशास्त्र खंगालते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वे धर्मांधी ही हैं, जो उर्दू को इस्लाम से जोड़ते हैं। इन सवालों को लेखक के रूप में वे इतना महत्व नहीं देते। जैनेंद्र की धारणाओं पर विमर्श करना, वर्तमान में अधिक प्रासंगिक लगता है।

मतभेदों से परे होकर एक भाषा के रूप में, राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी या हिंदुस्तानी राष्ट्र संकल्पना पूर्ति की निर्वाहक अवश्य है। लेखक गुलाब राय 'राष्ट्रीयता और उसके उपकरण' निबंध में राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीयता का प्रमुख आधार मानते हैं, वे लिखते हैं- *''वह भाषा देश की उपज हो, उसकी जड़ों को भारतीय संस्कृति का पोषण मिला हो, भारत में हिंदी ही ऐसी भाषा है, जिसका संस्कृत द्वारा अन्य भाषाओं से संबंध है और जिसके जीवन रस में भारतीय संस्कृति के तत्व ग्रहण किए हैं।''*[5] जिस संस्कृति संबंध निर्वाह और जड़ों से जुड़ने की बात गुलाब राय करते हैं वही कार्यनिर्वाह हिंदी क्षमता से कर रही है। गांधी स्वयं गुजराती भाषी होते हुए भी हिंदुस्तानी भाषा का पक्ष उसकी इसी वृत्ति के कारण लेते हैं। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, परंपराओं पर अंग्रेजी भाषा आघात कर रही थी, इसीलिए महान संस्कृति की संवाहिका संस्कृत से उपजी हिंदी में गांधी समस्त क्षमता पाते हैं। वह जन-मन की भाषा जनतंत्र स्थापना संघर्ष की अगुवाई भी करती है। इन गुणों के कारण इस भाषा को भारत में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त होना अनिवार्य है।

हिंदुस्तानी को गांधी ने न सिर्फ आजादी के आंदोलन की भाषा के रूप में स्वीकारा, बल्कि वे सन 1929 को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वराज और सुराज्य की भाषा के रूप में उसे मान्यता देते हैं, *''यदि स्वराज्य अंग्रेजी पढ़े भारतवासियों का और केवल उनके लिए है तो संपर्क भाषा अवश्य अंग्रेजी रहेगी यदि वह करोड़ों भूखे लोगों, करोड़ों निरक्षर लोगों, स्त्रियों, सताए हुए अछूतों के लिए है तो संपर्क भाषा केवल हिंदी हो सकती है।''*[6] अर्थात अंग्रेजी अंग्रेज प्रशासन की भाषा है। जब भारत स्वतंत्र होगा, तब उस भाषा को निरस्त कर वहाँ स्वराज्य की भाषा को स्थापित होना होगा। प्रशासन, व्यवस्थाएँ जनता की अपनी भाषा में संचालित होने चाहिए। उनके विचार स्वतंत्रता के 75 सालों के बाद भी स्थापित नहीं हो पाए। नौकरशाहों की अंग्रेजी ने लोकतंत्र को केवल सभागारों, योजनाओं, आयोगों, पारित बिलों तथा चुनाव तक ही सीमित किया है। स्वराज्य की भाषा अभी अपने स्थान के लिए संघर्षरत ही है।

संघ राज्य की स्थापना के बाद भारत में भाषावार प्रांत रचना की गई। गांधी ने पहले से ही भाषावार प्रांत रचना को अपने भाषणों में प्रस्तावित किया था। हर प्रांत की भाषा वहाँ की राज्य भाषा होगी तथा प्रांत संघ से हिंदी में संवाद स्थापित करेंगे। लेकिन स्वतंत्रता के बाद प्रांतीयता का स्वर इतना मुखर हुआ कि राष्ट्रभाषा हिंदी राजभाषा के रूप में स्वीकृत होने के बावजूद तिरस्कृत अथवा अनुवाद-भाषा तक ही सीमित रही। सीता चरण दीक्षित ने भारत में एकता के बाधक तत्व पर यों विवेचन किया है- *''एकता के अभाव के जो थोड़े से विषय उदाहरण के रूप में पिछले अध्याय में बताए जा चुके हैं दुभाषा, क्षेत्र, दल, विचारधारा. संस्था, संगठन, संकुचित स्वास्थ्य आदि इनसे देश की शासन व्यवस्था और उन्नति में बाधा पड़ती है''*[7] जिन बाधाओं को यहाँ चिंतन का आधार बनाया है, उनमें से

कई बिंदु आज भी राष्ट्रीयता हेतु चुनौती हैं। भाषा विवाद और द्वेष को लेकर मराठी-कन्नड़, मराठी-गुजराती, हिंदी-दक्षिण, मराठी-कोंकणी जैसे कई विवाद स्वतंत्रता के बाद सामने आए हैं। इसीलिए गांधीजी हमेशा अपने भाषणों में हिंदी पट्टी के राज्यों के लोगों को दक्षिणी भाषाएँ सीखने तथा दक्षिणी जनता को हिंदी सीखने की सलाह देते थे। हिंदी और प्रांतीय भाषा के झगड़े ने भी अंग्रेजी को अवसर प्राप्त कराए हैं। 'निज भाषा उन्नति को मूल' होने से सामान्य जनता व्यवस्थाओं की भाषा तथा उनसे उदास रहती है। निज भाषा के रूप में प्रांतीय भाषाओं के प्रति आस्था और फिर इसी से राष्ट्रभाषा के प्रति अनुदारता भाव भी पुष्ट होता है। प्रांतीय राजनीति में लोकल भाषा बनाम राष्ट्रभाषा का मसला और ऐसी राजनीतिक सोच ने वर्तमान में भाषा के प्रति हमारी अनुदारता और उदासीनता को नए सिरे से रेखांकित किया है।

अंग्रेजी भाषा का विरोध आखिर क्यों? यह सवाल वर्तमान में किया जा सकता है। इस भाषा को लेकर भी कई स्तरों पर गांधी जी ने चिंतन प्रस्तुत किया है। भाषा संस्कृति की रक्षक तथा संवाहक होती है। अगर व्यवस्थाओं में, संचार साधनों तथा जनसंवाद में अंग्रेजी बैठ जाए तो विलायती संस्कृति भारतीय संस्कृति को हाशिए पर धकेल देगी। गांधी का यह चिंतन तथा चिंता वर्तमान भारत की समस्या बनी है। महात्मा गांधी 'यंग इंडिया' के 5 जुलाई, 1928 के समाचार पत्र में लिखते हैं, *''विदेशी शासन की अनेकानेक बुराइयों में इतिहास में इसे एक सबसे बड़ी बुराई मानेगा कि देश के युवाओं पर विदेशी माध्यम लाद दिया गया। इससे राष्ट्र की ऊर्जा क्षीण हुई है, विद्यार्थी की आयु घट गई है, वह जनसाधारण से दूर हो गए हैं, शिक्षा गैर-जरूरी तौर पर महँगी हो गई है, यदि यही तरीका अभी जारी रखा गया तो भय है कि राष्ट्र आत्मा खो बैठेगा।''*[8] विभाषा सीधे आपकी राष्ट्रीयता, राष्ट्रवादी सोच, संस्कृति पर गहरी चोट करते हैं। शिक्षा जैसे जागरण, निर्माण के क्षेत्र में अंग्रेजी जैसी विभाषा का फैलाव राष्ट्र-विनाश का कारण ही है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर लगे प्रश्न चिन्हों से यह स्पष्ट होता है कि गांधी के अंग्रेजी भाषा को लेकर विचार कितने प्रासंगिक थे।

अंग्रेजी पेच से निकलने के लिए गांधी जी ने प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षा माध्यम की भाषा को लेकर भी अपने मत समय-समय पर प्रस्तावित किए थे। मातृभाषा में आरंभिक शिक्षा के प्रति वे प्रतिबद्ध थे, वहीं मूलोद्योगी शिक्षा से शिक्षा को रोजगार के साथ भी उन्होंने जोड़ा था। अंग्रेजी ज्ञान की भाषा के रूप में भारतीय छात्र के लिए असंभव है, वहीं अनूदित पारिभाषिक शब्दावली, पदावलियों को भी विसंगत मानते थे। छात्रों की भाषा में पाठ्यक्रम होने की आवश्यकता पर वे जोर देते थे। उनके मतानुसार- *''किंतु मुझे एक बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि जितना अंकगणित, बीजगणित, भूमिती, रसायन, खगोल आदि शास्त्र विषय पढ़ने में मुझे चार साल लगे, उतने ही अंग्रेजी के बजाय गुजराती में पढ़ाए होते तो एक ही साल में सहजता से बेमेहनत में पढ़ जाता। विषयों का सहज ज्ञान मुझे होता। मेरा गुजराती भाषा ज्ञान भी बढ़ता। इस ज्ञान का उपयोग मैं मेरे नित्य दैनिक उपक्रमों में भी करता।''*[9] गांधीजी अपना निजी उदाहरण देकर यही सिद्ध करना चाहते हैं कि विभाषा सौ फीसदी ज्ञानार्जन में कारगर नहीं है, इसीलिए वे मातृभाषा को महत्व देते हैं। ज्ञान-विज्ञान जब स्वभाषा में होगा तो व्यावहारिक स्तर पर निजी जीवन की समस्याओं के निपटान में भी वह काम आएगा। उस्मानिया विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्रोफेसर अब्दुल हक जी से वैचारिक मतभेद होने के बावजूद गांधीजी उनके उर्दू में भौतिकी पढ़ाने, अनुसंधान कार्य कराने की सफलता को अपने मंतव्यों में खासी जगह देते थे। ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में बंगाली भाषा की प्रगति से गांधी जी विशेष प्रभावित थे, ऐसे प्रयासों के प्रति साहसी कदम उठाए जाने की उनकी मंशा थी। लेकिन ज्ञान-विज्ञान के अनुवाद के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं था, उनका मानना था जब विज्ञान मातृभाषा में पढ़ाया जाने लगेगा तो पारिभाषिक शब्दों के सहज सुलभ पर्याय अपने आप सामने आ जाएँगे।

इतने गंभीर विवेचन के साथ हिंदुस्तानी तथा मातृभाषा आदि के महत्व को निजी तथा संस्थागत प्रयासों, माध्यमों, मंचों से प्रचारित एवं प्रसारित करते रहे।

जमनालाल बजाज के सहयोग से उन्होंने दक्षिण भारत

हिंदी प्रचार सभा की स्थापना कर सन 1918 में दक्षिण में हिंदी अभियान चलाया। इस संस्था के कार्य के प्रति वे संतुष्ट थे, मद्रास की सभा में वे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के कार्य पर वक्तव्य देते हैं- *''इस वर्ष सन 1935 में परीक्षार्थी संख्या 42000 है । हिंदी अध्यापन केंद्र 3200 हैं। अब तक 600 अध्यापक प्रशिक्षित हुए हैं। 450 केंद्र स्थापित हुए हैं। सन1931 से स्नातक परीक्षा उपाधि आरंभ हुई है। अब तक की 100 स्नातक उपाधि प्राप्त है। सभा द्वारा 70 पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं, जिनकी 800000 प्रतियाँ बिकी हैं। 17 साल पूर्व हिंदी अध्ययन-अध्यापन की सुविधा वाला एक भी हाई स्कूल नहीं था। अब 70 हाई स्कूलों में शिक्षा की सुविधा है।''*[10] न सिर्फ एकाध आंदोलन खड़ा करके गांधी मुक्त होते थे, बल्कि वे उस आंदोलन का सूक्ष्मता से संचालन भी करते थे। उपर्युक्त सभा में दिया ब्योरा सभा तथा उसके कार्य के प्रति उनका लगाव प्रदर्शित करता है। वर्तमान नेताओं ने भाषा को एक मसला बनाया है, जिसे वे राजनीति के लिए हल नहीं करना चाहते। 'भाषा की रात' यह धूमिल की कविता इसी समस्याओं की ओर संकेत करती है।

गांधीजी दक्षिण में संस्थाओं, व्यक्तियों के माध्यम से संपर्क भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा हिंदी बनाने के अभियान में जुटे थे। वहीं स्वराज्य, व्यवस्थाएँ और उनके संचालन के प्रारूप पर भी वे समय-समय पर चिंतन प्रस्तुत करते रहे। व्यवस्थाओं में कौन-सी भाषा प्रयुक्त हो, को लेकर भी लिखते हैं- *''प्रांतीय भाषाओं का स्तर तथा व्यावहारिक महत्व को बढ़ाने हेतु कोर्ट के कामकाज अपनी-अपनी राज्य भाषाओं में संपन्न हो यह मेरी इच्छा है। प्रांतीय विधानसभाओं की कार्यविधि उन्हीं की प्रांतीय भाषा अथवा जो भाषाएँ होंगी उनमें संपन्न हो। विधायकों से मेरा कहना है कि अगर उन्होंने ठानी तो 1 महीने के अंदर में अपने राज्य की भाषा वे सही समझ पाएँगे।''*[11] राज्य अपनी प्रांतीय भाषाओं में कार्य निर्वाह करें तथा केंद्र, केंद्र-राज्य व्यवहार हेतु हिंदी को प्रयुक्त करें। इसकी स्पष्टता गांधी स्वयं करते हैं, राज्य और स्वराज्य की व्यवस्थाओं पर गांधी का यह चिंतन जनकेंद्री था। स्वराज्य और स्वराज्य की व्यवस्थाओं पर जो चिंतन गांधी ने प्रस्तुत किया है, वह जमीनी जुड़ाव है। इसीलिए भाषा के रूप में प्रांतीय भाषा तथा राष्ट्रभाषा ऐसे दो सशक्त विकल्प गांधी राज्य और राष्ट्र संचालन हेतु रखते हैं।

मातृभाषा की अहमियत के कारण गांधीजी नागरिकता निर्माण में उसकी महत्ता को जानते थे। प्रांतीय भाषाओं की विविधता को भी वे एक श्रेष्ठ उपलब्धि स्वीकारते हैं। इसीलिए भाषावार प्रांत रचना के पक्षधर थे; किंतु भाषावार प्रांत रचना से भारत में कई समस्याओं ने अपना घर बनाया। 'स्वराज्य की समस्याएँ' इस निबंध में गांधीवादी चिंतक सीता चरण दीक्षित भाषावार प्रांत रचना के यथार्थ को हमारे सामने रखते हैं, *''वास्तव में भाषाई प्रदेशों की निर्माण कि जो माँगें की गईं इनमें दावा तो किया गया अपनी-अपनी संस्कृति संबंधी आकांक्षाओं का, परंतु असली कारण यह था कि वे दूसरी भाषाएँ बोलने वालों के साथ रहना नहीं चाहते थे उनसे अलग होना चाहते थे, अर्थात एक प्रकार के प्रेम के बदले दूसरे प्रकार का द्वेष इन माँगों की तह में था।''*[12] यह एक जमीनी यथार्थ था, किंतु गांधीजी की सोच मातृभाषा से सहज विकास था। संस्कृति वैविध्य की सुरक्षा की पहल थी, उनके विचारों का मूल। यही वजह है कि वर्तमान भारत में बहुभाषिकता जहाँ एक ओर अभिमान है, वहीं दूसरी ओर द्वेष की जड़ बनकर राष्ट्रीयता को चुनौती दे रही है। प्रांतीय नेताओं का केंद्र भाषा ही बनी है। दक्षिण भारत में हिंदी विरोध के पीछे यही शक्ति क्रियाशील है। एक यथार्थ यह है कि दक्षिण में क्षेत्रीय दल और कुछ भाषावादी संगठन हिंदी के विरोधी हैं। दक्षिण की सामान्य जनता तो एक चलताऊ हिंदी का प्रयोग अपनी यात्राओं में सफाई से करती दिखती है। बीते सालों में दक्षिण से जो लेखक, अनुवादक उभरकर राष्ट्र-पटल पर आए हैं, वे सिद्ध करते हैं कि दक्षिण में हिंदी का विरोध केवल एक सियासी मामला है।

क्षेत्रीय भाषा अस्मिता आगे चलकर एक मसला बन सकती है, इसका एहसास गांधीजी को था। इसीलिए उत्तर और दक्षिण के लोगों से हमेशा आवाहन करते रहते थे कि कुछ लोग गुट बनाकर या स्वतंत्र रूप से एक-दूसरे की भाषाएँ सीखें। लेकिन गांधीजी के इस विचार की उपेक्षा ही अधिक हुई। गुजरात में संपन्न एक सम्मेलन में हिंदी के श्रेष्ठ रचनाकार जैनेंद्र ने इसी ओर संकेत किया था-

''अधिकांश यहाँ पर गुजराती हैं, लेकिन मैं गुजराती नहीं जानता। फिर भी हिंदी में भाषण करना शर्म की बात नहीं है तो इसलिए कि सूरत हिंदुस्तान राष्ट्र का हिस्सा है। पर आपके और मेरे दोनों के लिए प्रसन्नता की बात होती है अगर मैं गुजराती भी बोल सकता। आप अगर हिंदी सीखने लग जाते हैं तो क्या मुझ पर रंज नहीं चढ़ता कि मैं आपकी भाषा सीखूँ।''[13] जिस बात का एहसास यहाँ पर जैनेंद्र खुद कर रहे हैं और करा रहे हैं, उसी को गांधी जी ने कहा था। भाषाओं के बीच आपसदारी, समझदारी होनी चाहिए। इस भाषा विविधता के प्रति नागरिकों को आकर्षित होना चाहिए। संस्कृति तथा लोक की समझ से ही राष्ट्रभाव में श्रीवृद्धि संभव है। अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति आदर भाव के साथ उन्हें पढ़ने की पहल राष्ट्र की एकता का परम आवश्यक कर्तव्य है। जब तक समस्त भाषाओं, लोक, संस्कृति, त्योहारों के बीच एक स्वस्थ आदान-प्रदान संभव नहीं है, तब तक हम भारतीय नहीं हो सकते हैं। इसीलिए आपसी आदान-प्रदान ही राष्ट्र के मानचित्र को पूर्ण कर सकता है।

गांधीजी मात्र स्वतंत्रता सेनानी नहीं, बल्कि वह सभी दृष्टि से श्रेष्ठ राष्ट्र नायक हैं, राष्ट्रपिता हैं। इस आजाद राष्ट्र को स्वराज्य और रामराज्य बनाने हेतु जो-जो आवश्यक था; उन सब पर यात्रा, शोध, संवाद आदि के माध्यम से उन्होंने निष्कर्ष रूप विचार प्रस्तुत किए, जिसे हम 'गांधी दर्शन' कहते हैं।

शिक्षा में मातृभाषा का महत्व प्रांतीय व्यवस्थाओं में मातृभाषा की आवश्यकता तथा उसके द्वारा पोषित, संरक्षित, संक्रमित, कला व संस्कृति को जीवित रखने की पहल उन्हें समाजशास्त्री बनाती है। हिंदी-उर्दू की मिश्रित सहज साधन प्रचलित 'हिंदुस्तानी' की स्थापना उन्हें भारत का 'पहला लोकभाषाविद' ठहराती है। इतना ही नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रभाषा की आवश्यकता, दक्षिण में हिंदी को लेकर स्वयं तथा पुत्र देवदास गांधी के साथ काम करना, सभी कार्य पालिकाओं में हिंदुस्तानी की आवश्यकता को प्रस्तुत करना- वह भी स्वराज्य से पूर्व यह सब, गांधी के युग-दृष्टा होने के प्रमाण हैं। इसीलिए वे राष्ट्रपिता हैं। हिंदी, हिंदुत्व और उर्दू मुसलमान जैसे दुराग्रहों को भी सिरे से खारिज करते दिखते हैं।

राष्ट्रीयता, शिक्षा, कार्यपालिका संचालन, मातृभाषा का महत्व, आदान-प्रदान जैसे गंभीर मामलों पर गांधी एक व्यस्त राजनेता होने के बावजूद रचनात्मक निष्कर्ष प्रदान करते रहे, यह उनकी बड़ी उपलब्धि है । इसी कारण गांधी के समस्त विचार वर्तमान भारत में अपनी प्रासंगिकता को सदैव रेखांकित करते हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. ग. वि. अकोलकर, मराठी अनुवादक, गांधी विचार दर्शन, खंड अट्ठारह, भाषा संस्कृति व कला, गांधी वांग्मय प्रकाशन समिति, पुणे, प्रथम संस्करण 1963, पृष्ठ क्रमांक 45
2. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ क्रमांक 34
3. मधुसूदन आनंद (संपादक), नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1सितंबर 2019 पृष्ठ क्रमांक 70
4. जैनेंद्र, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996, पृष्ठ क्रमांक 18
5. गुलाब राय, राष्ट्रीयता, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996, पृष्ठ क्रमांक 18
6. महात्मा गांधी, थॉट्स ऑन नेशनल लैंग्वेज, नवजीवन पब्लिकेशन हाउस, अहमदाबाद, संस्करण 1956, पृष्ठ क्रमांक 31
7. सीता चरण दीक्षित, भारत एक है, गांधी शत वार्षिक प्रकाशन, राजपाल एंड संस दिल्ली, प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ क्रमांक 95
8. वही, पृष्ठ क्रमांक 29
9. ग. वि. अकोलकर (मराठी-अनुवादक), गांधी विचार दर्शन, खंड 11, शिक्षण विचार, गांधी वांग्मय प्रकाशन समिति, पुणे, संस्करण 1962, पृष्ठ क्रमांक 86
10. ग. वि. अकोलकर (मराठी-अनुवादक), गांधी विचार दर्शन, खंड 18 , भाषा संस्कृति व कला, गांधी वांग्मय प्रकाशन समिति पुणे, प्रथम संस्करण 1963, पृष्ठ क्रमांक 86
11. ग. वि. अकोलकर (मराठी-अनुवादक), गांधी विचार दर्शन, खंड 11, शिक्षण विचार, गांधी वांग्मय प्रकाशन समिति, पुणे, संस्करण 1962, पृष्ठ क्रमांक 89
12. सीता चरण दीक्षित, भारत एक है, गांधी सत वार्षिक प्रकाशन, राजपाल एंड संस दिल्ली, प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ क्रमांक 87-88
13. जैनेंद्र, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण जनवरी 1961, पृष्ठ क्रमांक 94

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

मंथन

वेदों में पर्यावरण संरक्षण : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. निलाक्षी मिलि मेदक

सहायक अध्यापिका, संस्कृत विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-1
7099808909
nilakshimili1981@gmail.com

शोध-सार :

संपूर्ण जगत का निर्माण पृथ्वी वायु, अग्नि, आकाश और जल-इन पाँच महाभूतों से हुआ है। अत: प्रकृति में दिखाई देने वाले समस्त पदार्थ भी इन पाँच महाभूतों से ही निर्मित हैं। आधुनिक समय में जिसे पर्यावरण या पारिस्थितिकी या पारिवेशिकी कहा जाता है, उसे ही प्राचीन ग्रंथों में प्रकृति का नाम दिया गया है। प्रकृति के उत्पादन जैसे जल, वायु, मृदा, पादप तथा विभिन्न प्राणी यहाँ तक कि स्वयं मानव भी पर्यावरण का एक अंश है। अतएव जीव जगत और प्रकृति का परस्पर अभिन्न सबंध भी है। प्राकृतिक शुद्धता पर ही पर्यावरण की शुद्धता निर्भर होती है। अत: अपने आसपास विद्यमान जगत एवं जीवन के आधारभूत पंच महाभूतों को शुद्ध बनाए रखना एवं उन्हें दूषित न होने देना मानव जीवन का परम कर्तव्य है। इसी कारण प्राकृतिक उपादानों के संरक्षण के विषय में वैदिक साहित्य में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द :

पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण एवं वेद, वृक्ष संरक्षण, वायु संरक्षण, भूमि संरक्षण, जल संरक्षण ।

प्रस्तावना :

पर्यावरण शब्द 'परि' और 'आवरण' से मिलकर वना है। पर्यावरण शब्द का अर्थ है- चारों ओर से आवरण।

परित: आव्रियन्ते आच्छाद्यन्ते जलादीनि पंचतत्वानि विचांरा: वा यस्मिन् तत् पर्यावरणम् अर्थात् जिसमें चारों ओर से आकाश, जल, वायु, आदि पंचतत्व अथवा सामाजिक, नैतिक आदि विषयों से संबंधित विचार आवृत्त रहते हैं, उसे पर्यावरण कहते हैं। प्रकृति का निर्माण मूलत: पंच तत्वों से मिलकर हुआ है। ये तत्व हैं- क्षिति (पृथ्वी), जल, अग्नि (पावक), आकाश एवं वायु। सामान्य रूप से हरी-भरी प्रकृति मानव का पर्यावरण है तथा इससे मानव का अविभाज्य संबंध है। अत:

पशु-पक्षी आदि जीव-जंतुओं से समृद्ध और शस्यश्यामला पृथ्वी, सूर्य और उसकी किरणें समुद्र, आकाश, बादल और बिजली से युक्त, अंतरिक्ष आदि, जिससे मानव व्याप्त है वह उनका पर्यावरण है। आकाश, जल, वायु, भूमि और अग्नि पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं। इन घटकों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा प्रकृति का निरंतर संतुलन बना रहता है। यदि कोई भी घटक सीमा के बाहर निरंतर उपयोग में आता है तो पर्यावरण में असंतुलन होने लगता है; इसी प्राकृतिक असंतुलन का नाम प्रदूषण है।

जगत उत्पत्ति काल से ही पर्यावरण-संरक्षण का प्रादुर्भाव हुआ। संरक्षण का अर्थ है- उत्तरदायित्व या जिम्मेदारी के साथ किसी की देखभाल करना या निगरानी करना। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से 'संरक्षण' शब्द की व्युत्पत्ति 'रक्ष' धातु में 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'ल्युट' प्रत्यय के संयोग से हुई है। इसका अर्थ है प्ररक्ष्ण, संधारण, उत्तरदायित्व तथा निगरानी।

मानव द्वारा सर्वप्रथम श्वास लेकर छोड़ते समय तथा मल-मूत्र एवं पसीने का त्याग करते ही प्रदूषण का आरंभ हुआ। प्रदूषण की अवधारणा आज की हो सकती है, किंतु इसकी स्थिति प्रकृति के गर्भ से ही है। पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति एवं मानव के बीच संतुलन आवश्वक है। प्रकृति प्रति क्षण मानव के हित-संपादन में तत्पर है। अत: मानव को भी इसके शुद्ध स्वरूप को सुरक्षित रखना चाहिए। लेकिन आज मानव स्वार्थांधतावश प्रकृति के शुद्ध स्वरूप को विकृत कर रहा है। चाहे वह भूमि, जल, वायु या आकाश हो या प्रकृति के अन्य उपादान। अतएव आज पर्यावरण प्रदूषण का विकट संकट से मानव त्रस्त है।

वैदिक ऋषि मानव एवं प्रकृति के इस संतुलन के प्रति पूर्णत: सजग थे। इसलिए वैदिक साहित्य में पर्यावरण की शुद्धि के लिए जल, वायु, भूमि, वृक्ष, वनस्पति आदि प्राकृतिक तत्वों को अत्यंत आदर भाव से माता-माता के समान कहा गया है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए अनेक मंत्र वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही वैदिक ऋषियों ने मानसिक या बौद्धिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए पर्याप्त संदेश दिया है।

जल संरक्षण : पर्यावरण की शुद्धि के लिए जल अत्यंत महत्वपूर्ण है। जल जीवन के लिए अति आवश्यक है। जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऋग्वेद में कहा गया है कि शुद्ध जल में अमृत एवं औषधि का निवास रहता है —

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम।[1]

इसलिए अथर्ववेद में कामना की गई है कि हमारे लिए शुद्ध जल प्रवाहित हो-

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु।[2]

ऋग्वेद में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि सब सुखों को देने वाला, प्राणों को धारण करने वाला एवं माता के समान, पालन-पोषण करने वाला जो जल है, उससे शुचिता को प्राप्त कर, जल का शोधन करने के पश्चात ही; उसका उपयोग करना चाहिए, जिसमे देह को सुंदर वर्ण; रोगमुक्त देह प्राप्त कर, अनवरत उपक्रम सहित, धार्मिक अनुष्ठान करते हुए अपने पुरुषार्थ से आनंद की प्राप्ति हो सके।

आपो अस्मात् मातर : शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्व: पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवी रुदिदाभ्य : शुचिरा पूत एमि।[3]

जल संरक्षण के विषय में कहा गया है कि शुद्ध जल लंबी आयु और स्वास्थ देता है। जल में औषधियों के गुण और धर्म हैं। —

आपश्च विश्वभेषजी:।[4]

ऋग्वेद के प्रभम मंडल में कहा गया है -

अप्सु में सोमो अब्रवीदर्न्तविश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजी:।।[5]

अर्थात जल में औषधियों के गुण और धर्म हैं। प्राय: सभी रोगों की चिकित्सा में जल के अमृत गुण प्रभाव दिखाते हैं। सबके लिए सुखदायी अग्नि भी जल में रहता है। जल में ओषधियाँ समाविष्ट हैं।

ऋग्वेद के तृतीय मंडल के तैंतीसवें सूक्त के निम्नलिखित मंत्र में जल संरक्षण के महत्व को प्रतिपादित किया गया है-

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मा दुष्कृतौ व्येनसाध्यौ थूनमारताम्।।[6]

विपाट् और शुतुद्री नदियों को पार करने की इच्छा से इस मंत्र में ऋषि विश्वामित्र ने उनसे प्रार्थना की है, हे नदियो ! तुम लोगों के ऐश्वर्य को बढ़ाती रहो और स्वयं भी वेग से बहती रहो। प्रवाहयुक्त तुम्हारी लहरें यज्ञस्तंभ से टकराती रहें अर्थात तुम्हारे किनारे पर सदा यज्ञ होते रहें। तुम्हारे किनारे सदा अच्छी खेती करते रहें। तुम अहन्या (हिंसा-रहित) रहो अर्थात नदी के जल का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए; क्योंकि जल का दुरुपयोग ही नदियों की हिंसा है। मंत्र का संदेश है कि जल के समुचित उपयोग में जनसमृद्धि निहित है।

तेत्तिरीय आरण्यक के निम्नलिखित वाक्य में जल संरक्षण का महत्वपूर्ण सूत्र है-

नाप्सु मूत्रपूरीषं कुर्यात् ।।[7]

पृथ्वी पर नदी, तालाब, वापी, कूप आदि अनेक रूपों में जलस्रोत उपलब्ध हैं, जिनसे प्राणी अपनी प्यास बुझाते हैं और स्नान आदि क्रियाएँ संपादित करते हैं। इनमें मलमूत्र का त्याग कदापि नहीं करना चाहिए। गंदे पदार्थों से जलस्रोतों को बचाना जल संरक्षण का मूलभूत सिद्धांत है।

वायु-संरक्षण : वायु का पर्यावरण से सीधा संबंध है। वायु ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा जीवन की आधारशिला है। ऋग्वेद में वायु को विश्वभेषज (World Physician) कहा गया है और प्रार्थना की गई है कि वह दूषित-वायु को दूर करे तथा शुद्ध वायु-भेषज-वात (Medicated Air)को प्रवाहित करे-

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रप:।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।[8]

जीवनदायक वायु के मूल स्रोत वृक्ष एवं वन हैं। पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुए ऋग्वेद के एक मंत्र में वनस्पति आरोपण का स्पष्ट आदेश दिया गया है-

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्।[9]

वायु सजीव जगत के लिए आवश्यक तत्व है। भोजन एवं जल के बिना मनुष्य कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है, किंतु वायु के बिना प्राणी कुछ क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। ऋग्वेद के दशम मंडल के निम्नलिखित मंत्र में शुद्ध वायु की उपादेयता प्रतिपादित है-

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो दे।
प्राण आयूँषि तारिषत्।।[10]

शुद्ध वायु आरोग्यता प्रदान कर आयु की वृद्धि करता है। वह हृदय-रोग को दूर करने में मुख्य औषधि का कार्य करता है। शुद्ध वायु हमारे जीवन के लिए औषधि के समान है। प्राणयाम द्वारा शुद्ध वायु के सेवन की विधि पातञ्जल योगसूत्र में वर्णित है। अशुद्ध वायु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अशुद्ध वायु शुद्धता की अपेक्षा रखता है। वायु शोधन के उपायों में यज्ञ का प्रमुख स्थान है। वेद ने प्रत्येक गृहस्थ को वायु को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाने के लिए प्रेरित किया है- प्रत्येक गृहस्थ को यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ क्रिया के द्वारा प्रयुक्त शाकल्य (घृत, जड़ी, बूटियाँ, औषिधियाँ तिल आदि) से प्रचुर मात्रा मे ऐसी गैसें निकलती हैं, जो वायुमंडल में फैली प्रदूषित वायु को दूर कर शुद्ध भेषज वायु का प्रसार करती है। वायु में अनेकों प्रकार की गैस हैं। वेद में गैसों के परिभाषी का नाम इस प्रकार हैं-

हाईड्रोजन	- नारद वायु
कार्बनडाई ऑक्साइड	- रुद्ध नीलकंठ वायु
नाईट्रोजन	- रूप ज्योति
ऑक्सीजन	- सोम वायु

इनमें सबसे महत्वपूर्ण ऑक्सीजन गैस है। वायुमंडल में जब ऑक्सीजन की कमी होती है तभी वायुमंडल प्रदूषित होता है। इसलिए वेद में शुद्ध वायु को भी देवता कहकर प्रणाम किया गया है कि आप शुद्ध रूप से प्रवाहित होकर हमारा कल्याण करें।

वृक्ष संरक्षण : वृक्ष मानव के लिए स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के प्रमुख घटक के रूप में माने जाते हैं। वृक्ष जीवनदायक एवं स्वास्थ्यप्रद वायु ऑक्सीजन छोड़ते हैं तथा जीवन के लिए हानिकारक वायु को ग्रहण कर लेते हैं। वृक्षों के इस महत्व को ध्यान में रखते हुए वेदमंत्रों मे वृक्षों और वनों को नमस्कार किया गया है-

नमो वृक्षेभ्य:[11]
वनानां पतये नम:[12]
ओषधीनां पतये नम:[13]
वृक्षाणां पतये नम:[14]
अरण्यानां पतये नम:[15]

वायु के शुद्धीकरण एवं पर्यावरण के बढ़ते प्रदूषण को रोकने के लिए वृक्षों का संरक्षण एवं संवर्द्धन अत्यंत आवश्यक है। यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है कि किसी भी परिस्थिति में पृथ्वी पर उगने वाली वनस्पतियों की जड़ों को नष्ट नहीं करें।

पृथ्वी देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं।
वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवित: परमस्यां पृथिव्यां शतेन
पाशैर्योऽ स्मान्द्वेष्टि यं त वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ।।[16]

इस मंत्र में पृथ्वी पर होने वाली वनस्पतियों की सुरक्षा की अभिलाषा वर्णित है।

पृथ्वी पर होने वाली औषधियों एवं वनस्पतियों के प्रति

श्रद्धा-भावना वृक्ष-संरक्षण का मूल सिद्धांत है। यज्ञ के निमित्त अथवा पशु ओं के भोजन के लिए भी वृक्षों के कुछ हिस्से को ही काटें। कभी भी उसका समूल उच्छेद न करें। वृक्ष-संरक्षण के विषय में मनुस्मृति में भी कहा गया है :-

इन्धनार्थमशुष्कानां द्रुमाणामवपातनम्।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा॥[17]

अपने ईंधन के लिए हरे पेड़ को काटना महा उपपातक है। अतएव वृक्षों का संरक्षण आवश्यक है।

अथर्ववेद (6.106.1) में कहा गया है कि आस-पास के वातावरण और वायु को शुद्ध रखने के लिए हर व्यक्ति अपने घरों के आने-जाने के मार्ग पर दूर्बा घास उगाए और वहाँ कमलों वाला मनोहारी ताल भी हो-

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणी:।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान्।।[18]

भूमि संरक्षण : प्रदूषण निवारण तथा पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सर्वाधिक उपयोगी वृक्षों, वनस्पतियों एवं औषधियों को उत्पन्न करने वाली पृथ्वी ही है। पंच महाभूतों में भूमि हमारा मुख्य आश्रय स्थल है। जन्म से मृत्यु पर्यंत मनुष्य का संबंध भूमि से रहता है। अतएव भूमि संरक्षण वैदिक ऋषियों के पर्यावरण चिंतन का विशेष पक्ष है। अथर्ववेद संहिता के बारहवें कांड के प्रथम सूक्त भूमि सूक्त में पृथ्वी के स्वरूप, गुण और महिमा का सुंदर चित्रण हुआ है। यह सूक्त मातृभूमि का वैदिक गीत माना जाता है, जिसमें प्रथम बार पृथ्वी को माता और स्वयं को उसका पुत्र कहा गया है-

माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:[19]

ऋग्वेद के मंत्र में कहा गया है कि परमात्मा द्वारा मनुष्य को दिए गए उपहारों में से एक पृथ्वी है। इस पृथ्वी में अक्षय धन का भंडार है। इस अक्षय भंडार की रक्षा द्युलोक, वृक्ष-वनस्पतियाँ, जल, नदियाँ वन और जल के स्रोत करते हैं। इसका अभिप्राय है कि पृथ्वी के अंदर जो रत्न, मणि, खनिज, पेट्रोल, कोयला, तेल आदि पदार्थ हैं, उनकी सुरक्षा के लिए वृक्ष-वनस्पतियाँ आदि पदार्थ हैं। यदि हम पृथ्वी के रक्षक तत्वों को नष्ट करते हैं तो भूमि के अंदर विद्यमान खनिजों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा-

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु
पुरू वसूनि पृथ्वी विभर्ति।
इन्द्राय द्याव औषधिरूतापो
रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि।।[20]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में भूमि के चारों और स्थित ओजोन परत का उल्लेख है। ऋग्वेद में ओजोन की परत को स्थविर परत कहा है। अथर्ववेद में पृथ्वी को गर्भस्थ शिशु मानते हुए उसकी रक्षा के लिए प्रार्थना की है-

महत तदुल्बं स्थविरं तदासीद् ।
येनाविष्टित: प्रविवेषिथाप:।।[21]

तस्योत जायमानस्य उल्ब आसीद् हिरण्यय।।[22]

ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली लघु पराबैंगनी किरणों का अवशोषण कर लेती है और पृथ्वी के पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं को भस्म होने से बचाती है।

अथर्ववेद में पर्यावरण के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-

सर्वो वै तत्र जीवति गौरष्व: परूष: पशु:।
यत्रेदं ब्रह्मा क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ।।[23]

जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है, वहाँ मनुष्य, पक्षी-पशु आदि सभी सुखपूर्वक जीवित रहते हैं।

पृथ्वी न केवल मनुष्यों और अन्य प्राणियों को निवास प्रदान कर उन्हें धारण करती है, अपितु उनके भरण-पोषण के लिए अन्न और जल भी देती है। वह बिना भेदभाव के सबकी आवश्यकता की पूर्ति करती है। सब प्रकार से भूमि के अंगों और तत्वों का संरक्षण करना एक आवश्यक मानवीय दायित्व है। भूमि संरक्षण के प्रति वैदिक ऋषियों के सुक्ष्म चिंतन के दिग्दर्शन निम्नलिखित मंत्र में मिलते हैं-

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा
पृथ्वी विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।[24]

जिस भूमि पर फल-फूल, पत्र आदि से हमारा उपकार करने के लिए विविध वृक्ष एवं वनस्पतियाँ उत्पन्न होते हैं और दृढ़ता से स्थिर होकर रहते हैं, वह भूमि सदा हमारे लिए वंदनीय और प्रशंसनीय है। जो भूमि हमारे पूर्वजों

द्वारा सुरक्षित रखी गई है, हम भी उसको सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखें और उसकी स्तुति करें।

निष्कर्षत:

ऋग्वेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद में धर्म पर आधारित पर्यावरण संरक्षण से संबंधित निर्देश दिया गया है और समाज प्राचीन काल से ही उसे स्वीकार करता आ रहा है।

हम कह सकते हैं कि वेदों के अंतर्गत, कर्मकांड के अंतर्गत जो पारलौकिक एवं प्रचुर अत्यधिक सुख की प्राप्ति के लिए यज्ञ अनुष्ठान कराए जाते हैं, वह केवल परलोक प्राप्ति के लिए ही सीमित नहीं है, बल्कि वातावरण शुद्धि हेतु भी किए जाते थे। वेदों में विभिन्न मंत्रों के माध्यम से मानव को पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूक किया गया है।

वर्तमान समाज में भी पर्यावरण संरक्षण के अनेकों उपाय किए जा रहे हैं, लेकिन जरूरत है समाज में रहने वाले हम सभी अपने पर्यावरण को सुरक्षित एवं संरक्षण के लिए एक प्रण लें कि इसकी रक्षा करेंगे, क्योंकि वेदों में उपाय है, परंतु उन उपायों पर अमल करके ही हम अपने पर्यावरण और स्वयं को बचा सकेंगे। ❑

सदंर्भ सूची :

1. ऋग्वेद 1/23/19, अथर्व 1/4/4
2. अथर्ववेद 12/1/30,
3. ऋग्वेद 10/17/10
4. ,, 1/23/20
5. ,, 1/23/20
6. ,, 3/33/3
7. तैत्तिरीय आरण्यक 1/26/7
8. ऋग्वेद 10/137/3
9. ,, 10/101/11
10. ,, 10/186/1
11. यजुर्वेद 16/17
12. ,, 16/18
13. यजुर्वेद 16/19
14. ,, 16/18
15. ,, 16/20
16. ,, 1/25
17. मनु 11/64
18. अथर्ववेद 6/106/1
19. ,, 12/1/12
20. ,, 4/13/3
21. ऋग्वेद 10/186/3
22. ,, 6/37/3
23. ,, 3/51/5
24. अथर्ववेद 12/1/27

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

संस्कृति

असमीया संस्कृति : परंपरा और परिवर्तन

(असम की बिहू परम्परा के आधार पर)

डॉ. कणिमा पाठक

सहायक अध्यापक, असमीया विभाग
जागीरोड महाविद्यालय
जागीरोड, असम-782410
08471925469
kanimapathak6@gmail.com

प्रस्तावना :

किसी भी एक जन-समुदाय के जीवन की समग्र कृतियाँ ही संस्कृति है। किसी जन-समुदाय या मानव द्वारा सृजित आचार अथवा किसी समाज के रीति-रीवाज उससे जुड़े हुए सभी परंपरा, रीति-रिवाज आदि को ही संस्कृति कहा गया है। संस्कृति उस समाज के व्यक्तियों को प्रभावित करती है, फलस्वरूप उस समाज के व्यक्तियों के लिए उपयुक्त और ग्रहण योग्य विभिन्न आचर-व्यापारों का जन्म इसी के गर्भ में होता है । इस प्रकार के रीति-रिवाज ही परवर्ती समय में परंपरागत एक निजी रूप ले लेते हैं और एक समय में इसका परिवर्तन भी होता है। असमीया संस्कृति भी इससे अलग नहीं है ।

'असमीया संस्कृति' शब्द का अर्थ विशाल है, क्योंकि असमीया संस्कृति आर्य और अनार्य दोनों जनगोष्ठियों के उपादान का मिश्रित रूप है। इसलिए असमीया संस्कृति को 'समन्वय संस्कृति' भी कहा गया है। असम में विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते हैं। जैसे -बोडो, मिसिंग, राभा, गारो, तिवा, कछारी, देउरी, डिमासा, हाजोंग इत्यादि। इसके अलावा यहाँ ब्राह्मण, कायस्थ, कलिता, कोच, केउट, हीरा, राजवंशी इत्यादि लोगों का निवास स्थल भी है असम। असम में विभिन्न जाति-संप्रदाय के लोगों के एक साथ रहने के कारण उन लोगों के बीच पारस्परिक प्रभाव भी कुछ मिलता-जुलता नजर आता है। इसलिए यहाँ एक समुदाय की संस्कृति में दूसरे समुदाय के रीति-रिवाज, भाषा, खान-पान आदि अविच्छिन्न रूप से विद्यमान होते हैं। 'असमीया संस्कृति' असस्म के विभिन्न जाति-समुदायों के लोगों के सम्मिश्रण का फल है।

इसलिए 'असमीया संस्कृति' को असम की समन्वय संस्कृति कहा गया है । असमीया संस्कृति को चार भागों में विभाजित किया जाता है। जैसे-

(1) मौखिकी लोक विद्या अथवा लोक संस्कृति (Verbal-Art, oral literature),

(2) सामाजिक लोक प्रथा अथवा लोकाचार (Social folk custom),

(3) भौतिक संस्कृति (Material culture) और

(4) लोकपरिवेश्य कला (Performing folk Arts)।

मौखिक लोक विद्या में लोक-कविता, लोक-कथा, लोक-कहानी, लोकोक्ति, लोक-गीत, लोक-भाषा इत्यादि को रखा गया है। असम के लोगों के बीच अनेक लोक-कविता, लोक-गीत, लोक-काहानी आदि प्रचलित हैं, जिनसे असमीया संस्कृति का भंडार समृद्ध हुआ है।

सामाजिक लोक प्रथा अथवा लोकाचार के अंतर्गत असम के विभिन्न उत्सव-पर्व, खेल-कूद, लोक-धर्म, सामाजिक रीति-रीवाज आदि को रखा गया है। प्राचीन कल से चले आ रहे आर्यों-अनार्यों के बीच इन उत्सवों, अनुष्ठानों और इसमें निहित सभी रीति-रीवाजों को ही एक साथ संस्कृति कहा गया है। जिनमें से प्रमुख हैं—बिहू, बैसागु, बिसु, भठेली, बायखो, पचोति, रंकेर, छाग्राम-छावा, फारकाण्टि, आदि। इन उत्सव-अनुष्ठानों में जिन-जिन नृत्य, गीत, नाट, भाओना आदि का परिवेशन किया जाता है; उनको ही लोक कला अथवा लोक-परिवेश्व कला कहा जाता है। इसमें भौतिक संस्कृति में जीवन से जुड़ीं सभी चीजों को लिया जाता है, जैसे — घर, बर्तन, अलंकार, स्थापत्य-विद्या, पाक-प्रणाली, चित्रकला आदि।

असम में निवास करने वाली सभी जाति-जनगोष्ठियों की अपनी निजी संस्कृति है, फिर भी वे लोग सार्वजनीन 'असमीया संस्कृति' को ही अधिकतर स्वीकार करते हैं। इस अध्ययन में सिर्फ असम के आर्य तथा अनार्य (ब्राह्मण, कायस्थ, कलिता, केउट, कोच, हीरा, आदि) की संस्कृति तथा सार्वजनीन 'असमीया संस्कृति' के बारे में विचार-विमर्श किया गया है। असम की जाति-जनगोष्ठियाँ विभिन्न रूप में स्वतंत्र तरीके से 'असमीया संस्कृति' के विभिन्न नियमों का ही पालन करती हैं और उसे अपना मानती हैं।

असमीया संस्कृति में सामाजिक लोक प्रथा अथवा लोकाचार (Social folk custom) के अंतर्गत असम के 'बिहू संस्कृति' के बारे में आलोचना की गई है। असम के अनार्य, वर्ण हिंदू तथा आर्य लोगों के बीच मनाए जाने वाले बिहू की परंपरा के परिवर्तित रूपों पर विचार करना आवश्यक है। असल में संस्कृति परिवर्तनशील है। ठीक उसी प्रकार असम की 'बिहू संस्कृति' भी समय के साथ कुछ नए रीति-रीवाजों, आचार-व्यवहारों, परिस्थितियों और भूमंडलीकरण (globalization) के प्रभाव स्वरूप का परिवर्तित होती जा रही है । इसके कई कारण हैं और जिसका अध्ययन बहुत ही आवश्यक है।

असमीया 'बिहू' में परंपरा का परिवर्तित रूप :

असम में निवास करने वाले सभी जाति-समुदायों के लिए 'बिहू' सबसे प्रमुख और प्रधान उत्सवों में से एक है। बिहू असम के सभी लोग एक साथ मनाते हैं। असमीया जाति के प्राण 'बिहू' में आर्य, आर्यभिन्न, द्रविड़, ऑस्टिक इत्यादि विभिन्न संस्कृति के उपादानों का सम्मिश्रित रुप विराजमान है । बिहू मुलत: असम के कृषि और ग्राम्य जीवन से संबंधित उत्सव है। ग्राम्य तथा लोक-जीवन से जुड़े रिवाज, कर्म, खेतों में मंगल कामना के लिए किए गए विभिन्न लोकाचारों को एक साथ 'बिहू संस्कृति' कहा जाता है । इन सभी लोकाचारों में असमीया जाति के सभी रीति-रीवाज, परंपरा तथा असमीया संस्कृति प्राय: सभी मूल्यवान संपद बिहू के साथ जुड़े हुए होते हैं। असमीया समाज जीवन के साथ जुड़े सभी कर्मों और सुख-दुख, हँसी-उल्लास, उमंग, खेती से जुड़े लोगों के कर्ममय जीवन, लोक समाज के समग्र रूप, आवेग-अनुभूति सब बिहू

गीत अथवा बिहू नाम के जरिए प्रतिफलित होते हैं। असम के विभिन्न जन-समुदायों में बिहू के अलग-अलग नाम हैं, फिर भी बिहू मूलत: कृषि से जुड़ा उत्सव होने के नाते सभी जाति-जनगोष्ठियों में इसे समान रूप से मनाया जाता है। 'बिहू' शब्द का अर्थ आनंदवाचक है। विद्वानों का कहना है कि 'बिहू' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'विषुवण' शब्द से हुआ है। ऐतरेय- ब्राह्मण और अथर्ववेद के अनुसार 'विषुवण' शब्द यज्ञ आदि करने के एक विशेष दिन का नाम है। हिमालय के आस पास रहने वाला खचर समाज भी 'बिहू' उत्सव मनाता है। असमीया जाति की आयु रेखा स्वरूप बिहू मूलत: तीन हैं - (1) बोहाग बिहू अथवा रंगाली बिहू, (2) माघ बिहू अथवा भोगाली बिहू और 3) काति बिहू अथवा कंगाली बिहू।

असम के कृषिजीवी लोगों के कृषि से जुड़े हुए जीवन, कृषि के साथ संपर्क स्थापित करते हुए खेतों में बीज (अनाज) लगाने से पहले, अनाज होने के समय, अनाज होने के बाद इत्यादि विभिन्न समय के विशेष निर्धारित दिनों में विभिन्न प्रकार के नियम, रीति-रीवाज, लोकाचार के जरिए उन तीनों बिहू के मध्यम से असम में बिहू मनाया जाता है। वर्तमान समय में भूमंडलीकरण (Globalization), आधुनिकीकरण (Modernization), नगरीकरण (Urbanization) आदि विभिन्न कारणों से पूर्व निर्धारित बिहू-संस्कृति में परिवर्तन और शिथिलता नजर आते दिख रहे हैं। असमीया के तीनों बिहुओं में नजर आता हुआ पारंपरिक रूप और इसके परिवर्तन के बारे में यहाँ विचार-विमर्श किया गया है।

बोहाग बिहू वैशाख महीने में मनाया जाता है। खेतों में बीज लगाने से पहले खेतों की मिट्टी उर्बर तथा खेतों की प्रजनन क्षमता बृद्धि करने के लिए युवा खेतों में नाच-गान (बिहू नृत्य, बिहू गीत) करते हैं; भगवान को प्रार्थना करते हैं। इस बिहू में खेतों का काम आरंभ करने से पहले खेतों में जरूरी सभी चीजें, जैसे- बैल-गाय, हल, नांगल, कुदाल, इत्यादि को नहालाते-धोते हैं। इन सभी लोकाचार, रीति-रिवाजों से अति आनंद के साथ असमीया लोग बोहाग बिहू का पालन करते हैं। इसलिए इस बिहू का दुसरा नाम रंगाली बिहू (रंगाली शब्द का अर्थ आनंद का रंग है) भी है। रंगाली बिहू चैत महीने की संक्रांति से बोहाग महीने के छह दिन तक मनाये जाते हैं। असमीया समाज उन सात दिनों के लिए अलग-अलग नाम का प्रयोग करते हैं। जैसे- गरु बिहू (चैत बहाग की संक्रांति के दिन), गोसाईं बिहू (पहला बोहाग), मानुह बिहू (2 बहाग), कुटुम बिहू (3 बोहाग), सेनेही बिहु (4 बोहाग), सेरा बिहू (5 बोहाग), सात बिहू (6 बोहाग)। बैशाख महीने की 1 तारिख को असमीया लोग विभिन्न प्रकार की बीमारी से बचने के लिए 101 सागों से व्यंजन बना उसका उपभोग करते हैं। यह भी एक नियम ही है बिहू का। असमीया लोग सभी शुभ काम बैशाख महीने में करना पसंद करते हैं। बोहाग बिहू के लिए गाँव की महिलाएँ कई दिन पहले से तैयारी करती हैं। कपड़ा बुनती हैं (गामोछा, बिहुवान), तिल-नारियल का लड्डू-पीठा, चावल की गुड़ाई से बनाए गए भिन्न प्रकार के पीठा आदि बनाती हैं। वर्तमान समय में बिहू परंपरा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता हुआ देखा जाता है। जैसे- पहले बिहू-नृत्य सिर्फ खेतीबारी आथवा किसी जंगल के बड़े वृक्ष के नीचे किया जाता था। इसके बाद घर-घर में जाकर और फिर अब स्टेज पर भी बिहू-नृत्य किए जाते हैं, लेकिन जब से बिहू स्टेज पर आ गया है (1951 में गुवाहाटी के लताशील मंच पर पहला बिहू-नृत्य हुआ था) तब से बिहू नृत्य के बारे में जो अश्लीलता का भाव था, वह दूर हो गया ।'हुचरी' (बोहाग बिहू में गाँव घर-घर में साल-भर के लिए आशीर्वाद स्वरूप गाए जाने वाले गीत हैं) में पहले पुरुष ही भाग लिया करते थे; अब महिलाएँ भी इसमें भाग लेती हैं। पहले में बिहू नृत्य-गीत केवल गाँव में होते थे; अब शहरों में भी होते हैं। बिहू के शहर-नगरों में प्रविष्ट होने से इसकी पूर्व-परंपरा में परिवर्तन होना स्वाभाविक-सी बात है। बिहू में पहले जैसी सरलता और अकृतिमता नहीं रही है। विभिन्न कारणों में अब पीठा, गामोछा (बिहुवान) बाहर से लाए जाते हैं ।स्टेज बिहू का प्रसारण होने के कारण वर्तमान पीढ़ी सिर्फ स्टेज पर होने वाले बिहू को ही 'बिहू सस्कृति' समझने लगी है। गाँव में भी पहले जैसा आनंद-उल्लास नहीं रहा है ।

'माघ बिहू' पौष और माघ महीने की संक्रांति के दिन मनाया जाता है। इस बिहू में बहुत ढेर सारे खान-पान का प्रबंध किया जाता है; इसलिए इस बिहू को 'भोगाली बिहू'

कहा जाता है। माघ बिहू के पहले दिन गाँव के लोग एक साथ मिलकर खाना खाते हैं, 'भेलाघर' (मेजीघर) बनाते हैं, सुबह उस मेजीघर को जला दिया जाता है। माघ-बिहू में मेजी घर बनाने का कुछ नियम होते हैं। जैसे - मेजी घर सिर्फ ऊँचा करके धान के सूखे हुए पत्ते (नरा, खेर), लकड़ी, बाँस आदि से बनाया जाता है। वर्तमान समय में माघ-बिहू में शहर-नगरों में भी छोटे-छोटे मेजीघर लकड़ियों से बनाए जाते हैं। गाँव में आजकल तरह-तरह की थीम के साथ मेजघीर बनाते हुए नजर आते हैं। जैसे - टाइटैनिक जहाज, हाथी, चिड़िया, अट्टालिका, गेंडा आदि।

'काति बिहू' आश्विन और कार्तिक महीने की संक्रांति के दिन मनाया जाता है। इस बिहू के समय में न खेतों से धान उपजते हैं और न ही लोगों के पास भोजन करने के लिए अनाज रहता है। एक तरह से कहा जा सकता है कि गाँव के कृषिजीवी लोग इस समय बहुत ही अभाव में रहते हैं। इसलिए इस बिहू का दूसरा नाम कंगाली-बिहू (अभाव का बिहू) भी है । खेतों की उर्वरता के लिए मंगल कामना करते हुए गाँव के लोग खेतों में दीया जला कर लक्ष्मी माता की पूजा करते हैं। घर में तुलसी के पेड़ लगाते हैं और शाम को उस तुलसी के नीचे धूप-द्वीप से लक्ष्मी माता की आरती करने की परंपरा है। आजकल शहरों और नगरों में भी काति-बिहू मनाया जाता है। शहर के लोग काति-बिहू में भी दीपावली जैसे बहुत सारे दीये जला कर इस उत्सव का पालन करते हैं। पहले सिर्फ मिट्टी के दीये में सरसों का तेल डालकर उसे जलाया जाता था, लेकिन आजकल मिट्टी के दीये के साथ-साथ कृत्रिम दीये (बिजली दीया) भी जलाते हैं। इस तरह काति-बिहू में भी पूर्व से चली आ रही परंपरा में परिवर्तन साफ नजर आता है।

उपसंहार :

संस्कृति स्वयंक्रिय है, उसी तरह बिहू भी स्वयंक्रिय है। विभिन्न कारणों से गाँव के लोग नौकरी की तलाश में, काम की तलाश में शहरों में जाते रहे हैं। गाँव से अधिक से अधिक लोगों के शहरों में अग्रसर होने के कारण पूर्व परंपरागत कृषिजीवी, श्रमजीवी लोगों की संस्कृति भी परवर्तित होती रही है। बिहू संस्कृति में नगरीकरण होने के कारण पूर्व बिहू-संस्कृति तथा रीति-रिवाजों में भी शिथिलता आ गई है। यह भूमंडलीकरण का ही भी प्रभाव है। गाँव में भी आजकल पहले के रीति-रिवाजों में परिवर्तन की धारा बहने लगी है। बिहू केवल नृत्य-गीत नहीं है। पहले जिस उद्देश्य से गाँव में, कृषिजीवी समाज में बिहू उत्सव को मनाया जाते था, वही उद्देश्य सांप्रतिक बिहू में नहीं दिखती, शहर-नगर में मनाए जाने वाले बिहू में सिर्फ कृत्रिमता ही अधिक है। बिहू परंपरा के बारे में जानने के लिए नव-पीढ़ी को गाँव में मनाए जाने वाले पूर्व बिहू परंपरा के बारे अध्ययन करना जरूरी है। असमीया संस्कृति के बारे में विस्तारित अध्ययन के लिए इन सभी विषयों पर भी अध्ययन आवश्यक है। ❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

गगै, मृणाल कुमार (सम्पा.) : बिहु संस्कृतिर तात्पर्य, प्रथम प्रकाश, गुवाहाटी : बी.एल.जे प्रकाशण, 2012.

गगै, लीला : असमर संस्कृति, 9म संस्करण, डिब्रूगढ़, वनलता, 2012.

नाथ, स्वपनज्योति (सम्पा.) : लोक-संस्कृति आरु विश्यायन, प्रथम प्रकाश, नगांव, खागरिजान महाविद्यालय, 2012.

बरदलै, निर्मलप्रभा : असमर लोकसंस्कृति, तृतीय सस्करण, गूवाहाटी : वीणा लाइब्रेरी, 2011.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

हिंदी उपन्यास एवं आत्मकथा में दिव्यांग विमर्श का परीक्षण

वैशाली सिंघल

शोधार्थी, हिंदी विभाग
एम.जे.पी. रुहेलखंड विश्वविद्यालय,
बरेली (उ.प्र.)
(3के, हाउस नंबर : 33ए, राकेश मार्ग, नेहरू नगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश पिन-201001)
8851422094
vaishalisinghal072@gmail.com

शोध सार :

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनिया की लगभग 15 फीसदी आबादी किसी-न-किसी रूप में दिव्यांगता के साथ जीवन यापन करने पर विवश है। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा दिव्यांग पात्रों को प्रस्थापित किया गया। यद्यपि उनके कथा साहित्य में दिव्यांग विमर्श के बीज विद्यमान रहे हैं, परंतु एक संपूर्ण विमर्श के रूप में इसका प्रस्फुटन 21वीं सदी में ही प्रतिष्ठित हुआ है। दिव्यांग विमर्श ऐसा नव विमर्श है, जो किसी भी लिंग जाति समुदाय से रहित है। दिव्यांगता किसी भी मनुष्य को जन्मत: अथवा जन्म पश्चात हो सकती है। परंतु आवश्यकता है समतामूलक सामाजिक दृष्टिकोण विकसित करने की। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की पूर्णता के पश्चात भी सकलांग और दिव्यांग के मध्य का भेदभाव जारी है। दिव्यांग विमर्श इसी मानसिकता को समाप्त कर दिव्यांगों में नवीन चेतना का स्फूरण करना चाहता है। दिव्यांगों को सशक्त और आत्मनिर्भर बनाना ही इसका परमोद्देश्य है।

बीज शब्द :

दिव्यांग, आत्मकथा, समाज, सशक्तिकरण, आत्मनिर्भर

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य की प्रारंभ से पूर्ण परिक्रमा करें तो सर्वप्रथम आदिकाल (सामान्यत: संवत् 1050-1375 तक) जो कि वीरगाथा काल के नाम से हिंदी साहित्य के इतिहास में सुरक्षित है, आविर्भाव हुआ। इस काल में पृथ्वीराज चौहान रासो, बिसलदेव रासो, परमाल रासो, आदि रासो काव्य के साथ-साथ धार्मिक साहित्य यथा सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य आदि का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ और भक्तिकाल का सूत्रपात हुआ। यह काल हिंदी साहित्य में 'स्वर्णयुग' नाम से प्रतिष्ठापित है। हिंदी साहित्य के इस काल में भक्ति आंदोलन की प्रमुखता रही परिणामस्वरूप रामभक्ति शाखा, कृष्णभक्ति शाखा, संत मत, सूफी मत आदि मत एवं संप्रदायों का प्रचार-प्रसार हुआ। कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, मालिक मोहम्मद जायसी जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार इसी युग के अमूल्य रत्न हैं। समय की करवट के साथ हिंदी साहित्य में रीतिकाल का प्रवेश

हुआ और उसमें लक्षण ग्रंथ, काव्यशास्त्र, नायिका भेद आदि शास्त्रीय विषयों का प्रणयन हुआ। राष्ट्रवादी कवि भूषण भी इसी युग की देन हैं। समय की अविरल सरिता में बल पड़ा और हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का शुभारंभ हुआ। यह काल अनेक दृष्टियों से संक्रमण का काल है। चाहे राजनीतिक परिस्थिति हो या सामाजिक परिस्थिति, आर्थिक हो या सांस्कृतिक परिस्थिति-सभी में संक्रमण की स्थिति परिलक्षित हुई। एक और विदेशी ताकतें और दूसरी ओर राष्ट्रवादी स्वाधीनता आंदोलन से परस्पर संघर्ष हुआ। ऐसे दौर में हिंदी साहित्य में विविध प्रवृत्तियों एवं विधाओं का सृजन हुआ, जिससे हिंदी साहित्य रूपी वृक्ष में नव पुष्प एवं पुष्पांड पल्लवित हुए। यह आधुनिक काल ही है, जिसमें अनेक विमर्शों का भी जन्म हुआ। हिंदी साहित्य में मुख्यत: स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श ने अपना अमूल्य स्थान ग्रहण किया तथा अन्य कुछ विमर्श जैसे अल्पसंख्यक विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि भी प्रस्फुटित हुए।

मूल आलेख :

वर्तमान इक्कीसवीं सदी में हिंदी साहित्य में एक नव अभिनव विमर्श - दिव्यांग विमर्श का सूत्रपात हो रहा है, जो किसी भी लिंग, जाति, समुदाय, या देश से विलग विशुद्ध मानतवादी विमर्श है। कोई भी मनुष्य जन्म से अथवा जीवन पर्यंत किसी दुर्घटना, रोग अथवा विकार से जीवन की किसी भी दशा में दिव्यांगता को प्राप्त हो सकता है। अत: दिव्यांगों के भीतर आत्मविश्वास जगाना एवं, उनके समग्र विकास हेतु जनता शासन और समाज सेवी संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित करना तथा सकलांगों की मानसिकता में परिवर्तन लाना ही इस विमर्श का उद्देश्य है। ना केवल भारत देश में, अपितु संपूर्ण विश्व में दिव्यांगों की संख्या लगभग 10 फीसदी है, परंतु विडंबना की बात है कि आज भी यह समुदाय दूसरों की सहायता, दया और सहानुभूति पर आश्रित है। दिव्यांग विमर्श का ध्येय है कि वह उन्हें सबल, सशक्त और आत्मनिर्भर बनाए। अतएव वक्त की मांग है कि दिव्यांग विमर्श की यथेष्ट श्रीवृद्धि हो।

हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में दिव्यांग विमर्श का पल्लवन हो रहा है। चाहें उपन्यास हो या कहानियाँ, कविताएँ हो या निबंध, आत्मकथा हो या नाटक-सिनेमा हिंदी साहित्य की समुचित विधाओं में यह विमर्श प्राण प्रतिष्ठित हो रहा हैं। हिंदी साहित्य के कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी ने प्रथमत: समाज के हाशिए के वर्गों को अपने साहित्य में केंद्रस्थ किया -यथा स्त्री, दलित, किसान, दिव्यांग आदि पात्रों को अपनी कहानियों और उपन्यासों में नायक बनाया। उनके उपन्यासों में दिव्यांग पात्र प्रचुरता से प्रणीत हुए हैं तथा कहानियाँ भी दिव्यांग चेतना से सराबोर हैं। प्रेमचंद जी का उपन्यास 'रंगभूमि' और कहानी 'पत्नी से पति' दिव्यांग विमर्श की पूर्व पीठिका के रूप में प्रतिष्ठित है। 'रंगभूमि' उपन्यास में, *''बनारस के समीपस्थ पांडेपुर ग्राम का निवासी सूरदास कृशकाय, सीधा-साधा नित्य प्रति भिक्षार्जन के लिए लाठी टेकते हुए निकलता।...वह गरीब व दलित है। भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत है, न काम की। सूरदास उनका बना-बनाया नाम है और भीख माँगना बना-बनाया काम।.. बाह्य दृष्टि बंद और अंतर्दृष्टि खुली हुई।''* [1] इस प्रकार सर्वप्रथम प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यास रंगभूमि में दिव्यांग चरित्र सूरदास को इस उपन्यास का नायक बनाया, जो कर्म व आचरण में सकलांगों से भी आगे निकल जाता है। और अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुए सत्य, अहिंसा और नैतिकता के द्वारा संघर्ष कर वह एक मिसाल कायम करता है। प्रेमचंद जी ने इस अंधे दिव्यांग चरित्र को नायक बनाकर निश्चित रूप से दिव्यांग विमर्श के बीज बोए थे। प्रेमचंद जी के अतिरिक्त स्त्री लेखिका शिवानी जी का उपन्यास 'कृष्णवेणी' कुष्ठ रोग से पीड़ित दिव्यांग चरित्र की व्यथा कथा है। डॉक्टर साताप्पा शामराव सावंत के अनुसार *''इस उपन्यास में एक विकलांग प्रेमी की त्रासदी का चित्रण किया गया है। उसका प्रेमी कुष्ठ रोग से विकलांग होने के कारण उसे अपना घर-बार छोड़ना पड़ता है। भास्करन के कोढ़ग्रस्त होने पर शिवानी द्वारा प्रस्तुत किया गया वर्णन पाठकों के मन में कोढ़ग्रस्त रोगियों के बारे में दया भाव का निर्माण करने में सहायक बनता है।''* [2] शिवानी जी ऐसी प्रथम स्त्री लेखिका हैं, जिन्होंने दिव्यांगों के प्राय: समग्र प्रमुख दिव्यांग स्वरूपों पर आधारित उपन्यास एवं कहानियों का यशस्वी लेखा-जोखा किया है। उनका एक अन्य लघु उपन्यास 'करिए छिमा' भी कुष्ठ रोग पीड़ित दिव्यांगों पर

आधारित है। आधुनिक हिंदी उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने कवि सूरदास की जीवनी पर आधारित 'खंजन नयन' उपन्यास लिखकर दिव्यांग विमर्श में एक अतुलनीय महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भक्ति कालीन कृष्ण भक्ति शाखा के सुप्रसिद्ध कवि सूरदास जी जो कि जन्मत: अंधे थे, ऐसे दिव्यांग चरित्र के अवतरण से लेकर निर्वाण तक की व्यथा-कथा को इस उपन्यास में बड़े मनोयोग से अभिव्यक्त किया गया है। नारी विमर्श के लिए समर्पित लेखिका समाज सेवी एवं चिंतक श्रीमती मृदुला सिन्हा जी का उपन्यास 'ज्यों मेहंदी को रंग' दिव्यांगता पर आधारित न केवल उत्कृष्ट उपन्यास है, अपितु उनके प्रिय पुत्र परिमल की दिव्यांगता के कारण भोगा हुआ यथार्थ भी है। लेखिका की कलम साधती है- *''शारीरिक विकलांगों को यह दुनिया सही ढंग से देखती नहीं। शारीरिक अपंग व्यक्ति अपने लिए बेकार होता है, लेकिन ये सांवेगिक अपंग लोग तो दूसरों को बेकार बनाते हैं, सारे समाज को पंगु बना बैठते हैं। सारा समाज पंगु है।''*[3] वास्तव में लेखिका मृदुल जी ने इस वक्तव्य द्वारा समाज की सच्चाई को उजागर किया है। हीनता ग्रंथि के शिकार मानसिक दिव्यांगों की गाथा को लेखक राजेंद्र यादव ने 'अनदेखे अनजाने पुल' नामक उपन्यास में चित्रित किया है। यह उपन्यास निन्नी नामक एक काली कलुटी कुरूप नवयुवती की दुख भरी दास्ताँ है, जो हीन ग्रंथि की शिकार होकर जीवन के प्रत्येक सोपान में असफलता के कारण अवसाद से आच्छन्न रहती है। उसकी मन:स्थिति का निरूपण लेखक द्वारा सफलतापूर्वक किया गया है- *''अपनी कुरूपता को वह दूर नहीं कर सकी। दूसरों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी, जिससे वह हताशा का अनुभव करने लगी। अपनी मनोवृत्तियों का उदात्तीकरण न कर सकी मगर वह हीनत्व-ग्रंथि की ओर खिंच गई, जिससे जीवन भर वह परेशान रही।''*[4] इनके अतिरिक्त स्त्री चिंतक लेखिका मृदुला गर्ग का 'अनित्य', चित्रा मुद्गल का 'आवां', वाल्मीकि त्रिपाठी का 'विकलांग', राजेंद्र कुमार रस्तोगी का 'अंधे की आंख' आदि उपन्यास दिव्यांग विमर्श के प्रादर्श प्रमाण हैं।

आत्मकथा शब्द 'आत्म' और 'कथा' दो पदों से मिल कर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है अपनी जीवन कहानी। आत्मकथा शब्द को परिभाषित करते हुए डॉक्टर विनय कुमार पाठक बताते हैं- *''आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से संबद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है।''*[5] हिंदी साहित्य में बनारसी दास जैन द्वारा लिखित 'अर्द्ध कथा' हिंदी की पहली आत्मकथात्मक कृति है तथा यह कृति पूर्णतया पद्य में लिखित है। हिंदी साहित्य में रमणिका गुप्ता की 'हादसे', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै', प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' आदि अनेक आत्मकथाओं का सृजन हुआ है। दिव्यांग विमर्श में दिव्यांग व्यक्तियों द्वारा सृजित आत्मकथाओं में लेखक ललित कुमार द्वारा रचित 'विटामिन जिंदगी' आत्मकथा का अभूतपूर्व महत्व है। यह आत्मकथा लेखक ललित कुमार जी की है, जो कि चार वर्ष की अवस्था में ही पोलियो के प्रहार से पस्त हो जाते हैं। यह कथा उस अबोध अनजान बालक की है, जिसने पोलियो से ग्रस्त होते हुए भी जीवन में अतुलनीय सफलता अर्जित की। आत्मकथा में अभिव्यंजित हैं -*''लोग एक बार ही चलना सीखते हैं लेकिन हम जानते हैं कि ललित को जीवन में कई बार चलना सीखना पड़ा। सभी बच्चों की तरह वह भी बचपन में चलना और दौड़ना सीख चुके थे। लेकिन पोलियो ने उनके पैरों की सारी शक्ति छीन ली। इसके बावजूद उन्होंने लड़खड़ाते हुए फिर चलना सीखा। एक बच्चे का शक्तिहीन पैरों पर चलना और चलते जाना अचंभे में डालने वाला*

था।''[6] लेखक ललित का जीवन दुर्गम पीड़ाओं से भरा था। परंतु लेखक की जिजीविषा अदम्य थी। वह जीवन की सभी परेशानियों को चुनौती बतौर स्वीकार करता और आगे बढ़ता जाता। जीवन जीने की यह ललक और उत्साह सकलांगों को भी प्रेरणास्फूर्त करने में सक्षम हैं –*''ललित, तुम्हें स्कूल कॉलेज की परीक्षाओं में कितने अंक मिले यह महत्वपूर्ण नहीं हैं, महत्वपूर्ण यह है कि जीवन की परीक्षाओं में तुम अव्वल रहे हो। तुम देखना कि विदेशी विश्वविद्यालय तुम्हारे संघर्ष को अहमियत देंगे। एक कमजोर सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में पोलियो जैसी बीमारी का सामना करते हुए आज तुम खुद को इस स्थिति में ले आए हो कि स्कॉलरशिप के लिए आवेदन कर सको तो यह अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। तुम आवेदन करो, लोग न तुम्हारे संघर्ष को महत्व देंगे, बल्कि तुमसे प्रेरणा भी लेंगे। पश्चिमी देशों में सच्ची कोशिशों को बहुत महत्व दिया जाता है।''*[7] इस प्रकार लेखक विश्व की सर्वश्रेष्ठ मेडिकल रिसर्च काउंसिल की ह्यूमन जेनेटिक्स यूनिट में कार्य आरंभ करता है, जो यूरोपीय संघ की एक उल्लेखनीय परियोजना से जुड़ी थी। इसमें लेखक ललित जी की केंद्रीय भूमिका थी। ऐसे अद्भुत लेखक को विकलांगों के हितार्थ कार्य करने हेतु रोल मॉडल का पुरस्कार भी 3 दिसंबर 2018 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में राष्ट्रपति जी की अनुपस्थिति में उप-राष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू द्वारा प्रदान किया गया। लेखक ललित की यह आत्मकथा उनके जीवन संघर्ष एवं उद्देश्यों को पूर्ण प्रतिष्ठित करती है तथा यह सकलांगों के दयापूर्ण व्यवहार पर चोट कर उन्हें अपनी मानसिकता में परिवर्तन करने हेतु विवश करती है। निश्चित रूप से दिव्यांग विमर्श की यह आत्मकथा न केवल लेखक की ही आत्मकथा है, अपितु यह उन सभी दिव्यांगों का प्रतिनिधित्व करती है, जो दिव्यांग होते हुए भी जीवन में अनेक संघर्षों से जूझने के पश्चात सफलता के शिखर को प्राप्त करते हैं।

निष्कर्ष :

यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य ही समाज का दर्पण है। समाज की प्रत्येक समस्या, विचार-विमर्श, उपेक्षित अथवा तिरस्कृत पात्र साहित्य में यथोचित स्थान ग्रहण करते हैं। इन उपेक्षित पात्रों को न्याय दिलाना ही साहित्य का उद्देश्य है। आज पूरे देश में विभिन्न प्रकार के लगभग 12 करोड़ दिव्यांग मौजूद हैं। उनकी शिक्षा, पुनर्वास और आत्मनिर्भरता के लिए पृथक मंत्रालय की आवश्यकता महसूस की जा रही है। ऐसे में उन दिव्यांगों को केंद्र में रख कर साहित्य सृजन करना समय की आवश्यकता है। हिंदी साहित्य में दिव्यांग विमर्श अधुनातन विमर्श है, जो हिंदी साहित्य के विशाल वृक्ष में एक नवीन शाखा का विस्तार करता है। सर्वप्रथम कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा हिंदी साहित्य में हाशिए के पात्रों को स्थान मिला। दिव्यांग चरित्रों को भी सर्वप्रथम प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यास 'रंगभूमि' में प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात समकालीन लेखकों ने इस धारा को सींचा और 21वीं सदी में यह एक विमर्श के रूप में अवतरित हुआ। दिव्यांगों ने अपनी व्यथा और विकलता को विस्मृत कर अपनी ऊर्जा शक्ति से समाज का मार्गदर्शन किया है। और यह दिव्यांग विभूतियाँ आदिकाल से लेकर आधुनिक युग पर्यंत अधिष्ठित हैं। समय की माँग है कि दिव्यांगों का उत्थान कर एक समतापूर्ण समाज स्थापित किया जाए। तथा इन्हें आत्मनिर्भर व सशक्त बनाया जाए। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. विनय कुमार पाठक, 'विकलांग-विमर्श : दशा और दिशा', प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 81
2. डॉ. सुरेश माहेश्वरी, 'विकलांग-विमर्श का वैश्विक परिदृश्य', प्रथम संस्करण, 2014, पृ संख्या 531
3. मृदुला सिन्हा, 'ज्यों मेहंदी को रंग', प्रभात प्रकाशन, 2016, पृ संख्या 32
4. विनय कुमार पाठक, 'विकलांग-विमर्श : दशा और दिशा', प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 107
5. विनय कुमार पाठक, 'विकलांग-विमर्श : दशा और दिशा', प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 191
6. ललित कुमार, 'विटामिन जिंदगी', हिंद युग्म, 2022, पृ संख्या 9
7. वही, पृ संख्या 233

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

संस्कृति

पूर्वोत्तर भारत की कार्बी जनजाति के लोक गीत : एक विवेचन

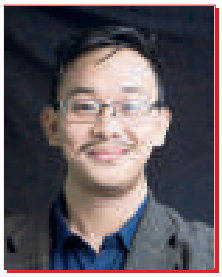

लोंगबिर इंग्ती

सहायक अध्यापक
हिंदी विभाग
आनंदराम ढेकियाल फुकन महाविद्यालय
नगांव (असम)-782002
919026330529
Longbirengtiofficial@gmail.com

भूमिका :

पूर्वोत्तर भारत की विशेषता इसकी विविधता है, जिसके परिणामस्वरूप पूरे क्षेत्र में अलग-अलग रीति-रिवाजों और परंपराओं के साथ अलग-अलग समाजों का निर्माण हुआ है। यदि भारत को अपनी विविध विशिष्टताओं के संदर्भ में दुनिया के एक छोटे प्रतिनिधित्व के रूप में देखा जा सकता है तो इस प्रतिष्ठित राष्ट्र के पूर्वोत्तरी भाग को इसकी सभी अनूठी विशेषताओं को समाहित करते हुए, पूरे ग्रह के सबसे छोटे अवतार के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में आठ छोटे प्रांत हैं - असम, अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा और सिक्किम, जिन्हें सामूहिक रूप से 'पूर्वोत्तर' के रूप में जाना जाता है। उत्तर-पूर्व भारत, जो प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर है, लंबे समय से नेग्रिटो, ऑस्ट्रियाई, किरात-मंगोल, द्रविड़, आर्य आदि विभिन्न मानव जातियों के लिए रुचि का स्थान रहा है। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में विभिन्न जनजातियाँ और उप-जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें अभी भी इन जातियों और प्रजातियों के अवशेष दिखाई देते हैं। असम राज्य में पहाड़ियों और घाटियों में रहने वाली उल्लेखनीय जनजातियों में बोडो-कछारी, लालुंग, कार्बी, मिस्सिंग, डिमासा, राभा, तिवा, रेंगमा, मिजो, जिमी नगा, देउरी (सुतिया), सोनोवाल कछारी, डिमासा-कछारी, मेच, मोरान, गारो, इत्यादि हैं।

बीज शब्द : लोक साहित्य, लोक विश्वास, लोक गीत, मौखिक परंपरा, लोक जीवन और उसकी संवेदना।

शोध पद्धति : यह शोध पत्र मुख्यत: दो स्रोतों पर आधारित है। सबसे पहले, कार्बी जनजाति के लोक-साहित्य-संस्कृति में गहराई से उतरने वाली संदर्भ पुस्तकों से परामर्श लिया गया है। दूसरे, यह पेपर असम में जनजातीय लोगों के सेमिनारों के दौरान किए गए ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अध्ययनों पर आधारित है।

कार्बी लोकगीत :

कार्बी जनजाति, जो पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख जातीय समूहों में से एक है, मुख्य रूप से असम के कार्बी आंग्लोंग जिले में पाई जाती है। पूर्वोत्तर क्षेत्र के भीतर अकादमिक चर्चाओं में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि कार्बी

तिब्बती-बर्मन भाषाई परिवार का हिस्सा हैं और सबसे लंबे समय से असम में रह रहे हैं। गैर-कार्बी समुदाय के व्यक्तियों को अतीत में आमतौर पर 'मिकिर' के रूप में जाना जाता था, फिर भी आधुनिक कार्बी बुद्धिजीवी अब 'अर्लेंग' शब्द को अपनाना पसंद करते हैं, जो उनकी मूल कार्बी भाषा में 'पुरुषों' को दर्शाता है। कार्बी लोक साहित्य की समृद्धि गद्य और पद्य दोनों विधाओं में देखी जा सकती है। सदियों से कार्बी लोक साहित्य लिखित लिपि की कमी के कारण मौखिक रूप से प्रसारित किया जाता रहा है। कार्बी मौखिक परंपरा में अभिव्यंजक रूपों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, लेकिन आधुनिकता के प्रभाव के कारण सांस्कृतिक प्रथाएँ या तो सह-प्रभावित हो गई हैं या विलुप्त हो गई हैं। हालाँकि, अब रोमन लिपि को अपनाने और इसे लिखित रूप में संरक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। कार्बी जनजाति के लोग अपने संगीत प्रेम और उत्सवी स्वभाव के लिए जाने जाते हैं। आमतौर पर यह माना जाता है कि उनके प्रत्येक पारंपरिक समारोह या अनुष्ठान में एक लोक गीत, एक लोक नृत्य और एक लोक वाद्ययंत्र बजाना शामिल होता है। इसलिए, लोक गीत कार्बी लोगों के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो उन्हें संगीत के माध्यम से अपने पूर्वजों से विरासत में मिली परंपराओं और लोक मान्यताओं को व्यक्त करने में सक्षम बनाते हैं।

कार्बियों के जीवन में संगीत का बहुत महत्व है, क्योंकि यह उनके समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनके पास विभिन्न अवसरों के लिए गाने हैं, जिनकी सूची नीचे दी गई है।

बाल गीत यानी ओसो केपाडोक अलून : ओएसओ केपाडोक अलुन यह एक लोरी है, जिसमें तीन खंड हैं, (1) तू-वा-ए-ए-अ अलुन, (2) अलादुंग लाडुंग अलुन और (3) कुर्दीदी अलुन। कार्बी बाल गीत कोमल धुनों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लोरियों का उद्देश्य रोते हुए बच्चों को सुलाना है। कार्बी में लोरी भी हैं, जिन्हें तुआ-ए या ओसो पाडोक अलुन के नाम से जाना जाता है। इन लोरियों को आमतौर पर बच्चे की माँ, बहन, दादी-नानी या नौकरानी गाती है। लोरियों की धुन में मिठास होती है, जिसे सुनकर बच्चे सो जाते है। कार्बी बाल गीत संरचना में 6 तथा 4 पंक्तियों या लंबी-लंबी पंक्तियों के बंद वाले होते हैं। इनमें दो-दो पंक्तियों में तुकबंदी होती है। एक उदाहरण देखें-

ओह ! चिक्लो पेन चिक्लोसो
नंग्सो अर्नी पोंतान्ग्लो
पपोन अलिंग पपोन नंग
मम केलोक पफिन दमनंग।

अर्थात - ओह! चाँद-तारे, तेरे बेटे को सूरज ने छीन लिया। उसे ले जाया जाए ताकि वह स्वादिष्ट भोजन का आनंद ले सके।

कार्बी समाज में बच्चों को सोने से पहले सांत्वना देने के लिए लोरी गाई जाती है। कार्बी भाषा में विभिन्न प्रकार की लोरियाँ हैं। इन लोरियों में मुख्य रूप से माँ द्वारा अपने बच्चे को कहे गए कल्पनाशील शब्द शामिल होते हैं। ये गाने मातृ भावनाओं और स्नेह से भरे हुए हैं, जैसे बच्चा मासूम होता है। ओस की बूँद से होकर गुजरने वाली सूर्य की किरणों से बनने वाले सुंदर रंगों के समान माँ की रमणीय कल्पना इन लोरियों के माध्यम से व्यक्त होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्बी माँ बच्चे की उम्र के अनुसार लोरी की रचना करती है। रचना में समय, प्रयुक्त भाषा और प्रकृति-संबंधी चित्रण सभी माँ द्वारा किए गए इस निष्कर्ष का समर्थन करते हैं। कार्बी समाज में महिला रसोई से लेकर झूम खेत तक हर काम के लिए जिम्मेदार होती है। व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद वह बच्चे के पालन-पोषण की जिम्मेदारी भी उठाती हैं। वह झूम खेत और घर में झोपड़ी में कपड़े का पालना बनाती है और बच्चे को सुलाने में मदद करने के लिए कई गाने गाती है। हालाँकि, इन गानों में ज्यादा प्रकृति नहीं है। चूँकि बच्चा अभी दुनिया से परिचित नहीं है, इसलिए उसका ध्यान गानों की धुन पर है। माँ की आवाज की धुन बच्चे के लिए एक सुखद एहसास पैदा करती है और उसे सो जाने में मदद करती है।

प्रेम गीत : प्राचीन काल में सुंदर संगीत रचनाओं के निर्माण के माध्यम से पुरुषों और महिलाओं के बीच प्रेम की अभिव्यक्ति को बेहद नाजुक तरीके से व्यक्त किया जाता था। कभी-कभी ये गाने लड़कों और लड़कियों के

बीच संवाद के रूप में भी प्रकट होते हैं, जिससे उन्हें अपने विचारों को साझा करने और आदान-प्रदान करने की अनुमति मिलती है। 'ओवे अलुन' को 'बोंग-ओई अलुन' के नाम से भी जाना जाता है। 'बोंग-ओई अलुन' में से कुछ हैं- बोंग-ओई मिर टाम्पे, बोंग-ओई मिर सेंगलोंग, बोंग-ओई मिर लोरी, बोंग-ओई मिर वानसन, बोंग ओई मिर मांडुंग, बोंग-ओई मिर मावे, बोंग-ओई मिर मारंग आदि। एक जिली अलून गीत का उदाहरण लें :-

निसोके रुप्जिली रंगनो
जिली ने नंग ओसो अको
रोंग्रो नंग्जुई रैप लोंग्लो
हा-इ से से से से से
पंगरुम फुरी अमेक्सो
चोरन के नोरने अदुक्सो
जिरहु केनान्तुं बाप अरवो
लासी ली चोरन केचो

अर्थात - जिली, जब तुम छोटी थी तो हम गाँव में एक साथ खेला करते थे। हमारी गतिविधियों में बाँस के छोटे-छोटे तने इकट्ठा करना, रेत से खाना पकाना और जंगली पत्तियों से करी तैयार करना शामिल था। आइए उन यादों को संजोएँ कि कैसे हमने खेल-खेल में खाना खाने का आनंद लिया।

संस्कार संबंधी लोक गीत : कार्बी जीवन में संस्कार महत्वपूर्ण महत्व रखते हैं, क्योंकि वे संस्कृति के रूप में जाने जाने वाले एकीकृत मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कार्बी समाज में बच्चे के जन्म से लेकर उसके निधन तक कई तरह के अनुष्ठान किए जाते हैं। जबकि भारतीय संस्कृति गर्भाधान, नामकरण, मुंडन, यज्ञोपवीत और गवना पर जोर देती है, ये अनुष्ठान कार्बी समाज में मौजूद नहीं हैं। इसके बजाए कार्बी समुदाय अनुष्ठान गीत गाते हैं, जो जन्म, विवाह और मृत्यु से जुड़े अनुष्ठानों के अनुरूप होते हैं।

चोमांगकन शब्द का उपयोग कार्बियों द्वारा आयोजित मृत्यु समारोह का वर्णन करने के लिए किया जाता है, कार्बी समाज में मृतक के लिए अंतिम संस्कार की परंपरा और प्रथा मौजूद है। यह परंपरा और रिवाज, जिसे 'चोमकन' के नाम से जाना जाता है, जिसे थिरेंग वांग्रेंग द्वारा शुरू किया गया था। मृत्यु अनुष्ठान के एक भाग के रूप में कार्बी समाज में मृतक को उनके स्वर्गीय निवास तक ले जाने के लिए शोक गीत गाने और आहुति देने की प्रथा है, जिसे समुदाय की सबसे महत्वपूर्ण और जटिल रूप से निष्पादित सामाजिक-धार्मिक घटनाओं में से एक माना जाता है। चोमांगकन त्योहारों के दौरान गाए जाने वाले लोक गीत हैं- (i) कापा-एर, (ii) कचारहे, (iii) मुसेरा केहिर, आदि। (i) कापा-एर : यह एक प्रकार का अश्लील अर्थ वाला कामुक गीत है, जिसे चोमकन उत्सव में नृत्य करते समय युवा लड़कों के एक समूह द्वारा गाया जाता है। (ii) कचारहे : अंतिम संस्कार भजन केवल 'लुनसेपी' नामक महिला गायक द्वारा गाया जाता है। गाने में एक जीवंत धुन है और इसे आमतौर पर एक पेशेवर महिला गायक द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, जिसे आमतौर पर 'चारहेपी' कहा जाता है। लुनसेपी ने कचारहे का प्रदर्शन करते समय जुम्बिली एथोन अलुन, डोला सरकु, होंग्वाद अलून का उपयोग किया जाता है। (iii) मुसेरा केहिर : यह कार्बियों के पिछले इतिहास को याद करने की एक महत्वपूर्ण शैली है। इसे चोमकन उत्सव, कारीबियों के मृत्यु अनुष्ठान के दौरान उच्च सम्मान के साथ सुनाया जाता है। असम की अन्य जनजातियों की तरह ही कार्बी जनजाति में भी मृतक की आत्मा से संबंधित कई लोक गीत प्रचलित हैं। कार्बी लोग मृतक के अंतिम संस्कार के दौरान दिवंगत आत्मा की मुक्ति के लिए 'चोमनकन' नामक मृत्यु उत्सव का आयोजन करते हुए ये गीत गाते हैं। कार्बी लोगों का मानना है कि चोमनकन के बिना आत्मा को पाप, ताप और दु:ख से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए यह एक दुखद लोक गीत है, जो कार्बी जीवन में महत्व रखता है। निम्नलिखित छंद इस समाज में 'चोमकन' परंपरा के शोक से हैं।

दुर्मि ठावी अन्न
लोंग्सीम अजांग
मुन्जिन कवेतंग
पु जादी पोंतंग
सीम पो मरंग
तिबो ला नेजंग
मुन्जिन कवेतंग

अर्थात- पृथ्वी की किशोरावस्था के दौरान लॉन्ग सिएम के बेटे की अप्रत्याशित रूप से मृत्यु हो गई। उन्होंने अपने पड़ोसियों से अंतिम संस्कार के बारे में सलाह ली और पारंपरिक रीति-रिवाजों का पालन किया। मृतक को घर के एक कमरे में रखा गया और श्रद्धांजलि अर्पित की गई। आखिरकार, चिता-चिता का आयोजन किया गया।

विवाह संबधी गीत यानि आदम आसार अलून : आदम आसार अलुन उन गीतों का एक संग्रह है, जो विवाह समारोहों के दौरान प्रस्तुत किए जाते हैं। ये मधुर गीत दूल्हा-दुल्हन को आशीर्वाद देने के लिए सामूहिक रूप से गाए जाते हैं। आदम आसार अलुन के चार चरणों में थाप केपलंग अलुन, बोंग केपलंग अलुन, थेलु अलुन और अर्नम केहांग अलुन शामिल हैं। कार्बी समाज में परंपराओं और रीति-रिवाजों का मिश्रण है, जिन्हें समाज के पुराने सदस्यों द्वारा मौखिक प्रथाओं के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जीवित रखा जाता है। कार्बी समाज में अधिकांश परंपराओं और रीति-रिवाजों को विवाह समारोहों के दौरान विवाह गीतों और मृत्यु उत्सवों के दौरान अंतिम संस्कार गीतों या मातम के माध्यम से निभाया जाता है। ये गाने एक पुरुष गायक द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, जिसें 'लुनसेपो' के नाम से जाना जाता है और एक महिला गायक द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, जिसे 'चारहेपी' के नाम से जाना जाता है। निम्नलिखित समाज के विवाह गीत के उदहारण हैं:-

सुमफोंग पेन सुम्फी
समे अकाह्त्री
वोहम चेतोंगरी
ला मिरिंग दोंसुरी
जुन्सोक अमन्पी
मार-इक नंग नंग जोरी
पुसी तंग मेजी
तुंग-इ हर्लोंग्बी
जुदेत अलाम्दी

अर्थात - नदी की ऊपरी और निचली धारा पर दो गाँव स्थित थे, अर्थात अकली रोंगसोपी और असीम, एक गैर-कार्बी गाँव। आसिम गाँव नदी की ऊपरी धारा पर स्थित था, जबकि अकलिसो रोंगसोपी गाँव नदी की निचली धारा पर स्थित था। यह नदी ग्रामीणों के लिए पीने के पानी और स्नान का मुख्य स्रोत थी। दुर्भाग्य से असीम गाँव के लोगों ने गंदे कपड़े धोकर और स्नान करके पानी को प्रदूषित कर दिया, जिससे यह पीने के लिए अनुपयुक्त हो गया। नतीजतन, स्वच्छ पेयजल की कमी को लेकर दोनों गाँवों के लोगों के बीच झगड़े होने लगे। वेलोंगबी और हरलोंगबी, जो अकलिसो रोंगसोपी गाँव में युवा प्रमुख और उप प्रमुख के पद पर थे, ने कार्रवाई करने का फैसला किया। उन्होंने हथियारों के भंडार के मालिक लोंगकामार लोंगकी से मुलाकात की और उससे तलवारें और ढालें प्राप्त कीं। वापस लौटते समय उनकी मुलाकात मिरिंगपी नाम की एक बुजुर्ग महिला से हुई। उन्होंने उन्हें युद्ध की इच्छा न करने की सलाह दी और इसके बजाए उन्हें मिरिंग रोंगसोपी गाँव में शादी समारोह में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। उनका यह कार्य युवा पीढ़ी के लिए एक आदर्श के रूप में काम करेगा।

त्योहार संबंधी गीत या चोखी अमो अलून : कार्बी लोग पूरे वर्ष विभिन्न त्योहार मनाते हैं, और इन त्योहारों के साथ झूम खेती से जुड़े गीत भी गाए जाते हैं। इन गानों को अलग-अलग श्रेणियों में व्यवस्थित किया गया है, जिनमें हचा केकन अलुन, लुखी केपलांग अलुन, बोटोर केकुर अलुन, रिटनोंग चिंगडी अलुन, हेन-अप अही केकन अलुन और जिर केदम अलुन शामिल हैं। कार्बी समाज में टेरोन रोंगसोपो गाँव को पहला गाँव होने का गौरव प्राप्त है, जहाँ कार्बी ने झूम खेती का अभ्यास शुरू किया था। यह गीत, संगीत और नृत्य का भी केंद्र था। युवा रोन्सिंगपो ने खुद को पीपल के पेड़ के फल के रूप में प्रच्छन्न करके धन की देवी को टेरोन रोंगसोपो गाँव का दौरा करने के लिए लुभाने में कामयाबी हासिल की। नीचे दिए गए छंद लोकी केपलांग के गीत के अंश हैं-

इरी कथार्पी मरंग
इरु बरिठे अफान
होवांग चोहांग अर्नी वांग
ओह! जार ओ मरंग
पिरठे सोकारबी अजांग
पिन्चोंग आदम आसार अजुतंग

अर्थात- कार्बी परंपरा के अनुसार, काथी को धन की देवी माना जाता था। वह स्वर्ग के देवता बैरीथे की बेटी थी, जो स्वर्ग में रहती थी। काथी ने अपने पिता से उसे पृथ्वी पर आने और वहाँ एक विवाह समारोह में भाग लेने की अनुमति देने का अनुरोध किया। प्रारंभ में उसके पिता बैरिथे जिद्दी थे और उसके अनुरोध को स्वीकार करने में झिझक रहे थे, क्योंकि उन्हें सांसारिक क्षेत्र मंजूर नहीं था, जो लालच और भ्रष्टाचार से भरा था। हालाँकि, लगातार विनती करने के बाद वह आखिरकार मान गए और लोगों के प्रति कोई सहानुभूति न दिखाने की चेतावनी के साथ उन्हें पृथ्वी पर आने की अनुमति दे दी। काथी स्वर्ग से उतरी और खुशी-खुशी समारोह में भाग लिया। हालाँकि, उनकी खुशी कार्बीज के सामने आने वाली विकट परिस्थितियों के कारण धूमिल हो गई, जिनके पास खाने के लिए चावल या सब्जियाँ नहीं थीं। इसके बजाए वे जीविका के लिए 'सिनिंग अंगकोर' और सब्जियों के विकल्प के रूप में 'लॉन्गले अंगकोर' नामक पत्तियों पर निर्भर थे। कार्बियों की दुर्दशा देखकर काथी को बहुत दुख हुआ, जिससे उसने एक बार फिर धरती पर लौटने का संकल्प लिया। अपने दूसरे आगमन में उनका लक्ष्य कार्बियों को खाद्य संसाधनों की कमी से बचाना था।

देवी-देवताओ के गीत या अर्नम अलून : असम की अन्य जनजातियों के समान कार्बी जनजाति धार्मिक अनुष्ठानों को अत्यधिक श्रद्धा के साथ मनाती है। वे अपने देवी-देवताओं को मूर्त प्राणियों के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि नदियों, पहाड़ों, पेड़ों, पौधों और चट्टानों को देवताओं के प्रतिनिधित्व के रूप में कल्पना करके पूजा करते हैं। 'चोजुन' नामक एक विशिष्ट समारोह आयोजित किया जाता है, जिसके दौरान राजा इंद्र और अन्य देवी-देवताओं का सम्मान किया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्बी जनजाति की सांस्कृतिक परंपराओं में एक भक्ति लोक गीत को व्यापक रूप से पसंद किया जाता है। कार्बी भक्ति गीतों के विभिन्न रूप हैं, जिन्हें 'अर्नाम अलुन' के नाम से जाना जाता है, जिनमें सर एंथोक अलुन, हेम्फू अलुन, थेकर अलुन, रिसो अर्नम केपलांग अलुन, अर्नाम केथे अलुन, पेंग हेम्फू अलुन शामिल हैं। इन 'अर्नाम अलुन' श्रेणियों का अत्यधिक सम्मान किया जाता है और इन्हें विशिष्ट धार्मिक आयोजनों के दौरान 'लुनसेपो' द्वारा गाया जाता है। कार्बी धर्म के सर्वोच्च देवता हेम्फू, कार्बी लोगों को शैतानों के यादृच्छिक हमले से बचाने के लिए बैरिथे के रूप में स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरे। गीत के निम्नलिखित छंद कार्बी समाज में हेम्फू के आगमन को दर्शाते हैं:-

बोरली -इ लिजंग
मेट रु रा -इ राजनग
बंग क्रुन्चिंगसई आलम
ला सोमिंदर अदंग
ला सो सुम्सी अजांग
ली ठिप ठंग कपमम

अर्थात- कार्बियों के जीवन दर्शन के अनुसार, उनका मानना है कि वे हेम्फू द्वारा पृथ्वी पर उसके दूसरे आगमन के दौरान बनाए गए थे। अपने पहले आगमन के दौरान हेम्फू ने कार्बियों केा बनाने से पहले, विभिन्न प्रकार के जानवरों को बनाया, जिनमें मांसाहारी, शाकाहारी और उभयचर जीव शामिल थे। हालाँकि, कार्बी शैतानों का शिकार बन गए, जिससे देवताओं में चिंता पैदा हो गई। बहुत चर्चा के बाद कार्बियों की रक्षा के लिए हेम्फू को लैंगमिंगपो वोहांग के रूप में भेजने का निर्णय लिया गया। बारिथे के आदेश का पालन करते हुए हेम्फू और उसकी बहन रसिंगजा स्वर्ग से उतरे और रेंगसेंगसांग गाँव में बस गए, जो रेंगसांग लैंगसो नदी की ऊपरी धारा पर स्थित है।

ऐतिहासिक गीत : फूरकिमो अलुन उन गीतों को संदर्भित करता है, जो कार्बियों की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हैं। ये गीत अतीत के कार्यात्मक मिथकों द्वारा समर्थित हैं। कार्बी के ऐतिहासिक गीतों के उदाहरणों में सबिन अलुन, हा-इमु- अलुन, रोंगकिम अलुन, सर केबट अलुन, लुनसे केपलांग अलुन, कुर केपोन अलुन, रुकासेन अलुन, बोर-एत- अलून, हनरी बोंग अलुन और भी बहुत कुछ शामिल हैं। आमतौर पर इस प्रकार के गीत विशेषज्ञ 'लुनसेपो' द्वारा गाए जाते हैं, जो मौखिक रूप से उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाते हैं।

ई उरति थविजंग
सी कार्बी एवे-लांग
सी सोंगसर ए-जुतांग
पेन सो-कार्बी नंग-प्लांग
ई बंग ई-रू रंग-मुकरंग
बैंग थिप-चेंग सम पेन संग
सी थिप-चेंग सम पेन संग
सी ई-आरयू सम पेन संग

यह गीत कार्बी समुदाय के पाँच मुख्य कुलों के गठन की कहानी बताता है। रंग-मुक्रंग, शीर्ष कार्बी देवताओं में से एक, पहले कार्बी माता-पिता - सुम और सांग बनाता है। समय के साथ सुम और सांग ने एक के बाद एक पाँच भाइयों को जन्म दिया। जोड़े की एक यात्रा के दौरान पहले बच्चे को ली और डू नदियों के देवताओं की देखभाल में छोड़ दिया गया है। इस वजह से पहले जन्मे बच्चे को ली-जांग या ली नदी के पुत्र के रूप में जाना जाता है, जो कार्बियों के ली या इंगती कबीले का निर्माण करता है। दूसरे बेटे के जन्म के कुछ समय बाद उसे भी इसी तरह की स्थिति से गुजरना पड़ा। उसे क्रोन नदी की देखभाल में छोड़ दिया गया है, और नदी देवता ने उसे गोद ले लिया है, जिससे उसे क्रोन-जांग या क्रोन नदी का पुत्र नाम दिया गया है। क्रोन को टेरोन कबीले के नाम से भी जाना जाता है। तीसरे बेटे को भी तुंग नदी देवता ने गोद लिया है। एक बच्चे के रूप में उसे एक बड़े बरगद के पेड़ का लेटेक्स खिलाया जाता है। चौथे बेटे को बड़े समुद्र (तालो-तमन) की देखभाल में छोड़ दिया गया है। लो देवता ने उसे गोद ले लिया और इस प्रकार लो-जांग या क्रो का चौथा कार्बी कबीला बना। पाँचवाँ बेटा, सबसे छोटा, माता-पिता के साथ रहता है और उसे ई-जंग (हमारा-बेटा) कहा जाता है। इस पाँचवें बेटे से समुदाय के रोंगहांग कबीले की उत्पत्ति हुई।

निष्कर्ष :

कार्बी जनजाति असमीया संस्कृति को समृद्ध करने वाली जनजातियों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। वह एक सुसंस्कृत जनजाति है, जिसकी समृद्ध लोक कथाएँ, लोक गीतों से युक्त हैं, जो उनकी पिछली परंपराओं से विरासत में मिली लोक मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये लोक गीत कार्बी जीवन के विभिन्न पहलुओं को कवर करते हैं, जिनमें धर्म, कृषि, जन्म, मृत्यु, बच्चे, बुजुर्ग, पहाड़, घाटियाँ, शराब, पानी, नदियाँ, झरने, बिहू, किंवदंतियाँ, रिश्तेदार, जानवर, खेत, आंगन, पेड़, पौधे शामिल हैं। उनके लोक गीतों में इन पहलुओं का सजीव चित्रण उनके उल्लेख के बिना कार्बी लोक जीवन पर चर्चा करना असंभव बनाता है। प्रसिद्ध कार्बी साहित्यकार रोंग्बोंग तेरांग के अनुसार ये लोक गीत कार्बी लोगों की आत्मा की अभिव्यक्ति हैं। ❑

संदर्भ सूची :

हिंदी :

1. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, लोक-साहित्य की भूमिका (चर्थ संस्करण-1986), पृ. 40
2. गुप्ता, रमणिका ,आदिवासी लोक -भाग 1 , पृ. 177
3. पाण्डेय,उदयभानु ,कार्बी कथाएँ , पृ-6
4. उप्रति, डॉ. कुंदनलाल- लोक साहित्य के प्रतिमान-पृ. 63
5. शर्मा, डॉ. चंदना , लोक साहित्य और संस्कृति- पृ.145

अँग्रेजी :

1. Lyall,Sir Charles,The karbis,spectrum publications,1972
2. Teron,Dharamsing ,Karbi studies,vol.3 (Folktales from the fringe)
3. Dhanraju,vulli,Karbi History Past & Present ,mittal publication new delhi ,2020
4. bey,Shri Mondol,The chronicle of karbi Literature,klaret printers,Diphu,karbi anglong,Assam,2021
5. Phukon, Girin, Folk Culture of indigenous communities of northeast india, Dvs Publishers, H.B Road,Panbazar,Guwahati,2017

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

हिंदी नाटक की विकास यात्रा : भारतेंदु युग से अब तक

सिमरन कुमारी

शोधार्थी (पीएच.डी), हिंदी विभाग
राजीव गांधी विश्वविद्यालय,
अरुणाचल प्रदेश-791112
8794394517
simrankumareranasimi@gmail.com

शोध-सार :

साहित्य समाज की छवि है। साहित्य और समाज का अंतर्संबंध होता है, जिसमें समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। इस दौरान साहित्य का सृजन विविध विधाओं में भी संपन्न होता है। इन्हीं विधाओं में नाटक विधा प्रकाश में आया। नाटक हिंदी साहित्य की प्राचीन और संवाद प्रधान विधा है। हिंदी नाटक का स्वरूप भारतेंदु युग में उभर कर आया। भारतेंदु हिंदी नाटक साहित्य के जनक माने जाते हैं। उन्होंने अनुदित और मौलिक नाटकों का सृजन तथा मंचन कर नाट्य लेखन को एक नया रूप प्रदान किया। भारतेंदु युग में हिंदी नाट्य लेखन और मंचन काफी हुआ। परंतु समय के बदलाव के अनुसार समकालीन युग में नाट्य लेखन और मंचन में काफी कमी आई है और बदलाव भी।

बीज-शब्द :

नाटक, अभिनय, रंगमंच, मौलिक, स्वरूप, समस्या, संवाद, भाषा, कथ्य, आस्था, भाव, प्रेम, कुंठा, अनुवाद।

प्रस्तावना :

नाटक शब्द 'नट' धातु से बना है, जिसका सामान्य अर्थ है- 'सात्विक भावों की अभिव्यक्ति'। हिंदी साहित्य जगत में नाटक प्राचीन व मनोरंजक विधा के रूप में प्रकाश में आया। प्राचीन समय में नाटक पद्य के रूप में संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में लिखा गया। हिंदी नाटकों का स्वरूप भारतेंदु युग में उभरकर आया। भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म सन 1850 में हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक युग और हिंदी नाट्य साहित्य प्रवर्तक रहे। भारतेंदु युग में मौलिक नाटक लिखने का अभाव था, इसलिए भारतेंदु ने संस्कृत, बांगला और अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद कर अनुदित नाटक लिखे। तत्पश्चात अनुदित नाटकों की प्रेरणा से मौलिक नाटक लिखने की शुरुआत की। इस तरह उन्होंने सत्रह नाटकों की रचना की। भारतेंदु हरिश्चंद्र 'नाटक' को नौटंकी जैसे शब्द से निकालकर हिंदी साहित्य जगत में लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। भारतेंदु नाट्य लेखन के साथ-साथ नाट्य प्रस्तुति के लिए मित्र-मंडली भी तैयार कर नाटक में अभिनय के लिए अपने मित्रों को प्रोत्साहित भी करते थे। नाटक उनका प्रिय विधा था। जीवन के अंतिम

समय तक उन्होंने नाटक की लक्षणा को स्पष्ट करते हुए कहा–*''हमारे जीवन–नाटक का प्रोग्राम नित नया–नया छप रहा है,पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी है। देखें लास्ट नाइट कब होती है।''*[1] अर्थात नाटक में जीवन की समग्र घटनाएं चित्रित है। नाटक में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। नाटक में इतिहास और वर्तमान की घटनाएँ वर्णित होती हैं। नाटक लिखा जब भी जाए, पर मंचन वर्तमान में ही होता है। इस कारण उसकी प्रासंगिकता भी हमेशा बनी रहती है।

नाटककार जब भी नाटक लिखता है, दो अवयव से गुजरता हुआ नाट्य का सृजन करता है। पहला 'लेखन' और दूसरा 'मंचन'। वैसे नाटक की सफलता मंचन में ही मानी जाती है। भारतेंदु पूर्व युग में नाटकों की स्थिति काफी अच्छी नहीं थी, क्योंकि उनके पास एक स्थायी मंच या संस्था नहीं था। भारतेंदु पूर्व नाटकों का मंचन गाँवों, नगरों, चौराहों और राजसभाओं में अभिनय किया जाता था। कठपुतलियों के खेल से या संवाद के रूप में नाटक का अभिनय किया जाता था। जैसे–लव–कुश ने अपने माता सीता की समग्र जीवन की व्यथा को पिता राम के समक्ष नाटकीय संवाद के रूप में अभिव्यक्त किया। भारतेंदु युग में हिंदी नाटक के स्वरूप में काफी बदलाव आया। उस समय हमारा देश गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ था। भारतेंदु और उनके साथियों ने नाटकों के माध्यम से जन–जन में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने की पूरी कोशिश की। नाट्य लेखन के साथ–साथ कई नाटकों जैसे अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, जानकी मंगल आदि का मंचन भी खूब किया। भारतेंदु का पहला अभिनीत नाटक 'जानकी मंगल' है। इसके बाद अंधेर नगरी, भारत–दुर्दशा और सत्य हरिश्चंद्र जैसे कई नाटकों का मंचन सफलतापूर्वक हुआ। भारतेंदु के नाटकों में लोक की अभिव्यक्ति होती है। कहा जाता है– नाटक जितना सार्थक, ठोस और रुचिपूर्ण होता है, दर्शकजन को उतना ही आनंद तथा रस की अनुभूति होती है। भारतेंदु और प्रसाद दोनों पारसी रंगमंच से प्रभावित थे। दोनों नाटककार पारसी रंगमच, संवादों में कमी और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति विशेष अनुराग की कमी के कारण प्रश्न चिन्ह लगाए। परंतु पारसी रंगमंच को पूरी तरह दोनों नें अस्वीकार नहीं किया, बल्कि पारसी रंगमंच की युक्तियों को परिष्कृत और संस्कारित कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति और ऐतिहासिकता से जोड़ते हुए भाषा की गंभीरता को ध्यान में रखकर नाटकों को प्रस्तुत किया। भारतेंदु के नाटक जन–जन में प्रचलित हैं, क्योंकि इनके नाटकों के कथ्य, संवाद और भाषा में सहज–सरल तथा भावपूर्ण दिखाई देते हैं, जिसे आमजन या किसी वर्ग के लोग इनके नाट्य साहित्य को पढ़ और देख सकते हैं। प्रसाद के नाटक के कथ्य ऐतिहासिक, भाषा क्लिष्ट और पात्रों की संख्या काफी होती है, जो मंचन के लिए आसान नहीं होता। फिर भी प्रसाद के सभी नाटकों का मंचन सफलतापूर्वक हुआ। प्रसाद के नाटकों के विषयों को देखते हुए सत्येंद्र कुमार तनेजा का कहना है – *''प्रसाद के नाटक साहित्य की दृष्टि से इसलिए असाधारण पाए गए, क्योंकि उनका विषय फलक इतना बहुआयामी तथा उनका परिप्रेक्ष्य इतना अंतर्मुखी रहा है कि उनकी अनेक संभावनाएँ खुल सकती हैं। प्रसाद के लेखन की असली ताकत उनकी अनुभवपुष्ट तात्विक अंतर्दृष्टि है, जो उनके लेखन की सामयिक अर्थवत्ता की रक्षा करता है। वहीं भारतेंदु के नाटक हर वर्ग के व्यक्ति के हृदय में सहजता से स्थान पा जाते हैं।''*[2] अर्थात भारतेंदु और प्रसाद हिंदी नाट्य साहित्य को एक नया आयाम देते हैं। प्रसाद युग में हिंदी नाटक में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। सीधी–सपाट भाषा के स्थान पर लाक्षणिक और अर्थ संपन्न भाषा का प्रयोग होने लगा, जो प्रसाद जी के छायावादी कविता के तत्वावधान में विस्तारित हुआ। इस तरह हिंदी नाटकों का खूब लेखन और मंचन हुआ। प्रसादोत्तर युग आते–आते नाटकों में एक नया परिवर्तन प्रकाश में आया। प्रसादोत्तर युग में नाटकों का विषय ऐतिहासिकता से मुक्त होकर सामाजिक और समस्या–प्रधान नाटक लिखा जाने लगा। कई नाटककार पाश्चात्य नाटककारों इब्सन और बर्नार्ड शॉ से प्रभावित होकर समस्या प्रधान और सामाजिक नाटक लिखने लगे। जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, गोविंद मिश्र आदि समस्या प्रधान नाटककार रहे हैं।

प्रसादोत्तर युग में देश ने स्वतंत्रता की ओर कदम रखा।

आम-जन को अंग्रेजी हुकूमत से मुक्ति तो मिली, परंतु मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई। मोहभंग के कारण समाज में विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न हुईं। जैसे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मतभेद, आतंक-भ्रष्टाचार, एकता के स्थान पर मतभेद जैसी भावना उत्पन्न होने लगी। दूसरी ओर औद्योगिकीकरण, बेरोजगारी, कंपनियों ने अपना हक जमा लिया। इस प्रकार व्यक्ति के भीतर आस्था, प्रेम, स्नेह के स्थान पर अनास्था, कुंठा, एकल, अजनबीपन जैसी भावना उत्पन्न होने लगी। अब इसी परिस्थिति को सम्हालने के लिए समाज में रह रहे लोगों के मन में एकता, समर्पण, भाईचारे जैसी भावना जाग्रत करने के लिए हिंदी नाटककारों ने नाटकों को माध्यम बनाया। नाटककार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, सुरेंद्र वर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, जगदीश चंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर तथा शंकरशेष जैसे नाटककारों ने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजीनीतिक समस्याओं पर अपनी कलम चलाई।

तत्पश्चात नाटक में एक नई धारा का विकास हुआ, जिसे समकालीन युग के नाम से जाना गया। इस युग में प्रमुखत: सामाजिक समस्याओं पर बहस छिड़ी। सामाजिक समस्याओं जैसे- स्त्री की व्यथा, बेरोजगारी, शिक्षा की कमी, यौन शोषण, अंतर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह, दांपत्य समस्या, पारिवारिक विघटन, जातीय-धर्म भेद, नैतिक तथा मानवीय मूल्यों का पतन आदि समस्याएँ उभर कर आईं। सभी समस्याओं को नाटकों के माध्यम से उजागर करने का पूर्ण प्रयास किया गया। वर्तमान में अन्य विधाओं (कविता, कहानी तथा उपन्यास) की तुलना में नाटक कम लिखे जा रहे हैं और मंचन भी कम होता जा रहा है। नाटक के मंचन में कमी इसलिए आई, क्योंकि कुछ हद तक धारावाहिक, फिल्मों और कॉमेडी ने नाटकों का स्थान ले लिया है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि नाट्य लेखन व मंचन में कमी होने के बावजूद नाटक की प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आई। नाटक लोकप्रिय विधा है, जिसके लिखे कम जाने पर भी पूर्ण सफलता मिलती है। नाटक जब भी खेला जाता है, हर बार जीवंत-सा प्रतीत होता है। नाटक ही एक ऐसी विधा है, जो कुल मिलाकर प्रेम, कर्तव्य, राष्ट्रीयता तथा नैतिकता जैसे पुराने आदर्शवादी दायरे से बाहर निकलकर खुली हवा में नए रूप और संदर्भों के साथ अपनी महत्ता को दर्शाती है। नाटक की सफलता दर्शक की प्रतिक्रिया में ही होती है। वर्तमान में नाटक कम लिखे और पढ़े जा रहे हैं। इस पर नाटककार अपनी चिंता को व्यक्त करते हैं। इस संदर्भ में हृषीकेश सुलभ का कहना है-*''नाटक कम लिखे गए, कम लिखे जा रहे हैं, और कम लिखे जाएँगे- यह सत्य है। आप जब नाटककार को रंगमंच की दुनिया में दूसरे दर्जे की भी नागरिकता देने को तैयार नहीं कर रहे हैं तो यह उम्मीद क्यों कि कोई आपके लिए नाटक लिखे? आज बहुत सारे निर्देशक स्वयं नाटक तैयार कर रहे हैं। ये नाटक नहीं हैं। ये प्रस्तुति-आलेख है, जिन्हें उनके अलावा कोई दूसरा निर्देशक छूने को तैयार भी नहीं होता और उस आलेख की मृत्यु हो जाती है। रंगमंच को हिंदी के शब्द जगत के पास विनम्र भाव से जाना होगा। नाटककार को भी तकनीकी रूप से सक्षम होना होगा। उसे भी अपने आलेख में नई रंगभाषा सिरजनी होगी और यह तभी संभव है, जब वह भी विनम्र भाव से रंगमंच की दुनिया में अपनी आवाजाही बनाए। ढेरों नए नाटक रचे जाने की प्रतीक्षा में है।''*[3]

कहने का तात्पर्य है कि अन्य विधाओं की तुलना में नाटक कम लिखे और पढ़े जा रहे हैं। नाटक की रचना करने से पूर्व नाटककारों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पात्रों की कल्पना, समसमायिक कथ्य, सरल संवाद, भाषा में मिठास, निर्देशक, मंचन के लिए प्रकाश योजना, वेशभूषा, रंग-परिकल्पना आदि से गुजरना होता है, तब जाकर एक नाटक का सृजन पूर्ण होता है। कारण यह है कि जब सिनेमा, धारावाहिक, आधुनिक शिक्षा का प्रभाव इतनी तेजी से बढ़ा कि नाट्य लेखन और नाट्य प्रस्तुति कम होने लगी। क्षण भर में तकनीकी के माध्यम से मनोरंजन की हर एक चीज सरलता से उपलब्ध होने लगी है, जिस कारण दर्शक जन सिनेमा और रिल्स की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं। इस तरह नाटक पढ़ने और देखने वालों की संख्या में कम आई। वस्तुत: ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्य की पुरानी परंपरा तथा पद्धतियाँ खत्म होने के कगार पर हैं।

प्राचीन समय में नाट्य लेखन की भरमार थी, वर्तमान में नाट्य लेखन कमजोर होता जा रहा है। नाटककार प्रताप

सहगल जी की दृष्टि में नाटकों की स्थिति कमजोर है। उनके आस-पास के माहौल से उनको अनुभव हुआ कि कुछ लोग ऐसे हैं, जो नाटक की महत्ता को नहीं समझ रहे हैं। उस पर प्रताप जी का कहना है – *''नाटक को साहित्य विधा नहीं मान रहे, यह तो उनकी अज्ञानता है। अगर नाटक ही साहित्य नहीं है तो वह साहित्य क्या है। मूल विधा तो हमारी काव्य ही है। नाटक तो अलग हुआ बाद में। नाटक तो मूलतः दृश्य काव्य है। दृश्य काव्य को काव्य कहते हैं तो दृश्य और श्रव्य काव्य हो गया तो दोनों ही साहित्य विधा हैं ही। यह आधुनिक काल में कुछ ऐसे लोग हैं, जो नाटक से परहेज करते हैं और संपादक भी बन जाते हैं। और इस तरह वह नाटक को साहित्य की विधा नहीं मानते, मैं कई लोगों से इस विचार पर लड़ा भी हूँ। और उनके ही पत्रिका में नाटक को प्रतिष्ठा मिली है।''*[4] नाटक हिंदी साहित्य की प्राचीन तथा लोकप्रिय दृश्य-विधा है। वर्तमान में नाटक में कई बदलाव आए। इस बदलाव के साथ-साथ नाट्य लेखन और मंचन पहले की तरह काफी कम हुआ है। वर्तमान में नाटक का स्थान कुछ हद तक फिल्मों और धारावाहिक ने ले लिया। युवा पीढ़ी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की इस कदर शौकीन हो गई है कि उनके लिए क्या सही और क्या गलत ? इसकी पहचान वह भूलते जा रहे हैं। वर्तमान की युवा पीढ़ी को कहा जाए कि नाटक देखने चला जाए तो वह तुरंत मना करेंगे। वहीं दूसरी ओर फिल्म देखने को कहा जाए तो तुरंत जाएँगे। यह सब आधुनिकता का प्रभाव है। आधुनिक युग में बहुत कुछ अच्छा हुआ तो बहुत कुछ बुरा भी।

वर्तमान में नाटक की कमी इसलिए भी है, क्योंकि नाट्य लेखन और मंचन के लिए निर्देशक, निर्माता, रंगशाला, मंडली, दर्शक आदि की जरूरत होती है। अधिकतर लेखक और निर्देशक इसे जुटाने में असमर्थ होते हैं। इस कारण नाट्य लेखन तथा मंचन काफी कम हुआ है। इसके साथ लोगों की रुचि भी कम हो गई है। नाटक देखने और पढ़ने वालों की संख्या में भी कमी आई है। नाटक लोकप्रिय विधा है और लोकप्रिय विधा बनाए रखने के लिए नाटक को खूब पढ़ा और देखा जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

नाटक मूलतः एक कला के रूप में चर्चित है। नाटक में जीवन का समग्र भाव अभिव्यक्त होता है। नाटक लिखने और अभिनय करने की कला हर किसी में नहीं होती। प्राचीन समय में नाटकों का जो स्वरूप था, उसमें कई बदलाव आए हैं। नाट्य लेखन और मंच को देखने की एक नई दिशा प्राप्त हुई है। वर्तमान में नाटक कम लिखे जा रहे हैं, इस पर नाटककारों ने अपनी चिंता व्यक्त की है। पाठक कम हो रहे हैं, अधिकांश लोग सिनेमा घरों और धारावाहिक तथा अन्य चीजों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसलिए नाटक को लोकप्रिय बनाने के लिए पाठक और दर्शक को नाटक में रुचि रखनी होगी, तभी नाटक अन्य विधाओं की तरह अधिक लिखा एवं पढ़ा जाएगा। नाटक हिंदी साहित्य की विधा है और चाहे जो हो- नाटक साहित्य में प्रमुख विधा है और रहेगा। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. सं. अजित पुष्कल/हरीशचन्द्र अग्रवाल, 'नाटक के सौ बरस' पृ.108, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2004
2. डॉ. संगीता, 'इक्कीसवीं सदी के इक्कीस नाटक : एक दृष्टि' पृ. 15, पराग प्रकाशन, कानपुर, 2021
3. सं. राकेश बिहारी, 'पुस्तकनामा' (पत्रिका), पृ. 326, प्रकाशित, 2023
4. https://www.youtube.com/watch?si=xB 6oduM1N1T8Myu&v=erw8Hbbz14s&feature=youtu.be

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

समाज

चित्रा मुद्गल की कहानियों में निम्न वर्ग का आर्थिक संघर्ष

शशि कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय
अमृतसर, पंजाब, पिन -143005
9797634518, 9149435743
shashikumari1051997@gmail.com

प्रो. (डॉ.) सुधा जितेन्द्र

डीन-भाषा संकाय, हिन्दी-विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय
अमृतसर (पंजाब)-143005
9814851010

शोध सार :

अन्य वर्गों की भाँति निम्न वर्ग भी समाज का अभिन्न अंग है। समाज को संतुलित गति प्रदान करने में इस वर्ग का विशेष योगदान है। परंतु यह चिंता का विषय है कि समाज में यह वर्ग अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। आर्थिक अभाव, पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा मानसिक, शारीरिक शोषण, घृणा तथा द्वेष आदि सहते हुए यह वर्ग कुंठाग्रस्त होता जा रहा है। यह वर्ग अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक नहीं है। यह वर्ग सिर्फ अपनी रोजी-रोटी की समस्या से मुक्ति पाने में ही उलझा हुआ है।

बीज शब्द : समाज, मार्क्सवाद, उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग।

विश्लेषण :

व्यक्तियों के समूह को समाज की संज्ञा दी गई है, जो संस्कृति, परंपराओं, रहन-सहन, जाति एवं रंग भेद के आधार पर एक जैसे हैं अथवा एक दूसरे से भिन्न हैं। समाज रूपी व्यवस्था को परिचालित करने में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थ के आधार पर ही समाज उच्च और निम्न वर्ग में बँटा हुआ है। अर्थ के आधार पर यह वर्गीकरण जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनके अनुसार समाज में अर्थ के वर्गीकरण का मुख्य आधार उत्पादन प्रणाली है। अर्थात जो व्यक्ति श्रम करते हैं या वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, उन्हें उनके श्रम का आधा हिस्सा भी नहीं मिलता। फलस्वरूप पूँजीपति वर्ग और अमीर होता जाता है और श्रम करने वाला व्यक्ति गरीब। अपनी पुस्तक *''कंट्रीब्यूशन टू ए क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी''* की भूमिका में कार्ल मार्क्स ने समाज का विश्लेषण करते हुए लिखा है, *''व्यक्ति द्वारा विकसित की गई सामाजिक उत्पादन व्यवस्था में, वह कुछ पूर्व निर्धारित संबंधों में रहता है, जो उसकी इच्छा से परे होते हैं। यह संबंध उत्पादन संबंध होते हैं, जो सामाजिक विकास क्रम में लगातार तब्दील होते हैं। इन उत्पादन संबंधों का कुल भोग ही समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करता है। इसी वास्तविक आधारभूमि पर विविध और राजनीतिक अधिरचना का निर्माण होता है और यही सामाजिक चेतना के विभिन्न संस्तरों को अभिव्यक्त करता है।''*[1]

अत: अर्थ के आधार पर संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को मुख्य रूप से तीन भागों

में बाँटा गया है-उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, एवं निम्न वर्ग। उच्च वर्ग उन लोगों का समूह है, जो आर्थिक रूप से संपन्न है। आर्थिक संसाधनों पर इन लोगों का अधिकार है। यह वर्ग मध्यम और निम्न वर्ग पर पूरा अधिकार रखता है। मध्य वर्ग वह वर्ग है, जो न अमीर है न गरीब। इसके पश्चात निम्न या सर्वहारा वर्ग है, जो अपने श्रम के आधार पर अपनी आजीविका अर्जित करता है। उच्च और मध्य वर्ग की अपेक्षा यह वर्ग अपने शारीरिक श्रम से अधिक काम करता है।

लोकभारती प्रमाणिक हिंदी कोश में निम्न वर्ग के संदर्भ में लिखा गया है, *''प्रं. (स.) समाज का वह निचला वर्ग या श्रेणी जो बहुत गरीब हो और प्राय: मेहनत मजदूरी या छोटी नौकरी पाकर निर्वाह करता है।''*[2]

इस वर्ग के जीवन की विडंबना यह है कि इतना अधिक शारीरिक श्रम करने के पश्चात भी यह वर्ग अपने काम के अनुसार वेतन प्राप्त नहीं कर पाता। अधिकतर इस वर्ग के हिस्से में उच्च वर्ग की प्रताड़ना, अपमान एवं मारपीट ही आती है।

सामाजिक जीवन के आरंभ में किसी के पास किसी प्रकार की कोई निजी संपत्ति नहीं थी और न ही शोषण की अवधारणा। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर था। परंतु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया, वैसे-वैसे समाज का वर्गीकरण भी हुआ। दास व्यवस्था, सामंतवाद, पूँजीवाद आदि सभ्यताएँ सामाजिक वर्गीकरण को चित्रित करती हैं। यह वर्गीकरण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि शोषित वर्ग आरंभ से ही शोषक की चक्की में पिसता रहा है। प्रत्येक युग में यह शोषण की प्रवृत्ति अपने भिन्न-भिन्न रूपों में विद्यमान रही है। साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है, अत: समाज में परिवर्तित होती प्रत्येक दशा और दिशा साहित्य को प्रभावित करती है।

साठोत्तरी दशक की सुप्रसिद्ध महिला कथाकार चित्रा मुद्गल का कथा संसार अपने आप में हिंदी जगत की विराट संपत्ति है। आपने भी समाज में विभिन्न वर्गों की स्थितियों का यथार्थांकन किया है, जिसमें निम्न वर्ग एवं आम जन प्रमुख हैं। आम जन से जुड़ी होने के कारण वह उनके दु:ख दर्दों से भली-भाँति परिचित हैं। शोषण के आधुनिक रूप को उनकी कहानियों के माध्यम से समझा जा सकता है। चित्रा जी की इसी विशेषता के संदर्भ में संगीता शर्मा लिखती हैं, *''वे उन साहित्यकारों में से नहीं हैं, जो जीवन और जगत को दूर-दूर से देखकर कल्पना के सहारे अपना एक समानांतर आभासी विश्व रच लिया करते हैं। इसके विपरीत वे एक ऐसी कथाकार के रूप में जानी जाती हैं, जिनकी दुनिया आभासों और अनुमानों से नहीं, वास्तविकताओं से बनी रची हाड़-मांस की दुनिया है।''*[3]

रेलवे स्टेशनों पर भीख माँगने वाले भिखारियों से लेकर शहरों में बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों में काम करने वाले नौकरों की जीवन दुर्दशा तथा संघर्ष का चित्रण चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों में किया है।

''मामला आगे बढ़ेगा अभी'' कहानी में मोट्या नामक युवक अपना बचपन और जवानी फ्लैट में रह रहे सक्सेना साहब के घर उनकी गाड़ी धोते हुए बिताता है। महत्वांकाक्षी होने के कारण वह उस घर को अपना घर समझते हुए मालकिन को अपनी माँ के समान समझता है। उसके मात्र एक बार बीमार पड़ने के कारण जब उसे पता चलता है कि वह घर के लिए दूसरे नौकर की तलाश में हैं तो उनके प्रति उसका सारा प्रेम घृणा में परिवर्तित हो जाता है। बीमारी के चलते काम पर न जाने के कारण मालिक उसका वेतन काटता रहता है। मोट्या को यह अनुभव होता है कि किसी के प्रति विशेषकर इस पूँजीपति वर्ग के प्रति जितनी भी ईमानदारी बरती जाए,

यह लोग मात्र काम और पैसे के साथी हैं।

''धक्का मारकर घर से बाहर कर दिया मेरे को। सब समझता मैं, काम का वास्ते काम पर हकाला, सा'ब ने..... ।''[4]

धन के अभाव एवं अपनी आवश्यकताओं को पूरी न करने के कारण लड़ाई-झगड़े से भरा वातावरण निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने का चित्र प्रस्तुत करता है। माता-पिता के आपसी लड़ाई-झगड़े के कारण संतानें दु:ख भोगती हैं और उनका वर्तमान, भविष्य दोनों दलदल में फँसे किसी मनुष्य-सा प्रतीत होता है।

'त्रिशंकु' कहानी में आर्थिक स्थिति से ग्रस्त 'बंडू' की माँ शारीरिक रूप से पति के अत्याचार सहते हुए दुबली-पतली होकर भी लोगों के घरों में झूठे बर्तन साफ करके अपने बच्चों का पेट पालती है। माँ की ऐसी दुर्दशा देखकर बंडू के बाल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वह अपनी पढ़ाई छोड़ने का निर्णय कर लेता है।

''पढ़कर करेगा भी क्या? जब तक पढ़-लिखकर हवलदार के माफिक कमान-धमाने के काबिल बनेगा, चौबीसों घंटे मेहनत करती, बूँद-बूँद निचूड़ती माँ जिंदा बचेगी?''[5]

बंडू के समान ही निम्न वर्ग की ऐसी परिस्थितियाँ निम्न वर्गीय बच्चों को शिक्षा से दूर धकेलती हैं। इस कारण ही इस वर्ग के लोग प्रतिदिन आगे बढ़ने की बजाए उसी सीमा तक सीमित रह जाते हैं।

'बेईमान' नामक कहानी में सड़कों पर अखबार बेचने वाला बाल युवक अपने मालिक के अत्याचारों से पीड़ित है। सुबह और शाम ठंड में सिकुड़ते हुए गाड़ियों में अखबार बेचते हुए अधिक पैसा न कमा कर लाने पर उसे प्रतिदिन प्रताड़ना ही मिलती है। उसका मालिक प्राय: उसे संदेह की दृष्टि से देखता है और पैसे न मिलने पर क्रोधित स्वर में कहता है, *''तू भोला नहीं है, छँटा हुआ है, नम्बरी! चाट-चूट आया होगा रुपये।''*[6]

मालिक के सामने लाख सफाई देने के उपरांत भी उसके अत्याचार कम नहीं होते। वह ईमानदारी से काम करता था, परंतु इस घटना के उपरांत पैसे लाकर अपने मालिक को देने की बात मन में ठान लेता है। सीधा-साधा बालक अब बेईमानी के रास्ते पर निकल पड़ता है। लोगों को बेवकूफ बना कर या अखबार देने से पहले ही पैसे लेकर भाग जाना उसका पेशा बन चुका है।

वास्तव में पूँजीपतियों और उनके व्यवहार से प्रताड़ित होकर अधिकतर धरातलों पर निम्न वर्ग बुरे रास्तों की ओर अग्रसर होता है। कहीं-कहीं वह अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों के चलते भी स्वयं के लिए काँटों भरा जीवन का निर्माण कर लेता है। इस सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में प्लेटों का समर्थन करते हुए सोहन राज तातेड़ और सुशील नान्दल अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र नई दिशाएँ' नामक पुस्तक में लिखते हैं, *''मानव उसी तरह से समाज में व्यवहार करता है, जिस तरह से समाज उसे व्यवहार करना सिखाता है।''*[7]

आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण पूँजीपति या उच्च वर्गीय लोग निम्न वर्गीय स्त्रियों का शोषण भी करते हैं। 'केंचुल' कहानी में कमला नामक स्त्री का पति नालायक है, वह प्राय: शराब के नशे में ही डूबा रहता है। ऐसे में कमला मेहनत करके अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है। बानी नामक दुकानदार आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की सहायता करता है। सहायता के पीछे स्त्रियों के साथ गलत काम करना उसका पेशा बन चुका है। कमला की बेटी 'सरना' के साथ भी उसने ऐसा करने का प्रयास किया था। कमला को उस समय बहुत क्रोध आया था, पर फिर मन में विचार करती है, *''किसके बूते पर लड़े? अपने? एकली अपने? ताकत है लड़ने की? मजाल थी कि बानी की छीछालेदार किए बगैर ही लौट पड़ती? पर लौटती कैसे न! बानी के एहसान जो छाती पर लदे बैठे हैं।''*[8]

अपनी आर्थिक स्थितियों के कारण ही निम्न वर्ग उच्च वर्ग के शोषण की चक्की में निरंतर पिसता चला जाता है।

'जिनावर' कहानी में असलम नामक निम्न वर्गीय पुरुष सरवरी (घोड़ी) के बल पर अपने परिवार का पालन-पोषण करता है। सरवरी का अचानक बीमार पड़ना असलम के परिवार को मानो गतिहीन बना देता है। वह फिर भी

बीमार सरवरी को लेकर प्रतिदिन निकल जाता है। उसके मन में यह अशंका निरंतर बनी रहती है कि, *''कहीं ऐसा न हो कि अशक्त सरवरी बीच सड़क पर चक्कर खाकर बैठ जाए और सवारियाँ धक्का खाएँ भेट के ठेले-सी लुढ़कर रास्ते पर हों।''*[9]

सरवरी की बीमारी से असलम भीतर से टूट जाता है। अपने जीवन से हताश असलम टाँगे पर बैठने वाली स्त्रियों से भी अपमान ही पाता है। एक मुस्लिम महिला से दस रुपए किराया माँगने पर महिला का कथन- ''दस रूपये....लो सुनो इनकी अति!'' से असलमन मन में यही विचार करता है कि यह संसार चाहे कितनी भी उन्नति कर ले, परंतु रहेगा सदैव भूखा ही। अधिक पैसे कमा कर न लाने पर अपनी पत्नी जुबैदा से भी आए दिन असलम की लड़ाई हो जाया करती है। यह छोटी-छोटी परेशानियाँ और धन का अभाव निम्न वर्गीय लोगों को ऐसा सोचने पर मजबूर कर देता है कि समाज में उनका अस्तित्व ही क्या है?

'नीले चौखाने वाला कम्बल' कहानी में टिकैतिन कक्की नामक विधवा निम्न वर्गीय स्त्री की सामाजिक दुर्दशा का चित्रण हुआ है। अपने पति की मृत्यु के पश्चात वह अपने बेटे 'बच्चू' का पालन-पोषण मेहनत-मजदूरी के बल पर करती है। आजीवन कोई भी उसकी सहायता नहीं करता। जब पुत्र जवान होता है तो समाज के उच्च वर्ग द्वारा यह भी सहन नहीं हो पाता।

सामाजिक षड्यंत्रों का शिकार बच्चू मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। टिकैतिन काकी का एकमात्र सहारा उनसे छिन जाता है। भरे कंठ से टिकैतिन काकी कहती है, *''ब्याह, गौना, रौना होना नहीं मोरे बचुआ का, कम-से-कम तेरहीं धूम-धाम से हो। मेहनत-मशकत से जोड़ी पाई-पाई आखिर भी किसकी खातिर?''*[10]

निम्न वर्ग की इन त्रासदियों को उनकी धरातल पर जाकर अनुभव कर उन्हें अभियक्त करना चित्रा मुद्गल को एक विशेष पहचान प्रदान करता है। यह वह वर्ग है, जिनकी कोई विशेष पहचान नहीं है, परंतु इस वर्ग के अभाव में एक सफल समाज की कल्पना करना भी असंभव-सा प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :

चित्रा मुद्गल जी समकालीन कहानी की सफल हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियों के पात्र किसी-न-किसी वर्ग का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के दु:ख-चिंताओं को समझना और उन्हें अभिव्यक्त करना, उनके साहित्य की विशेषता है। निम्न वर्गीय पात्र, जिनमें पूँजीपतियों के घरों में काम करने वाले नौकर, रिक्शे वाले, टाँगा चलाने वाले, सड़क पर पड़े भिखारियों, रेलवे स्टेशनों पर अखबार बेचने वाले आदि चरित्रों का जीवंत चित्रण चित्रा जी की कहानियों में हुआ है। आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न अमानवीयता, नैतिक मूल्यों का विघटन, उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। ❑

संदर्भ :

1. उद्धृत अमरकांत, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2016, पृ.278
2. लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, रामचन्द्र वर्मा, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 1998, पृ.467
3. संगीता शर्मा, चित्रा मुद्गल की कहानियों में यथार्थ एवं कथाभाषा, दिल्ली : सृजनलोक प्रकाशन, 2019, पृ.5
4. चित्रा मुद्गल, लाक्षाग्रह, दिल्ली : रेमाधव पब्लिकेशंस, 2023, पृ.30
5. चित्रा मुद्गल, लाक्षाग्रह, दिल्ली : रेमाधव पब्लिकेशंस, 2023, पृ.58
6. चित्रा मुद्गल, जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं, दिल्ली : रेमाधव पब्लिकेशंस, 2023, पृ.80
7. सोहन राज तातेड़, सुशील नान्दल, समाजशास्त्र: नई दिशाएँ, जयपुर: अनु प्रकाशन, 2018, पृ.13
8. चित्रा मुद्गल, शून्य, दिल्ली : रेमाधव पब्लिकेशंस, 2023, पृ. 18
9. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि भाग-3, दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2018, पृ.37
10. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि भाग-3, दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2018, पृ.194

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

'पहरुआ जन' में अभिव्यक्त सामाजिक और वर्ग चेतना

केशव कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय,
फगवाड़ा, पंजाब-144411
9878726391
keshavkumari1985@gmail.com

डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री

सहायक प्रोफेसर (हिंदी)
सामाजिक विज्ञान एवं भाषा संकाय
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
फगवाड़ा, पंजाब-144411
9918695656

शोध-सार :

मिथिलेश्वर हिंदी साहित्य के एक प्रसिद्ध कथाकार हैं, जो कि सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़ा हुआ साहित्य लिखते हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन को बखूबी उगेरा है। इनकी कहानी वर्तमान ग्रामीण जीवन के विभिन्न अंतर्विरोधों को उद्घाटित करती है, जिनसे पता चलता है कि आजादी के बाद ग्रामीण जीवन वास्तव में किस हद तक भयावह और जटिल हो गया है। बदलाव के नाम पर हुआ यह है कि आम लोगों के शोषण के तरीके बदल गए हैं। मिथिलेश्वर की प्रमुख कृतियाँ हैं -बाबूजी, मेघना का निर्णय, हरिहर काका, चल खुसरो घर अपने, (कहानी संग्रह) तथा झुनिया, युद्ध-स्थल, प्रेम ना बाड़ी उपजे और अंत नहीं यह, उनके प्रमुख उपन्यास हैं। 'पहरुआ जन' उनके उपन्यासों में से एक उपन्यास है, जो कि हाल ही प्रकाशित हुआ है। इसका प्रकाशन वर्ष 2023 है। यह उपन्यास 21वीं सदी की सामाजिक परिवेश पर आधारित है।

प्रख्यात कथाकार मिथिलेश्वर का उपन्यास 'पहरुआ जन' एक समर्पित समाज सेवक के जीवन संघर्ष की जीवंत कथा व्यक्त करते हुए सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ उनके सक्षम प्रतिकार को न सिर्फ उजागर करता है, बल्कि समाज सेवा और राजनीति के अंतर संबंधों को उद्घाटित करते हुए समाज सेवा के नए मूल्य स्थापित करता है। इस रूप में सर्वथा नए विषय पर नूतन मूल्य की स्थापना का यह उपन्यास भारतीय लोकतंत्र की बेहतरी के लिए अभीष्ट मार्ग प्रशस्त करता है। इसके तहत भारतीय जीवन और समाज की विकृतियों के सामूहिक विरोध की मर्मस्पर्शी कथा पाठकीय मन को न सिर्फ संवेदित करती है, बल्कि विचारों के स्तर पर उन्हें उद्वेलित भी करती है।

बीज-शब्द :

सामाजिक चेतना, वर्ग-संघर्ष, आर्थिक विषमता, विषमतामूलक परिस्थितियाँ।

पहरुआ जन दो शब्दों के मेल से बना है। परुआ + जन । पहरुआ का अर्थ

है- पहरा देने वाला और जन का अर्थ है- लोग। अर्थात 'पहरुआ जन' का शाब्दिक अर्थ है— पहरा देने वाले लोग। ये लोग न तो सत्तासीन हैं और न ही सत्ताहीन हैं। ये उन आम लोगों का समूह है, जो इन दोनों की गतिविधियों पर नजर रखता है ताकि सत्ता से जुड़े लोग सही से अपना काम कर सकें और विरोधी पक्ष के लोग उनके काम में कोई रुकावट न पैदा कर सकें। ये लोग बिना किसी लालच और स्वयंहित के समाज के विकास के लिए कार्यरत रहते हैं। 'पहरुआ जन' उपन्यास प्रोफेसर ज्ञानेश गौतम समाज सुधारक के जीवन परआधारित है, जो कि सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ उपन्यास में संघर्ष करते नजर आते हैं। उपन्यास की कथावस्तु सात भागों में विभक्त है। हर भाग किसी-न-किसी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक अथवा सांप्रदायिक विसंगति पर आधारित है। जैसे-जैसे प्रोफेसर ज्ञानेश गौतम अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे कथा वस्तु भी आगे बढ़ती है। और उनके जीवन के हर पड़ाव पर एक नई कथा उनके जीवन के साथ जुड़ती है। उपन्यास में हम देखते हैं कि जहाँ प्रोफेसर गौतम गायब हो जाते हैं, वहीं पर उपन्यास का अंत हो जाता है। लेकिन हम अंत में देखते हैं कि उपन्यास का अंत होते हुए भी उपन्यास में एक नई चेतना की शुरुआत होती है, जिसे प्रोफेसर ज्ञानेश ने नाम दिया था 'पहरुआ जन'।

सामाजिक चेतना, शोषण, वर्ग-संघर्ष, असमानता, भेदभाव, आर्थिक विषमताएँ, बाल विवाह, वैवाहिक समस्याएँ, छुआछूत, विधवा समस्या आदि विषमतामूलक परिस्थितियों के प्रतिक्रया स्वरूप मस्तिष्क में विकसित होकर क्रांतिकारी रूप में प्रदर्शित करती है, जिसे मानव मन में मानवतावादी भावना का संचार होता है तथा व्यक्ति नैतिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। अत: सामाजिक चेतना का कार्य समाज सुधार और उसका उद्धार करना है। प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी, परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। उसे देवी सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी माना जाता था। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान होता तो पुरुषों के बराबर स्त्रियों की भी सहभागिता रहती थी। यद्यपि उस समय भी अरूंधती, लोपामुद्रा और अनुसूइया आदि नारियाँ देवी रूप में प्रतिष्ठित थीं। मध्य काल में स्त्रियों की स्थिति में अधिक गिरावट आई और महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया तथा बहुत सारी कुप्रथाओं ने अपने पाँव पसार लिए। जैसे- शिक्षा से वंचित कर दिया, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी वीभत्स प्रथाओं ने स्त्रियों की मन:स्थिति को झकझोर कर रख दिया। इसके बावजूद स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई पड़ती हैं। आज भारतीय समाज में स्त्री अपने अपराजेय जीवन शक्ति के बल पर सदियों के बंधन तोड़कर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं और बहुत से सम्मानित पदों को सुशोभित कर रही हैं, लेकिन कुछ क्षेत्रों में स्त्रियों की दशा में बहुत परिवर्तन दिखलाई नही पड़ता। यहाँ हमें स्त्रियों की समानता का झूठा व्यवहार ही समझ आता है। स्त्रियों की मन:स्थिति का उनके पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक दशा का सही ज्ञान मिथिलेश्वर की कहानियों और उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। मिथिलेश्वर बिहार के ग्रामीण परिवेश के कहानीकार हैं। इसी कारण से इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से ग्रामीण परिवेश में लंबे-लंबे घूँघट काढ़कर घर की चहारदीवारी में घुटने वाली स्त्रियों को साहित्य के केंद्र में लाने का सफल प्रयास किया है। मिथिलेश्वर की रचनाओं में हाशिए पर जीने वाली भारतीय ग्रामीण स्त्रियों का यथार्थ चित्र दिखाई पड़ता है। इनके नारी पात्रों में संघर्ष करती हुई, सुनयना, राधिया नरेश बहू, बुधनी सावित्री दीदी, झुनिया इत्यादि दिखाई पड़ती हैं। स्त्रियाँ अनेक कारणों से सदियों से शोषण और उत्पीड़न का शिकार होती रही हैं। ऐसी कुछ रचनाएँ - सावित्री दीदी, थोड़ी देर बाद तिरिया जन्म, रात शांता, झुनिया नाम की एक लड़की और संगीता बनर्जी में

स्त्रियों के शोषण और उत्पीडन् का यथार्थ चित्र उकेरा गया है। मिथिलेश्वर जैसे गंभीर, सूक्ष्मदर्शी और अंतर्दृष्टि संपन्न लेखक स्त्रियों की दशा और उनके टूटते हुए सपनों को अनुमानित कर समाज के समक्ष चुनौती के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्राचीन काल से ही सामाजिक परंपराओं के नाम पर महिलाओं के साथ अन्याय होता आया है। आज भी ऐसी गलत परंपराएँ, वह रिवाज हमारे सभ्य समाज में मौजूद हैं, जो महिलाओं के उत्पीड़न में सहायक हैं। भारतीय संस्कृति इस बात की पक्षधर रही है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। लेकिन यह सब खोखले वादे सिद्ध होते रहे हैं, महिलाओं की सुरक्षा के लिए बनाया गया कानून तो असरदार है, लेकिन उसे लागू करने वाली व्यवस्था बेकार साबित होती रही है। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा व अपराध से उनका मानसिक व शारीरिक शोषण होता है और उनका भावी व्यक्तित्व का विकास रुक जाता है। जब किसी महिला के साथ कोई अनहोनी घटना होती है तो उसका सारा जीवन एक कलंक बनकर रह जाता है और उसे घुट-घुट कर जीने को मजबूर होना पड़ता है। बलात्कार हमारे समाज की एक ऐसी समस्या है, जो संपूर्ण विश्व में एक नासूर की तरह फैली हुई है। प्राचीन समय में तो यह समस्या उतनी गंभीर नहीं थी, परंतु पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव बढ़ने से भारत में भी दिन -प्रतिदिन यह एक गंभीर समस्या बनकर उभर रही है। हमारे देश में एक दशक पहले हर चार घंटे में सात बलात्कार होते थे, जो बढ़कर दोगुना हो चुके हैं। पिछले दशक में महिलाओं के विरुद्ध अपराध पर प्रस्तुत की गई एक रिपोर्ट से पता चलता है कि भारत में हर 40 मिनट में एक बलात्कार होता है। इसमें आयु के हिसाब से बलात्कार की सर्वाधिक शिकार महिलाएँ 16 से 30 वर्ष के आयु समूह की हैं। निर्धन कन्याओं को तो ग्रामीण परिवेश में भी इस समस्या का सामना करना पड़ता है, जबकि कामकाजी महिलाएँ बाहर जाने से भी डरती हैं और वह पूरे समाज पर आश्रित होकर रह जाती हैं। घर में भी अपने पारिवारिक सदस्य पास पड़ोस या रिश्तेदारों के द्वारा भी महिलाओं के साथ बलात्कार की घटनाएँ होती रहती हैं। 'पहरुआ जन' उपन्यास में हम देखते हैं कि 'जगराम' की बेटी 'कुमकुम' को 'हरी कोठी' से संबंध रखने वाला 'मितांशु' अपहरण कर लेता है, तथा अपने साथियों के साथ मिलकर उसके साथ सामूहिक बलात्कार करता है। वह अपने जुर्म को छुपाने के लिए 'कुमकुम' की बहुत ही बेरहमी से हत्या करके उसकी लाश को 'कृषि फार्म' के किनारे फेंक देता है, जिसके बारे में ज्ञानेश गौतम को फोन पर मैसेज के द्वारा संदेश आता है, यथा- *''इसी वक्त उनके फोन पर यह मैसेज आया — 'स्कूल से लौटते हुए कल जो लड़की गायब हो गई थी, अभी उसका शव मिला है। सामूहिक रेप के बाद उसकी हत्या कर दी गई है। इस घटना को लेकर शहर के लोगों का गुस्सा फूट पड़ा है।*

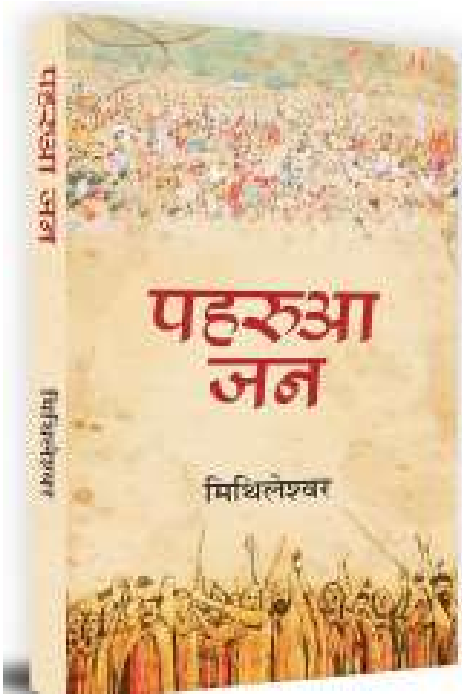

शहर में उबाल आ गया है। स्थिति बवाल की बन गई है।''[1] मितांशु एक संपन्न परिवार के उच्च वर्ग से संबंध रखता था। उसके परिवार वाले सभी दिल्ली में रहते थे। उसके परिवार में कुछ राजनीतिक थे, तो कुछ ऊँचे पदों पर आसीन थे। वह यहाँ पर पढ़ाई करने के लिए 'हरी कोठी' में रहता था। परंतु वह पढ़ाई करने की बजाय बाकी सभी अन्य असामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित रहता था। उसकी गुंडागर्दी और असामाजिक गतिविधियों से शहर के लोग बहुत परेशान रहते थे। कुमकुम के बलात्कार और हत्या से लोगों का गुस्सा फूट पड़ा था। मितांशु के इस दुष्कर्म से लोगों में एक तरह की अपने परिवार और समाज के प्रति असुरक्षा की भावना पैदा हो गई थी। उन्हें लगता था यदि बलात्कार जैसे दुष्कर्म को यहीं पर रोका ना गया तो अपराधियों का इसी तरह मनोबल बढ़ता रहेगा और इस तरह का अपराध शहर और समाज में बढ़ता रहेगा, जो कि समाज के लिए एक खतरा है। ज्ञानेश के कथन के समर्थन में पूरी भीड़ तालिया से गूँज उठी। कुछ लोग बोल भी उठे- ''हां सर, हां, सर। उन गुंडों की गिरफ्तारी तक यहाँ से हमें नहीं हटना।'' भीड़ की इस सहमति से अवगत हो अब वह अपनी मुख्य बात पर आ गए- *''हमारी प्यारी बच्ची कुमकुम तो अब वापस नहीं आ सकती। उसके साथ न्याय का अब यही तकाजा है कि उसके अपराधियों की गिरफ्तारी शीघ्र हो और उन्हें कठोर से कठोर सजा मिले। इस संबंध में अभी-अभी जिला प्रशासन से मेरी बात हुई है। हमारे इस अहिंसक धरना आंदोलन के बीच वे आड़े ना आकर हमें पूरा सहयोग करेंगे। यह समय की माँग है कि ऐसी घटनाओं पर जनता की ऐसी मुहिम के साथ जिला प्रशासन को भी खड़े रहना है, तभी अपराधियों का मनोबल टूटेगा, तभी वह पकड़ में आएँगे या आत्मसमर्पण करेंगे। इस धरनास्थल से यह हमारा शंखनाद है कि अपने समाज में हम ऐसी दरिंदगी कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे।''*[2]

उपन्यास में हम देखते हैं कि कैसे निम्न वर्ग का व्यक्ति जब अपने अधिकारों के प्रति सजग होता है तो तो वह 'व्यक्ति चेतना' ना होकर एक 'वर्ग चेतना' या आंदोलन का रूप ले लेता है। वह आंदोलन जो अपने हक और इंसाफ के लिए दिल्ली तक की सरकार को हिलाने का बल रखता है, जिसके आगे अपराधी की पहुँच भी काम नहीं आती है और वह हार कर उस जन आंदोलन के सामने अपने घुटने टेक देता है। कुमकुम के बलात्कार के इंसाफ के लिए जो जन आंदोलन शुरू हुआ था, उसके आगे मितांशु की पहुँच काम नहीं आती है और वह जन आंदोलन से डर कर आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार हो जाता है। यहाँ हम देखते हैं कि जब एक वर्ग चेतना जागृत होती है तो वह किसी भी समाज में फैली अपहरण और बलात्कार जैसी असामाजिक बुराइयों को जड़ से उखाड़ कर फेंकने का बल रखती है।

कुमकुम की घटना के बाद ज्ञानेश गौतम की प्रसिद्धि दिनों दिन बढ़ती जाती है, जो युवा वर्ग को बहुत प्रभावित करती है। इस घटना के बाद रोज ही कोई ना कोई ज्ञानेश गौतम से मिलने आता और सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ लड़ने के लिए कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करता। ज्ञानेश गौतम के व्यक्तित्व ने युवाओं को काफी प्रभावित किया, जिससे उनमें समाज सेवा की चेतना जागृत हुई। वह चेतना उनमें पहले से थी, परंतु माहौल के अभाव में वह निष्क्रिय बने हुए थे, द्रष्टव्य है- *''उस धरना-आंदोलन की समाप्ति के एक सप्ताह बीतते-बीतते ज्ञानेश से मिलने वाले लोगों में उत्साही युवाओं का एक ऐसा वर्ग उनसे जुड़ता चला गया, जो उनके नेतृत्व से बेहद प्रभावित था, जिनके मन में उनके नेतृत्व ने समाज सेवा की भावना जागृत कर दी थी। वैसे उनके अंदर ऐसी चेतना पहले से थी। ऐसे आदर्श और विश्वास के वे समर्थक थे, लेकिन माहौल के अभाव में निष्क्रिय बने हुए थे।''*[3]

मिथिलेश्वर गौरैयापुर की बस्ती द्वारा हमारे सामने उस वर्ग को प्रस्तुत कर रहे हैं, जो कि हमारे समाज के एक उपेक्षित, वंचित, विपन्न और पीड़ित लोग हैं, जिनको न सिर्फ आवास मुहैया कराने की जरूरत है, अपितु सरकार द्वारा बनाई गई योजनाओं को भी उन तक पहुँचाने की जरूरत है, क्योंकि कई बार शिक्षा के अभाव में सरकार द्वारा बनाई गई योजनाएँ उन तक पहुँच नहीं पाती हैं। सरकार के विस्तार और निर्माण कार्य से उन गरीबों का घर और परिवार उजड़ रहा था। उन्होंने अधिकारियों के सामने बहुत हाथ पैर जोड़े, परंतु उन्होंने एक नहीं सुनी। इस तरह वह अपनी गुहार लेकर प्रोफेसर ज्ञानेश गौतम के पास जाते हैं ताकि वह अपने घर-परिवार को उजड़ने से बचा सकें, क्योंकि उन गरीबों के पास उस बस्ती के सिवा और कोई ठिकाना नहीं होता है। उपन्यास में हम देखते हैं कि प्रोफेसर ज्ञानेश गौतम 'गौरैयापुर' के लोगों में जागृत हुई चेतना का समर्थन करते हुए अधिकारियों से मिलने उनकी बस्ती में जाते हैं और उनके सामने ऐसा प्रस्ताव रखते हैं कि यदि सरकार को विस्तार और निर्माण का कार्य करना है तो इन गरीबों को वहाँ से हटाने से पहले इनके रहने का एक सुरक्षित स्थान उनके लिए मुहैया करवाया जाना चाहिए। चूँकि प्रोफेसर ज्ञानेश गौतम एक जाने-माने प्रसिद्ध समाज सुधारक हैं इसीलिए सरकार को उनकी बात मानकर उन गरीबों के लिए एक नया स्थान मुहैया करवाना पड़ता है और जब तक इसकी व्यवस्था नहीं होती है उनको एक महीने तक वहीं पर रहने की इजाजत दी जाती है ताकि इस बीच सरकार को उनके लिए एक सुरक्षित स्थान का इंतजाम करने का समय मिल सके।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति की चेतना ही उसे लोक- कल्याण के कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। चेतना व्यक्ति को जागरूक बनाती है और समाज में रहकर व्यक्ति को सामाजिक नियमों के अनुसारआचार-व्यवहार करने के लिए बाधित करती है, क्योंकि जो व्यक्ति समाज के नियमों के अनुसार अपना जीवन यापन करता है, वही सच्चे अर्थों में ही सामाजिक प्राणी है। चेतना कभी रुकती नहीं है, बस उसके रूप बदलते जाते हैं। व्यक्ति की चेतना वर्ग चेतना में बदलती है और वर्ग चेतना एक जन आंदोलन का रूप ले लेती है। हम देखते हैं कि जन आंदोलन के सामने समाज की कोई भी बुराई टिक नहीं पाती। ❑

संदर्भ :

1. मिथिलेश्वर, पहरुआ जन, दिल्ली, सतसाहित्य प्रकाशन, 2023, पृष्ठ- 20
2. मिथिलेश्वर, पहरुआ जन, दिल्ली, सतसाहित्य प्रकाशन, 2023, पृष्ठ 36
3. मिथिलेश्वर, पहरुआ जन, दिल्ली, सतसाहित्य प्रकाशन, 2023, पृष्ठ 50

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

अवलोकन

मामोनी रायसम गोस्वामी के उपन्यास 'दँताल हातिर उये खोवा हाओदा' में वर्णित गिरिबाला का जीवन-संघर्ष

दीपिका दास

शोधार्थी, हिंदी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी, उ.प्र.-221005
8724969917
deepika87249@gmail.com

साहित्य समाज के प्रतिरोध एवं संघर्ष की दास्तान है। साहित्य चाहे जिस काल खंड, परिस्थिति का हो, उसमें समाज के समस्त पहलुओं का रूपांकन होता है। संघर्ष किसी भी स्तर पर और किसी भी रूप में हो सकता है। यह एक सामाजिक-मानसिक द्वंद्व है, जो कई बार मानव-मन में भावनात्मक परिवर्तन को जन्म देता है। सामाजिक परिवर्तन संवेदनशील साहित्यकारों को सदैव् आंदोलित करते रहे हैं। साहित्यकार का यही आंतरिक द्वंद्व साहित्य के रूप में प्रकट होता है। विगत दशकों में असमीया साहित्य में भी स्त्री उपन्यासकारों ने बदलते हुए जीवन-संदर्भ में स्त्री की बदली हुई मानसिकता तथा पितृसत्ता से संघर्ष को विशेष स्थान दिया है। इसी क्रम में प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में मामोनी रायसम गोस्वामी उपाख्य इंदिरा गोस्वामी का विशेष स्थान है। जन-कल्याण, शोषण के प्रति विद्रोह एवं संघर्ष, स्त्री-अस्मिता तथा समता हेतु युद्धरत आम स्त्री आदि इनके उपन्यास का मुख्य उपजीव्य रहा है।

भारतीय साहित्य में नारी की स्थिति और भारतीय उपन्यास :

इतिहास साक्षी है, वैदिक काल के पश्चात् हर समाज, धर्म, जाति, वर्ग तथा कालखंड में स्त्री विवशतापूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त रही है। पहले हमारे यहाँ मातृसत्तात्मक समाज था। परिवार और समाज के केंद्र में स्त्रियाँ होती थीं। धीरे-धीरे समाज में पितृसत्ता ने अपना स्थान स्थापित कर लिया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियाँ सदैव शोषित और उत्पीड़ित रही हैं। पुरुष उसके महत्त्व को कमतर करता गया। उसके आत्मिक और मानसिक विकास के सारे रास्ते बंद कर दिए गए। सामाजिक रीति-नियमों से बँधकर वे एक यंत्रणामय जीवन जीने को विवश हो गईं। इसी समय स्त्रीवाद उभरकर सामने आया। *'स्त्रीवादी साहित्य स्त्री-पुरुष दोनों का लिखा हो सकता है। यह एक ऐसा साहित्य है, जो स्त्री के हितों एवं स्त्रीवादी राजनीति का पक्षधर होता है।'*[1] *'नारीवाद एक ऐसा विचार है, जो कि पुरुष और स्त्री के मध्य असमानता को स्वीकार कर नारी के सबलीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। नारीवाद एक विचारधारा भी है और एक आन्दोलन भी नारीवाद के सिद्धांत के अंतर्गत मूल्यरूप से समानता व्*

सबलीकरण के माध्यम से महिलाओं व् पुरुषों के मध्य व्याप्त असमानता को नकारना है।'[2]

उपन्यास 'दँताल हातिर उये खोवा हाओदा' (1988) तब लिखा जा रहा था जब पश्चिम में स्त्रीवादी आन्दोलन अपनी प्रारंभिक अवस्था में था। तत्कालीन असमीया समाज में स्त्री की अवस्था अत्यंत दयनीय थी। सामाजिक परंपराओं ने स्त्रियों को बुरी तरह जकड़ रखा था। उस समय मामोनी रायसम गोस्वामी जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री-मुक्ति की चेतना पैदा की। उन्होंने स्त्री-जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलुओं का विश्लेषण करते हुए स्त्री अस्मिता एवं उसके द्वारा किए जा रहे संघर्ष को भी दर्शाया है। अस्मिता के सन्दर्भ में रोहिणी अग्रवाल लिखती है – *'स्त्री की अस्मिता की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है।'*[3] वहीं स्त्री के ऊपर हो रहे इस अत्याचार के संदर्भ में मामोनी रायसम गोस्वामी लिखती हैं – *'नारिये तार विरुद्धे निजेई युद्ध कोरीब लागिब। पुरुषे एइटू कोईसे बुली मानी लोई तेऊलोके बही थाकिले नहब। आई डू नोट लाइक देट। मई हेइटुके कोईसू जे नारिये भितोरुआ शक्तिटो आनिब परा नाइ आजीलोईके। किमान परसेंट आमार शिक्षित आसे। धरा 40 शतांशर अधिक। मोई भाबू हेईखिनिरे बहुखिनी महिला आगुवाई निबो पारिम। तेऊलोके निजे करप्ट हइसे, नीजे शोषित हइसे, तेऊलोके नीजेउ कोरा नाइ, आनको कोरिबले दिया नाइ। मई दोषटू एकमात्र महिलाक दिउ। तेऊलुके नीजे किय उलाई आहिब परा नाइ।'*[4] अर्थात् स्त्रियों को स्वयं इन परिस्थितियों से लड़ना होगा। पुरुषों ने जो कह दिया उसपर विचार किये बगैर उसे स्वीकार लेना अनुचित है। 40 प्रतिशत शिक्षित महिलाएं भी यदि आगे बढ़ने की इच्छा रखे तो वें अन्य को भी आगे बाधा सकती हैं, किंतु वे स्वयं भ्रष्ट हैं, शोषित है, इसकी एकमात्र दोषी वे स्वयं है।

भारतीय परिवार एवं समाज में स्त्री को सदैव अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ा है। संपूर्ण उपन्यास में गिरिबाला को भी समाज में पल रहे रक्षणशील ब्राह्मण रीति-नियमों के विरुद्ध, अपनी स्वतंत्रता, अस्मिता एवं अधिकार हेतु संघर्ष करती है। कुछ स्थानों पर उसका संघर्ष मौन रूप में मुखरित हुआ है तो वहीं दूसरी ओर

उसका यही संघर्ष प्रतिरोध के रूप में प्रस्फुटित हो उठा है।

'दँताल हातिर उये खोवा हाओदा' उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र गिरिबाला सत्रिया परिवेश में पली-बढ़ी अत्यंत शांत एवं सौम्य प्रवृत्ति स्त्री है। अत्यंत कम आयु में ही उसका विवाह लाटू गोसाई से हो जाता है। विवाहोपरांत उसे यह ज्ञात होता है कि उसका पति लंपट एवं व्यभिचारी है। इसी कारण वह सदैव पति के प्रेम और सान्निध्य से वंचित रही। इसके स्थान पर उसे मिला केवल अवहेलना और अनादर। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के कारण उसे एक आदर्श भारतीय नारी की तरह इन सभी कष्टों को सहना पड़ा। लंपट पति की कर्कश ध्वनि सुनकर उसके मन में रोष उत्पन्न होता था, किंतु उसे प्रकट करने में गिरिबाला असमर्थ होती थी। धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदतर होती चली गईं। पति की मृत्यु के बाद तो जैसे गिरिबाला के सब्र का बाँध टूट-सा गया और एक लंबे समय तक परंपरागत समाज के रीति-नियमों की बलि चढ़ती आई

गिरिबाला एकाएक अपनी अस्मिता, इच्छा, आकांक्षाओं के प्रति सजग हो उठी। अचानक उसका रोष विस्फोटित हो उठा। उसने समाज के नियमों के जंजीर से बंधकर जीना पसंद नहीं किया।

दरअसल विवाह से पूर्व गिरिबाला को अपने जीवन में किसी भी प्रकार की जटिल परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ा था। विवाह के पश्चात् के कष्टों को भी वह किसी से साझा न कर सकी। ऐसी परिस्थिति में उसकी मुलाकात होती है क्रिस्तान संयासी मार्क से। गिरिबाला मार्क से अपने दु:ख-दर्द, वेदना आदि की अभिव्यक्ति अत्यंत सहजता के साथ करने लगी। व्यक्ति जिस समाज से घिरा होता है, उसकी रूढ़ियों, खोखली मान्यताओं और परंपराओं के प्रति उसके मन में विरोध होना स्वाभाविक है, बशर्ते कि उसे विरोध करने का अवसर मिले। मार्क के सम्मुख गिरिबाला को पूर्ण अवसर मिला था अपनी इच्छा, आकांक्षा के साथ प्रतिरोध को भी व्यक्त करने का। उसके मन में अपने पति एवं ससुराल के प्रति अत्यंत घृणा का भाव है। वह मार्क से कहती है –*'ताते जावा अरु ससानक जावा एके कथा। मई जियाई जियाई गारात हुमब नरु साहब।'*[5] अर्थात् वहाँ जाना और श्मशान में जाना एक समान है। मैं जीते-जी गड्ढे में नहीं गिर सकती साहब। सामाजिक मान्यता है कि एक विधवा अपनी ससुराल से विरक्त नहीं रह सकती। पति की मृत्यु के पश्चात् यही एकमात्र वह स्थान होता है, जहाँ से उसे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। किंतु गिरिबाला का अपने मायके में रहना उन सामाजिक रूढ़ियों के बंधन के प्रति विद्रोह को ही दर्शाता है।

यौन-शुचिता और स्त्री :

किसी व्यक्ति के साथ अत्यधिक समय व्यतीत करने से मनुष्य के अंदर उस व्यक्ति के प्रति आकर्षण का भाव पैदा होना अत्यंत स्वाभाविक है। यही स्थिति गिरिबाला और मार्क के बीच उत्पन्न होने लगी थी। गिरिबाला को वैवाहिक जीवन का सुख प्राप्त न हो सका था। फलत: उसके मन की दमित यौन-इच्छाएँ पुन: जाग्रत होने लगी थीं। स्त्री की यौन-इच्छाओं को लेखिका ने पाप की श्रेणी से बाहर रखा है। लंपट पति के मुख से उसके शरीर के लिए निकले कटु वचन *'कुनु रस नाइ'*[6] अर्थात् कोई रस नहीं है, उसे सदैव कचोटते थे। इसी के प्रतिरोध-स्वरूप गिरिबाला अपने शरीर के सारे वस्त्र त्याग, नग्न अवस्था में मार्क के शयन-कक्ष में प्रवेश करती है और स्वयं को समर्पित करती हुई उससे कहती है – *'मई दुर्गा निइबा सरू गोसानिर दरे बाचि थाकिब नोवारू'*[7] अर्थात् मैं दुर्गा या सरू गोसानी की तरह नहीं बच सकती। गिरिबाला द्वारा उठाया गया यह कदम उस लंबे मानसिक संघर्ष का परिणाम है, जो विवाह के तुरंत बाद प्रारंभ हो गया था। गिरिबाला की तरह अनेकों ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिन्हें विवाह के पश्चात् दांपत्य सुख की प्राप्ति नहीं होती। उन्हें अपनी यौन-इच्छाओं को यों ही दबा देना पड़ता है। इसका एकमात्र कारण है पुरुष का परस्त्रीगमन। खोखली सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों के हजारों नियम-कायदे बतला दिए जाते हैं, परंतु पुरुष विवाह के पश्चात् भी यदि अवैध-यौन संबंध रखता है तो उसपर कोई प्रश्न-चिह्न खड़ा नहीं करता। इस प्रकार की खोखली सामाजिक विचारधारा के प्रति गिरिबाला का संघर्ष अंत में प्रतिरोध के रूप में मुखरित होता है। हालाँकि ऐसी परिस्थिति में भी संयासी मार्क गिरिबाला को स्पर्श तक नहीं करता और उसकी पवित्रता चिर बनी रही है।

अतार्किक रूढ़ मान्यताओं का विरोध :

भारतीय समाज में आरंभ से ही विधवा स्त्रियाँ एकाकीपूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त रही हैं। समाज की खोखली मान्यताओं ने उनकी सभी इच्छाओं को सदैव कुचला है। अपने पति की मृत्यु के पश्चात् जब गिरिबाला अपने घर अर्थात् मायके आती है, तब समाज की अन्य सुहागिन स्त्रियों का जत्था उसके सम्मुख आ खड़ा होता है। यह उपस्थिति गिरिबाला के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने हेतु कतई न थी; बल्कि वे महिलाएँ उसे और अधिक आहत करने के लिए इकट्ठा हुई थीं। कुछ समय वहीं खड़े होने के बाद वे महिलाएँ गिरिबाला से कहती है – *'नुसूबी! नुसूबी! एइमात्र बारी हुआ तिरी ऐ सीरत सिन्दूर पिन्धा तिरिहात नुसूबी! नुसूबी!'*[8] अर्थात् तुम अभी-अभी विधवा हुई हो, सुहागिन औरतों को मत छूओ! मत छूओ! इस घटना ने गिरिबाला के मन में न केवल समाज के प्रति अत्यधिक घृणा की भावना पैदा की; बल्कि उसके युवा-मन में विद्रोह की भावना को भी जन्म दे दिया। समाज के

प्रचलित नियमों के अनुसार विधवाओं के लिए मांसाहारी भोजन करना निषिद्ध माना गया है। मान्यता यह है कि ऐसा करने से वह पाप की भागीदार होगी, लेकिन गिरिबाला एक दिन दादा जी के श्राद्ध के भोज में मांस खाकर इस परंपरागत रीति को खारिज करती है। मांस खाने के बाद वह मार्क से कहती है – *'साउसुन साहब। मोर पाप ज्ञान नहय। हेइदिना भुजर मांस खाई करा परासितर पिशोतु मोर कुनु पापबोध हुआ नाइ।'*[9] अर्थात् देखिए न साहब, मुझे कोई पाप का ज्ञान नहीं हो रहा। उस दिन भोज में मांस खाने के बाद भी मुझे किसी पाप का बोध नहीं हो रहा। गिरिबाला द्वारा उठाया गया यह कदम इस बात का साक्ष्य है कि वह उस वैधव्य बंधन की विरोधी है। गिरिबाला समाज के हर उस नियम के विरुद्ध है, जिसने उसे और उसकी तरह अनेकों स्त्रियों को एकाकीपूर्ण जीवन जीने को विवश कर दिया है।

समाज सदैव से पाप-पुण्य की व्याख्या स्वयं और अपने अनुरूप करता आया है। गिरिबाला के लंपट पति के लिए समाज ने कोई पाप-पुण्य की व्यवस्था नहीं की थी। जिस पुरुष ने अपने जीवनकाल में गिरिबाला को सम्मान नहीं दे सका, सदैव उसे उपेक्षित समझकर उसका, उसके सतीत्व का और उसके शरीर का तिरस्कार करता रहा, आज समाज उसी स्त्री से यह उम्मीद रखता है कि वह उस पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी पूजा करे। समाज का यह कहना है कि विधवा स्त्री के लिए उसका पति ही देवता होता है। किंतु गिरिबाला उस लंपट की पूजा नहीं करती – *'आजिकाली मोर एकु अरु भाल नालागे। दुर्गाये कोय मोइ मोर पतिबंगरार गहेर खरमत फूल-तुलसी नेदाउ। मई पापी! आजिकाली मोर हातेदी ताइ साह पानिऊ नखाय।'*[10] अर्थात् आजकल उसे कुछ अच्छा नहीं लगता। दुर्गा कहती है कि गिरिबाला पापी है, क्योंकि वह अपने पति की पूजा नहीं करती। इसी कारण वह उसके हाथ का कुछ खाती-पीती तक नहीं। यहाँ गिरिबाला का पूजा न करना उस रु?िवादी मान्यता का विरोध है, जिसका कोई अर्थ नहीं।

स्त्री की अग्नि परीक्षा का नैरंतर्य :

समाज की एक विशेष परंपरा है, जो स्त्री-पुरुष के बीच एक मर्यादित दूरी बनाए रखने की बात करता है। यही निश्चित दूरी आज स्त्री के लिए चिंता का विषय बन गया है। समाज का यह पौराणिक गुण रहा है कि वह घटनाओं और परिस्थितियों को अपने मानस-पटल पर अपने अनुसार रचता-गढ़ता रहा है। यह वही समाज है, जिसने त्रेता युग में माता सीता से दोबारा अग्निपरीक्षा की माँग की थी। ठीक ऐसा ही गिरिबाला के साथ भी किया गया। गाँव के कुछ लोगों ने गिरिबाला को मार्क के आलिंगन में पाया था। गिरिबाला से या मार्क से किसी भी तरह के प्रश्न किए बगैर गिरिबाला के लिए दंड-स्वरूप प्रायश्चित् की व्यवस्था करवा दी। उनके अनुसार विधवा स्त्री का किसी पर पुरुष से संबंध स्थापित करना पाप है। गिरिबाला ने ऐसा किया है, इसीलिए उसे प्रायश्चित् के तौर पर जलते हुए मेजी (बाँस, पुआल एवं लकड़ी से बनाया गया ऊँचा गुंबज) में प्रवेश कर कुछ समय रुककर बाहर निकलना होगा। इससे वह पुन: पवित्र हो जाएगी। समाज को क्या पता था कि विवाह के पूर्व से अभी तक उसे किसी पुरुष ने छुआ तक नहीं था। उसने किसी भी प्रकार का कोई तर्क या सफाई देने से बेहतर आत्महत्या करना समझा। उसके द्वारा उठाया गया यह कदम समाज की खोखली मानसिकता, रूढ़िवादी विचारधारा और परंपरागत रीति-नियमों के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वरूप था। उसने ऐसी समाज-व्यवस्था में रहकर कष्टप्रद जीवन जीने से उचित जलते मेजी में आत्मदाह कर मुक्ति पाने को समझा। उसने समाज के अन्य लोगों से कहा कि – *'जुई लगे दियार पस्ताकत मई बाहिर हई जाम दि, लगे दि'*[11] अर्थात् आग लगा दो, आग लगा देने के कुछ समय बाद मैं बाहर आ जाऊँगी। लेकिन ऐसा न हुआ। एक सुंदर जीवन का स्वप्न देखनेवाली गिरिबाला ने उस भीषण अग्नि में बैठकर अपने प्राण त्याग दिए। इस अग्नि में गिरिबाला ने समाज के सभी दुर्विचारों को भी जलाकर भस्म कर देना चाह। उस समय पूरा समाज चीखता रहा, अग्नि से बाहर निकल आने की प्रार्थना करता रहा, लेकिन गिरिबाला जलती रही, समाज की सभी रूढ़ियों को अपने साथ लेकर। इस स्थिति में करने लायक कुछ न था। आस-पास चारों ओर फैली रही केवल ग्लानि और देह के जलने की बू।

निष्कर्ष :

संघर्ष मानव-जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। जब मनुष्य के मन की इच्छा के विरुद्ध उसकी आकांक्षा आदि का दमन किया जाता है, तब संघर्ष आरम्भ हो जाता है। उपन्यास में समाज और पुरुष ने स्त्री, उसके मन, आत्मा और स्वाभिमान को ठेस पहुँचाया है। समाज के विभिन्न रूढ़िवादी नीति-नियमों ने स्त्री को सदैव प्रताड़ित किया है। इन्हीं सामाजिक और पारिवारिक खोखली विचारधारा, नियम-कायदे से संघर्ष करती हुई अपनी अस्मिता की रक्षा करती है उपन्यास की प्रमुख पात्र गिरिबाला। लेखिका स्वयं एक विधवा थी। उन्होंने वैधव्य जीवन, सामाजिक मान्यताओं को नजदीक से अनुभव किया था। लेखिका ने अपने जीवन में जिस एकाकीपन को महसूस किया, उसे गिरिबाला के माध्यम से इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। पुरुषतांत्रिक सत्ता ने गिरिबाला को बाँधने की खूब कोशिश की, परंतु वह समाज के सभी रूढ़िवादी रीति-नीति को सिरे से नकारती रही। उपन्यास में उसके द्वारा की गई आत्महत्या भी सामाजिक विचारधारा और नियमों का प्रतिरोध ही है। आरंभिक अवस्था से संघर्ष करती गिरिबाला ने अंतत: स्वयं के लिए सामाजिक बंधन की अपेक्षा मुक्ति को अधिक श्रेयस्कर समझा। ❑

संदर्भ सूची :

1. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ - 06
2. कुमार, दुष्यंत, स्त्रियाँ : पर्दे से प्रजातंत्र तक, पृष्ठ - 15
3. कस्तवार, रेखा, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ - 24
4. भराली, हेमंत कुमार, मामोनी रायसम गोस्वमीर रचना समग्र, बनलता प्रकाशन, डिब्रुगढ़, 2011, पृष्ठ - 572
5. गोस्वामी, मामोनी रायसम, दँताल हातिर उये खोवा हाओदा, स्टूडेंट्स स्टोर्स, गुवाहाटी, 2010, पृष्ठ - 219
6. वही, पृष्ठ - 139
7. वही, पृष्ठ - 99
8. वही, पृष्ठ - 27
9. वही, पृष्ठ -139
10. वही, पृष्ठ - 139
11. वही, पृष्ठ - 207

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विवेचन

शरद जोशी के हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्य की भाषा-शैली

'हिंदी के किसी भी दूसरे व्यंग्यकार ने भाषा के शैलीय उपकरणों का इतना अधिक और बढ़-चढ़कर उपयोग नहीं किया था। शब्दों के पारखी शरद जोशी की व्यंग्य भाषा में स्वीकृत शब्द निरंतर अभिव्यक्ति की प्राचीर पर लटके अर्थ गुच्छों को शैलीय प्रभाव देते हैं'- **शशि मिश्र**

अर्जुन पासवान

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-1
6000399409
apaswan885@gmail.com

भूमिका :

भाषा मानव को ईश्वर का सबसे कीमती उपहार है। भाषा के जरिए हम अपने विचारों, भावों को अभिव्यक्त एवं संप्रेषित करते हैं। भाषा के जरिए ही साहित्य की भी अभिव्यक्ति संभव होती है। साहित्यकार अपनी स्वतंत्र विधा व शैली के अनुरूप भाषा का चयन करता है और उसे अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाता है। शरद जोशी के हास्य व्यंग्य साहित्य में उन्होंने अपनी भाषा शैली को लेकर अनेक प्रयोग किए। उनकी हास्य व्यंग्यात्मक भाषा का चयन और उसकी मिठास अन्य साहित्यकारों से भिन्न है। उनका मोह किसी भी विशेष भाषा-स्तर से बँधा नहीं है, बल्कि वे हमेशा सहजता से अर्थ संप्रेषित करने के पक्षधर रहें। उन्होंने अनेक भाषाओं के शब्दों को सहज रूप से प्रयुक्त करते हुए अपनी अनूठी शैली से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया, जो उनकी भाषा पर असाधारण अधिकार का परिचायक रहा है। *''शरद जोशी ने हिंदी व्यंग्य भाषा को किसी भी व्यंग्यकार की तुलना में अधिक समृद्ध किया। शब्दों को अपनी उँगलियों पर नचाने की जैसी चेष्टा और शक्ति शरद जोशी में थी। वे भाषा का जैसा महीन और मारक इस्तेमाल करते हैं यह उनके वश की बात है।''*[1]

कुंजी शब्द :

साहित्य, हास्य-व्यंग्य, भाषा-शैली, संवाद, समाज, राजनीति, प्रभावशीलता।

शोध का उद्देश्य :

हिंदी के सर्वोत्तम हास्य व्यंग्यकारों में शरद जोशी अद्वितीय हैं, इन्होंने अपनी कथ्य और शिल्प दोनों की ही दृष्टि से हिंदी व्यंग्य-साहित्य को समृद्ध और प्रभावशाली बनाया है। इनके व्यंग्य साहित्य में तत्कालीन संपूर्ण युग का दर्शन होता है। इस कारण इन्हें युग-प्रवर्तक व्यंग्यकार माना जाता है और व्यंग्य का पर्याय के रूप में माना जाता है। व्यंग्य लेखन में भाषा शैली का विशेष महत्त्व होता है। दरअसल में भाषा शैली की विशिष्टता से ही व्यंग्य अपना प्रभाव दिखाता है। शब्दों का चुनाव

तथा उसका प्रयोग बड़ी ही सोच समझ के साथ करना एक कला होता है। इस कला के अच्छे कलाकार रहे हैं और चतुराई से की गई वाक्य रचना भी उनकी भाषा शैली की विशेषता रही है।

शरद जोशी ने अपने हास्य व्यंग्य साहित्य में प्रयुक्त भाषिक प्रयोग में तत्सम, तद्भव,देशज,विदेशज शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने मूलत: कहानी व निबंधों को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। अपनी रचनाओं में इनमें इन्होंने वर्णात्मक, फैंटेसी, मिथकीय, संवादात्मक आदि शैली का सफल और सार्थक प्रयोग किया है। अत: उनके हास्य व्यंग्य-साहित्य की भाषा शैली की छटा उनकी रचनाओं में कैसे फैली हुई हैं, जिसके कारण उनकी रचनाओं की आकर्षणियता एवं प्रासंगिकता आज भी बनी हुई हैं, इसके बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे।

हास्य-व्यंग्य भाषा :

हास्य-व्यंग्य की संपूर्ण ताकत उसकी भाषा-शैली पर निर्भर करती है। इनकी भाषा बिना किसी लागलपेट या झमेले में न पड़कर कथ्य के सशक्त अभिव्यक्ति पर अपना ध्यान केंद्रित रखती है। विसंगतियों का पर्दाफाश करना इनका प्रमुख लक्ष्य है। उनकी भाषा सदैव सत्य के प्रति प्रतिबद्ध रहा। वह विसंगतियों से भरे समाज में परिवर्तन लाना चाहता है अपनी इसी परिवर्तनवादी प्रवृत्ति के कारण भाषा में अमूलाग्र परिवर्तन करके शब्दों के अर्थ और अर्थ के परंपरागत स्वभाव को बदल डालता है। अत: यह भाषा शब्दों के अस्त्रों से संपन्न होती है और उन शब्द रूपी अस्त्रों का वह प्रसंगानुकूल एवं आवश्यकतानुसार चयन करता है। इस प्रकार जीवन एवं जगत् में दिखाई देने वाली विषमताओं, विसंगतियों की सही पकड़ को संप्रेषित करने वाली भाषा ही व्यंग्य भाषा बनकर सामने आयी है।

इसी व्यंग्य भाषा के संदर्भ में डॉ. श्यामसुंदर घोष जी कहते है कि *'व्यंग्य में भाषा का छलछद्म या बनाव श्रृंगार नहीं चल सकता। वहाँ छैल छबीली, घूँघटवाली, लाजवंती भाषा का कोई काम नहीं है। व्यंग्य भाषा तो छप्पन छुरी वाली होनी चाहिए। इसलिए व्यंग्य भाषा सामान्य साहित्यिक भाषा से ज्यादा चुस्त, दुरुस्त, नुकीली-फुर्तीली और चीरने-*

फाड़नेवाली होनी चाहिए। उसके शब्द ऐसे हो, जिन्हें कोशों में न ढूँढ़ना पड़े। व्यंग्यकार अपनी भाषा गली-कूचों और चौक-नुक्कड़ से ले, पर उन्हें इस प्रकार अपने काम लाए कि उसका उद्देश्य ठीक-ठाक सधें। व्यंग्य भाषा का स्वरूप चाहे जितना मामूली और सस्ता हो, लेकिन उसके अंदर एक गहरा अनुशासन और सोद्देश्यता होती है।'[2] इस प्रकार व्यंग्य की भाषा तीखी, नुकीली और धारदार होती हैं, जो साद्देश्यपूर्ण हो।

डॉ. आशा पांडेय इस संदर्भ में कहती हैं कि *'व्यंग्य भाषा सजने-सँवरने तक रुकती नहीं,वह सीधे शब्दों में भी अपनी बात कह जाती है, तो देखी सजने सरकारने तक भी अपनाती है। व्यंग्य की भाषा सीधी सरल हैरे देखी और कुटिल भी। वह सहलाती है, तो घातक प्रहार भी करती है।'*[3] इस प्रकार देखा जाय तो यह भाषा सामान्य भाषा से बिल्कुल अलग होती है। जहाँ सामान्य भाषा बहिर्मुखी होती है,वहीं व्यंग्य भाषा अंतर्मुखी। सामान्य भाषा के सुनिश्चित अर्थ होना अनिवार्य है, जबकि व्यंग्य भाषा को

अर्थ की सुनिश्चितता स्वीकार्य नहीं होती।

शरद जोशी के व्यंग्य-साहित्य में भाषा के विविध रूप :

शरद जोशी के हास्य व्यंग्यात्मक रचनाओं की भाषा शैली अपनी विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। उन्हें भाषा शैली का विशेष ज्ञान था। वे अनेकानेक भाषा शैली के प्रयोग में प्रवीण थे। यहीं कारण रहा कि वे बेहद सहज रूप से पाठकों के समीप पहुँच सके। उनकी हास्य व्यंग्य साहित्य की भाषा को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर देखा जा सकता है :-

विशिष्ट शब्द-समूह : संसार के प्रत्येक भाषाओं की अपनी अपनी विशिष्ट शब्द-संपदा है। हिंदी के निजी तदभव शब्द समूह के अतिरिक्त तत्सम, अरबी, फारसी, तुर्की तथा अंग्रेजी भाषा के शब्द आदि भाषा के शब्दों का हिंदी रचनाकार आवश्कतानुसार तथा प्रसंगानुकूल प्रयोग करता है। हास्य व्यंग्य के सशक्त संप्रेषण के लिए शरद जोशी ने अपनी रचनाओं में प्रसंगानुकूल इन शब्दों का प्रयोग किया है- *'विशेषकर बंबई बहुभाषी नगर होने के कारण वहाँ हिंदी में अनेक भाषा के मिश्रित शब्द होने से हिंदी भाषा का विकृत रूप हो गया है। ऐसे काम चलाऊ भाषा को लेकर व्यंग्य करना शरद जोशी का वैशिष्ट्य है।'*[4]

शरद जोशी की व्यंग्य रचनाओं का समग्रता से अध्ययन करने के बाद स्पष्ट होता है कि उन्होंने व्यंग्य भाषा में हिंदी शब्दों का प्रयोग व्यंग्य में अभिव्यंजकता लाने के उद्देश्य से किया है। शरद जोशी ने व्यंग्य की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए सभी प्रकार के शब्दों को आधार बनाया है। जैसे :

अंग्रेजी शब्द : शरद जोशी के व्यंग्य भाषा में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के संबंध में दो कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। पहली कोटि उन शब्दों की है जो हिंदी के दैनिक प्रयोग में खप चुके हैं। जैसे: ब्लैक, लंच, रिपोर्ट, टाईम, ड्यूटी, ऑफिसर, ट्रक, स्टेशन, फाइल, कैंटीन, क्वार्टर, टेंडर, स्टाप, वेटर, एडजस्ट, मेमों, प्रोजेक्ट, इंजीनियर, इंस्पेक्टर, प्लॉट, कॉलोनी, डेवलपमेंट, लाइसेंस, फार्म, पॉलिटिक्स, करप्शन, फॉर्मेलिटी, डिप्टी डायरेक्टर आदि। शरद जोशी के अंग्रेजी शब्दों में दूसरी कोटि उन विशिष्ट शब्दों की है, जो हिंदी में कम प्रचलित हैं। ऐसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग शरद जोशी ने किसी पात्र का मजाक उड़ाने, दूसरों पर प्रभाव जमाने और किसी पात्र अथवा विसंगति को व्यंग्यात्मक रूप देने के लिए किया है। जैसे : *'इधर डिप्टी डायरेक्टर रामकरण जैन की पत्नी ने अपने पति से झुककर कहा हमें तो यह खेल 'सायको' जैसा लगे।'*[5]

- यहाँ सायको जैसे शब्द प्रयोग द्वारा शरद जोशी ने सशक्त अभिव्यक्ति की है।

इसी तरह एक अन्य उदाहरण देखे तो वे कहते हैं कि *'एक बात मैं बोलती दुमको, के दीवाली मनाना माँगता पर ये कैकर्स बहुत डेंजरस। कबी-कबी तो क्या होता कि आक्खा बॉडी जल जाता। यू नो फायर होता ना उसमें तो, किसी को टच करेंगा तो वो जलेगा। कबी भी कोई क्रेकर बर्न करेगा तो डैडी को बोली, ममी को बोलो कि हमको ये क्रेकर बर्न करना माँगता तो वो तुमको हेल्प करेगा।'*[6] यहाँ क्रेकर्स, डेंजरेस, बॉडी, यू नो फायर, टच, डैडी, ममी, हेल्प जैसे अंग्रेजी शब्दों द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। शरद जोशी ने केवल अंग्रेजी शब्दों का ही नहीं व्यंग्य के सशक्त सम्प्रेषण के लिए कहीं-कहीं अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग भी किया है : *'नेक्स्ट आयटम ऑफ द प्रोग्राम 'डेमोक्रेसी इन इंडिया' भारत में प्रजातंत्र।'*[7]

अरबी-फारसी शब्द : शरद जोशी ने अपने हास्य व्यंग्य साहित्य में अंग्रेजी के अतिरिक्त अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रयोग भरपूर किया। उन्होंने आवश्यकतानुसार जिन अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों को हिंदी से अलग कर पाना अत्यंत कठिन है। जैसे :

अरबी शब्द : साहबान, मुल्क, शराफत, वक्त, वालिद, जनाजा, जाहिल, हुक्म, फर्ज, बेवकूफ, दिक्कत। फिक्र, इबारत, मददगार, मुसाफिर, दर्जे, नकाबपोश, कमीज, औलाद, वाकिफ, दफ्तर, बहस, मुआयना, हुक्म, मरीज, इंतजार, इंकार।

फारसी शब्द : खुराक, बदबू, खामोश, बदमाश, तलाशी, बेवफाई, रकीब, चुगद, खस्ता।

जोशी ने अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग परिवेशगत विषमताओं, विडंबनाओं के चित्रण के लिए किया। व्यंग्य के प्रभावी संप्रेषण के लिए जहाँ आवश्यकता पड़ी वहाँ

उन्होंने अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग मुक्त हृदय से किया।

अभिजात्य शब्द : शरद जोशी ने अरबी-फारसी शब्दों के साथ-साथ अभिजात्य शब्दों का प्रयोग भी किया है। आज की गद्य या पद्य रचनाओं में अभिजात्य शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति क्रमश: बढ़ती जा रही है। अभिजात्य शब्दों के प्रयोग से रचनाएँ गरिमामय बन जाती है। उन्होंने अभिजात्य शब्दों का प्रयोग जानबूझकर नहीं किया बल्कि इसका प्रयोग द्वारा केवल हास्य व्यंग्य को संप्रेषणीय बनाने का उनका प्रयत्न रहा है। शरद जोशी ने संस्कृतनिष्ठ, शिष्ट शब्दों को रखकर ऐसी भंगिमा दी है, जिससे व्यंग्य की प्रहार क्षमता में वृद्धि हुई है। जैसे :

'देश के आर्थिक नंदन-कानन में कैसी क्यारियाँ पनपी-सँवरी हैं भ्रष्टाचार की दिन-दूनी रात चौगुनी।' [8]
यहाँ नंदन कानन का कोशगत अर्थ है इंद्र का उद्यान नंदन-कानन जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्दों द्वारा देश में पनप रहे भ्रष्टाचार पर तीखा व्यंग्य किया है।

'त्वमेह तोपं, त्वमेह बन्दूकम्, मम चमचा त्वमेह।
ओ मेज कॉफी हाउस की, केवल तेरे सहारे मैं साहित्यकार बना हुआ हूँ।' [9]

इस प्रकार अभिजात्य संस्कृतनिष्ठ शब्दों द्वारा व्यंग्य को संप्रेषणीय एवं प्रभावी बनाने की प्रवृत्ति शरद जोशी के व्यंग्य भाषा में मिलती है।

'वादों का श्रीगणेश हरिजनों से होता है और निर्णय और क्रियाओं की इतिश्री बनियों पर होती है।' [10] इस प्रकार यथावकाश संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग भी उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।

अपशब्द : शरद जोशी की व्यंग्य भाषा में एक और अभिजात्य संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग मिलता है तो दूसरी ओर अपशब्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है। वैसे जब शरद जोशी ने अनुभव किया कि शिष्ट शब्द व्यंग्य की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ हैं तो वहाँ उन्होंने परिस्थित्यरूप अशिष्ट/अपशब्दों का भी प्रयोग किया है, सामान्यत: कोई भी रचनाकार शिष्ट साहित्य में अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहता, लेकिन जब विसंगतियाँ इस प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग करने के लिए विवश कर देती हैं, तब जोशीजी ने स्थान-स्थान पर आवश्यकता के अनुरूप अपशब्दों का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है-

'प्रत्येक दल स्वर्गवासी होना चाहेगा और वामपंथी दल इसलिए स्वर्ग से नाराज होंगे कि यह धार्मिक सी चीज साली उतरी ही क्यों?' [11]

'नवाब: अबे चिन्तको, उल्लू के पठ्ठो, जरा सी बात सोचने में इतना वक्त लगा रहे हो।' [12]

इस प्रकार शरद जोशी की कई रचनाओं में अपशब्दों का प्रयोग मिलता है। अपशब्द के संदर्भ में डॉ. श्यामसुंदर घोष कहते हैं-*'व्यंग्य भाषा में ग्राम्य शब्द के प्रयोगों, स्लैगों और गालियों का भी एक निश्चित अनुपात है, क्योंकि इसके बिना उसका काम नहीं चलता। गाली आखिर क्या? यह भाषा में हमारा क्रोध, घृणा, वैर जुगुप्सा ही तो है। इसलिए गालियों का एक-एक शब्द सामान्य भाषा के शब्दों से ज्यादा कारगर और व्यंजक होता है।'* [13]

जोशी जी की 'अंधों का हाथी' नाटक में उन्होंने अपशब्दों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया। निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है।

'अंधा 1- उल्लू के पठ्ठे।
अंधा 2- मूर्ख नासमझ
अंधा 1- गुंडे
अंधा 2- बदमाश, धोखेबाज।' [14]

नवनिर्मित शब्द : नवनिर्मित शब्दों के संदर्भ में शरद जोशी 'तलाश कुछ शब्दों की' नामक रचना में वे लिखते हैं-'कई बार उपयुक्त शब्द न मिलने से बड़ी कठिनाई होती है। तब मजबूरी में आकर एक नया शब्द गढ़ना पड़ता है। जैसे आप खाना-खाने बैठे और एक कौर मुँह में रख आप क्रोध से पत्नी की ओर देखते हैं और कहते हैं, 'यह खाना है? इसे खाना कहते हैं?' और आप मुँह का कौर थूक देते हैं। पत्नी कहती है 'मैं क्या करूँ आज नौकर नहीं आया। अब जैसा बना है वैसा खा लो। लाओ गरम कर दूँ' आदि। मगर प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न शब्द का है। पति की परेशानी है- उपयुक्त शब्द का अभाव अर्थात् उस भोजन अथवा चखाने के लिए जो कदापि सुस्वादु नहीं है, कौन सा शब्द दिया जाए? फिर वह अपने बुद्धि-कोश से एक शब्द लाता है भूसा मैं 'भूसा' नहीं खाऊँगा।' [15] इस तरह

शरद जोशी ने अपनी रचनाओं में विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए नए शब्दों का निर्माण किया है। जैसे-*'कत्थकिए चले गए, सितारिए चले गए, प्रोफेसरों एडीटरों को मौका मिल गया।'*[16]

खंजरसम- शब्द कलम के लिए प्रयुक्त हुआ है।

बिल्लोसना- सोने के पहले के उपक्रम के लिए यह शब्द प्रयोग हुआ है।

स्नानिन- स्नान करने के लिए

चौहराया- शब्द का प्रयोग चार बार कहने के लिए किया है।

कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ की प्रस्तुति ही उनके नवनिर्मित व्यंग्य शब्दों का वैशिष्ट्य है।

शरद जोशी के व्यंग्य साहित्य में मुहावरे तथा कहावतें :

मुहावरों के प्रयोग से भाषा प्रवाहपूर्ण बनती हैं। शरद जोशी ने भी अपनी व्यंग्य भाषा में मुहावरों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है, जिसके कारण व्यंग्य की अभिव्यक्ति सशक्त बन गई है। *'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्यकारों में भी यही उपक्रम दिखाई देता है। अपनी भाषा को नई अर्थवत्ता और ताजगी प्रदान करने के लिए व्यंग्यकारों ने लोकजीवन में प्रचलित भाषा व्यवहारों को स्वीकार किया है।'*[17] संक्षेप में कहा जा सकता है कि गहरी चोट तथा मार्मिक व्यंजना करना मुहावरों के माध्यम से ही संभव है, क्योंकि अन्य रूप से अर्थबोध कराने के लिए जहाँ बहुत अधिक शब्दों का अपव्यय करना पड़ता है। 'नावक के तीर' के समान अत्यंत संक्षेप में गंभीर घाव करने की क्षमता मुहावरों में विद्यमान रहती है। अत: शरद जोशी ने अपनी रचनाओं में इसका खुलकर प्रयोग किया है। इतना ही नहीं शरद जोशी ने जहाँ मुहावरों को ईमानदारी से अपनाया है और उसे नई अर्थवत्ता प्रदान की है।

स्थितिगत विसंगतियों के संदर्भ में विशेषकर राजनीतिक स्थितियों पर प्रहार उन्होंने पारंपरिक मुहावरों का अपने अंदाज में प्रयुक्त किया है। वहीं दूसरी और अपने दोनों नाटकों में भी उन्होंने स्थान-स्थान पर मुहावरों का प्रयोग किया है। शरद जोशी ने यथावकाश नवीन मुहावरों का प्रयोग कर अपने लोकभाषा ज्ञान का परिचय तो दिया ही है। तो दूसरी ओर नवीन मुहावरों का प्रयोग कर व्यंग्य भाषा को संस्कारित करने का कार्य भी किया है। उदाहरण दृष्टव्य हैं-*'बटुआ काँपना, 'डिनर से खिचड़ी पर आना', 'मुस्कराने की मुसीबत', 'अपनी जन्मपत्री पर आप जूता मारना।'*[18]

कहावतें (लोकोक्तियाँ) :

मुहावरों के समान लोकोक्तियाँ भी व्यंग्य भाषा का महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं।

शरद जोशी की व्यंग्यात्मक सूक्तियाँ : शरद जोशी ने अपनी व्यंग्य भाषा में मुहावरे/कहावतों के साथ-साथ सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। उनकी व्यंग्य भाषा में प्रयुक्त सूक्तियों को देखने के पूर्व सूक्तियों का अर्थ जानना आवश्यक है। सूक्ति का कोशगत अर्थ है *'उत्तम उक्ति या कथन, सुंदर पद या वाक्य आदि।'*[19]

जोशी जी के कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं-'छुरी काटे का समाजवाद सरासर धोखा है।'[20]

शरद जोशी ने 'एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ' नाटक में कुछ स्थान पर सूक्तियों का प्रयोग किया है। नाटक में एक प्रसंग में अलादाद खाँ नामक शरीफ आदमी मरने के लिए तैयार नहीं होता तब चिंतक 1 और चिंतक 2 इन दोनों के संवादों के माध्यम से सूक्ति शैली का प्रयोग किया है।

'**चिंतक-1 :** व्यक्ति का जीवन राष्ट्र के लिए होता है, राष्ट्र व्यक्ति के लिए नहीं।

चिंतक-2 : पूर्ण समर्पण और तन-मन-धन से सब कुछ भूलकर की गई सेवा मनुष्य को महान बना देती है।'[21]

इस प्रकार की व्यंग्य से परिपूर्ण सूक्तियाँ राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों को रेखांकित करती हैं। समाजवाद का नाम लेकर गरीबों का शोषण करने वालों का पर्दाफाश इस व्यंग्यात्मक सूक्ति द्वारा जोशीजी ने किया है। शरद जोशी जी भी कभी बड़े मजे के साथ नये सूत्र वाक्य भी बना लेते हैं। जैसे-

1. हर घंटी जो सुनाई देती है पोस्टमैन की नहीं होती।
2. जिन लिफाफों में चेक नहीं है वे खाली ही भले।

इस प्रकार व्यंग्ययात्मक सूक्तियाँ थोड़े में बहुत कुछ कह देने की क्षमता रखती है। शरद जोशी ने इन सूक्तियों

का प्रयोग विविध क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए किया है।

शरद जोशी के व्यंग्य-साहित्य की शैली :

जोशीजी के व्यंग्य निबंधों में विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। शैली विविधता जोशीजी की अपनी विशेषता थी। जोशीजी के समग्र लेखन में इसका प्रमाण भी मिल जाता है। शरद जोशी की शैली विविधता के संदर्भ में डॉ. बालेंदुशेखर तिवारी ने लिखा है-*'शरद जोशी ने सूत्र शैली, पत्र शैली, डायरी शैली, संस्मरण,जीवनी, आत्मकथा, साक्षात्कार आँखों देखा हाल आदि कई रूप शैलियों का सजग इस्तेमाल करते हुए उन्होंने अंतत: यही साबित किया है कि व्यंग्य असमर्थ का अस्त्र नहीं है। व्यंग्य भाषा को वैविध्य प्रदान करते हुए उन्होंने व्यंग्य लेखन को भाषा-शैली की जमीन दी है।'*[22]

1. आत्मकथन शैली : जब लेखक किसी रचना के प्रमुख पात्र या पात्री का स्थान ग्रहण करके प्रथम पुरुष की ओर से कथा का वर्णन करता है तब उस शैली को आत्मकथन शैली कहा जाता है। शरद जोशी द्वारा लिखित व्यंग्य नाटक 'एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ' में आत्मकथन शैली का प्रयोग किया है, यहाँ शरद जोशी द्वारा लिखित नाटक का अंश दृष्टव्य है-*'जब कोतवाल अलादाद खाँ से कहता है कि तुम्हारी हमें सख्त तलाश थी। तब अलादाद घबरा जाता है और कहता है कि क्या किया है मैंने जो पुलिस मुझे तलाश करेगी, यह कहकर शरीफ अलादाद खाँ नामक आदमी अपनी खुद की जानकारी देता है।'*[23]

2. संवादात्मक शैली : इस शैली को नाटकीय शैली भी कहा जाता है। शरद जोशी ने अपनी व्यंग्यात्मक रचनाओं में चमत्कार एवं कलात्मकता लाने के लिए इस शैली का प्रयोग किया है। संवाद के कारण ही रचनाओं में रोचकता आती है। जैसे-

'अबे तेरे खेत में इल्ली है?
नहीं है हुजूर।
अबे थी ना, वो कहाँ गई।'[24]

यहाँ शरद जोशी ने भारतीय किसानों का शोषण करने वाले नौकरशाही पर तीव्र व्यंग्याघात किये हैं। भारतीय किसान तथा खेती की सेवा करने के लिए कृषि अधिकारी होते हैं।

3. तिलस्मी शैली : शरद जोशी अपने व्यंग्य लेखन में विविध शैलियों का प्रयोग करने में सबसे आगे हैं। जिस प्रकार व्यंग्यकार सामाजिक शैली का प्रयोग करते हैं और उसमें नैतिक शिक्षा, समाज सुधार, आदर्श तथा पश्चिमी सभ्यता की कटु आलोचना होती है। उसी प्रकार तिलस्मी शैली में किसी घटना का चित्रण चमत्कार पूर्ण पद्धति से किया जाता है। शरद जोशी की तिलस्म नामक रचना इसी शैली पर आधारित है। तिलस्म का उदाहरण दृष्टव्य है-*'वह नौजवान शायद यही का रहने वाला है या इस बस्ती में कई बार आ-जा चुका है, इसलिए वह सीधा एक खास मकान की तरफ बढ़ता है। मकान क्या, इसे छोटा-मोटा तिलस्म कहिए आइए देखें, यह शख्स इसमें क्यों जा रहा है और कैसे जाता है।'*[25]

4. फंतासी (फैंटेसी) शैली : शरद जोशी ने इसी फंतासी शैली का बखूबी से प्रयोग कर व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं, उनमें से महत्त्वपूर्ण हैं - 'अतृप्त आत्माओं की रेल यात्रा', 'अमरता के अहसास की भयावनी रात', 'एक नाजुक सवाल पर भूतप्रेतों से बातचीत' आदि व्यंग्य रचनाएँ फंतासी शैली में लिखी हुई उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। उदाहरण दृष्टव्य हैं - पटरी पर बैठे प्रेतों के एक झुंड को भगाने के लिए रेल ने लंबी सीटी दी और गति तेज कर दी। किसी ने कहा, 'भगवान भास्कर उदित हुए।' खिड़कियाँ खुलने लगी और आत्माओं ने बाहर झाँकना शुरू किया। 'आह, कैसा सुंदर दृश्य है।' एक कवि की आत्मा ने कहा *'यदि पहले दिखा होता तो हमने कोई कविता गा दी होती।'*[26]

शरद जोशी ने व्यंग्य में पौराणिक और ऐतिहासिक मिथकों का प्रयोग कर अभिव्यक्ति का तीखा और मार्मिक संसार रचा है। 'यमदूत और नर्स', 'बुद्ध के दाँत', 'मुद्रिका रहस्य', 'नया मेघदूत' आदि अनेक निबंध, फैंटेसी के अद्‌भुत उदाहरण हैं, जिनमें उन्होंने पुराण कथाओं, पौराणिक प्रसंगों, पात्रों के माध्यम से वर्तमान विसंगतियों पर सीधे-सीधे प्रहार किया है।

तुलनात्मक शैली : शरद जोशी ने अपनी सृजन प्रक्रिया में कई रचनाओं में इस शैली का प्रयोग किया है।

शरद जोशी कृत रचना 'पास के बहाने कविता' और 'कर्म पर बहस' नामक रचना इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है।

समीक्षा शैली : व्यंग्यकार शरद जोशी ने भी समीक्षा शैली का प्रयोग कर व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं। शरद जोशी द्वारा इस शैली में लिखी हुई रचना है 'मेघदूत की पुस्तक समीक्षा' यह रचना समीक्षा शैली की उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इस रचना के माध्यम से एक अच्छे समीक्षक होने का प्रमाण जोशी जी ने दिया है।

जासूसी शैली : शरद जोशी ने व्यंग्य विधा में विविध शैलियों का प्रयोग कर व्यंग्य को प्रतिष्ठा दिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनकी अनेक शैलियों में जासूसी शैली में लिखी हुई रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस तथ्य को शरद जोशी ने मुद्रिका रहस्य रचना में बड़े ही पैने ढंग से प्रस्तुत किया है।

'महाकवि कालिदास ने जब 'अभिज्ञान शाकुंतल' की रचना की तो प्रतिस्पर्धा के रूप में एक जासूसी पुस्तक लिखी गई, मुद्रिका रहस्य उर्फ किस्सा कुमारी शकुंतला का। इसने बिक्री के सभी पुराने रिकार्ड तोड़ दिए। भोजपत्र पर जितनी नकलें तैयार होतीं, शाम को बिक जातीं। दिनभर दरबार में बैठे कालिदास की कविताओं का गुणगान करने वाले दरबारी भी जब घर लौटते तो फुटपाथ से ऐसी एक जासूसी पोथी खरीद लेते और वस्त्रों में छिपाये घर ले आते।'[27]

सामान्य शैली : शैली के विभिन्न प्रकारों में सामान्य शैली का भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। शरद जोशी ने 'वर्जीनिया वुल्फ से डरते हैं', 'कह दूँ लिखि कागद कोरे', और 'जीप पर सवार इल्लियाँ' आदि रचनाओं में सामान्य शैली का प्रयोग किया है। यहाँ 'वर्जीनिया वुल्फ से डरते हैं' व्यंग्य रचना का एक अंश प्रस्तुत है-

.. हुआ यों कि एक पहले दोपहर एकाएक सचिवालय में यह अफवाह फैल गई कि कतिपय प्रमुख सचिवों के परिवार 'वर्जीनिया वुल्फ' देखने जा रहे हैं। 'अपना साहब जा रहा है विथ फेमिली!'

सचिवालय से यह खबर छनकर हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट्स के दफ्तरों में पहुँच गई कि सचिवालय में सब लोग कल दिखाए जाने वाले किसी अंग्रेजी सिनेमा की बात कर रहे हैं।

इतिवृत्तात्मक शैली : यह सर्वाधिक प्रचलित शैली है। इसमें घटनाओं का प्रभावशाली ढंग से वर्णन करने के लिए स्थान रहता है। शरद जोशी ने 'एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ' नामक नाटक में इसी शैली का पात्रों के संवादों के माध्यम से वर्णन किया है।

इस प्रकार शरद जोशी ने अपनी समग्र रचनाओं में विभिन्न शैलियों का बखूबी के साथ प्रयोग किया है। उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त अन्य शैलियों का प्रयोग भी शरद जोशी ने किया है, लेकिन स्थानाभाव के कारण उनका विस्तृत विवेचन नहीं कर पा रहे हैं। उनकी अन्य शैलियों में प्रमुख हैं।

शरद जोशी ने पंचतंत्र शैली में (चुनाव,एक मुर्गाबीत)-ऐयारी शैली में (मुद्रिका रहस्य) आदि विभिन्न शैलियों में रचना की हैं। इस प्रकार ये सभी मिलकर उनकी रचनाओं को आकर्षित करने में सामर्थ्य रहें हैं।

निष्कर्ष :

शरद जोशी ने अपनी समग्र रचनाओं में विविध शैलियों का प्रयोग कर भाषा का लोक संस्कार तो किया ही है उसे विविध शैलियों से सजाया भी है। शरद जोशी के व्यंग्य की रोचकता, पैनापन, संयत भाषा शैली, व्यंग्य शिल्प आदि से प्रभावित होकर व्यंग्य समीक्षक डॉ. बालेंदुशेखर तिवारी जी ने लिखा है-*'इतना निस्संदिग्ध है कि शरद जोशी ने हिंदी व्यंग्य विधि को शिल्प की सर्वाधिक कलात्मकता प्रदान की है। उनके व्यंग्य शिल्प ने रचना विधान ही नहीं, अभिव्यंजना की दिशा में भी नये गवाक्षों को खोला है।'* [28] शरद जोशी के हास्य व्यंग्य निबंध, व्यंग्य नाटक, कविता तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली द्वारा व्यंग्य विधा को नया आयाम देकर उदात्त बनाया है। हास्य व्यंग्य विषय के अनुरूप शब्द चयन में शरद जोशी प्रवीण रहें हैं। उन्होंने अपनी हास्य व्यंग्यों में अंग्रेजी, जूर्द, फारसी, संस्कृत तथा आँचलिक व देशज शब्दों से लेकर असाहित्यिक तथा हल्की गालियों तक का प्रयोग किया। उनका उद्देश्य केवल कथ्य को प्रभावशाली बनाना रहा। इसके लिए उन्होंने जगह जगह पर सार्थक प्रयास किया जो सराहनीय रहा हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. शरद जोशी : एक यात्रा, सं. शशि मिश्र, पृ.162
2. व्यंग्य विवेचन, डॉ. श्याम सुंदर घोष, पृ. 43, 44
3. शरद जोशी : एक यात्रा, सं. शशि मिश्र, पृ.162
4. व्यंग्य विवेचन, डॉ. श्याम सुंदर घोष, पृ. 43, 44
5. हिंदी व्यंग्य साहित्य की भाषा, डॉ. आशा पाण्डे पृ. 10
6. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य, डॉ. बापू देसाई, पृ. 88
7. हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, शरद जोशी, पृ. 21
8. हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, शरद जोशी, पृ. 28
9. हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, शरद जोशी, पृ. 26
10. हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, शरद जोशी, पृ. 7
11. शरद जोशी, पृ. 196
12. वही, पृ. 07
13. जीप पर सवार इल्लियाँ, शरद जोशी, पृ. 81
14. दो व्यंग्य नाटक, शरद जोशी, पृ. 15
15. व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों, श्याम सुंदर घोष, पृ. 120
16. दो व्यंग्य नाटक, शरद जोशी, पृ. 108
17. झरता नीम : शाश्वत थीम,शरद जोशी, पृ. 64
18. यथासंभव, शरद जोशी, पृ. 74
19. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गद्य में व्यंग्य, डॉ. हरिशंकर दुबे, पृ. 270
20. शरद जोशी का व्यंग्य साहित्य, डॉ सूर्यकांत शिन्दे, पृ. 168
21. संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, सं. रामचंद्र वर्मा, पृ. 1001
22. जीप पर सवार इल्लियाँ, शरद जोशी, पृ. 7
23. शरद जोशी : एक यात्रा, सं. शशि मिश्र, पृ. 83
24. दो व्यंग्य नाटक, शरद जोशी, पृ. 66
25. तिलस्म, शरद जोशी, पृ. 7
26. साहित्यशास्त्र, नरसिंहप्रसाद दुबे/रघुसुभे, पृ. 26
27. तिलस्म, शरद जोरी, पृ. 45
28. हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य-व्यंग्य, बालेंदुशेखर तिवारी, पृ. 207

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में चित्रित स्वातंत्र्योत्तर ग्राम्य जीवन का यथार्थ

देबी देबांगना
शोधार्थी, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय,
इम्फाल-795003
8876636151
Debanganatezu.1996@gmail.com

प्रो. एच. सुवदनी देवी
आचार्य, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
इम्फाल-795003
9774452826
hsubadani.devi@gmail.com

सारांश :

भारत को गहराई से जानना है तो यहाँ के गाँवों के बारे में जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के बाद भारत के गाँव तीव्रता से शहरोन्मूखी हो रहे हैं। इसी बदलते परिवेश के साथ साहित्य भी निरंतर प्रवाहमान है। समाज में हो रहे इस परिवर्तन को एवं विभिन्न घटनाओं को साहित्यकार अपने साहित्य में चित्रित करता है। उनकी आभिव्यक्ति करने की शैली उस समय के समाज को प्रतिनिधित्व करती है। यह अभिव्यक्ति समाज के सापेक्ष होती है, इसी कारण साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। किसी समाज को अगर गंभीर रूप से जानना है तो उस समाज के साहित्य को पढ़ना अत्यंत आवश्यक है। गतिशील मानवजीवन के साथ समाज एवं साहित्य भी बदलता रहता है। कथा साहित्य वर्तमान युग की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है।

बीज शब्द :

यथार्थता, स्वतंत्रता, ग्राम्यजीवन, व्यंग्य, विसंगति, शोषण, दहेज, बेरोजगारी, नौकरी, अंधविश्वास, ओझा, तंत्र-मंत्र आदि।

विश्लेषण :

साहित्य मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। संगीत, नृत्य, कला, शिल्प के साथ ही साथ साहित्य भी मानव जीवन के संगी की तरह चलता रहता है। साहित्य सार्थक, रसात्मक, हितकारक, रमणीय अर्थ का प्रतिपादक व सुंदर, आकर्षक, आनंद की अनुभूति के साथ हृदय के श्रेष्ठतम क्षण की संवेदना की अभिव्यक्ति है। किसी समाज को अगर गंभीर रूप से जानना है तो उस समाज के साहित्य को पढ़ना अत्यंत आवश्यक है। साहित्य की शुरूआत सबसे पहले पद्य के रूप में हुई, परंतु जब उसने चिंतन, विवेक, तर्क को अपने में समेटकर उद्‌भासित किया तो उसे 'गद्य' के रूप में स्वीकृति मिली। 'गद्य' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'गद्' धातु में 'यत' प्रत्यय जोड़ने से हुई, जिसका अर्थ 'बोलना' अथवा 'बताना' होता है। गद्य सहज एवं सरल होने के कारण सामान्यजन के वार्तालाप एवं व्यावहारिक जीवन में विचारों के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण माध्यम बना। अत: आधुनिक युग को 'गद्य युग' के नाम से जाना जाता है।

साहित्य वस्तुत: जनमानस की भावनाओं की ही अभिव्यक्ति होता है। इस संदर्भ में प्रतिष्ठित साहित्येतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं – *''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिबिंब होता है, तब यह जरूरी है कि जनता की चित्रवृत्ति में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''*[1] अर्थात् साहित्य के बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण है। साहित्य ही ऐसा एक शक्तिशाली माध्यम है, जो अपनी सहजता एवं सरलता के कारण मनुष्य के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। जीवन और जगत स्वंय एक कहानी है, जो निरन्तर मानव जीवन के साथ चलती रहती है। साहित्य अपने समय और सामाजिक परिस्थिति के साथ उत्पन्न होता है, जो उस कालखंड को प्रतिफलित करता है।

भारतीय कथा साहित्य में ग्राम जीवन का चित्रण प्रेमचंद के कथा साहित्य में सबसे अधिक दिखता है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के बाद फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय और विवेकी राय के कथा साहित्य में स्वतंत्रता के पूर्व एवं स्वतंत्र भारत के 'गाँव' का चित्रण देखने को मिलता है। सन् 1945 के आस-पास विवेकी राय की पहली कहानी 'पाकिस्तान' प्रकाशित हुई। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में लेखन कार्य करने वाले विवेकी राय बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी एवं भोजपुरी दोनों भाषाओं में कविता, कहानी, उपन्यास, ललित निबंध, समीक्षा, व्यंग्य, रेखाचित्र, फीचर आदि सभी विधाओं में उनका लेखन परिपूर्ण है। उनके कथा साहित्य में – 'जीवन परिधि', 'नई कोयल', 'गूंगा जहाज', 'बेटे की बिक्री', 'विवेकी राय की श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि प्रमुख हैं। साहित्य में उनकी सृजनात्मक सेवाओं के लिए अनेक साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित एवं पुरष्कृत किया है। उनके उपन्यास 'सोनामाटी' पर 'प्रेमचंद पुरस्कार' (1987 ई.), साहित्य भूषण सम्मान (1994 ई.) मिले हैं। विद्वानों के अनुसार असमीया गद्य साहित्य का प्रारंभ 'अरुणोदय' पत्रिका के माध्यम से हुआ है। लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा को असमीया कथा-साहित्य का जनक माना जाता है। उसी समय शरत चंद्र गोस्वामी, नकुल चंद्र भूञा, सूर्य कुमार भूञा, दण्डीनाथ कलिता, मित्रदेव महंत, हलिराम

डेका आदि ने अपना योगदान दिया। 'जोनाकी' पत्रिका के प्रकाशन के कारण इसे 'जोनाकी युग' (1889 ई.) नाम से नामांकित किया गया। परवर्ती समय में 'आवाहन' पत्रिका के साथ 'आवाहन युग' (1929 ई.) और 'रामधेनु' पत्रिका के साथ 'रामधेनु युग' (1951 ई.) का प्रारंभ हुआ। यह युग यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ आरंभ हुआ, जहाँ स्वाधीनता के समय तथा स्वाधीनता के बाद की परिवेश को साहित्य में चित्रित किया गया। इस युग के प्रतिष्ठित कहानीकार थे – सैयद अब्दुल मालिक, वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, योगेश दास, सौरभ कुमार चलिहा, भवेंद्र नाथ शइकिया, होमेन बरगोहाईं, महिम बोरा आदि।

सन् 1945-46 के आस-पास महिम बोरा ने असमीया साहित्य में अपना लेखन कार्य आरंभ किया था। 'बरदोईचिला' पत्रिका में उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई थी। असमीया कहानी, कविता, उपन्यास, हास्य-व्यंग्य

साहित्य, बाल साहित्य, अनुवाद साहित्य, संपादन पुस्तक, रेडियो नाटक आदि सभी विधाओं में अपना योगदान दिया था। सन् 2011 ई. में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री, 'एधानी माहिर हाही' उपन्यास के लिए सन् 2001 ई. में साहित्य अकादमी, 1966 ई. में कहानियों का संग्रह 'गल्प समग्र' के लिए छगनलाल जैन पुरस्कार, 2007 ई. में साहित्याचार्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

विविधता से परिपूर्ण भारतवर्ष को समझने के लिए भारत के ग्रामीण परिवेश को समझना आवश्यक है। भारतीय संस्कृति ग्रामीण परिवेश के माध्यम से ही प्रतिफलित होती हैं। वैभव सिंह ने ग्राम के संदर्भ में लिखा है-*''लोकतंत्र की सफलता की कसौटी यह मानी जाती है कि लोकतंत्र देश के सबसे कमजोर वर्ग के लिए क्या कर पा रहा है। पर इसके उलट गाँवों में उच्चवर्गीय समाज की सफलता इस पर टिकी होती है कि वह कमजोर वर्ग का किस सीमा पर दमन कर पा रहा है।''*[2] अर्थात् लोकतंत्र तभी सफल होगा, जब वह सभी वर्ग के लोगों को एक साथ लेकर आगे बढ़ेगा। विवेकी राय और महिम बोरा के साहित्य लेखन ग्रामीण जीवन से जुड़ा हुआ है, जिनमें आंचलिकता के साथ भारतीय ग्रामीण जीवन का चित्रण हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते हुए भारतीय गाँव की सामाजिक जटिलताओं को दोनों कहानीकारों ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। उनके साहित्य में जहाँ एक ओर ग्रामीण जीवन के दुख और पीड़ा से ग्रसित लोग हैं, वही दूसरी ओर सुखद और उल्लास से परिपूर्ण लोक जीवन भी दिखाई देता है।

ग्रामीण जीवन की यथार्थता पर चर्चा करने से पहले हमें इसके अर्थ को समझना आवश्यक है। यथार्थ शब्द का प्रयोग 'सत्य' एवं 'वास्तविकता' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यथार्थ वह विचारधारा है, जो भौतिक जगत को सत्य मानती है। अर्थात् हमारे ज्ञानेंद्रियों द्वारा जिसे हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वही सहज अर्थ में यथार्थ है। साहित्य में यथार्थ का होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि किसी भी समाज की वास्तविक छवि हम यथार्थ के माध्यम से जान सकते हैं। भारतीय समाज की यथार्थता उसके गावों में निहित हैं। शहरी जीवन में कृत्रिमता व्यापक रूप में मिलती है। आजादी के बाद भारतीय ग्राम्य जीवन में जो बदलाव आया उसका यथार्थ चित्रण विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में देखने को मिलता है।

विवेकी राय एवं महिम बोरा ने ग्रामीण समस्याओं को अपनी-अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन की यथार्थता छुपी हुई है। परंपरागत ग्रामीण जीवन के साथ ही नये-पुराने मूल्यों के बीच के संघर्ष के कारण ग्रामीण जीवन में आने वाले बदलावों को भी दोनों कहानीकारों ने अपनी-अपनी कहानियों में उजागर किया। भारतीय ग्रामीण जीवन की वास्तविक चित्र को दोनों कहानीकारों ने अपनी-अपनी कहानियों में प्रतिफलित किया है। दोनों साहित्यकारों की कहानियाँ स्वतंत्रता से पहले एवं स्वतंत्रता के बाद के समय की ग्रामीण परिस्थितियों को दर्शाती हैं।

ग्रामीण जीवन पर चर्चा करते समय हम वहाँ होने वाले भ्रष्टाचार को इंकार नहीं कर सकते हैं। भारतीय जन-जीवन में भ्रष्टाचार एक साधारण-सी वस्तु की तरह बन गई है। गाँव हो अथवा शहर, लोगों के मन में भ्रष्टाचार ऐसे समाहित हो गया है कि यह वर्तमान समय में एक आम बात बन गई है। इसी बात को प्रतीकात्मक रूप में व्यंग्यात्मक शैली में विवेकी राय ने अपनी कहानी 'दादुर धुनि चहुँ ओर' एवं महिम बोरा ने 'हेरा पोवा नट एटा' कहानी में दिखाया है। 'दादुर धुनि चहुँ ओर' कहानी में विवेकी राय ने मेंढक की सभा के माध्यम से समाज में चल रहे भ्रष्टाचार को दिखाया है। *''वह-वह चारा फेंका कि फिर मन फिर जाय् समझी। कौन क्रांति करेगा?''*[3] मेंढक क्रांति की बात करते हैं परंतु भारतीय ग्रामीण समाज की सच्चाई यह है कि कुछ पैसों के लिए क्रांति करने वाले कुछ लोग बिक भी जाते हैं। बड़े-बड़े अफसरों द्वारा साधारण लोगों को अज्ञान समझकर उनके हक को छीन लिया जाता हैं। *''जब-जब इस प्रकार की कमेटी, कमीशन, आयोग, शिष्टमण्डल और प्रतिनिधिमण्डल आदि की घटा देश के ऊपर छा जाती है और सरकारी पैसे की बौछार खुलकर होने लगती है तो चारों ओर रामायण की चौपाई सुनाई पड़ने लगती है... ।''*[4] मेंढकमण्डली सभा के माध्यम से हमारे कार्यालयों में चल रहे भ्रष्टाचारों का व्यांग्यात्मक चित्रण किया गया

है। इसी प्रकार महिम बोरा की कहानी 'हेरा पोवा नट एटा' के माध्यम से यमराज के पास जाने वाले भोगराम मास्टर के माध्यम से कार्यालयों में अफसरों द्वारा किए जाने वाले भ्रष्टाचारों का वर्णन है। *''यमर देशतो तेनेह'ले घाँचर व्यवस्था चले? किंतु कण्डाक्टर ककाईदेउ, बध लागे, किबा एटा करि मोक खालाच दिब नोवारेने? अंतत: मोर मानुहजनीर कथा भावि।''*[5] अर्थात यमराज के देश में भी भ्रष्टाचार है? परंतु कंडक्टर भैया मेरी पत्नी के बारे में सोचकर क्या आप मुझे यहा से जाने दे सकते हैं? वह आश्चर्यचंकित हो जाता है, क्योंकि यमलोक में भी दुर्नीति है। कहानी में आगे बताया गया कि अगर यमराज के पास से किसी को अपने प्राण वापस लेने होते हैं, तब चित्रगुप्त को कुछ पैसा रिश्वत के रूप में देना पड़ता है, तभी वह वापस जाने देंगे। इसी संदर्भ में वे एक जगह और लिखते हैं *''चित्रगुप्तर उचरते एटा प्रकाण्ड केछ-बक्स। ताते बोले माननि अरिहणा आदि दिब लागे। एक कथात घाँच।''*[6] अर्थात् चित्रगुप्त के पास एक बड़ी-सी पेटी है और उसी में पैसा डालना पड़ता है, जो साधारण रूप से कहा जाए तो रिश्वत है। इन पंक्तियों के जरिए लेखक ने व्यंग्य रूप से देश में चल रहे भ्रष्टाचार को दिखाया है। यहा लेखकों ने मेंढक और यमलोक को प्रतीक के रूप में व्यवहृत किया है, जिसके माध्यम से व्यंग्यात्मक रूप से हमारे देश में हो रहे भ्रष्टाचारों को दिखाया है।

ग्राम्य जीवन पर चर्चा करते समय समाज में सदियों से चले आ रहे जमींदारों द्वारा किया गया शोषण को हम अनदेखा नहीं कर सकते। जमींदारों द्वारा साधारण ग्रामवासियों को मिलने वाली यातना को दोनों कहानीकारों ने अपनी-अपनी कहानी 'सेठ की हिजामत', 'भूमिधर', 'तिनिर तिनि ग'ल' में दिखाया है। 'सेठ की हिजामत' और 'भूमिधर' विवेकी राय की कहानियाँ हैं, जिसमें लेखक ने लिखा है *''हमारा सबसे बड़ा अपराध यही था कि हम अपने को आदमी समझते हैं। यदि कुत्ते की तरह मालिक के द्वार पर चौबीस घंटा दुम हिलाते रहते तो हम भी उनकी नजरों में अच्छे रहते।''*[7] जब तक मालिक के आगे-पीछे उनके नीचे काम करने वाले लोग घूमेंगे, तबत क उनके नजरों में वे अच्छे रहते हैं और अगर मालिक के मन के हिसाब से काम न हो तो वहीं मालिक उसे कहीं का नहीं छोड़ता है। अपने स्वार्थ सिद्धि के समय जमींदार निर्धन लोगों को अपने करीबी समझते हैं और जब उनके काम हो जाए, तब उनके साथ जानवर की तरह व्यवहार करते हैं। उसी प्रकार महिम बोरा की कहानी 'तिनिर तिनि ग'ल' में जमींदारों को खुश करने के लिए पूर्णकांत अपने बच्चों को न पिलाकर घर के दूध, केला आदि जमींदार को दे देते हैं। जहाँ वे लिखते हैं- *''क'रनो ल'रा छोवालीये गाखीर पाब? येतिया गाखीर उलाईछिल, अकनमान चाहलौ राखि बाकी महरीर घरत उठना दिलौं। सेइपिनेइ खाजानार टकात काटिबलौ।''*[8] अर्थात् पूर्णकांत के घर की गाय से जितना दूध निकलता था, वह अपने बच्चों को न पीलाकर जमींदार के घर भेज दिया करता था, ताकि उसका भूमि कर वे माफ करें। ऐसे शोषण भारत में सदियों से चला आ रहा है और वर्तमान समय में भी यह समाज में व्याप्त है। अपने बच्चों के मुँह से पौष्टिक आहार छीनकर जमींदारों को एवं समाज में उनसे उच्च वर्ग में रहने वाले लोगों को देने की विवशता को एक असहाय पिता के माध्यम से इस कहानी में दिखाया गया है। समाज के उच्च स्थान में रहने वाले अपने पैसे और सम्पत्ति से परिपूर्ण लोगों द्वारा साधारण लोगों को शोषण करने की जो मानसिकता थी, उसे कहानीकार ने अपने कहानी के माध्यम से दिखाया है। समाज में चल रहे शोषण लोगों को दो भागों में बाँट दिया। एक वर्ग में शोषित साधारण लोग हैं और दूसरे वर्ग में जमींदार पूँजींपति लोग, जिनके हाथ में सत्ता है और साधारण गरीब लोगों को शोषण करने की उनकी भूख है।

बेरोजगारी भारतीय समाज की अन्य एक महत्वपूर्ण समस्या है। लोग शिक्षित होते जा रहे हैं, परंतु साथ ही बेरोजगार भी होते जा रहे हैं। यह समस्या स्वतंत्रता के बाद से अभी तक निरंतर चली आ रही है। समाज में बढ़ती बेरोजगारी की समस्या को लेकर विवेकी राय ने 'पॉलिश' कहानी लिखी है, जिसमें शिक्षित बेरोजगारों के जीवन की मर्मवेदना को गहराई से चित्रण किया गया है। *''बेरोजगारी की समस्या है। है न भद्दी? इस देश का हर नौजवान बेकार है। सबको नौकरी चाहिए, सिर्फ नौकरी चाहिए। हाईस्कूल फेल और थर्ड डिवीजन पास को भी नौकरी चाहिए।''*[9] हमारे समाज में सरकारी नौकरी को ही लोग सबसे उप्पर समझते हैं। व्यवसाय करने वाले लोगों से भी नौकरी करने

वाले लोगों को आज भी समाज में ज्यादा सम्मान एवं मान्यता देते हैं, जिसके कारण शिक्षित युवा व्यवसाय अथवा अन्य कामों से ज्यादा सरकारी नौकरी के पीछे भागतें हैं, जिसके कारण समाज में बेरोजगारी की आकड़ा दिन-प्रतिदिन केवल बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार महिम बोरा ने अपनी कहानी 'पँइताचोरा' में वल्लभ नाम के एक शिक्षित बेरोजगार अभियंता की दुख को दिखाया है, जो इंजीनियारिंग करने के बाद भी एक साल से बेरोजगार बैठा है। बहुत सारे इंटरव्यू देने के बाद भी उसे नौकरी नहीं मिल रही थी। *''आजि गोटेइ घरखन, आत्मीय, गाँवखन, स्थानीय मानुह, सकलोरे सि कृपा आरू पुतौर पात्र हौ परिछे एइ एबछर बेकार हौ बहोँतेइ। विशेषकौ गाँव अञ्चलत बेकार हौ थाकिब लगा एजने कि मानसिक यंत्रनात दिन कटाब लागे ताक भुक्तभोगीर बाहिरे आने अनुमान बा कल्पना करिब नोवारे।''*[10] अर्थात् वल्लभ को उसके अपने ही घर के लोग बोझ समझने लग गए हैं। एक साल से वह इंजीनियरिंग करने के बाद घर में बेरोजगार है। गाँव में भी उसको सभी लोग शिक्षित बेकार के रूप में ही देखते हैं और वह मानसिक तनाव को केवल जिसके साथ घटित होता है, वही समझ सकता है। घर एवं अपने लोग ही जब ताने मारने लगे एवं नालायक समझने लगे, उस बात की पीड़ा बस जिसके साथ होता है, वही समझता है। वर्तमान समाज में सभी को नौकरी चाहिए, परंतु सरकार उतनी मात्रा में पद नहीं निकाल पाते हैं, जिसके कारण हर साल बेरोजगारों की आकड़ बढ़ता ही जा रहा है।

भारतीय समाज के विवाह पद्धति में तमाम कुरीतियाँ हैं। दहेज की समस्या उनमें से एक कुरीति है। यह समाज के लिए अत्यंत हानिकारक है। एक बेटी को अपने माता-पिता जन्म से लाड़-प्यार से बड़े करते हैं। किसी भी समाज में विवाह के दौरान जब एक बेटी को पिता विदा करते हैं, वे साथ ही अपने कलेजे के टुकड़े को भी दान कर देते हैं। समाज में बढ़ने वाले दहेज की समस्या को विवेकी राय और महिम बोरा ने अपनी-अपनी कहानी 'बेटे की बिक्री' और 'एई नदीर सोँते' में दिखाया है। 'बेटे की बिक्री' कहानी में विवाह पद्धति की कुरीति पर प्रहार किया गया है। शिक्षित युवकों को विवाह के बाजार में खड़ा करके खुलेआम निलामी की दावा का वर्णन है। *''अपना सुख-सौभाग्य देखो। यह टूटा घर तिमंजला महल हो जाय, दरवाजे पर तगड़े बैल और भैंस झूमने लगें, लड़का अमेरिका में पढ़ने चला जाय, घर दौलत से भर जाय और तुम ठाट से पगड़ी बाँधकर घोड़े पर घूमो।''*[11] बी.ए. में पढ़ने वाला माधवचंद्र खुले आम शादी के निलामी में बीक गया परंतु वह एक बार के लिए भी अपनी मन की बात किसी के समाने नहीं रखी एवं एक बार के लिए भी उसने मना नहीं किया कि उसे दहेज नहीं चाहिए। जितनी शिक्षा उतनी दहेज, समकालीन समाज में आज भी यह समस्या देखी जाती है। इसी प्रकार महिम बोरा ने भी 'एई नदीर सोँते' कहानी में शिक्षित युवक प्रबोध के पिता, जो पहले एक आदर्शवान व्यक्ति थे, परंतु वे भी समय के साथ बदलकर अपने बेटे प्रबोध की शादी के समय लड़की के पिता से दहेज लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। अपने बेटे के लिए वे लड़कीवालों के सामने प्रस्ताव भी रखते हैं *''डिब्रुगड़ टाउनत माटिउ दिब लागिब, बियार आ-अलंकार, खा-खरछ सकलो खरच लागिब आरू ल'राक डिब्रुगड़लौ बदलि कराइ अनाब लागिब।''*[12] अर्थात् डिब्रुगढ़ शहर में प्रबोध को जमीन खरीदकर देनी होगी, शादी के सभी खर्चे एवं अलंकार और गाँव से उसे अर्थात् प्रबोध को डिब्रुगढ़ शहर में तब्दिली भी करके लाना पड़ेगा। प्रबोध इंजीनियर था, जिसके कारण उसके पद के लोभ में लड़कीवाले भी प्रबोध के पिता की सभी शर्तों को मानने के लिए तैयार भी हो गए थे। अंत में ऐसे दुराचार, दुर्नीति अन्याय के बीच में रहने वाले प्रबोध जो प्रथम अवस्था में अपने पिता के खिलाफ जाकर दहेज लेने से इंकार कर रहा था। उसकी शिक्षा एवं परवरिश ने उसे इतनी नीच कार्य करने से हर समय रोकती रहती थी, परंतु अब वह भी अपने होने वाले ससुर की बातों में आकार अंत में दहेज लेने के लिए मान जाता है। वह सोचता तो है कि यह बात उसके और उसकी होने वाली पत्नी के जीवन के लिए सही नहीं है। परंतु अंत में अपने परिवार के शांति के लिए वह दहेज लेने के लिए मान जाता है। शहरों की आधुनिकता धीरे-धीरे ग्राम्य समाज के मध्य वर्ग को भी ग्रसित करने लगा है। इन बातों को दोनों कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यंत दयानीय थी। एक ओर महात्मा गांधी के आंदोलनों में नारी ने सशक्त भूमिका निभाई तो दूसरी ओर वह अपने हक के लिए समाज के नीच खयालात वाले लोगों से लड़ती रही। महिलाएँ शिक्षित होते हुए भी अपने अधिकारों की मांग नहीं कर सकती थीं। विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियाँ 'विद्रोह' और 'बहुभुजी त्रिभुज' गावँ के विधवा को लेकर है। विवेकी राय की कहानी विद्रोह में एक माँ तथा समाज के लोगों द्वारा एक विधवा के प्रति क्रूर व्यवहार को दिखाया है। लेखक लिखते हैं – *''कुलच्छनी ससुरे में भतार चबाय के नैहर में डेरा डाले हैं। अब के खाई?' ओह यह माँ है? अपनी बेटी के प्रति ऐसी क्रूर कठोर? कोई व्यक्ति जिसे लड़की बिलकुल नहीं जानती थी, अचानक उसका सर्वस्व होने की मान्यता पाने के बाद मर गया, तो इसमें उस ल?की का क्या दोष हैं?''*[13] पति के अकाल मृत्यु पर पत्नी को दोषी ठहराना हमारे समाज के लोगों की नकारात्मक मानसिकता को दर्शाती है। उसी प्रकार महिम बोरा की कहानी 'बहुभुजी त्रिभूज' में गाँव के एक स्कूल के प्रधान शिक्षक के पद के लिए आने वाली युवा विधवा लड़की को देखकर गाँव के बाकी लोग गाँव में अगर बदनाम हो जाए तब किया होगा, सोचकर अपनी नीच मानसिकता का परिचय देता है *''सदाय एटा कथा मनत राखिबा एईखन ह'ल गाँव। टाउन नहय। गाँवत सदाय छोवालीर आगत आदर्श ह'ब लागिब। अकल बि.ए. एम.ए. पास कारिलेइ शिक्षा नहय-चरित्र है डाडर कथा।''*[14] अर्थात् हमेशा एक बात याद रखना – यह शहर नहीं गाँव है। यहाँ सभी लड़की को समाज के सामने आदर्श रूप में होना चाहिए। बी.ए. अथवा एम.ए. जैसे शिक्षा से बढ़कर चरित्र है। जिस व्यक्ति ने कुछ समय पहले तक विधवा लड़की को लेकर गलत खयाल मन में ला रहे थे, वहीं उसे चरित्र के पाठ पढ़ाने लगे। समाज में पढ़े-लिखे, सबके सामने आदर्शवान बनकर घूमने वाले लोगों की सच्ची तस्वीर इन दोनों कहानी के माध्यम से उजागर हुआ है।

ग्रमीण समाज में सबसे अधिक व्याप्त समस्या में से अंधविश्वास की समस्या भी महत्वपूर्ण है। भारतीय ग्राम्य जीवन वर्तमान समय में भी अंधविश्वास के तले दबे हुए है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने इसे समाज से थोड़ा-बहुत कम करने की कोशिश की, परंतु यह सम्पूर्ण रूप से विलुप्त नहीं हो पाया। यह शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों स्तरों के लोगों में व्याप्त है। महिम बोरा एवं विवेकी राय दोनों कहानीकारों ने ग्राम्य समाज के अंधविश्वास की समस्याओं का चित्रण अपनी कहानियों में किया है एवं साथ ही उसके दुष्परिणामों को भी दर्शाया है। अंधविश्वास की धारणा किस स्तर पर समाज में व्याप्त है उसे विवेकी राय ने अपनी कहानी 'सुराजी भवानी का फेर' में लिखते हैं *''शिवधनी भूत उतारता है। ठीक अपने घर के आँगन में जमता है और अर्त्तलोग चारों ओर से घेर कर बैठ जाते हैं। जब पानी बरसता रहता है तो घर में झुमे? लगता है। अर्थार्थीजनों की संख्या चार से लेकर दस तक रहती है और अधिकांश स्त्रियां होती हैं। इनके ऊपर भूत, दोष, टोना टोटका, कारन और नजर का असर जल्दी होता है।''*[15] शिवधनी नामक ओझा के जरिए लेखक ने ग्राम्य समाज में प्रचलित भूत-प्रेत की धारणा को दिखाया है। प्रत्येक गाँव में शिवधानी जैसे तमाम ओझा हैं, जिनके पास भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र आदि के लिए स्त्री और पुरुष दोनों जाते हैं, परंतु स्त्रियों की मात्रा ज्यादा रहती है। लोगों के मन में रहने वाले तमाम अंधविश्वास के कारण वे डॉक्टर अथवा विज्ञान से ज्यादा झाड़-फूक पर विश्वास करते हैं। इसी प्रकार महिम बोरा ने अपनी कहानी 'चक्रवट' में असम के गावों में चलने वाले एक प्रथा 'मंगल चोवा' अर्थात् बैठे-बैठे ही चावल, हाठ के तलवे, कुण्डली को देखकर भविष्य में क्या होने वाला है, उसे अनुमान लगाना इसके बारे में अपनी कहानी में उल्लेख करते हैं, जो एक प्रकार की अंधविश्वास लोगों में है। कहानी में हरिनाथ नाम के पात्र की पत्नी ने अपने पति की नौकरी होगी या नहीं, इसी संदर्भ में भविष्य का अनुमान लगाने की कोशिश करती है *''चाउँ बारु धान केइटामान आनगौ चोन, मइ मडल एखन चाउँ।''*[16] अर्थात् थोड़ी-सी धान लेकर आओ मैं मडल देखने की कोशिश करती हूँ। बेरोजगारी, शिक्षा एवं अर्थ के अभाव से लोग ऐसे अंधविश्वासों पर भी भरोसा कर बैठते हैं। इसी प्रकार उनके अन्य एक कहानी 'केञा आङुलि' (छोटी उंगली) कहानी में एक नई नवेली दुल्हन की छोटी उंगली बाकी उंगलियों से लम्बी होने के कारण पूरे गावँ के औरतों ने मुहँ दिखाई रसम के समय उसे कुलक्षनी साबित करने को

लेकर लिखी गई है। *''न-कइनार भरिर केजा आङुलि दुटा दीघल- कुलक्षण।''*[17] अर्थात् दुल्हन की पैरों की दोनों छोटी उँगलिया लम्बी है, कुलक्षण है। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियों के बीच खासकर अंधविश्वास जैसे बातों का प्रभाव ज्यादा पड़ता है। और स्त्री ही दूसरी स्त्री की कमियों को लेकर उन्हें कुलक्षणी अर्थात अमंगल का कारण बता देती हैं। शिक्षा के अभाव एवं विभिन्न परिस्थितियों के कारण लोग ऐसे अंधविश्वासों को समय-समय पर स्वीकार कर लेते हैं, जिसके चलते वे अपने एवं अपने आसपास के लोगों को भी ऐसी बातों पर विश्वास करने लिए मजबूर कर देते हैं। विज्ञान जहाँ आज इतनी आगे बढ़ रहा है, परंतु कुछ लोग आज भी तंत्र-मंत्र, अंधविश्वास के अंधेरे में समा हुए हैं। आज भी बहुत से लोग अपनी बीमारी, बेरोजगारी या अपने जीवन में होने वाले दुख से मुक्ति के उपाय जादू-टोना, तंत्र-मंत्र को मानते हैं।

निष्कर्ष :

विवेकी राय और महिम बोरा ने अपनी अपनी कहानियों के माध्यम से समाज की यथार्थता को लोगों के सामने लाने का प्रयास किया है। समाज में घटित विभिन्न कथाबिम्बों को आधार बनाकर दोनों कहानीकारों ने अपनी कहानियों के पात्रों एवं कथानकों का निर्माण किया है। मानवजीवन गतिशील है, जिसके कारण हमारा समाज भी समय एवं परिस्थिति के साथ बदलता गया। स्वतंत्रता के बाद हमारे समाज एवं ग्राम्यजीवन में भी इसका प्रभाव पड़ा। विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में स्वतंत्रता के बाद गावों में होने वाले परिवर्तन एवं समाज को चित्रित किया गया है। भारत जैसे सांस्कृतिक देश में प्रत्येक समाज का अपना वैशिष्ट्य है। भारतीय संस्कृति की विविधता विश्व में अतुलनीय है। यह ग्रामीण जीवन से ही शहरों में एवं विश्व में आती है, परंतु ग्रामीण जीवन सदियों से विसंगतियों का शिकार रहा है। दोनों साहित्यकारों ने इन विसंगतियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने उजागर किया है। गतिशील मानवजीवन के साथ समाज भी बदलता रहता है। वर्तमान समाज उन तमाम विसंगतियों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ रहा है, परंतु अभी भी समाज में यह विसंगतियाँ कहीं न कहीं है। ❑

संदर्भ :

रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 03
वैभव सिंह, कहानी विचारधारा और यथार्थ, पृ.सं.-124
विवेकी राय, सामलगमला, पृ.सं.- 118
वहीं, पृ.सं.- 119
डॉ. हिरेन गोहाँई (सं.) , गल्प समग्र- महिम बोरा, पृ.सं.- 315
वही, पृ. सं.- 315
विवेकी राय, सामलगमला, पृ.सं.- 38
डॉ. हिरेन गोहाँई (सं.) , गल्प समग्र- महिम बोरा, पृ.सं.- 82
विवेकी राय, सामलगमला, पृ.सं.-487
डॉ.हिरेण गोहाँई (सं.), गल्प समग्र- महिम बोरा, पृ.सं.- 188
विवेकी राय, सामलगमला, पृ.सं.- 373
हिरेन गोहाँई (सं.) , गल्प समग्र- महिम बोरा, पृ.सं.- 153
विवेकी राय, सामलगमला, पृ.सं.- 366
डॉ. हिरेन गोहाँई (सं.) , गल्प समग्र- महिम बोरा, पृ.सं.- 96
विवेकी राय, सामलगमला, पृ.सं.- 165
डॉ. हिरेन गोहाँई (सं.) , गल्प समग्र- महिम बोरा, पृ.सं.- 44
वहीं, पृ.सं.- 48

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য ঃ স্বৰূপ আৰু প্ৰত্যাহ্বান

ড° মণিকা চুতীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
দেৰগাঁও কমল দুৱৰা মহাবিদ্যালয়
দেৰগাঁও, অসম-৭৮৫৬১৪
৯১০১৪৮৪৩৩৫
monika.chutia86@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰূপে পৰিগণিত ৰাজ্যকেইখনৰ মাজত পৰিলক্ষিত হোৱা আৱেগৰ ঐক্যসূত্ৰ মূলতে ঐতিহাসিক পটভূমিভিত্তিক তথা নৃ-গোষ্ঠীগত আৰু সাংস্কৃতিক সমৰূপতা আধাৰিত। ৰাজনৈতিকভাৱে ভাৰতবৰ্ষৰ মূল ভূ-খণ্ডৰে অংগৰূপে স্বীকৃত হ'লেও ঐতিহাসিক, নৃ-গোষ্ঠীগত, সাংস্কৃতিক তথা ভূ-ৰাজনৈতিক (Geopolitical) অৱস্থিতি আদি বিভিন্ন দিশৰ পৰা এই অঞ্চলটো দক্ষিণ- এচিয়াৰ সৈতে অধিক সম্পৰ্কিত। সেয়ে এই অঞ্চলটোৰ স্বকীয় সত্তা নির্মাণত ভাৰতবৰ্ষৰ মূল ভূখণ্ডৰ তুলনাত দক্ষিণ-এচিয়াৰ প্ৰভাৱ অধিক স্পষ্ট। তদুপৰি, সুদীর্ঘদিন ধৰি প্ৰচলিত একেধৰণৰ পৰিৱেশৰ বাবে অঞ্চলটোত একক আৰু অখণ্ড মানসিক চেতনা গঢ়ি উঠা দেখা যায়। যি চেতনাই শতাধিক ভাষা তথা বহুধাবিভক্ত সাংস্কৃতিক পৰিমণ্ডলক অতিক্ৰমি অন্তঃস্ৰোতৰ দৰে উত্তৰ-পূবৰ সত্তাক ক্ৰিয়াশীলতা প্ৰদান কৰা দেখা যায়। উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যকো এই ক্ৰিয়াশীলতাই নিয়ন্ত্ৰণ কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

সেয়ে হ'লেও, সাহিত্যৰ জৰিয়তে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ স্বকীয় সত্তা প্ৰতিফলনৰ ক্ষেত্ৰত ভালেখিনি প্ৰত্যাহ্বানো পৰিলক্ষিত হয়। আলোচ্য গৱেষণা পত্ৰত ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যৰ স্বৰূপ উদঘাটন কৰাৰ লগতে উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন প্ৰত্যাহ্বান সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ ভাৰতীয় সাহিত্য, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য, প্ৰান্তীয় কণ্ঠ, লিপিযুক্ত আৰু লিপিহীন ভাষা, সন্ত্ৰাস আৰু বঞ্চনা, অনুবাদ, বিশ্বায়ন।

০.০০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূব অঞ্চল বুলিলে শিলিগুৰিৰ দ্বাৰা ভাৰতৰ মূল ভূখণ্ডৰ সৈতে সংযোজিত হৈ থকা অসম, অৰুণাচল, মণিপুৰ, মিজোৰাম, মেঘালয়, নাগালেণ্ড, ত্ৰিপুৰা আৰু ছিকিম, এই আঠখন ৰাজ্যক বুজায়। ভৌগোলিক আৰু সাংস্কৃতিকভাৱে এই অঞ্চলটো ভাৰতৰ মূল ভূখণ্ডতকৈ দক্ষিণ- পূব এচিয়াৰ সৈতে অধিক কাষ চপা। তদুপৰি এই অঞ্চলৰ জনগাঁথনি আৰু জনপ্ৰব্ৰজনৰ ইতিহাসে ভাৰতবৰ্ষৰ মূল ভূখণ্ডৰ পৰা অঞ্চলটোলৈ আগমণ ঘটা আর্য পৰম্পৰা তথা দক্ষিণ-এচিয়ামূলীয় মংগোলীয় পৰম্পৰাৰ সৈতে থকা সম্পৰ্কক সূচায়। মূলতঃ মংগোলীয় নৃপ্ৰজাতিৰ প্ৰভূত্ব আৰু ককেছীয়ানমূলীয় জনগোষ্ঠীৰ সেৰেঙা বসতি থকা এই অঞ্চলটোত কিন্তু ভাষাগোষ্ঠীৰ ফালৰ পৰা অধিক

বৈবিধ্য বিৰাজমান। সেই অনুসৰি ইয়াত চীন-তিব্বতীয়, ইণ্ডো-ইউৰোপীয়, অষ্ট্ৰ'-এছিয়াটিক আদি ভিন্ন গোষ্ঠীৰ ভাষা কোৱা হয়।[১] ফলস্বৰূপে, দুটা ভিন্ন দিশৰ পৰা প্ৰব্ৰজিত, ভিন্ন বিশেষত্ব সম্বলিত, আৰ্য পৰম্পৰা আৰু আৰ্যভিন্ন পৰম্পৰাৰ সংমিশ্ৰণ ঘটি অঞ্চলটোত এক মিশ্ৰিত অথচ স্বকীয়তাপূৰ্ণ পৰম্পৰা গঢ় লৈ উঠা পৰিলক্ষিত হয়। সেয়ে ভাৰতবৰ্ষৰ অংশ হিচাপে পৰিগণিত হলেও এই অঞ্চলৰ ভৌগোলিক, নৃ-গোষ্ঠীগত, সাংস্কৃতিক-সামাজিক-ভাষিক পৰিস্থিতি ভাৰতবৰ্ষৰ মূল ভূখণ্ডতকৈ ভালেখিনি পৃথক। যিহেতু সাহিত্যই একো একোখন সমাজৰ জীৱনবীক্ষা তথা বিশ্ববীক্ষাক প্ৰতিফলিত কৰে, সেই ধাৰণাৰ আধাৰতে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সামগ্ৰিক স্থিতি তথা ঐতিহাসিক পৃষ্ঠভূমিৰ ভিত্তিত এই অঞ্চলৰ সাহিত্যতো সুকীয়া ঠাঁচ বা শৈলী পৰিলক্ষিত হয়।

০.০১ উদ্দেশ্য ঃ

এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ভাষাগত বৈবিধ্যৰ 'হটস্পট'ৰূপে পৰিগণিত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই ভিন্ন ভাষাৰ মাজেৰে কিদৰে একক চেতনা বহন কৰিছে এই সম্পৰ্কে বিস্তৃতভাৱে অধ্যয়ন কৰা হ'ব। তদুপৰি, আলোচ্য অধ্যয়নে সাধন কৰিবলগীয়া প্ৰধান উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে —

(ক) উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ ধাৰণা প্ৰতিষ্ঠা।

(খ) উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ স্বকীয়তা বিচাৰ।

(গ) উত্তৰ-পূব সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ বিশ্লেষণ।

(ঘ) উত্তৰ-পূব সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ সমাধানৰ পথ-সন্ধান।

০.০২ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে উত্তৰ পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ স্থিতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ লগতে বহুভাষিক, বহুধাবিভক্ত সাংস্কৃতিক প্ৰেক্ষাপটত উত্তৰ পূব ভাৰতৰ সাহিত্য বিষয়ক অভিধাৰ প্ৰাসংগিকতাক সামৰি লোৱা হৈছে। উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ বিভিন্নজন সাহিত্যিক আৰু ভাষাসমূহৰ স্থিতিৰ আধাৰত এই অধ্যয়নে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্ৰত্যাহ্বানসমূহক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.০৩ অধ্যয়নৰ সমল ঃ

অধ্যয়নৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা সমলসমূহ প্ৰধানকৈ গৌণ উৎসৰ পৰা আহৰণ কৰা হৈছে। এই সমলসমূহৰ ভিতৰত প্ৰধানকৈ অসমীয়া মাহেকীয়া আলোচনী *গৰীয়সী, প্ৰকাশ* আৰু *সাতসৰী*, ই-আলোচনী *Nezine: Bridging the Gap*ত প্ৰকাশ পোৱা প্ৰবন্ধক আধাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তদুপৰি, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য বিষয়ক বিভিন্ন গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱাৰ লগতে তেজপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়ৰ দ্বাৰা ১৩-২৭ ডিচেম্বৰ, ২০২২ তাৰিখলৈ আয়োজিত, *Literature of North East India, Translation and National Integration* শীৰ্ষক পৰিশীলন পাঠ্যক্ৰমত হোৱা আলোচনাৰ পৰাও সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

১.০০ মূল আলোচনা ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ আন বহু প্ৰান্তৰ দৰে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিবিষয়ক পদ্ধতিগত চৰ্চা বৃটিছসকলৰ দ্বাৰা আৰম্ভ হৈছিল। ঔপনিৱেশিক শাসনৰ প্ৰতিনিধিস্বৰূপে ভাৰতলৈ অহা কিছু সংখ্যক ইংৰাজ প্ৰশাসনিক আৰু সামৰিক বিষয়া আৰু দুই-এক খ্ৰীষ্টিয়ান ধৰ্মযাজকৰ উদ্যোগ লেখত ল'বলগীয়া। তেওঁলোকৰ প্ৰচেষ্টাত ভালেসংখ্যক লোকসংস্কৃতিবিষয়ক গ্ৰন্থ তথা এই অঞ্চলৰ নৃগোষ্ঠীসমূহৰ সামগ্ৰিক পৰিচয় সম্বলিত ম'ন'গ্ৰাফজাতীয় গ্ৰন্থ প্ৰকাশ পাইছিল।[২] এই ক্ষেত্ৰত কিছুসংখ্যক থলুৱা লোকে অংশগ্ৰহণ কৰিছিল যদিও সেয়া পৰ্যাপ্ত নাছিল। কিন্তু স্বাধীনোত্তৰ সময়ৰেপৰা উত্তৰ-পূবৰ জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত বৃটিছকালীন আৰু পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ৰ ৰাজনৈতিক-সামাজিক প্ৰত্যাহ্বানবোৰৰ ভিত্তিত, ঔপনিৱেশিক শাসক- আৰোপিত ধাৰণাৰ বিপৰীতে স্বকীয় চেতনাৰে আত্মবিশ্লেষণ তথা আত্মকথনৰ পৰম্পৰা গঢ়ি উঠা পৰিলক্ষিত হয়।

১.০১ উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ ধাৰণা ঃ

অতি প্ৰাচীনকালৰেপৰা উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত বাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে, মৌখিক আৰু লিখিত মাধ্যমেৰে লিপিহীন বা লিপিযুক্ত নিজা-নিজা থলুৱা ভাষাত জাতীয় আবেগসম্বলিত সাহিত্য ৰচনা কৰি আহিছিল। বৃটিছ শাসনকালত, ঔপনিৱেশিক শাসনৰ অংশ হিচাপে বৃটিছসকলৰ উদ্যোগত এই অঞ্চলৰ সাহিত্যিক বিদ্যায়তনিক

চর্চাৰ দৃষ্টিৰে আলোচনা কৰা হৈছিল। সেয়ে হ'লেও সাহিত্য অধ্যয়নৰ তাত্ত্বিক বিষয় হিচাপে 'উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য'ৰ ধাৰণা আপেক্ষিকভাৱে নতুন। বিংশ শতিকাৰ নব্বৈৰ দশকৰ পৰা ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ লেখকসকলে প্ৰধানকৈ ইংৰাজী ভাষাৰে লিখা সাহিত্যৰ জৰিয়তে মূল সুঁতিৰ ভাৰতীয় সাহিত্যিক পৰিমণ্ডলত চৰ্চিত হ'বলৈ ধৰে। উল্লেখযোগ্য যে, পোনপ্ৰথমে ১৯৯০ৰ দশকৰ পৰা প্ৰধানকৈ ইংৰাজী ভাষাৰে লিখা-মেলা কৰিবলৈ লোৱা লেখকসকলৰ সাহিত্যকৰ্মৰ জৰিয়তে এনেধৰণৰ সুকীয়া অভিধাৰে এই অঞ্চলৰ সাহিত্যক নামকৰণ কৰাৰ প্ৰৱণতা আৰম্ভ হয়। অৱশ্যে পৰৱৰ্তী সময়ত, নব্বৈৰ দশকৰ শেষৰফালে বিভিন্ন সংস্থাৰ প্ৰচেষ্টাত উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলমূলীয় সাহিত্যক সুকীয়া অভিধাৰে প্ৰতিষ্ঠাপন কৰাৰ পৰিৱেশ গঢ় লৈ উঠে। এনে সংস্থাসমূহৰ ভিতৰত নৰ্থ-ইষ্ট ৰাইটাৰ্ছ ফ'ৰাম লেখত ল'বলগীয়া। ২০০০ৰ দশকত স্কলাৰশ্বিপ, সংকলন আৰু নৰ্থ ইষ্ট ৰাইটাৰ্ছ ফ'ৰামৰ উদ্যোগৰ পৰিণতিত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য এক প্ৰতিষ্ঠাপিত অভিধা হৈ পৰে।[৩] নৰ্থ-ইষ্ট ৰাইটাৰ্ছ ফ'ৰাম নামৰ সংস্থাই তেওঁলোকৰ অন্যতম উদ্দেশ্য হিচাপে, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ লেখকসকলৰ বাবে এখন সুকীয়া মঞ্চ তৈয়াৰ কৰিব বিচাৰিছিল। এইক্ষেত্ৰত নৰ্থ-ইষ্ট হিল ইউনিভাৰ্চিটীৰ ইংৰাজী বিভাগৰ অধ্যাপক, লেখক ক্যাফাম ছিং নংক্যানঃ আৰু ৰবিন নাঙোমৰ ৰৰঙনি উল্লেখযোগ্য। তেওঁলোকে ২০০৩ চনত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ কবিৰ কবিতাৰ এক সংকলন প্ৰকাশ কৰি উলিয়ায়, য'ত তেওঁলোকে উল্লেখ কৰিছে যে দেশৰ এই অঞ্চলৰ লেখকসকল বহুলপঠিত আৰু বিশ্ব সাহিত্যত সমাদৃত ভাৰতীয় ইংৰাজী লেখকসকলতকৈ পৃথক। তেওঁলোকে কৈছে যে উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্য বহু পৰিমাণে ৰাজনৈতিক চিন্তাৰে উদ্বেলিত আৰু ভাৰতীয়ত্বৰ ধাৰণাক লৈ থকা দ্বন্দ্বৰে ভৰা।[৪] অৱশ্যে সাম্প্ৰতিক সময়ত 'উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য'ৰ ধাৰণাক ভিন্ন দৃষ্টিকোণৰ পৰা বিচাৰ কৰি উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ পৰিসীমা নিৰ্ধাৰণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

১.০২ উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ পৰিসীমা ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ পৰিসীমাই উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ ইংৰাজী ভাষাত লিখা সাহিত্যিকসকলৰ ৰচনাৰ লগতে এই অঞ্চলটোৰ সাহিত্য আৰু সাহিত্যিকসকলক প্ৰভাৱান্বিত কৰা আৱেগিক তথা মানসিক চেতনাকো আলোচনাৰ পৰিসৰত উপস্থাপন কৰিছে। ইয়াৰ সমান্তৰালভাৱে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ পৰিধি সন্দৰ্ভেও নতুন নতুন মত-অভিমত উত্থাপিত হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে —

(ক) বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দশক আৰু একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকত সৃষ্ট ধাৰণা অনুসৰি, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ পৰা সৃষ্ট ইংৰাজী সাহিত্যৰাজিকহে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰূপে পোষকতা কৰা হয়।

(খ) উত্তৰ-পূব ভাৰতত এক বহুভাষিক, বহু সাংস্কৃতিক পৰিৱেশ পৰিলক্ষিত হয়। ইয়াৰে ভালেমান ভাষাৰ আজিকোপতি কোনো লিপি নাই। গতিকে প্ৰায়সংখ্যক লেখকে দ্বিভাষিক বা বহুভাষিক স্থিতিত অৱস্থান কৰে। যাৰ বাবে ইংৰাজী ভাষাক বহু লেখকে ভাব প্ৰকাশৰ মাধ্যম হিচাপেহে প্ৰয়োগ কৰে, তেওঁলোকৰ আত্মাৰ প্ৰকাশ হিচাপে নহয়। সেয়ে, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ প্ৰেক্ষাপটত সৃষ্টি হোৱা ইংৰাজীকে ধৰি উত্তৰ-পূব ভাৰতীয় যিকোনো ভাষাত ৰচিত সাহিত্যক 'উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য' অভিধাৰে অভিহিত কৰা হয়।

(গ) উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যক দ্বন্দ্বাত্মক সাহিত্য হিচাপেও বিচাৰ কৰা হয়। বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দশককেইটা আৰু একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকৰ সাহিত্যত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সামগ্ৰিক অস্থিৰতা, ভাৰতীয় শাসন ব্যৱস্থাৰ বিৰুদ্ধে সশস্ত্ৰ প্ৰত্যাহ্বান তথা তাৰ পৰিণতিৰ বৰ্ণনাৰ আধাৰত এই ধাৰণা গঢ়ি উঠিছে। অৱশ্যে এক নিৰ্দিষ্ট সময়সাপেক্ষ ৰচনাৰ ভিত্তিত উত্তৰ-পূবৰ সমগ্ৰ সাহিত্যকে এইধৰণে শ্ৰেণীভুক্ত কৰাটো অনুচিত বুলিও অভিমত পোৱা যায়।[৫]

(ঘ) উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ ভালেমান ভাষাৰে যিহেতু লিপি নাই, অথচ এনেবোৰ ভাষা সাংস্কৃতিকভাৱে যথেষ্ট চহকী, সেয়ে কেৱল লিখিত সাহিত্যৰ বিপৰীতে, উত্তৰ-পূবৰ সত্বাক সামগ্ৰিকভাৱে প্ৰতিনিধিত্ব কৰিব পৰা মৌখিক আৰু লিখিত উভয় সাহিত্যকে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ পৰিসীমাত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা উচিত।

এই মতসমূহ বিশ্লেষণ কৰি ক'ব পাৰি যে, উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ বিভিন্ন ভাষাত ৰচিত সাহিত্যৰ লগতে উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলীয় মূলৰ বিভিন্ন লেখকে ইংৰাজী ভাষাত ৰচনা কৰা সাহিত্যকো উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য অভিধাৰে সামৰিব পাৰি।[৬] ভাৰতীয় সাহিত্যৰ বীজ যিদৰে আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহৰ মাজত পৰিলক্ষিত হোৱা 'অনৈক্যৰ মাজতো ঐক্য' ধাৰণালব্ধ, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্য তথা এই সাহিত্যৰ পৰিসীমা সম্পৰ্কতো অনুৰূপ ধাৰণা পোষণ কৰিব পৰা যায়।

১.০৩ উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ বিশেষত্ব ঃ

(ক) ই ভাৰতীয় ৰাজ্যকেইখনৰ প্ৰান্তীয়কৰণৰ সামূহিক ইতিহাস চেতনাৰে উদ্বেলিত।[৭] মূল প্ৰশাসনিক কেন্দ্ৰৰ পৰা নিলগত অৱস্থিত, উপেক্ষিত-অৱহেলিত মানৱ অধিকাৰৰ শক্তিশালী কণ্ঠ হিচাপে বিবেচনা কৰিব পাৰি।

(খ) গোষ্ঠীকেন্দ্ৰিয়তাবাদী চেতনা, ইতিহাস চেতনা আৰু বহুভাষিক-বহুসাংস্কৃতিক চেতনাই প্ৰদান কৰা বহুমাত্ৰিক উপস্থাপন উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যৰ অন্যতম বিশেষত্ব।

(গ) উত্তৰ পূব ভাৰতৰ সাহিত্যক এই অঞ্চলৰ ইতিহাস, মৌখিক সাহিত্য, সামাজিক-সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰৰ বৌদ্ধিক তথা সচেতন-পুনঃপঠনৰ জৰিয়তে কৰা আত্মাৰ সন্ধান হিচাপেও বিবেচনা কৰিব পৰা যায়। সমসাময়িক মিজো সাহিত্য, নাগালেণ্ডৰ সাহিত্য, অৰুণাচলৰ সাহিত্য আদিত এই বিশেষত্বৰ প্ৰতিফলন ঘটা দেখা যায়।

২.০০ উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্ৰত্যাহ্বান ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ প্ৰসংগত সততে উপস্থাপিত হোৱা এক অভিমত হৈছে আত্ম-পৰিস্থিতিৰ দ্বন্দাত্মক অৱস্থান। উত্তৰ-পূবৰ প্ৰায় সকলো জনগোষ্ঠীৰ মাজত ভাৰতবৰ্ষৰ কেন্দ্ৰীয় চৰকাৰৰ প্ৰতি ৰাজনৈতিক- সামাজিক-সাহিত্যিক-সাংস্কৃতিক আৰু বৌদ্ধিক প্ৰেক্ষাপটত উপেক্ষিত, শোষিত তথা গোষ্ঠীগত বৈষম্যৰ অভিযোগ থকা পৰিলক্ষিত হয়। এনে অভিযোগ বা ক্ষোভৰ চূড়ান্ত পৰিণতিৰূপে অঞ্চলটোত বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দুটা দশকৰ পৰা গঢ় লৈ উঠা গোষ্ঠীকেন্দ্ৰিক-জাতীয়তাবাদ, সন্ত্ৰাস আৰু বিচ্ছিন্নতাবাদ আদিৰ প্ৰসংগ উত্থাপিত হৈছিল। এনেধৰণৰ কাৰকৰ ক্ৰিয়াশীলতাই উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্ৰত্যাহ্বানকো ভাৰতৰ আন যিকোনো আঞ্চলিক সাহিত্যতকৈ ভালেখিনি পৃথকৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। এই প্ৰত্যাহ্বানসমূহক বহলভাৱে ৰাষ্ট্ৰীয় আৰু গোলকীয় প্ৰত্যাহ্বান হিচাপে অভিহিত কৰিব পৰা যায়।

তদুপৰি, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ অনেক লেখকে লিপিহীনতা আৰু ক্ষুদ্ৰ ভাষিক গোষ্ঠীৰ প্ৰতিনিধিত্বকাৰী হিচাপে প্ৰধানকৈ ইংৰাজী ভাষাক সাহিত্য সৃষ্টিৰ মাধ্যমৰূপে গ্ৰহণ কৰা দেখা যায়। একেদৰে, উত্তৰ-পূবৰ বিভিন্ন ভাষা-ভাষী লোকৰ মাজৰ পৰস্পৰ বোধগম্যতাহীনতাৰ বাবেও বহুসময়ত ইংৰাজী ভাষাক মাধ্যম হিচাপে গ্ৰহণ কৰিবলগীয়া হোৱা পৰিস্থিতি উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ বাবে আন এক গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰত্যাহ্বান। ইয়াৰ অন্তৰালৰ কাৰকসমূহ হৈছে —

২.০১ ক্ষমতাৰ ৰাজনীতি ঃ

ভূ-ৰাজনৈতিক দিশৰপৰা উত্তৰ-পূব ভাৰত তথা উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ ৰাজ্যসমূহৰ গঠন প্ৰক্ৰিয়াক ঔপনিৱেশিক নিৰ্মাণ হিচাপে বিচাৰ কৰিব পাৰি। বৃটিছ ঔপনিৱেশিক কালত গঢ়ি উঠা 'শোষণ আৰু বঞ্চনা'ৰ ধাৰণাৰ ৰাজনীতিকৰণৰ ফচল হিচাপে উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ ৰাজ্য গঠন, ৰাজ্যসমূহৰ মাজত সাম্প্ৰতিক সময়তো মীমাংসা নোহোৱা সীমা বিবাদ তথা বৃহত্তৰ নাগালিম, বড়োলেণ্ড আদিৰ ধাৰণা, 'ঘৃণা আৰু অবিশ্বাস'ৰ প্ৰসংগ আদি বিভিন্ন কাৰকৰ বাবে সাংস্কৃতিক-ভাষিক সীমাৰ দিশেৰে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ ৰাজ্যসমূহৰ স্থিতি সম্পূৰ্ণ পৃথক। আনহাতে ভৌগোলিক অৱস্থানৰ দিশলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, উত্তৰ-পূবৰ মুঠ সীমাৰ প্ৰায় নিৰানৱৈ শতাংশই আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সীমা হিচাপে স্বীকৃত। এনেস্থলত, বহুভাষিক-সাংস্কৃতিক বৈবিধ্যৰ চেতনাসম্বলিত উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যই একক ভাব-সূত্ৰৰে সম্পৰ্কিত হৈ থকাৰ পিছতো গাইগুটীয়া স্থিতিত অৱস্থান গ্ৰহণ কৰিছে।

আনহাতে সাহিত্যৰ নিলগীকৰণৰ অভিযোগো এক বিচাৰ্য বিষয়। ভাৰতবৰ্ষৰ মূল ভূমিৰ পৰা নিলগৰ দুৰ্গম অঞ্চলৰ খিলঞ্জীয়া লোকৰ কণ্ঠ হিচাপে উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যক সততে ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপটত উপেক্ষা কৰাৰ অভিযোগো সততে উত্থাপিত হোৱা দেখা যায়।[৮]

২.০২ ভাষিক ৰাজনীতি ঃ

ভাৰতীয় সংবিধানৰমতে, সংবিধানস্বীকৃত সকলো ভাষাৰে মর্যাদা সমপর্যায়ৰ। আনহাতে, ভাষাবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিকোণেৰে বিচাৰ কৰিলে লিপিযুক্ত বা লিপিহীন-সকলো ভাষা সমমানৰ। সেই দৃষ্টিৰ পৰা উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ দৰে বহুভাষিক পৰিৱেশত, সংবিধানস্বীকৃত ভাষাৰ ধাৰণাটো অপ্রাসংগিক হৈ পৰে। সেয়ে হ'লেও চৰকাৰী পৃষ্ঠপোষকতা আৰু ভাৰতবর্ষৰ মূল ভূ-খণ্ডৰ সৈতে হোৱা সুদীর্ঘ সময়জোৰা সম্পর্ক তথা গোলকীকৰণৰ প্রভাৱ আদি কাৰকৰ বাবে ইংৰাজী, হিন্দী ভাষা আৰু জনগাঁথনিগত দিশৰ পৰা বাংলা ভাষাৰ আগ্রাসী স্থিতি উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ প্রায় কেউখন ৰাজ্যতে পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে, ১৯৭২ চনত ভাৰত চৰকাৰৰ নির্দেশ আৰু অৰুণাচল প্রদেশৰ ৰাজ্যপালৰ অনুমোদনসাপেক্ষে ৰাজ্যখনত হিন্দী ভাষা শিক্ষাৰ মাধ্যমৰূপে পৰিগণিত হয়। একেদৰে ত্রিপুৰাত Tripura Official Language Act, 1964 অনুসৰি, ককবৰক ভাষাৰ সমান্তৰালভাৱে বাংলাভাষাকো ৰাজ্যভাষাৰ মর্যাদা প্রদান কৰা হয়। যাৰ প্রভাৱ টানি, চেৰদুকপেন, অকা, মিজি আদি (অৰুণাচল), ককবৰক (ত্রিপুৰা), মিজো, মাৰ, চাকমা (মিজোৰাম), গাৰো (মেঘালয়) আদি ভাষাৰ ভাষা-সাহিত্যত পোনপটীয়াকৈ পৰিলক্ষিত হয়। বর্তমান সময়ত উত্তৰ-পূবৰ প্রায় আটাইকেইখন ৰাজ্যতে থলুৱা ভাষাৰ সমান্তৰালভাৱে ইংৰাজী ভাষাক ৰাজ্যভাষাৰ স্বীকৃতি দিয়া হৈছে। ভাৰত চৰকাৰৰ অধীনস্থ Scheme for Protection and Preservation of Endangered Languages নামৰ সংস্থাটোৱে প্রকাশ কৰা শেহতীয়া ভাষা জৰীপ বিষয়ক তথ্য অনুসৰি, ভাৰতবর্ষৰ ১১৭টা বিপদাপন্ন ভাষাৰ তালিকাৰ ভিতৰত উত্তৰ পূব ভাৰতৰ ৪৩টা ভাষাই স্থান লাভ কৰিছে।[৯] ইয়াৰ অন্তর্নিহিত কাৰক হিচাপে এই ৰাজ্যসমূহ, যেনে- অৰুণাচল, নাগালেণ্ড, মিজোৰাম আদি ৰাজ্যত শিক্ষাৰ মাধ্যম হিচাপে প্রচলিত হিন্দী আৰু ইংৰাজী ভাষাৰ মাধ্যমৰ ভূমিকাকো বিচাৰ কৰাৰ অৱকাশ আছে।

সেয়েহে, একে পৰিৱেশত অৱস্থান কৰাৰ পিছতো ইংৰাজী বা হিন্দী ভাষাই সংযোগী ভাষাৰ ভূমিকা পালন কৰাৰ প্রেক্ষাপটত, উত্তৰ-পূবৰ ভাষাসমূহৰ মাজত থকা বোধগম্যতাহীনতাকো উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ ঐক্যবদ্ধ উপস্থাপনৰ অন্যতম অন্তৰায় বুলিব পাৰি।

১.০৩ প্রতিষ্ঠানকেন্দ্রিক অৱহেলা ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ অধিকাংশ জনজাতীয় সমাজত ঔপনিৱেশিক সাম্রাজ্যবাদৰ জেৰ ধৰি ইংৰাজী ভাষাই খ্রীষ্টান ধর্মৰ জৰিয়তে খোপনি পোতা পৰিলক্ষিত হয়। অৱশ্যে পৰৱর্তী সময়ত, ধর্মীয় তথা সামাজিক প্রতিষ্ঠানকেন্দ্রিক অৱহেলাৰ বাবে সামাজিক-আর্থিক উন্নতিৰ বাবেও বহুতো জনজাতিয়ে খ্রীষ্টান ধর্ম গ্রহণ কৰা দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে, নাগালেণ্ডৰ দৰে ৰাজ্যত খ্রীষ্টান ধর্ম বৃটিছ শাসনকালত, মিছনেৰীসকলে প্রৱর্তন কৰাৰ বিপৰীতে, অসমৰ প্রেক্ষাপটত, সত্রীয়া সংস্কৃতিৰ অগ্রণী পীঠ হিচাপে পৰিণত অসমৰ মাজুলী অঞ্চলত শেহতীয়াকৈ খোপনি পোতা খ্রীষ্টান ধর্মৰ প্রসাৰতাকো এই আওতাত আলোচনা কৰাৰ অৱকাশ আছে। খ্রীষ্টান ধর্মৰ এনে আগ্রাসনে জনজাতিসমূহৰ ভাষাকে ধৰি থলুৱা সাংস্কৃতিক সমল তথা পৰম্পৰাসমূহক আক্রান্ত কৰাৰ সমান্তৰালভাৱে জনজাতীয় লোকসকলে ক্রমে ইংৰাজী ভাষা-সাহিত্যক আঁকোৱালি, ইংৰাজী ভাষাকে ভাব প্রকাশৰ মাধ্যমৰূপে গ্রহণ কৰাৰ উদাহৰণ চুবুৰীয়া নাগালেণ্ড ৰাজ্যতে পৰিলক্ষিত হয়। এই সাম্রাজ্যবাদী সাংস্কৃতিক আগ্রাসনক কার্ল মার্ক্সে পদ্ধতিগত ঔপনিৱেশিকৰণ (systematic colonization) বুলি অভিহিত কৰিছে।[১০] সেয়েহে ক'ব পাৰি যে, প্রতিষ্ঠানকেন্দ্রিক অৱহেলাও উত্তৰ-পূবৰ জনজাতীয় ভাষাসমূহ তথা এই ভাষাসমূহত ৰচিত সাহিত্য অৱহেলিত হোৱাৰ অন্যতম কাৰক।

১.০৪ মৌলিক সৃষ্টিৰ অনূদিত প্রকাশ ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ অধিকাংশ সাহিত্যিকে নিজা মাতৃভাষাৰ সীমিত প্রয়োগ, লিপিহীনতা আদি বিভিন্ন কাৰকৰ বাবে নিজস্ব সৃষ্টিকর্মক ইংৰাজী, হিন্দী বা আন কোনো ভাষাত প্রকাশ কৰে। ফলস্বৰূপে মাতৃভাষাৰ জৰিয়তে নিজস্ব আৱেগ-অনুভূতি বা সৃষ্টিকর্ম ৰচনাৰ সমগ্র প্রক্রিয়াৰ সৈতে জড়িত মানসিক স্তৰটোৰ স্থিতি এক সুকীয়া ভাষাত আৰু প্রকাশ আন এক সুকীয়া ভাষাত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে, অৰুণাচলৰ আদি জনগোষ্ঠীৰ মামাং দাই, আংগামী নগা গোষ্ঠীৰ ইষ্টাৰিণ কিৰে' আদি সাহিত্যিকে নিজা মাতৃভাষাৰ বিপৰীতে ইংৰাজী ভাষাত সাহিত্য চর্চা কৰি আহিছে। বহুক্ষেত্রত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সমাজ-সংস্কৃতিক প্রকাশ কৰিবৰ বাবে এনেধৰণৰ অনুবাদৰ সীমাৱদ্ধতা পৰিলক্ষিত হয়।

২.০০ উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা

প্রত্যাহ্বানসমূহ অতিক্রম কৰাৰ উপায় ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্রত্যাহ্বানসমূহৰ বিশ্লেষণৰ আধাৰত কেইটামান সমাধানসূত্রত উপনীত হ'ব পৰা যায়। যথা—

২.০১ ব্যক্তিগত তথা প্রতিষ্ঠানকেন্দ্রিকতাৰে উত্তৰ-পূবৰ ভাষা-সাহিত্যৰ প্রচাৰ আৰু প্রসাৰৰ প্রচেষ্টা গ্রহণ ঃ

এইক্ষেত্রত শেহতীয়াকৈ ভাৰতৰ সংবিধানৰ অষ্টম অনুসূচীত সন্নিৱিষ্ট হোৱা বড়ো ভাষা-সাহিত্যৰ উত্তৰণৰ প্রসংগ বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। সাম্প্রতিক সময়ত বড়ো ভাষা উচ্চশিক্ষাৰ মাধ্যম হিচাপে স্বীকৃত হৈছে। তদুপৰি, বড়ো ভাষাৰ সাহিত্যই সর্বভাৰতীয় পর্যায়ত বিভিন্ন বঁটা-বাহন লাভ কৰাৰ অনুবাদৰ জৰিয়তেও প্রসাৰতা লাভ কৰিছে।[১১]

প্রসংগক্রমে উল্লেখ কৰিব পাৰি যে, Central Institute of Indian Languages ৰ গুৱাহাটীস্থিত শাখা, অৰুণাচলস্থিত ৰাজীৱ গান্ধী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ Centre for Endangered Languages,দিল্লী বিশ্ববিদ্যালয়ত উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্য অধ্যয়ন শীর্ষক পাঠ্যক্রমৰ প্রচলন, ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ স্নাতকোত্তৰ মহলাৰ চতুর্থ যাণ্মাসিকত উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্য অধ্যয়ন শীর্ষক পাঠ্যক্রমৰ অন্তর্ভূক্তি আদিৰ জৰিয়তে উত্তৰ-পূবৰ ভাষা-সাহিত্যৰ বিকাশৰ বাবে কিছু প্রচেষ্টা গ্রহণ কৰা হৈছে। এনে প্রচেষ্টা আৰু অধিক ব্যাপক হোৱাৰ প্রাসংগিকতা আছে।

২.০২ লিপিহীন ভাষাই লিপি গ্রহণৰ আৱশ্যকতা ঃ

লিপিহীন ভাষাসমূহে ভাষিক-সাংস্কৃতিক প্রকাশ সাৱলীল হোৱাকৈ যিকোনো লিপি গ্রহণ কৰি সেই ভাষাসমূহতো সাহিত্য সৃষ্টিৰ পৰিৱেশ গঢ়ি উঠিলে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ কেন্দ্রীয় ধাৰণাক দৃঢ়ভাৱে প্রকাশ কৰিব পৰা যাব। এইক্ষেত্রত মেঘালয়ত গাৰো আৰু খাচী ভাষা, মিজোৰামত মিজো, মাৰ আৰু চাকমা ভাষা আদি ভাষাত হোৱা ভাষিক-সাহিত্যিক চর্চা এক আশাব্যঞ্জক দিশ বুলিব পাৰি।[১২] এই প্রসংগতে বড়ো ভাষাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিব পৰা যায়। সংবিধানৰ অষ্টম অনুসূচীত অন্তর্ভুক্ত বড়ো ভাষা মূলতঃ চীন-তিব্বতবর্মী পৰিয়ালৰ, নিজস্ব লিপিহীন ভাষা। কিন্তু দেৱনাগৰী লিপিৰ মাধ্যমেৰে বড়ো ভাষা-সাহিত্যৰ চর্চাই লাভ কৰা ব্যাপকতাৰ বাবে সাম্প্রতিক সময়ত এই ভাষাটোৱে অসমৰ অন্যতম ৰাজ্যভাষা হিচাপে স্বীকৃত হোৱাৰ লগতে এই ভাষাত সৃষ্ট সাহিত্যৰ বাবে সাহিত্য অকাডেমী বঁটাৰ প্রচলন হৈছে।

২.০৩ অনুবাদৰ গুৰুত্ব ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই সন্মুখীন হোৱা প্রত্যাহ্বানসমূহ অতিক্রম কৰাৰ ক্ষেত্রত অনুবাদ কর্মক এক সবল পদক্ষেপ বুলিব পাৰি। উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যই 'প্রান্তীয় কণ্ঠ'ৰূপে পূর্বাৰোপিত গণ্ডীক অতিক্রম কৰাৰ লগতে দেশী-বিদেশী আন ভাষাত উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যৰ বিষয়-বৈবিধ্য আৰু সর্বজনীন আবেদনক প্রতিষ্ঠা কৰাৰ ক্ষেত্রত অনুবাদ অপৰিহার্য। এইক্ষেত্রত উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যক ইংৰাজীকে ধৰি আন বিদেশী ভাষা আৰু হিন্দীকে ধৰি অন্যান্য ভাৰতীয় ভাষালৈ বহুলভাৱে অনুবাদ হোৱা উচিত।

৩.০০ উপসংহাৰ ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যই বহুভাষিক, বহুধাবিভক্ত সমাজ-জীৱনক প্রতিনিধিত্ব কৰে। এই অঞ্চলৰ বৈশিষ্ট্যপূর্ণ সত্তাক বিশ্বায়নৰ প্রেক্ষাপটত সফলতাৰে উপস্থাপন কৰিবৰ বাবে ইংৰাজী ভাষাক উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যৰ সর্বাগীন বিকাশৰ মাধ্যম হিচাপে গ্রহণ কৰা উচিত। যাতে, ভাৰতীয় সাহিত্য বা বিশ্ব সাহিত্যৰ প্রেক্ষাপটত উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যই কেৱল প্রান্তীয় সাহিত্য বা কেৱল দ্বন্দ্বাত্মক সাহিত্যৰূপে পৰিচিত হোৱাৰ বিপৰীতে সাহিত্য অধ্যয়নৰ এক ধাৰালৈ পর্যবসিত হ'ব পাৰে। ইয়াৰ বাবে, উত্তৰ-পূবৰ সাহিত্যৰ অনুবাদকসকলে উত্তৰ-পূবৰ একাধিক ভাষা আহৰণত গুৰুত্ব দিয়া উচিত, যাতে তেওঁলোকে ইংৰাজী অনুবাদৰ সহায় নোলোৱাকৈয়ে মূল ভাষাৰ পাঠ একোটাক পোনপটীয়াকৈ যিকোনো ভাৰতীয় বা আন বিদেশী ভাষালৈ অনুবাদ কৰিব পাৰে। ❑

প্রাসংগিক টোকা ঃ

১। সত্যকাম বৰঠাকুৰ, 'উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সাহিত্যচেতনাৰ ঐকতানৰ সন্ধানত', *সাতসৰী*, মে', ২০২৩, পৃ. ৩২
২। বীৰেন্দ্রনাথ দত্ত, *লোক-সংস্কৃতিৰ স্বৰূপ আৰু অধ্যয়ন*, পৃ. ৫৭-৫৯
৩। আৰুণি কাশ্যপ, 'ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব প্রান্তৰ সাহিত্য', *প্রকাশ*, ফ্রেব্রুৱাৰী, ২০২২, পৃ. ৫৮
৪। আৰুণি কাশ্যপ, 'ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব প্রান্তৰ সাহিত্য', *প্রকাশ*, ফ্রেব্রুৱাৰী, ২০২২, পৃ. ৫৮
৫। আৰুণি কাশ্যপ, 'ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব প্রান্তৰ সাহিত্য', *প্রকাশ*, ফ্রেব্রুৱাৰী, ২০২২, পৃ. ৫৮
৬। হিমাক্ষী কলিতা, 'শিপা আৰু সম্পর্কৰ কথক জেনিছ পাৰিয়াট', *প্রকাশ*, ফ্রেব্রুৱাৰী, ২০২২, পৃ. ৪৫

৭। আৰুণি কাশ্যপ, 'ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব প্ৰান্তৰ সাহিত্য', *প্ৰকাশ*, ফ্ৰেব্ৰুৱাৰী, ২০২২, পৃ. ৫৮

৮। আৰুণি কাশ্যপ, 'ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব প্ৰান্তৰ সাহিত্য', *প্ৰকাশ*, ফ্ৰেব্ৰুৱাৰী, ২০২২, পৃ. ৫৮

৯। https://www.sppel.org/northeastzone.aspx, visited on 09/12/2023 at. 08.05 p.m.

১০। নোমল মাহাত্তা, 'নগা জীৱনৰ দ্বন্দ্ব আৰু কাৰুণ্যৰ পটভূমি', *প্ৰকাশ*, ফ্ৰেব্ৰুৱাৰী, ২০২২,পৃ., ৩২

১১। ইতিমধ্যে গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয় আৰু বড়োলেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়ৰ বড়ো বিভাগে শৈক্ষিক পাঠ্যক্ৰমৰ লগতে বড়ো ভাষা-সাহিত্যৰ উন্নতিকল্পে ভালেমান গৱেষণামূলক কৰ্মও সম্পাদন কৰিছে। একেদৰে বড়ো সাহিত্য সভায়ো ভালেখিনি উদ্যোগ হাতত লৈছে। তদুপৰি, বড়ো ভাষাত ৰচিত সাহিত্যই সাহিত্য অকাদেমীৰ দৰে বঁটা লাভ কৰিবলৈকো সক্ষম হৈছে।

১২। পুষ্প গগৈ, 'জনগোষ্ঠীয় ভাষা-সাহিত্যৰ বিকাশৰ প্ৰয়োজনীয়তাঃ সমস্যা আৰু সমাধান', *গৰীয়সী,* ডিচেম্বৰ, ২০১১, পৃ. ১৭

সহায়ক প্ৰসংগসূত্ৰ ঃ

১। দত্ত,বীৰেন্দ্ৰনাথ ঃ *লোক-সংস্কৃতিৰ স্বৰূপ আৰু অধ্যয়ন,* অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৮

২। দেউৰী, মিহিৰ (সম্পা.)ঃ *প্ৰকাশ*, তৃতীয় পৰ্ব, সপ্তদশশততম সংখ্যা, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০২২

৩। বৰা, লক্ষ্মীনন্দন (সম্পা.)ঃ *গৰীয়সী*, ঊনবিংশ বছৰ, তৃতীয় সংখ্যা, ডিচেম্বৰ, ২০১১

৪। শৰ্মা পূজাৰী, অনুৰাধা (সম্পা.) ঃ *সাতসৰী*, অষ্টাদশ বছৰ, দশম সংখ্যা, মে', ২০২৩

৫। Bhattacharya, Neeladri and Pachuau, Joy L.K. (Ed.) : *Landscape, Culture, and Belonging: Writing the History of Northeast India*, Cambridge University Press, 1st Edition, 2019

৬। Das, Nigamananda (Ed.): *Matrix of Redemption: Contemporary Multiethnic English Literature from Northeast*, Adhyayan Publisher, 2011

৭। Kazi, Seema (Ed.) : *Gender and Governance: Perspectives from South Asia*, Zubaan Publisher, 2019

৮। Konch, Karabi: *Understanding of North East India*, Notion Press, Chennai, 1st Edition, 2019

৯। https://www.sppel.org/northeastzone.aspx, visited on 09/12/2023 at. 08.05 p.m.

১০। https://www.nezine.com/

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

টাই খামযাং জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ধর্মীয় জীৱনৰ এক বিশেষাত্মক অধ্যয়ন

ড° দীপক কুমাৰ গগৈ

সহকাৰী অধ্যাপক
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
নলবাৰী মহাবিদ্যালয় (নলবাৰী),
অসম-৭৮১৩৩৫
৭৮৯৬১৯৬৪৬৬
gogoideepak3@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমৰ বাৰেৰণীয়া সংস্কৃতিত, জনজাতীয় জীৱন আৰু সমাজ, সংস্কৃতি আৰু ধর্মীয় জীৱনৰ এক সুকীয়া স্থান আছে। অসমৰ জন-গাঁথনি বৈচিত্র্যপূর্ণ আৰু তেওঁলোকৰ আচাৰ-ৰীতি, সামাজিক জীৱন দর্শন বৈভৱশীল। অর্থাৎ জনজাতিসকলৰ সামাজিক, অর্থনৈতিক, সাংস্কৃতিক আৰু ধর্মীয় জীৱন অতি বৈচিত্রপূর্ণ। এই বৈচিত্র্যময় জীৱন পৰিক্রমা, অর্থসামাজিক আৰু পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, ধর্মীয় বিশ্বাস, সংস্কাৰ তথা তেওঁলোকৰ ভাষা, সাহিত্য আদি বিভিন্ন দিশ অতি গুৰুত্বপূর্ণ বিষয়।

এই কথা সাৰোগত কৰি অসমৰ এক জনগোষ্ঠী, টাই খামযাং সকলৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক আৰু ধর্মীয় জীৱনৰ ওপৰত আলোকপাত কৰি এক বিশ্লেষাত্মক অধ্যয়নৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

টাই খামযাং, সাহিত্য, সংস্কৃতি আৰু ধর্মীয় জীৱন, বৌদ্ধ বিহাৰ, ভান্টে।

অৱতৰণিকা ঃ

টাই খামযাং বা শ্যাম নামেৰে জনপ্রিয় খামযাংসকল, অসমৰ মংগোলীয় টাই গোট যেনে - (টাই আহোম, টাই খামতি, টাই ফাকে, টাই তুৰু, টাই আইতন) সকলৰ দৰে টাই খামযাং সকলো সাংখ্যিক লঘিষ্ঠ এটা সিচঁৰিত গোট, যি অসম আৰু অৰুণাচলৰ বিভিন্ন ঠাইত, নিজৰ সুকীয়া, অনন্য সংস্কৃতিক আৰু ঐতিহ্য ৰক্ষা কৰি শান্তিপূর্ণ ভাৱে বসবাস কৰি আহিছে।

খামযাং শব্দটো এটা টাই শব্দ, ইয়াৰ ব্যুৎপত্তিগতভাৱে 'খাম' (সোণ) আৰু 'যাং বা 'জাং' (হোৱাৰ) পৰা উদ্ভৱ হৈছে আৰু ইয়াৰ অর্থ হৈছে 'সোণ থকা মানুহ'। টাই খামযাং বিভিন্ন উপজাতিৰে গঠিত এক জনগোষ্ঠী। উপজাতি সমূহ হ'ল - ঠুমং, বাইলং, পাংযুক, চাওলেক, চাওলু, চাওলিক, টুংখাং, চাওহাই আৰু চাওকং।

বর্ত্তমান অসমৰ যোৰহাট জিলা/নগা পাহাৰৰ পাদদেশৰ তিতাবৰ সমীপৰ, চলাপথাৰ শ্যাম গাঁও (১৮৩৮), মণিটিংৰ ন-শ্যাম গাঁও, বেতবাৰী শ্যাম গাঁও, বালিজান শ্যাম গাঁও আদি অঞ্চলত টাই খামযাং সকলে বসবাস কৰি আহিছে। শিৱসাগৰ জিলা, বর্তমান চৰাইদেউ জিলাৰ দিচাংপানী শ্যাম গাঁও (১৮৩৬) আৰু ৰহন শ্যাম গাঁও (১৯১৯), সাপেখাটিৰ ওচৰত অৱস্থিত। গোলাঘাট জিলাৰ ৰাজাপুখুৰী শ্যাম গাঁও

আৰু তিনিচুকীয়া জিলাৰ পোৱাইমুখ শ্যাম গাঁও (মার্ঘেৰিটাৰ সমীপত) খাময়াং সকলৰ বসতি প্ৰধান গাঁও।

ইয়াৰ উপৰিও লোহিত আৰু নামচাই জিলা কেইখনমান শ্যাম গাঁও আছে, তাৰ কিছু অংশ খাময়াং সকলৰ সৈতে ঘনিষ্ঠ সম্পৰ্কীয় টাই খামতী সকলেও বসবাস কৰি আহিছে।

পাতনি ঃ

অসমৰ চৰাইদেউ জিলাৰ (মাহমৰা বিধানসভা সমষ্টিৰ) সোনাৰি তহচিলৰ অন্তৰ্গত প্ৰায় ৭৬ টা পৰিয়ালে শান্তিপূৰ্ণ ভাৱে বসবাস কৰা এখন গাঁও, দিচাংপানী শ্যাম গাঁও। শিৱসাগৰৰ পৰা পূৰ্ব দিশত ৪৬ কিঃমিঃ, মৰাণৰ পৰা প্ৰায় ২৭ কিঃমিঃ আৰু ৰাজ্যৰ ৰাজধানী দিছপুৰৰ (গুৱাহাটী) পৰা প্ৰায় ৪০১ কিঃমিঃ দূৰত্বত এই গাঁওখন অৱস্থিত। ১৮৩৫ চনত দিচাং নৈৰ পাৰত বসবাস কৰাৰ বাবে গাঁওখনৰ নাম ৰখা হয় দিচাংপানী গাঁও। গাঁওখন এখন কৃষি প্ৰধান গাঁও। ইয়াৰে প্ৰায় ৯০ শতাংশ লোক কৃষিজীৱি।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু পৰিসৰ ঃ প্ৰস্তাৱিত অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে দিচাংপানী শ্যাম গাঁওত বসবাস কৰা টাই খাময়াং জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ধৰ্মীয় জীৱনৰ ওপৰত এক অধ্যয়ন কৰা।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ গৱেষণা বিষয় সম্পৰ্কীয় প্ৰয়োজনীয় তথ্য সমূহ ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ণ, যাদৃচ্ছিক নমুনা সংগ্ৰহ আৰু সাক্ষ্যৎকাৰ পদ্ধতি গঠিত অভিজ্ঞতা ভিত্তিত অধ্যয়নৰ ভিত্তিত সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। অধ্যয়নত প্ৰাথমিক আৰু গৌণ উভয়। উৎসৰ পৰা তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। প্ৰাথমিক তথ্যসমূহ, যাদৃচ্ছিদ নমুনা সংগ্ৰহৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। ইয়াৰ বাবে গাঁওখনত বসবাস কৰা মুঠ ৭৬ টা পৰিয়ালৰ প্ৰায় ৩৭০ লোকৰ ভিতৰত ১০ শতাংশ পুৰুষ আৰু মহিলা উভয়ৰ পৰা সাক্ষাৎকাৰ (প্ৰশ্নাৱলী) যোগেদি তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও, নিজ ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু পৰ্য্যবেক্ষণতো গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হৈছে।

আনহাতে গৌণ সমল হিচাপে, উক্ত বিষয় সম্পৰ্কীয় প্ৰকাশিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ, আলোচনী, প্ৰবন্ধ আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

উপস্থাপিত বিষয়ত আলোচনা ঃ ইতিমধ্যে উল্লেখিত বিষয়বস্তু - টাই খাময়াং জনগোষ্ঠীৰ জীৱন আৰু সমাজ, সংস্কৃতি আহে ধৰ্মীয় জীৱন, অসমৰ বাৰেৱৰণীয়া সংস্কৃতিত এক সুকীয়া স্থান দখল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই সন্দৰ্ভত খাময়াং সকলৰ জীৱন শৈলী, ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতি সমূহৰ পৰম্পৰাগত পালন আৰু প্ৰচলিত সংস্কৃতিক নিৰবিচ্ছন্ন ভাৱে আকোৱালি লৈ আগবাঢ়ি যোৱাৰ মানসিকতা, এই সকলোবোৰ আলোচ্য বিষয়বস্তু। যিহেতু সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ধৰ্মীয় জীৱন - এই তিনিওটা দিশ ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত। গতিকে এই তিনিওটা দিশ একেলগে আলোচনা কৰা যুগুত হ'ব।

সমাজ ব্যৱস্থা ঃ টাই খাময়াংসকলৰ সমাজ ব্যৱস্থা মূলতঃ পিতৃতান্ত্ৰিক। মূলতঃ পিতৃক মূৰবী বুলি গণ্য কৰা হয়। ঘৰৰ পিতৃৰ পৰামৰ্শমতেহে সকলো কাম হয়। পিতৃক, দেৱতাৰ সমান সন্মান দিয়া হয়। পিতৃ বহা আসন আৰু খাটত অইনে বহাৰ নিয়ম নাই। অৱশ্যে সমাজত নাৰীক পুৰুষৰ সমানে মৰ্য্যদা প্ৰদান কৰা হয়। কিছুমান ক্ষেত্ৰত পিতৃৰ লগত মাতৃৰো দিহা পৰামৰ্শ গ্ৰহণ কৰা হয়। মহিলাসকলৰ ভূমিকা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। কিয়নো, কিছুমান বিশেষ অনুষ্ঠান আছে যিবোৰ কেৱল মহিলাই কৰিব পাৰে। যেনে - শিশু প্ৰসৱৰ লগত বা শিশু শুদ্ধীকৰণ কৰা, নাভিৰ ৰচী কটাৰ অনুষ্ঠান কেৱল মহিলাসকলৰ দ্বাৰা সম্পন্ন হয়।

খাময়াং সকলৰ ভূমিৰ ক্ষেত্ৰত পিতৃৰ ভূমি উত্তৰাধিকাৰ সুত্ৰে পুত্ৰই লাভ কৰে। অৱশ্যে পিতৃ-মাতৃৰ জীৱিত অৱস্থাত যদি তেওঁলোকৰ প্ৰাপ্তবয়স্ক দুজন পুত্ৰৰ মাজত এজন পিতৃ-মাতৃৰ পৰা পৃথক হৈ যাবলৈ বিচাৰে, তেন্তে উক্ত ভূমিখিনিৰ পৰিমাণ অনুসৰি পিতৃ-মাতৃৰ ভাগৰ সৈতে মুঠ তিনিভাগ কৰে। পিতৃ-মাতৃক ভৰণ-পোষণ দিয়া পুত্ৰজনে অৱশেষত সেই মাটিৰ অংশ লাভ কৰে।

জীৱিকা ঃ দিচাংপানী শ্যাম গাঁওত বসবাস কৰা খাময়াংসকল প্ৰধানতঃ কৃষিজীৱি। জীৱিকাৰ মূল উৎস কৃষি হেতুকে পুলিন পুঠাসকলে খেতি বাতি কৰি বৰ্ত্তি আছে। গাঁওৰ ৯০ শতাংশ লোক কৃষিৰ ওপৰত পৰিয়ালক পোহপাল দি আহিছে। তেওঁলোকে প্ৰধানত - ধান, মাহ, সৰিয়হ, শাক-পাঁচলি আদি খেতি কৰে। বৰ্তমান কেইবাটাও পৰিয়াল চাহ-খেতি কৰি উপকৃত হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও মীন, গাঁহৰি, হাঁহ-কুঁকুৰা, গৰু-ছাগলী পালন কাৰ্য্যতো নিমজিত হোৱা দেখা গৈছে। এই ক্ষেত্ৰত মহিলা সকলৰ অৱদান অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। কিছু দোকান পোহাৰ আৰু সৰু সুৱা ব্যৱসায় আৰু মহিলাসকলে তাঁতৰ কাম কৰিও উপাৰ্জনৰ পথ মুকলি কৰে।

আনহাতে বেপাৰ বাণিজ্য বুলিবলৈ ঘৰুৱা উৎপাদিত সামগ্ৰী হাট-বজাৰ কৰি পোৱা উপাৰ্জনেই জীৱন নিৰ্বাহৰ উৎস। বৰ্ত্তমান গাঁওখনৰ ১১ গৰাকী চৰকাৰী চাকৰিয়াল। তেওঁলোকৰ

ভিতৰত ২ জন প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ৰ শিক্ষক, ১ জন হাইস্কুলৰ সহকাৰী সহায়ক পদত, ২ জন উপায়ুক্ত কার্য্যলয়ৰ কর্মচাৰী আৰু ২ গৰাকী অঙ্গনবাদী কর্মী। সদ্যহতে ৪ গৰাকীয়ে চতুর্থ বর্গৰ চৰকাৰী কর্মচাৰী চাকৰি লাভ কৰিছে। শিক্ষা দীক্ষাৰ ক্ষেত্রত বর্তমান গাঁওখনৰ গ্রেজুৱেট, এম-এ ডিগ্রাধাৰী আৰু কাৰিকৰী প্রশিক্ষণ প্রাপ্ত লোকৰ সংখ্য ক্রমে বৃদ্ধি পাইছে, যিটো এটা শুভ লক্ষণ।

বিবাহ পদ্ধতি ঃ টাই খাময়াংসকলৰ বিবাহৰ ক্ষেত্রতো সমাজৰ কিছু সুকীয়া নীতি-নিয়ম পৰিলক্ষিত হয়। যেনে - একে গোত্রৰ মাজত বিবাহ নিষেধ আছে। অর্থাৎ একেটা বংশৰ মাজত বিবাহ, সমাজত অবৈধ বুলি গণ্য কৰা হয়। এই অবৈধ বিবাহৰ ক্ষেত্রত খাময়াং সমাজত এক কঠিন ৰায়দানৰ ব্যৱস্থা প্রচলিত হৈ আছে। খাময়াং সমাজত 'তুনচান' (Adopted) বুলি অন্যগোত্রৰ লোকক আন এটা বংশত অন্তর্ভুক্ত কৰাৰ পদ্ধতি আছে। আনহাতে এটা বংশৰ ভিতৰত কোনো এজন লোকে যদি অক্ষমনীয় অপৰাধ কৰে বা বংশৰ ভিতৰতে এগৰাকী যুৱতীক বিয়া কৰাই, তেনেলোকক খা-চাপ (বংশচ্ছেদ) পদ্ধতিৰ জৰিয়তে সেই ব্যক্তিজনক সেই বংশৰ পৰা বহিষ্কাৰ কৰা হয়।

খাময়াং সকলৰ মাজত ভাদ, কাতি, পুহ, চ'ত আৰু বাৰিষা কালত তিনিমাহ বিবাহ পতা নিষেধ আছে। বিবাহ আৰু সকলো মাংগলিক সামাজিক সাংস্কৃতিক অনুষ্ঠানত নিৰামিষ ভোজন পৰিবেশন কৰা হয়।

বিবাহ কার্য্যত তামোল-পাণৰ শৰাই আৰু মাননি অপৰিহার্য্য। বৰ বিবাহ কার্য্যত ৫ খনমান শৰাই আগবঢ়োৱা হয়। বছৰৰ মাহ, অনুযায়ী বিবাহ কার্য্য সম্পন্ন কৰা হয়। ঘৰৰ জ্যেষ্ঠ ল'ৰা, জ্যেষ্ঠ ছোৱালীয়ে বিয়া নকৰায়।

আন এক উল্লেখযোগ্য বৈশিষ্ট্য হৈছে - খাময়াং সমাজত যৌতুক প্রথা আৰু বহুবিবাহ প্রচলন নাই। অৱশ্যে বিধবা বিবাহ আৰু অন্য জনগোষ্ঠীৰ লগত বৈবাহিক সম্পর্ক স্থাপনত কোনো বাধা নাই। যেনে - দিচাংপানী শ্যাম গাৱত বর্তমান বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ অনা খাময়াং বোৱাৰীও আছে। ইয়াৰে মিচিং জনগোষ্ঠীৰ ৪ গৰাকী, আহোম জনগোষ্ঠীৰ ১৩ গৰাকী আৰু সোনোৱাল কছাৰী জনগোষ্ঠীৰ ২ গৰাকী বোৱাৰীৰ কথা উল্লেখ কৰিব পাৰি।

ভাষা সাহিত্য ঃ খাময়াং সকল থেৰোবাদী, হীনযানপন্থী বৌদ্ধ ধর্মী আৰু ভাষা চর্চাৰ বাবে ব্রাহ্মী লিপি গ্রহণ কৰাৰ পিছতেই টাই সভ্যতাই বৌদ্ধিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক, অর্থনৈতিক সকলো দিশতে নতুনত্ব লাভ কৰে। সেই সময়ছোৱাতেই বৌদ্ধ ভিক্ষুসকলৰ পৃষ্ঠপোষকতাত পালি ভাষাত লিখিত পুথিসমূহ টাই ভাষাত লিখিত ৰূপ দিয়াৰ প্রচেষ্টা আৰম্ভ হয় আৰু প্রায়বোৰ মূল্যৱান বৌদ্ধ ধর্মগ্রন্থ টাইভাষালৈ অনুদিত হয়। ইয়াৰ পৰা বুজিব পৰা যায় যে বৌদ্ধ সাহিত্য চর্চাৰ লগে লগে, সেই সময়তে টাই ভাষাত এক উচ্চমানৰ মৌলিক সাহিত্য স্থায়ী তথ্য ৰচনা হৈছিল।

বর্ত্তমান টাইভাষাত লিখিত পুথিসমূহ কেইবাটাও ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। সেইবোৰৰ ভিতৰত প্রধানতঃ বৌদ্ধ ধর্মীয় সাহিত্য , যদিও বিভিন্ন ধৰণৰ লোক পৰম্পৰাৰ ভক্তি বন্দনা, প্রবাদ, কিংবদন্তী, জ্যোতিষ; লোক কাহিনী, উপদেশসমূলক কথা, 'কামাবাচা', বুদ্ধ জাতকৰ কাহিনী আদিয়েই প্রধান। এই সকলোবোৰে প্রায়বোৰ বৌদ্ধ বিহাৰত সংলগ্ন পুথিভঁৰালত সংৰক্ষিত হৈ আছে। কিন্তু টাই সাহিত্য সম্ভাৰ সমূহৰ অনুবাদ কর্ম এতিয়াও সীমিত অৱস্থাত থকাৰ বাবে, তাৰ ৰূপ-ৰস, উপমা, অলংকাৰ আদিবোৰ অসমীয়া ভাষাৰ পাঠকসকলে জানিবলৈ সক্ষম হোৱা নাই। এই ক্ষেত্রত কৰিব লগা যথেষ্ট স্থল আছে। পৰিতাপৰ বিষয় যে টাই গোষ্ঠীৰ মাজত খাময়াং সকলৰ মাজতো এই টাই ভাষা আৰু সাহিত্যৰ প্রতি গুৰুত্ব কমি গৈছে আৰু প্রায় তৰুণ প্রজন্মই, বর্ত্তমান অসমীয়া ভাষা সচৰাচৰ ব্যৱহাৰ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

অৱশ্যে, সম্বোধনৰ ক্ষেত্রত খাময়াং সকলে সচৰাচৰ টাই খাময়াং ভাষাৰে সম্বোধন কৰা দেখা যায়। যেনে- পৌ-পিতৃ-মে-মা, পৌলং-বৰদেউতা, মে-লং-বৰমা, চায়-ককাইদেউ, পি-বাইদেউ, বো-বৌদেউ, পৌযাব-দদাইদেউ, মে'লু-খুড়ীদেউ, নংচাই-ভাই, নংচাও-ভনী, লুকচাই-পুত্র, জী, চাউণয়-বৰজনা, পিকৈ-ভিনদেউ ইত্যাদি।

বাসগৃহ ঃ টাই খাময়াং সকলে পূর্বতে বাসস্থানসমূহ কাঁঠ, বাঁহ, খেৰ আদিৰে সাধাৰণতে চাংঘৰ সাজি বাস কৰিছিল। চাংঘৰবোৰ পাঁচ মাৰলীয়া আছিল। মূধৰ মাৰলীৰ চাংখনৰ পৰা তিনি চাৰি ফুটমান ওপৰত দিছিল। দুয়ো মূধৰ মাৰলি টোপৰ ৰোঁৱাৰ সৈতে একেবাৰে আছিল। বেৰ বিলাক লিপাৰ ব্যৱস্থা নাছিল। চাংখনৰ পৰা চালৰ উচ্চতা তিনি চাৰি ফুট হোৱাৰ বাবে শীতকালত অতিপাত চেঁচা অনুভৱ নহৈছিল আৰু ঘৰৰ মূধৰ পৰা বতাহ চলাচল বন্ধ আছিল। আচুতীয়া ৰান্ধনি ঘৰৰ সৈতে মূল ঘৰটো তিনি বা চাৰিকোঠালীয়া আছিল। জখলা উঠিয়েই পোৱা কোঠাটো মুকলি ইয়াত অতিথি বহোৱা হয়। ৰান্ধনিঘৰৰ জোহালৰ উপৰিও মাজৰ

ডাঙৰ কোঠাটোৰ জোহালৰ ব্যৱস্থা আছিল। সাধাৰণতে এই কোঠাটো ঘৰখনৰ বয়োজ্যেষ্ঠআলহী, অতিথি বহা আৰু শীত কালত জুইৰ ওম লোৱাৰ বাবে ব্যৱহাৰ হৈছিল। এই কোঠাটো খোৱা ঘৰ হিচাপে ব্যৱহাৰ হৈছিল। ই আলহী অতিথিৰ শুৱনি কোঠাও আছিল। ককা-আইতাহতে নাতি-নাতিনী, কণিষ্ঠজনক সাধু কথা, জাতক আদিৰ ধৰ্ম্মীয় গল্প পূৰ্বপুৰুষসকলৰ জীৱনগাথা আদি শুনাইছিল।

চাংঘৰৰ ভেটিত দুটা খুঁটা থাকে, যিয়ে পুৰুষ আৰু মহিলাক বুজায়। পূৱ দিশলৈ যোৱা এটা খুটাক, ফি-লাম বোলা হয়। বিশ্বাস কৰা হয় যে ফি লামে তেওঁলোকৰৰ পূৰ্বপুৰুষসকলো আত্মাক আশ্রয় দিয়ে।

চাংঘৰৰ তলখনত শিপিনীসকলৰ তাঁতৰ শাল থাকে আৰু একো একোটা পৰিয়ালৰ ৪-৫ খন মান তাঁতশাল শিপিনীয়ে নিজৰ প্রয়োজনীয় বস্ত্রসমূহ ৰৈ লয়।

বৰ্ত্তমান দিচাংপানী শ্যাম গাঁৱত দুই এটাৰ বাহিৰে চাংঘৰ দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। ইটা-চিমেন্টৰে, টিনৰ চালৰ পকীঘৰ, চাংঘৰৰ স্থান অধিকাৰ কৰিছে।

ধর্ম, উৎসৱ-পার্ৱণ, নৃত্য-গীত ইত্যাদি ঃ টাই খাময়াংসকল থেৰোবাদী বৌদ্ধ ধর্মাৱলম্বী, হীনযান পন্থী। তেওঁলোক যতে বসতি কৰে, তাতে একোখনলৈ বিহাৰ নির্মাণ কৰি লয় আৰু বিহাৰাধ্যক্ষ হিচাপে একোজন ভিক্ষু (ভান্টে) ৰাখে। ভান্টে অর্থাৎ ভৰঅন্ত।

বৌদ্ধধর্মৰ অভিকেন্দ্র স্বৰূপ বৌদ্ধ বিহাৰখনে প্রধানত্ব মুখ্য ভূমিকা গ্রহণ কৰি আহিছে। বৌদ্ধ বিহাৰ কেৱল মাত্র ধর্মীয় উপাসনাৰ স্থানে নহয়, ই সামাজিত, সাংস্কৃতিক আৰু শিক্ষাগ্রহণৰো কেন্দ্র। দিচাংপানী বৌদ্ধ বিহাৰখনো এই ক্ষেত্রত ব্যতিক্রম নহয়। পূর্বতে বৌদ্ধ বিহাৰখন আছিল গাওঁখনৰ, তেতিয়া শেষ প্রান্তৰ দিচাং নৈৰ পাৰত। এই বিহাৰখনতে প্রয়াত নন্দবংশ ভিক্ষুদেৱৰ প্রথম শিষ্য প্রয়াত হেম শ্যাম (লোঠাক) আছিল। সমূহ ৰাইজৰ দান-বৰঙণি, সমবায় ভিত্তিক খেতি কৰি পুঁজি সংগ্রহ আদি কৰি প্রয়াত চৈকু শ্যামা দেৱৰ নামত থকা দুই বিঘা মাটিক বিহাৰ নির্মাণৰ কার্য্য আৰম্ভ কৰি ১৯৪৯ চনত সম্পূর্ণ হয় আৰু পূৰণা বিহাৰখনৰ পৰা বুদ্ধমূর্ত্তি ফাগুণ মাহত স্থানান্তৰ কৰি নতুন বিহাৰলৈ অনা হয়। ১৯৫৪ চনত নীতিগতভাৱে নৱনির্মাণ বিহাৰখনি ভিক্ষুসংঘৰ হাতত উর্চগা কৰা হয়, আৰু তাৰ পাছৰ পৰা এই বৌদ্ধ বিহাৰখনে গোটেই অঞ্চলৰ সামাজিক, ধর্মীয়, সাংস্কৃতিৰ প্রাণকেন্দ্রৰ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে।

এই বৌদ্ধবিহাৰক কেন্দ্রকৰি তাত থকা 'কুকটি (ভিক্ষুৰ বাসস্থান), চিমিচম (ভিক্ষুৰ ভোজনালয়) আৰু 'চিংপ্লাং' (ৰাজহুৱা ভাৱে উৎসৱ পার্বনত বন্ধা-বঢ়া আৰু খোৱা-বোৱা কৰা গৃহ) অৱস্থিত। তাৰোপৰি উপসম্পদাৰ (ভিক্ষু দিক্ষা) বাবে চীমা গৃহ আৰু বয়োবৃদ্ধ পুৰুষ মহিলাসকলে অষ্টশীল দীক্ষা গ্রহণ কৰি উপৱাস পালনৰ বাবে টিংপ্লা, তৈয়াৰ কৰা হয়।

উৎসৱ-পার্ৱণ ঃ খামযাং সকলৰ পবিত্র উৎসৱৰ ভিতৰত প্রধান চাংকেন বা পযচাংকন উৎসৱ, পই মাই-কো-চুম ফাই, পই নাওন হৌক, পই-চাটং, পই পাতেছা (কল্পতৰু), পই লু ফ্রা, পই কান্ত সংঘ, পই লু কিয়ং আৰু পই কাথিন শিবৰা (ভিক্ষু বস্ত্র দান) আদিয়ে প্রধান।

চাংকেন বা পযচাংকেন উৎসৱ, চ'তৰ সংক্রান্তিৰ পৰা তিনিদিনীয়াকৈ পালন কৰা হয়। এই উৎসৱত বুদ্ধ মূর্ত্তিসমূহ এঠাইত থৈ তিনিদিন ধৰি স্নান কৰাই আসনত মূর্ত্তিসমূহ পুণৰ প্রতিষ্ঠা কৰা হয়। এই কার্য্য সম্পন্ন কৰাৰ পিছতহে খামিয়াংসকলে দৈনন্দিন কাম কাজত লিপ্ত হয়। এই কার্য্য সম্পন্ন নোহোৱা পর্য্যন্ত গাঁৱৰ মানুহ গাঁৱৰ পৰা আঁতৰি যাব নোৱাৰে আৰু মাছ খাৱ, মাটি খান্দিব আৰু ফুল চিঙিব নোৱাৰে।

এই অনুষ্ঠানৰ সামৰণি দিনটোত মানুহে ইজনে সিজনৰ ওপৰত পানী আৰু বোকা চিটিয়াৰ পৰম্পৰা আছে। এই কার্য্য সমাপ্ণ কৰাৰ বিশ্বাস আছে যে, ই সমাজৰ শত্রুতা আৰু পাপ ধুই পেলাব।

মাঘৰ পূর্ণিনাত নৈৰ পাৰত মেজি জ্বলাই পই-মাই-কো-চুম-ফাই উৎসৱ পালন কৰা হয়। উৎসৱৰ সময়ত টাই খাময়াং সকলে পৰম্পৰাগত খাদ্য প্রস্তুত কৰি ইজনে সিজনক আগবঢ়ায়।

আন এক পৰিত্র উৎসৱ হ'ল পই-নাওন হৌক (বুদ্ধ পূর্ণিমা)। এই উৎসৱৰ তাৎপর্য্য তিনিটা মহান পৰিঘটনাক সৈতে জড়িত- জন্ম, মৃত্যু আৰু বুদ্ধৰ জ্ঞান লাভ কৰা। বুদ্ধপূর্ণিমা দিনা বুদ্ধ জন্ম হৈছিল আৰু বুদ্ধ পূর্ণিমা দিনা জ্ঞানো লাভ কৰিছিল।

পই-চাটং উৎসৱ বা মৌচুমী উপবাহ আৰম্ভ হয় আহাৰৰ পূর্ণিমাৰ পৰা আহিনৰ মুখ্য চন্দ্রলৈকে। উৎসৱৰ সময়ত বৌদ্ধ (ভান্টে) আৰু আঠটা উপদেশৰ অনুগামীসকলে (অষ্টশীল) বৌদ্ধ বিহাৰত গৈ প্রার্থনা কৰে আৰু তিনিমাহৰ বাবে উপৱাস গ্রহণ কৰে।

নৃত্য-গীত ঃ নৃত্য-গীত যেনে - ভগৱান বুদ্ধৰ গুণগান গাই কৰা নৃত্য-কা-আলং, পখিলা নাচ-কামেং বি, প্রদীপ উচ্চর্গা নৃত্য-কাটেখং, যুদ্ধ বিজয়ৰ নৃত্য-কা-মাই-টাও আৰু কা-চিয়াক আদিয়ে প্রধান।

সাজপাৰ, আ-অলঙ্কাৰ ঃ খাময়াং মহিলাসকলে পৰিধান কৰা বস্ত্রৰ ভিতৰত ক'লা ৰঙৰ ফাচিন(মেখেলা), লাং বাট (ৰিহা), চাইকাপ (ককালত মৰা পেটি), চ্যু (চোলা) আৰু ফাংমাই (চাদৰ) আদিয়ে প্রধান। অবিবাহিত ছোৱালীয়ে ফাফেক পৰিধান কৰে।

পুৰুষ সকলে ফাটেং (লুঙি) সেউজীয়া, বগা- ক'লা, হালধীয়া আৰু বেঙুনীয়া সূতাৰে বোৱা, ফালয় (চুৰিয়া), ফা-হৌ (পাগুৰি, পুৰুষ, মহিলা উভয়ে পৰিধান কৰে), ফা-চেত (গামোচা) আদি খাময়াং সকলে পৰিধান কৰা বস্ত্র আজিও প্রচলিত।

আ-অলঙ্কাৰৰ ক্ষেত্রত মহিলাসকলে খোপাত পিন্ধা 'কাটকাও' (খোপাত মৰা ফুল), বেনটান (মুঠি খাৰু), বেন কুং (শিৰ পটিয়া খাৰু), পয়খাম আৰু পয়ঙুন (সোণ ৰূপৰ গেজেম মনি) লাক চান (আঙুঠি), পাট (জাংফাই), বেন কাৰ (গাম খাৰু) আদি খাময়াংসকলৰ আ-অলংকাৰ।

খাদ্যাবাস ঃ টাই খাময়াংসকলৰ মূল খাদ্য ভাত। পুৱা, দুপৰীয়া, সন্ধ্যা ভাতেই প্রধান আহাৰ। বুদ্ধ ধর্মৰে দীক্ষিত যদিও তেওঁলোকৰ মাজত আমিষ ভোজনৰ প্রচলন আছে। বনৰীয়া শাক-পাচলি তেওঁলোকে খাই ভাল পাই। এইবোৰৰ ভিতৰত কচুঁ, কচুঠুৰি, ঢেকীয়া, তৰাগঁজালি, বেতগাজ, বাহঁগাজ, কাঠফুলা, তেজমুৰীৰ আগ, টিকনি বঢ়োৱা, লেহেতি, মেটেকা, চেংমৰা, পাচাংখাং (এবিধ গছৰ আগ), লতা ডিমৰু আগ, কেৰাল গছৰ ফুল, পচলা, নেফাফু, লচকচী, কলমৌ আৰু বাৰীত কৰা লাই-লফা, খুটুৰা ইত্যাদি। এইবোৰ শাঁক ওখোৱাই খোৱা হয়। মিঠাতেল আৰু মছলাৰ ব্যৱহাৰ অলপ কম। চেৰা দিয়া (ভাপত দিয়া) ভাত, চুঙা ভাত (চুঙা চাউল) খাওলাম বাঁহৰ ভিতৰত পুৰি বনোৱা হয়, কৌ পাতৰ টোপোলা ভাত, এওঁলোকৰ প্রিয় খাদ্যৰ ভিতৰত অন্যতম। পুৱা মাছ, মাংস (কুকুঁৰা আৰু গাঁহৰি মাংস) বাঁহৰ কাঠিৰে পিন্ধি জুইত পুৰী প্রস্তুত কৰা হয়।

উপসংহাৰ ঃ দিচাংপানী শ্যাম গাঁও বর্ত্তমান এখন শিক্ষা-দীক্ষাৰে, ধর্ম-কর্মৰে পৰিপূর্ণ এখন পুর্ণাঙ্গ গাঁও। যদিও সংখ্যাত কম, জনগোষ্ঠীয়ে নিজৰ ধর্ম, ঐতিহ্য, কলা-সংস্কৃতি অক্ষুণ্ণ ৰাখি সগৌৰৱেৰে বর্ত্তি আছে। ওচৰ চুবুৰীয়া আহোম, চুতীয়া, চাহ জনগোষ্ঠী, নেপালী আদি সম্প্রদায়ৰ লগত মিলা প্রীতিৰে বসবাস কৰি আহিছে।

টাই খাময়াং সকল শান্তিপ্রিয়। বর্ত্তমান আধুনিকতাৰ প্রভাৱ কিছু পৰিমাণে তেওঁলোকৰ জীৱনত পৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। এই ক্ষেত্রত বিশেষকৈ বাসগৃহ নির্মাণ, সাজপাৰ পৰিধান আৰু খাদ্যাবাস এই তিনিটা দিশ উল্লেখ কৰিব পাৰি।

আগৰ কাঁঠ, বাঁহ, খেৰ আদিৰে সজোঁৱা চাংঘৰ বর্ত্তমান নোহোৱা হৈছে। ইয়াৰ মূল কাৰণ, এই সামগ্রীসমূহৰ অনুপলব্ধি। তাৰ পৰিবর্ত্তে ইটা, বালি, চিমেণ্ট, ৰডেৰে নির্মাণ কৰা পকী ঘৰ গাঁওখনত দেখিব পোৱা গৈছে।

পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাকৰ ক্ষেত্রতও যথেষ্ট পৰিবর্ত্তন পৰিলক্ষিত হৈছে। খাময়াং মহিলা-পুৰুষ উভয়ে সাধাৰণতে উৎসৱ সমূহতে নিজৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পাৰ পৰিধান কৰে। বৌদ্ধ বিহাৰত অনুষ্ঠিত হোৱা বিভিন্ন উৎসৱ-পার্ৱণসমূহত মহিলা (অষ্টশীলধাৰী) সকলে বগা চাদৰ-মেখেলা আৰু চাইকাপ পৰিধান কৰে আৰু সাধাৰণ মহিলাসকলে ক'লা মেখেলা-চাদৰ আৰু চাইকাপ পৰিধান কৰে। আনহাতে (অষ্টশীলধাৰী আৰু সাধাৰণ পুৰুষসকলে) ক'লা নীলা ধাৰী থকা লুঙি আৰু বগা কৃর্ত্তা বা কামিজ (চোলা) পৰিধান কৰে। লগতে খাময়াং গামোচাখন (ফা-চেত) পৰিধান কৰে।

খাদ্য ক্ষেত্রতো খাময়াং সকলৰ মাজত যথেষ্ট পৰিবর্ত্তন দেখা পোৱা গৈছে। আগৰ পৰম্পৰাগত উপলব্ধ শাঁক, আজিৰ সময়ত উপলব্ধ নোহোৱাত প্রায়বোৰ খাদ্য তালিকাৰ পৰা বাদ পৰিছে। তাৰে ভিতৰত কিছু উপলব্ধ শাঁক যেনে - লাই-লফা, খুটুৰা, কঁচু, ঢেঁকীয়া, পঁচলা, বাহঁগাজ আদিয়ে প্রধান।

উল্লেখযোগ্য যে উৎসৱ সমূহত প্রস্তুত কৰা কৌপাতৰ ভাতৰ টোপোলাৰ বাবে কৌপাত অঞ্চলটোত উপলব্ধ নহয়। সাধাৰণতে কৌপাতৰ বাবে, নাগালেণ্ডৰ চেংলৌ পথাৰ বা তেওঁলোকৰ অৰুণাচলত বসবাস কৰা সম্বন্ধীয় লোকসকলৰ পৰা সংগ্রহ কৰা হয়।

খাময়াং সকল সাধাৰণতে কৃষি কার্য্যত জড়িত। কিন্তু বর্তমান অঞ্চলটোত আগৰ দৰে ধানৰ উৎপাদন হ্রাস পাব ধৰিছে আৰু ই বিঘাই প্রতি ১০-১২ মোনতে সীমিত হৈছে। গাঁওখনত যদিও জলসিঞ্চন ব্যৱস্থা কৰা হৈছিল, কিন্তু বর্ত্তমান এই জলসিঞ্চন ব্যৱস্থা অচল হোৱাৰ বাবে কৃষকসকলে ইয়াৰ পৰা লাভৱান হোৱা নাই। স্বাস্থ্য ক্ষেত্রত গাঁওবাসীসকলে ধেমাজি দিচাংপানী ৰাজ্যিক প্রাথমিক চিকিৎসালয় ওপৰতেই নির্ভৰশীল। বর্তমান চিকিৎসালয়খনত এজন চিকিৎসক আৰু

তিনি গৰাকী নার্ছে চিকিৎসা সেৱা প্রদান কৰি আছে। আপাতকালীন বা উন্নত চিকিৎসা সেৱাৰ বাবে মৰাণ, সোঁণাৰী নাইবা ডিব্রুগড়লৈ যাব লগা হয়।

ধর্মীয় ক্ষেত্রত দিচাংপানী শ্যাম গাঁওৰ সকলো পুৰুষ মহিলা আৰু নৱপ্রজন্ম সকলে আগভাগ লোৱা দেখা যায়। বর্ত্তমান বৌদ্ধ বিহাৰত এজন ভিক্ষু (ভাণ্টে) আৰু এজন শ্রমন আছে। তেওঁলোকৰ খোৱাৰ ব্যৱস্থা গাঁওৰ ৰাইজে পাল পাতি খাদ্যৰ যোগান (পুৱা ৬ বজাত আৰু দুপৰীয়া ১১ বজাত) ধৰে। উল্লেখযোগ্য যে তেওঁলোকে দুপৰীয়া ১২ বজাৰ পাছত অন্ন গ্রহণ নকৰে।

নৱপ্রজন্মৰ ডেকা, জীয়ৰী সকলে গঠিত কৰা যুৱসংঘই, বিভিন্ন সময়ত পালন কৰা উৎসৱ আদিত আগভাগ লয়। পূর্ণিমা, অমাৱশ্যা দিনা বৌধবিহাৰত তেওঁলোকৰ দ্বাৰা আয়োজিত গাঁওৰ সকলো ধর্মপ্রাণ লোকক বৌধবিহাৰত একত্রিত কৰি ধর্মীয় চর্চা আৰু জা-জলপানৰ যোগান ধৰে। ধর্মৰ প্রতি এনে আনুগত্য যুৱপ্রজন্মৰ মাজত থকাটো অতি গৌৰৱৰ বিষয়।

দিচাংপানী শ্যাম গাঁও, অতি শান্তি প্রিয় গাঁও। ইয়াত বিবাদ হ'লেও, গাঁৱতে সকলোৱে মিলাপ্রীতি কৰি নিস্পত্তি কৰে আৰু সেইটো সকলোৰে গ্রহণযোগ্য হয়। এইক্ষেত্রত ওচৰৰ কাকতিবাৰী উপ-আৱক্ষী চকিত এজাহাৰ প্রায়ে দাখিল নহয়।

গাঁওখনত খোৱাপানীৰ ব্যৱস্থা, বর্ত্তমান চৰকাৰে প্রদান কৰা জলজীৱন আঁচনিৰ জৰিয়তে যথেষ্ট উপকৃত হৈছে, লগতে চৰকাৰী অৰুণোদয় আঁচনিও প্রায়বোৰ গাঁৱৰ মানুহবোৰকে সাঙুৰি লৈছে।

দিচাংপানী শ্যাম গাঁওখনক এখন ধর্মীয় আৰু সাংস্কৃতিক পর্য্যটক স্থলীলৈ গঢ়ি উঠাৰ যথেষ্ট অৱকাস আছে। কিয়নো ইয়াত থকা বৌধবিহাৰ আৰু বসবাস কৰা টাই খাময়াং জনগোষ্ঠীৰ জীৱনশৈলীৰ বিভিন্ন দিশ, গীত-নৃত্য, উৎসৱ-পার্বণ, খাদ্যসম্ভাৰ, সাজ-পোছাক আদি দেশী-বিদেশী পর্য্যটকৰ আকর্ষণৰ বিন্দু হ'ব পৰা যথেষ্ট স্থল আছে। বৌধবিহাৰত সংৰক্ষিত হৈ থকা পুৰণি ধর্মপুথি তথা অন্যান্য ধর্মীয় সা-সামগ্রীসমূহ প্রত্যক্ষ কৰাৰ হেঁপাহ সকলোৱে থাকে।

গতিকে এই সকলো দিশসমূহ প্রণালীবদ্ধভাৱে উপস্থাপন কৰিব পাৰিলে, পর্য্যটনৰ যোগেদি গাঁৱৰ শিক্ষিত যুৱক-যুৱতীসকলৰ কর্মসংস্থাপনৰ পথ মুকলি হোৱাৰ লগতে জনগোষ্ঠীটোৱে এই ক্ষেত্রত যথেষ্ট আগবাঢ়ি যাব। এই ক্ষেত্রত কেন্দ্রীয় তথা অসম চৰকাৰৰ লগতে স্থানীয় লোকসকলৰ কৰণীয় যথেষ্ট আছে।

দিচাংপানী শ্যাম গাঁও এখন শিক্ষা-ধর্ম-কর্মৰে এখন সুজলা-সুফলা গাওঁ, য'ত পুৱা গধুলি বৌধবিহাৰত উচ্চাৰি হৈ থাকে -

"বুদ্ধং শৰণং গচ্ছামি,
ধর্মং শৰণং গচ্ছামি,
সংঘং শৰণং গচ্ছামি।" ❑

প্রসংগ গ্রন্থপঞ্জী ঃ

১। পাংযুক যোগেন্দ্রনাথ, দিচাংপানী শ্যাম গাঁৱৰ অতীত আৰু বর্ত্তমান। 'ক্যং' - দিচাংপানী বৌদ্ধ বিহাৰ আৰু সাংস্কৃতিক কেন্দ্রৰ বুদ্ধৰূপা দাণোৎসৱৰ স্মৃতিগ্রন্থ। ৬ ফেব্রুৱৰী, ২০১৬ চন, দিচাংপানী - (সম্পাদক নিখিল শ্যাম পাংযুক), পৃ ঃ নং - ৩৮-৪৪

২। শ্যাম আংচি, 'তাই খামযাং জনগোষ্ঠীৰ মাজত বিবাদ নিস্পত্তিৰ পদ্ধতি আৰু ভূমি, বন অন্যান্য সম্পদসমূহৰ পৰিচালনা ৰীতি' - 'ক্যং' - (সম্পাদক নিখিল শ্যাম পাংযুক), পৃ ঃ নং - ৫৫-৫৭

৩। শ্যাম দূর্গা, 'তাই খামযাং (শ্যাম) সম্প্রদায়ৰ অতীত, বর্ত্তমান আৰু ভৱিষ্যত ঃ এটি পর্য্যালোচনা। 'ক্যং' (সম্পাদক নিখিল শ্যাম পাংযুক), পৃ ঃ নং - ৫৮-৬৪

৪। 'Buddhist Communities (c) : Tai Khamyang Vernacular Architecture.' Retrieved from (https:// www.wisdom lib.org/hinduism/eassy/vernacular-architecture-of-assam/d/doc1085431.html.)

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ

ড° পংকজ্যোতি বৰা

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
পিন - ৭৮৫১০৬
৯৭০৭৬৫৯৯৯৮
pankajborah554@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

সাম্প্রতিক, ইউনেস্কোৰ সমীক্ষাৰ অনুসৰি উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত থকা টাই-কাদাই ভাষাৰ পৰিয়ালৰ দক্ষিণীয় শাখাৰ টাই-খাময়াং আৰু আইতন দুয়োটা ভাষাই বিপন্ন পথত। এওঁলোকৰ ভাষিক জনসংখ্যা নিচেই কম। ইয়াৰ উপৰিও তেওঁলোকৰ নতুন প্রজন্মৰ মাজত ভাষা দুটাৰ ব্যৱহাৰ প্রায় কমি অহা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। পুৰণি চাম লোকৰ মাজতে ভাষা দুটা ব্যৱহাৰ আৰু চর্চা অব্যাহত আছে। গোলকীকৰণৰ প্রভাৱে নৃ-গোষ্ঠী দুটাৰ ভাষিক-সাংস্কৃতিক জগতলৈ ভাবুকি কঢ়িয়াই আনিছে। গতিকে, সঠিক সময়ত যদি ভাষা দুটা সংৰক্ষণৰ ব্যৱস্থাৰ হাতত লোৱা নহয়; তেন্তে খুব কম সময়ৰ ভিতৰতে চিৰকালৰ বাবে ভাষা দুটা হেৰাই যোৱা সম্ভাৱনা আছে। সেয়ে, সঠিক আৰু বিজ্ঞানসন্মত পদ্ধতিৰে তথা ভাষা পৰিকল্পনাৰ জৰিয়তে ভাষা দুটা কিদৰে সংৰক্ষণ আৰু সম্প্রসাৰণৰ কৰিব পাৰি আৰু এই ক্ষেত্রত কি কি ভূমিকা পালন কৰিব পাৰি সেই দিশসমূহ সম্পর্কে আলোচনা কৰা হ'ব। যাতে, ভাষা দুটা উপযুক্ত পদ্ধতিৰে গৱেষণা আৰু অধ্যয়ন কৰি সংৰক্ষণ কৰিব পৰা যায়। এই দৃষ্টি আগত ৰাখিয়েই টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ শীর্ষক পবন্ধটি যুগুত কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ ভাষা, খাময়াং, আইতন, সংৰক্ষণ, ভাষা-পৰিকল্পনা।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

ভাষা হৈছে মানৱ জাতিৰ যোগাযোগ আৰু উন্নয়নৰ প্রধান প্রাকৃতিক মাধ্যম। ইয়াৰ জৰিয়তে যিকোনো মানুহে মনৰ অনুভূতি, প্রতিভা আৰু কার্যৰ সম্পাদনা কৰি সমাজত বাস কৰি থাকে। গতিকে মানৱ সমাজ এখন বর্তি থাকিবলৈ ভাষাৰ প্রয়োজন আৰু ভাষাৰ অবিহনে কেতিয়াও সমাজৰ উন্নয়ন সম্ভৱ নহয়। ভাষাই হৈছে মানুহ আৰু সমাজৰ দুয়োৰে পুষ্টিৰ সাধনৰ প্রধান চাবিকাঠি। অর্থাৎ ভাষা হৈছে মানুহৰ মনৰ বা অন্তৰৰ চাবিকাঠি। আমি যদি এই চাবিকাঠি হেৰুৱাওঁ; তেন্তে আমি সেই মানুহখিনিকো হেৰুৱাম। যদি আমি এই সম্পদৰ চাবিকাঠি ভালদৰে ধৰি ৰাখোঁ; তেনেহ'লে এখন নতুন দুৱাৰ খুলি ন ন জ্ঞান আহৰণ কৰিব পাৰিম। যাৰ সহায়ত অন্য দিশৰ দুৱাৰবোৰ সহজেই খুলিব পাৰিম। গতিকে, যিকোনো মানৱ প্রজাতিৰ এটা ভাষা সংৰক্ষণ বা ধৰি ৰাখিবলৈ হ'লে ব্যক্তিগত আৰু চৰকাৰী দুয়োপক্ষই সমানে আগবাঢ়িব লাগিব। কাৰণ ভাষাৰ কেৱল মানুহৰ সাংস্কৃতিক দিশ প্রতিফলিত কৰা বাহন নহয়; ইয়াৰ উপৰিও

মনৰ ভাৱ, চিন্তা, কল্পনা, সৃজনীশীলতা, ইচ্ছা, আৱেগ-অনুভূতি আদি প্ৰকাশ কৰিবলৈও প্ৰয়োজন হয়। যাৰ সহায়ত একোটা জাতিৰ উন্নত কলা-কৌশল দক্ষতাসমূহ আহৰণৰ জৰিয়তে মানৱ জাতিৰ সামূহিক উন্নয়নৰ স্বাৰ্থত প্ৰয়োগ কৰিব পৰা যায়।

সাম্প্ৰতিক, উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত থকা টাই-কাদাই ভাষা পৰিয়ালৰ দক্ষিণীয় শাখাৰ টাই-খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটা বিপন্ন পথত। এওঁলোকৰ ভাষিক জনসংখ্যা নিচেই কম। তদুপৰি তেওঁলোকৰ নতুন চামৰ মাজত ভাষা দুটাৰ ব্যৱহাৰ প্ৰায় কমি আহিছে। গোলকীকৰণৰ প্ৰভাৱে নৃ-গোষ্ঠী দুটাৰ ভাষিক-সাংস্কৃতিক পৰিচয়ৰ প্ৰতি ভাবুকি কঢ়িয়াই আনিছে। সেয়ে, এনেবোৰ কথাৰ প্ৰতি দৃষ্টি ৰাখিয়েই টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ শীৰ্ষক পবন্ধটি যুগুত কৰা হৈছে।

০.২ আলোচনাৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ

টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ শীৰ্ষক পবন্ধটিৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে — সংকটাপন্ন খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবদ্ধন কৰা। যাতে কালৰ গৰাহত পৃথিৱীৰপৰা নৃ-গোষ্ঠীৰকেইটা ভাষা হেৰাই নাযায়।

লগতে ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবদ্ধনৰ ক্ষেত্ৰত ক্ষীপ্ৰতাৰে ল'ব লগা ভূমিকা সম্পৰ্কত গুৰুত্ব উপলব্ধি কৰা হৈছে। ইয়াৰ লগতে ভাষা দুটাত দেখা দিয়া সমস্যাবোৰ সামাধানৰ বাবে বিষয়টিৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৩ আলোচনাৰ পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ ঃ

এই পবন্ধটিত প্ৰধানত ঃ বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। লগতে আলোচনাৰ পৰিসৰ হিচাপে সংকটাপন্ন টাই খামায়ং আৰু আইতন ভাষাৰ সংৰক্ষণত ল'বলগীয়া ভূমিকা; যেনে — সজাগতা সৃষ্টি, শব্দউদ্ধাৰ, লিপি আৰু আখৰ জোঁটনি, পৰিভাষা প্ৰস্তুতকৰণ, ব্যাকৰণ-অভিধান প্ৰণয়ন, সাহিত্য আৰু অনুবাদ, আদিপাঠ প্ৰস্তুত, প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা, পুথিভঁৰাল (লাইব্ৰেৰী)ৰ ব্যৱস্থা আৰু নব্য মাধ্যমত অৰ্ন্তভূক্তি এই দিশকেইটাৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

০.৪ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ শীৰ্ষক পবন্ধটিৰ তথ্যসমূহ মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োটা উৎসৰ পৰা গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

১.০ ভাষিক স্থিতি আৰু সমস্যা ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত থকা টাই-কাদাই ভাষা পৰিয়ালৰ দক্ষিণীয় শাখাৰ টাই-কাদাই ঠালৰ ভাষা হ'ল খাময়াং আৰু আইতন। এই ভাষা দুটা অসমত প্ৰচলিত থকা টাই ভাষাসমূহৰ ভিতৰত উল্লেখযোগ্য ভাষা। নৃ-তাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা খাময়াং আৰু আইতনসকল মংগোলীয় সম্প্ৰদায়ৰ অৰ্ন্তগত। ধৰ্মীয় দিশৰ পৰা এওঁলোক বৌদ্ধ ধৰ্মাৱলম্বী লোক। এওঁলোকৰ বসতি পৃথিৱীৰ ভিতৰত কেৱল ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ অসমতহে পোৱা যায়। বৰ্তমান খাময়াংসকল গোলাঘাটৰ — ৰজাপুখুৰী শ্যম গাঁও, যোৰহাটৰ—বালিজান, বেটবাৰী আৰু না শ্যাম গাওঁ আৰু মাঘেৰিটা পাৱৈমুখ শ্যাম গাঁওত বসতি কৰি আছে। আনহাতে আইতনসকলৰ বসতি গোলাঘাটৰ — ৰৰগাঁও, দুবৰণি, টেঙানি, ৰৰহোলা গাঁও আৰু কাৰ্বি-আংলং জিলাৰ— চিলনীজান, বালিপথাৰ, কালিয়নী, চকীহোলা অঞ্চলকেইটাত বসবাস কৰি আছে। বৰ্তমান এওঁলোকৰ জনসংখ্যা নিচেই সীমিত। খাময়াংসকলৰ মুঠ জনসংখ্যা হৈছে— ৭,০০০ জন; ইয়াৰে ৫০ জনৰ মাজতহে ভাষাটো প্ৰচলিত আছে।[১] আইতনসকলৰ বৰ্তমান জনসংখ্যা— ১,৭৮৫ জন। ইয়াৰে নতুন প্ৰজন্মৰ মাজৰ ভাষাটোৰ ব্যৱহাৰ প্ৰায় কমি আহিছে।

খাময়াং আৰু আইতন লোকসকল প্ৰধানত দ্বিভাষী। এওঁলোকে নিজৰ মাজত যোগাযোগৰ বাবে নিজা টাই ভাষা ব্যৱহাৰ কৰে। কিন্তু শিক্ষাৰ মাধ্যম, চৰকাৰী কাম-কাজ, ব্যৱসায়-বাণিজ্য আদি দৈনন্দিন যোগাযোগৰ মাধ্যম হিচাপে অসমীয়া, ইংৰাজী আদি ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিবলগীয়া হয়। গতিকে সেই দিশৰপৰা স্বাভাৱিকতেই এওঁলোক দ্বিভাষী। সাম্প্ৰতিক ইন্টাৰনেট, বিভিন্ন উদ্যোগ আদিৰ প্ৰভাৱত নতুন চাম ল'ৰা-ছোৱালী সহজেই বহুভাষী হোৱা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। খাময়াং আৰু আইতন ভাষীসকলৰ নিজা বৃত্তাকাৰী টাই লিপি আছে। এই লিপিত লিখা ধৰ্মীয়, ব্যৱহাৰিক, নীতি-শিক্ষা, সাধুপুথি, বুৰঞ্জী আদি পুথিসমূহ পোৱা যায়। ইয়াৰ উপৰিও এওঁলোক নিজা লোকসাহিত্যৰ ফালৰপৰাও চহকী। তেওঁলোকৰ মুখে মুখে ভালেমান গীত-মাত, মন্ত্ৰ, কাহিনী, নীতি-বচন, ফকৰা আদিৰ প্ৰচলন পোৱা যায়। এইবোৰৰ বৰ্তমানেও কোনো ধৰণৰ অধ্যয়ন হোৱা নাই। খাময়াং আৰু আইতন ভাষাৰ শেহতীয়া ইউনেস্কো (UNESCO) ৰ সমীক্ষাৰ অনুসৰি EGIDS Level [২] ৰ স্থান তলত দেখুওৱা হ'ল—

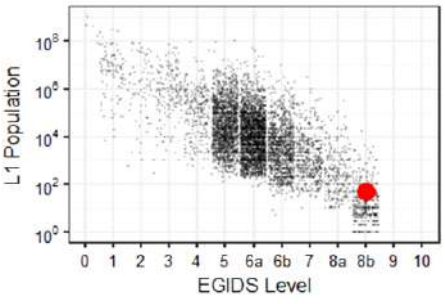

খাময়াং ভাষা

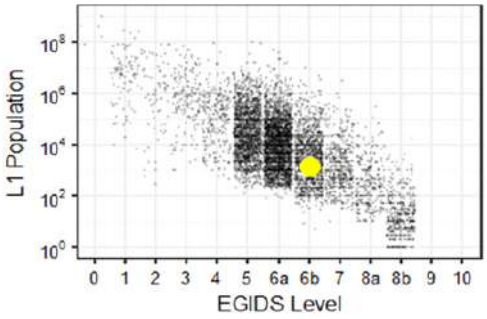

আইতন ভাষা

সাম্প্রতিক খাময়াং আৰু আইতন ভাষালৈ নামি আহা প্ৰধান সংকট তথা সমস্যাসমূহ হ'ল—

● খাময়াং আৰু আইতন দুয়োটা সৰু সৰু সুকীয়া টাই নৃ-গোষ্ঠীৰ। এওঁলোকৰ জনসংখ্যা নিচেই কম হোৱাৰ কাৰণে নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত ভাষা দুটাৰ ব্যৱহাৰ প্ৰায় কমি আহিছে। খামায়ংসকলৰ মাজত মাত্ৰ ৫০ জন আৰু আইতনসলকৰ ১,৭৮৫ জনৰ মাজতহে ভাষাকেইটা কথিত ৰূপত প্ৰচলিত আছে।

● দুয়োটা নৃ-গোষ্ঠীয়ে কম কম জনসংখ্যাৰে সুকীয়া সুকীয়া গাঁও পাতি ভিন্ন অঞ্চলত বসবাস কৰি আছে। যাৰ কাৰণে নিজৰ গোষ্ঠীৰ মাজত মিলা-মিচা কম হোৱাৰ ফলস্বৰূপে ভাষা-সংস্কৃতিৰ প্ৰতি দুৰ্বলতা কমি আহিছে।

● দৈনন্দিন কাম-কাজ, চৰকাৰী কাৰ্য্যালয়, শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ, ব্যৱসায়-বাণিজ্য আদিৰ ক্ষেত্ৰত সততে অসমীয়া, ইংৰাজী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিব লগা হয়। ইয়াৰ ফলস্বৰূপে নিজৰ ভাষাৰ প্ৰতি অৱেহলিত হৈ পৰা দেখা গৈছে। তদুপৰি বৰ্তমান প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ উন্নয়নৰ যুগত নতুন প্ৰজন্মই ইন্টাৰনেট, টেলিভিছন, লেপটপ আদি মাধ্যমৰ জৰিয়তে অন্য ভাষাৰ লগত সম্পৰ্ক ওচৰ চপাই আনিছে আৰু নিজৰ ভাষাৰ লগত দূৰত্ব ক্ৰমে বাঢ়ি আহিছে।

● আন এটা সমস্যা হ'ল খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটা সুৰীয়া আৰু বৃত্তাকাৰী লিপি থকা ভাষা। সুৰৰ আৰু লিপিৰ পাৰ্থক্যসমূহ অনুধাৱন কৰিব নোৱাৰিলে দুয়োটা ভাষাৰ অৰ্থ বুজা টান। সুৰৰ প্ৰয়োগ থকা কাৰণেই তেওঁলোকৰ নতুন প্ৰজন্মই ভাষাটো ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ অসুবিধা পায়। ইয়াৰ উপৰিও সুৰ আৰু লিপিৰ কাৰণেই অন্যভাষী লোকসকলে সহজে ভাষা দুটা আয়ত্ব কৰিব নোৱাৰে। গতিকে ভাষা দুটা নিজা গোষ্ঠীৰ মাজতেই আৱদ্ধ হৈ আছে।

● বৰ্তমানেও খাময়াং আৰু আইতন ভাষীসকলে প্ৰাথমিক শিক্ষাব্যৱস্থাত নিজৰ ভাষাটো শিকিবলৈ পোৱা নাই। তদুপৰি তেওঁলোকে ভাষা দুটা শিকিবৰ বাবে বা নিজৰ ভাষাত সাহিত্য চৰ্চা কৰিবৰ বাবে নিজৰ অঞ্চলত এখন মঞ্চ বা প্ৰতিষ্ঠান নাই। লগতে তেওঁলোকৰ ভাষাত যি সমূহ পুথি-পাঁজি আছিল; সেইবোৰ উন্নত পদ্ধতিৰে সংৰক্ষণ বাবে খাময়াং আৰু আইতনসকল অধ্যুষিত অঞ্চলত উপযুক্ত পুথিভঁৰাল নাই। যাৰ অভাৱত বৰ্তমান বহুতো মূল্যবান গ্ৰন্থ হেৰাই হৈছে।

● দুয়োটা ভাষাতে সাম্প্রতিক গৱেষণা হৈছে যদিও ভাষা দুটা আহৰণ কৰিবৰ কাৰণে এতিয়াও খাময়াং আৰু আইতন ভাষাত ব্যাকৰণ, অভিধান ৰচনা হোৱা নাই।

ইয়াৰ উপৰিও কৃষিজীৱী খাময়াং আৰু আইতনসকলে বৰ্তমান জীৱনৰ লগত আগবাঢ়ি যাবলৈ বহুতো কষ্টৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয়। ফলস্বৰূপে তেওঁলোকে নিজৰ ভাষা-সংস্কৃতি সংৰক্ষণৰ কথা পাহৰি জীৱিকা সন্ধানক প্ৰধান বিষয় হিচাপে গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে। গতিকে, আৰ্থিক দুৰ্বলতাও ভাষা দুটাৰ সংকটৰ আন এটা মুখ্য কাৰণ হৈ পৰিছে। প্ৰধানত ঃ এইবোৰ কাৰণেই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটালৈ প্ৰতিবন্ধকতা কঢ়িয়াই আনিছে।

২.০ পৰিকল্পনা আৰু সংৰক্ষণ ঃ

ওপৰত উল্লেখ কৰা বিভিন্ন কাৰণত খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটা বিপন্ন পথৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছে। গতিকে যি সকলৰ মাজত ভাষা দুটা কথিত ৰূপত বৰ্তি আছে আৰু য'ত লিখিত সাহিত্যবোৰ সংৰক্ষিত হৈ আছে, এই সকলোবোৰৰ সংৰক্ষণৰ গুৰুত্ব আহি পৰিছে। এইখিনিতে বিপন্নপ্ৰায় ভাষা দুটা সংৰক্ষণৰ কথা কওঁতে বহুতো প্ৰশ্ন আহি পৰে। কেনেদৰে ভাষা দুটা জীয়াই ৰাখিব পাৰি? কি কি কথাত আমি প্ৰথমে গুৰুত্ব দিব লাগিব; কেনেদৰে আগবাঢ়িব লাগিব? ইত্যাদি কথাবোৰেই হৈছে ভাষা পৰিকল্পনাৰ অন্তৰ্গত বিষয়। কাৰণ যিকোনো সংকটাপন্ন ভাষা এটা সংৰক্ষণ কৰিবলৈ হ'লে বিজ্ঞানসন্মত ভাষা পৰিকল্পনাৰ কথা আহি পৰে। গতিকে কম সময়ৰ ভিতৰত আমি কেনেদৰে সংকটাপন্ন ভাষা এটা

সংৰক্ষণৰ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিব পাৰোঁ; তাৰ বাবে চৰকাৰীভাৱে নাইবা ব্যক্তিগতভাৱেই হওঁক এটি আগতীয়া পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজন। যাৰ সহায়ত বিভিন্ন সমস্যাৰ মাজেদি আগবাঢ়ি ভাষাৰ সঠিক ৰূপসমূহ ধৰি ৰাখিব বা সংৰক্ষণ কৰিব পৰা যায়।

এতিয়া কথা হ'ল সংকটাপন্ন ভাষা সংৰক্ষণৰ কথা কওঁতে ভাষা পৰিকল্পনানো কি? ই কি কি ধৰণে ভাষা সংৰক্ষণত সহায় কৰে; এই কথা স্বাভাৱিকতেই আহি পৰে। ভাষা পৰিকল্পনা বিষয়টো সমাজ-ভাষাবিজ্ঞানৰ অন্তৰ্গত। সাধাৰণতে ভাষা-পৰিকল্পনাই ভাষাবোৰৰ সমস্যাৰ বিভিন্ন কাৰণবোৰ উলিয়াই আনে। আৰু ইয়াৰ আঁৰত থকা কাৰণবোৰ বিচাৰি উলিয়াই সমস্যা সামাধানৰ বাবে কিছুমান নীতি বা কৌশল সঠিকভাৱে প্ৰয়োগ কৰিবলৈ যত্ন কৰে। মূলতঃ ভাষা-পৰিকল্পনাত দুটা দিশ জড়িত হৈ থাকে। এটা হৈছে অঙ্গ-পৰিকল্পনা (corpus planning) আৰু দ্বিতীয়টো হৈছে মৰ্যাদাগত পৰিকল্পনা (ststus planning)। সাধাৰণ অৰ্থত অঙ্গ-পৰিকল্পনা (corpus planning) ই ভাষা একোটাৰ ভাষিক বা গাঁথনিক ৰূপৰ বিষয়সমূহ সাঙুৰি লয়। আকৌ মৰ্যাদাগত পৰিকল্পপনা (status planning) ই প্ৰধানতঃ ভাষা একোটাৰ মান্যকৰণৰ বিভিন্ন দিশসমূহৰ বিষয়ে সামৰি লয়।

যিহেতু খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুয়োটাই সংকটাপন্ন অৱস্থাত আছে। গতিকে, ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণৰ কথা কওঁতে প্ৰধানত অঙ্গ-পৰিকল্পনা (corpus planning) দিশটো আহি পৰিব। কিয়নো ভাষা দুটাৰ বৰ্তমান গৱেষণা চলিছে যদিও শব্দ উদ্ধাৰ, ব্যাকৰণ-অভিধান প্ৰণয়ন, অনুবাদ, আদিপাঠ প্ৰস্তুত আদিবোৰৰ ক্ষেত্ৰত কোনোধৰণৰ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰা হোৱা নাই। ইয়াৰ উপৰিও মৰ্যাদাগত পৰিকল্পনা (status planning) ৰ দিশো আংশিক পৰিমাণে আহি পৰিব। কিয়নো এই ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণত পুথিভঁৰাল প্ৰতিষ্ঠা আৰু অনাতাঁৰ, টেলিভিছ্‌ আদি মাধ্যমৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ ভাষাতবাতৰি আদি প্ৰচাৰত সমানে গুৰুত্ব আহি পৰিছে। মুঠতে সংকটাপন্ন ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণত অংগ-পৰিকল্পনা (corpus planning) আৰু মৰ্যাদাগত পৰিকল্পনা (status planning) এই দুয়োটাই প্ৰায় সমানে গুৰুত্ব আহি পৰিছে। গতিকে, সংকটাপন্ন খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবৰ্দ্ধনত সততে গ্ৰহণ কৰিবলগীয়া ভূমিকা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ল—

২.১ সজাগ-সচেতনতা ঃ

যিহেতু খাময়াং আৰু আইতনসকল আৰ্থিকভাৱে দুৰ্বল আৰু ভৌগোলিকভাৱে পিছপৰা অঞ্চলত বাস কৰে। গতিকে তেওঁলোকে নিজৰ আৰ্থিক সবলতাৰ দিশত বেছি গুৰুত্ব দিবলগীয়া হোৱাত নিজৰ ভাষাৰ প্ৰতি গুৰুত্ব কমি আহিছে। এই ক্ষেত্ৰত ব্যক্তিগত বা চৰকাৰীভাৱেই হওঁক প্ৰথমতে তেওঁলোকৰ মাজত নিজৰ ভাষাৰ প্ৰতি সচেতনতা বৃদ্ধি কৰিব লাগিব। তেওঁলোকৰ ৰাজহুৱা কাম-কাজত, ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানত নাইবা সভা-সমিতিৰ জৰিয়তে নিজৰ ভাষাৰ গুৰুত্ব কথা ক'ব লাগিব। অৰ্থাৎ ভাষা থাকিলেহে যে তেওঁলোকৰ পৰিচয় থাকিব এই কথা বুজাই দিব লাগিব। নিজ নিজ মাতৃভাষাৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধা আৰু দায়িত্বৰ কথা আঙুলিয়াই দিব লাগিব।

২.২ শব্দ উদ্ধাৰ ঃ

দ্বিতীয়তে, খামায়ং আৰু আইতন ভাষাৰ সংৰক্ষণত গ্ৰহণ কৰিবলগীয়া গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা হৈছে শব্দ উদ্ধাৰ। কাৰণ তেওঁলোকৰ মাজত কমসংখ্যক লোকৰ মাজতহে ভাষা দুটাৰ ব্যৱহাৰ আছে আৰু বহুতো শব্দৰ প্ৰচলন কমি গৈছে। তদুপৰি সুৰীয়া ভাষা (tonal language) হোৱাৰ কাৰণে ভাষা দুটাৰ সুৱসমূহৰ সঠিক উচ্চাৰণভংগী আৰু পাৰ্থক্য নিৰূপণ কৰি বণীবদ্ধ (recording) ৰূপত সংগ্ৰহ আৰু সংৰক্ষণ কৰা। লগতে শব্দ আৰু সুৱসমূহ নিৰ্দিষ্ট ৰূপ নিৰ্ণয় কৰি নিজাৰ লিপি আৰু IPAৰ সহায়ত একোখনকৈ শব্দকোষ তৈয়াৰ কৰিব লাগিব।

২.৩ লিপি আৰু আখৰজোঁটনি ঃ

খাময়াং আৰু আইতন ভাষাৰ নিজা বৃত্তাকাৰী লিপি আছে। গতিকে এই ভাষা দুটাত লিপিৰ নিৰ্বাচনৰ কথা নাহে। দুয়োটা ভাষাতে স্বৰ আৰু ব্যঞ্জন ধ্বনিৰ প্ৰয়োগ আছে। এই ভাষা দুটাত প্ৰতিটো স্বৰধ্বনিৰ একোটা দীৰ্ঘ ৰূপৰ প্ৰচলন আছে। এই দীৰ্ঘৰ ৰূপ লিখিব বাবে প্ৰতিটো হ্ৰস্ব স্বৰধ্বনিক একোটা মাত্ৰা বা চিহ্ন প্ৰয়োগ কৰি দীৰ্ঘ কৰা নিয়ম আছে। ঠিক তেনেদৰে ব্যঞ্জন ধ্বনিৰ ক্ষেত্ৰতো তেনে কিছুমান নিয়ম দেখা যায়। গতিকে, এই নিয়মসমূহ পৃথকে পৃথকে চিনাক্তকৰণ কৰি আখৰ জোঁটনি সমস্যা সমাধান কৰি তুলিব লাগিব। লগতে একোখনকৈ লিপি আৰু আখৰ জোঁটনি সম্পৰ্কীয় কিতাপ প্ৰকাশ কৰিব লাগিব।

২.৪ পৰিভাষা প্ৰস্তুতকৰণ ঃ

বৰ্তমান বিজ্ঞানৰ প্ৰসাৰতা বৃদ্ধি পোৱাৰ লগে লগে চিকিৎসা, ব্যৱসায়, আইন-কানুন, শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ দিশত বিভিন্ন নতুন নতুন শব্দৰ সৃষ্টি হৈছে। যিবোৰ শব্দ ভাষা দুটাত ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ নিজৰ শব্দাৰ্থৰ অভাৱ দেখা যায়। গতিকে, তেওঁলোকৰ ভাষাত নথকা শব্দসমূহ পাৰিভাষিককৰণৰ জৰিয়তে শব্দভাণ্ডাৰ চহকী কৰি তুলিব লাগিব।

২.৫ মৌখিক সাহিত্যক লিখিত ৰূপ প্ৰদান ঃ

বৰ্তমানে খাময়াং আৰু আইতনভাষী প্ৰাপ্তবয়স্কসকলৰ মাজত ভালেমান মৌখিক গীত-মাত, সাধুকথা, প্ৰৱচন, জতুৱা ঠাঁচ, প্ৰব্ৰজন সম্পৰ্কীয় মত আদি প্ৰচলন আছে। যিসমূহ নতুন প্ৰজন্মই ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ এৰি দিছে। গতিকে ভাষাটো সংৰক্ষণ কৰিবলৈ যাওঁতে এই লোকসাহিত্যবোৰ বাণীবদ্ধ (recording) আৰু লিখিত ৰূপ প্ৰদান কৰাৰ নিতান্তই প্ৰয়োজনীয়।

২.৬ ব্যাকৰণ-অভিধান প্ৰণয়ন ঃ

খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণত ল'ব লগা আন এটা ভূমিকা হৈছে ব্যাকৰণ আৰু অভিধান প্ৰস্তুতকৰণ। দুয়োটা ভাষাৰ বৰ্তমান বিজ্ঞানসন্মত গৱেষণা হৈছে যদিও ভাষা দুটাত নিজা লিপিতেই হওক বা আন আন লিপিতেই হওক এখনো ব্যাকৰণ আৰু অভিধান প্ৰণয়ন হোৱা নাই। গতিকে দুয়োটা ভাষাতে দুখনকৈ ব্যাকৰণ প্ৰণয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। ইয়াৰ সমসাময়িকভাৱে ভাষা দুটাত বিজ্ঞানসন্মত দুখন অভিধান প্ৰণয়নৰ ভূমিকা অত্যন্ত প্ৰয়োজনীয়। কিয়নো একোখন অভিধানে একোটা জাতিৰ ভাষা-সংস্কৃতিৰ সকলো দিশেই ধৰি ৰাখে।

২.৭ সাহিত্য চৰ্চা আৰু অনুবাদ ঃ

এই ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিবলগীয়া আন এটা দিশ হৈছে নিজা ভাষাত সাহিত্য চৰ্চা আৰু অনুবাদকৰণ। খাময়াং আৰু আইতন দুয়োটা ভাষাতে নিজা লিখিত ৰামায়ণ, মহাভাৰত, নীতিপুথি, বৌদ্ধ দৰ্শনৰ পুথি ভালেমান পোৱা যায়। যিসমূহ বৰ্তমান চৰ্চাৰ অভাৱত বৌদ্ধ বিহাৰ নাইবা কাৰোবাৰ ঘৰত অসংলগ্ন অৱস্থাত পৰি আছে। যিসমূহ বৰ্তমান মাত্ৰ দুই-চাৰিজনেহে চৰ্চাৰ অব্যাহত ৰাখিছে। গতিকে এই সাহিত্যসমূহ চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত আগ্ৰহ প্ৰদান কৰাৰ লগতে নতুন নতুন সাহিত্য সৃষ্টিত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিব লাগিব। লগতে টাই ভাষাত থকা পুথি-পাঁজিসমূহ অসমীয়া, ইংৰাজী ভাষালৈ অনুবাদ কৰিব লাগিব। তদুপৰি অসমীয়া, ইংৰাজী ভাষাত থকা চিকিৎসা, আইন, বেংক, নাটক, কবিতা, গীত-মাত আদি দৈনন্দিন ব্যৱহৃত পুথি-পাঁজিসমূহ যথেষ্ট পৰিমাণে ভাষা দুটালৈ অনুবাদ কৰিব লাগিব। যাৰ জৰিয়তে খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটা সাহিত্যৰ দিশৰ পৰা অলপ হ'লেও টনকিয়াল হৈ উঠিব। এই ক্ষেত্ৰত ব্যক্তিগত প্ৰতিষ্ঠান আৰু চৰকাৰী অনুষ্ঠান দুয়ো পক্ষই সহায় আগবঢ়াব লাগিব।

২.৮ আদিপাঠ প্ৰস্তুত ঃ

এই ভাষা দুটা সংৰক্ষণত ল'বলগীয়া আন এটা ভূমিকা হৈছে একোখনকৈ আদিপাঠ প্ৰস্তুত কৰা। যিহেতু ভাষা দুটা সুৰীয়া, একাক্ষৰী বৃত্তাকাৰী লিপি হোৱাৰ বাবে তেওঁলোকৰ নতুন প্ৰজন্মই ব্যৱহাৰ নকৰে। তদুপৰি অন্যভাষী লোকসকলেও সহজতে আয়ত্ত কৰিব নোৱাৰে। গতিকে দুয়োটা ভাষাতে সকলোৰে কাৰণে ভাষা দুটা প্ৰাথমিকভাৱে আয়ত্ব কৰিব পৰাকৈ — বৰ্ণমালা পুথি, গণনা পুথি, আদিপাঠ ইত্যাদি প্ৰস্তুত কৰিব লাগিব। প্ৰয়োজন অনুসৰি খাময়াং-অসমীয়া আৰু আইতন-অসমীয়া এনেদৰে দুয়োটা ভাষাতে অৰ্ন্তভূক্তি কৰিব লাগিব।

২.৯ প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা ঃ

এই ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণত গুৰুত্ব দিবলগীয়া আন এটা দিশ হৈছে প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা কৰা। যিহেতু নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত ভাষা দুটাৰ ব্যৱহাৰ কমি আহিছে। গতিকে খাময়াং আৰু আইতন অধ্যুষিত অঞ্চলসমূহত ভাষা দুটাৰ প্ৰাথমিক পৰ্যায়ত প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা গঢ়ি তুলিব লাগে। প্ৰয়োজন হ'লে বৌদ্ধ বিহাৰত প্ৰশিক্ষণ নতুবা প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ত নিজৰ ভাষাটো চৰ্চাৰ বাবে অৰ্ন্তভুক্তি কৰিব লাগে। যাৰ সহায়ত তেওঁলোক নতুন চামৰ লগতে অন্যভাষীসকলেও খাময়াং আৰু আইতন ভাষা আহৰণ কৰিব পাৰে।

২.১০ লাইব্ৰেৰী ব্যৱস্থা ঃ

সংকটাপন্ন ভাষাসমূহৰ সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত লাইব্ৰেৰীয়ে যথেষ্ট ভূমিকা লয়। কিয়নো একোটা উন্নত মানৰ উপযুক্ত লাইব্ৰেৰীত দীৰ্ঘকাল ধৰি কোনো ভাষা সাহিত্যৰ পুথি-পাঁজিসমূহ বিভিন্ন মাধ্যমৰ সহায়ত ভালদৰে ধৰি ৰখা হয়। এইক্ষেত্ৰত খাময়াং আৰু আইতনসকলৰ অধ্যুষিত অঞ্চলসমূহত একোটাকৈ লাইব্ৰেৰী প্ৰতিষ্ঠা কৰাতো অত্যন্ত প্ৰয়োজনীয় বিষয়। বৰ্তমান তেওঁলোকৰ ভাষাত সিঁচৰিত হৈ থকা লিখিত গ্ৰন্থসমূহৰ লগতে বিভিন্ন উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ ভিডিঅ' ৰেকডিং, পুৰণি তথ্য আদি সংগ্ৰহ কৰি সেই লাইব্ৰেৰীসমূহত সংৰক্ষণৰ ব্যৱস্থা কৰা। কিয়নো পুথিভঁৰালত সংৰক্ষিত গ্ৰন্থসমূহৰ লগত তেওঁলোকৰ মাজত এটা সম্পৰ্ক গঢ়ি উঠিব আৰু নিজৰ ভাষা সংৰক্ষণ আৰু চৰ্চাত গুৰুত্ব বাঢ়ি আহিব। লগতে নতুন নতুন দিশত জ্ঞানৰ বাট মুকলি হ'ব।

২.১১ নব্য মাধ্যমত অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ ঃ

খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটা সংৰক্ষণৰ সম্পৰ্কত ওপৰত উল্লেখ কৰা পদক্ষেপৰ উপৰিও আন এটা ল'বলগীয়া গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকাটো হৈছে নব্যমাধ্যমত তথ্য অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ। ওপৰত উল্লেখ কৰা দিশসমূহৰ গ্ৰহণ কৰাৰ লগতে ভাষা

দুটাৰ বিভিন্ন ইলেক্ট্রনিক মাধ্যমৰ দ্বাৰাই প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰ কৰিব লাগিব। উদাহৰণস্বৰূপে — অনাতাঁৰ, টেলিভিছনযোগে বাতৰি, ধাৰাবাহিক তথ্যচিত্ৰ প্ৰচাৰ আদি। ইয়াৰ উপৰিও খাময়াং আৰু আইতন ভাষাৰ লিপিসমূহ Unicode ব্যৱস্থাত অন্তৰ্ভুক্তি কৰিব লাগিব। লগতে ভাষা দুটাৰ পৰিচয়, লিপি, ধ্বনিসমূহৰ উচ্চাৰণ, শব্দকোষ, ব্যাকৰণ, অভিধান, সাহিত্য, নৃত্য-গীত, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, আদি সকলোবোৰ যাৱতীয় গ্ৰন্থ, তথ্য-পাতি ইণ্টানেটৰ Wikipedia, Google, Websiteত অন্তৰ্ভুক্তি কৰিব লাগিব। লগতে নতুন নতুন তথ্য সমূহ অনুবাদ কৰা জৰিয়তে তেওঁলোকৰ নিজৰ ভাষাত এই মাধ্যমসমূহত অন্তভুক্তি কৰিব লাগিব। যাতে তেওঁলোকৰ লগতে আন লোকসকলেও খাময়াং আৰু আইতন ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতি সম্পৰ্কীয় সকলো তথ্য লাভ কৰিব পাৰে। তেতিয়াই তেওঁলোকৰ ভাষাটো লাহে লাহে সংকটাপন্ন অৱস্থাৰ পৰা মুক্ত হ'ব আৰু প্ৰসাৰতা লাভ কৰিব। এইক্ষেত্ৰত চৰকাৰী-বেচকাৰী, গৱেষক, বিশ্ববিদ্যালয়, বিভিন্ন গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠানে সমানে সহায়-সহযোগিতাৰে আগবাঢ়িব লাগিব।

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

বৰ্তমান বিভিন্ন কাৰণত টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটাৰ সংকটাপন্ন ৰূপ ধৰা দিছে।। গতিকে সময় থাকোতেই ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণৰ কথা চিন্তা নকৰিলে হয়তো কালৰ বুকুত এদিন নৃ-গোষ্ঠীৰ দুটা হেৰাই যাব। কাৰণ ভাষা হেৰাই গ'লে একোটা জাতিৰ অস্তিত্ব ক'ত থাকিব? গতিকে এটা মানৱ প্ৰজাতি জীয়াই ৰাখিবলৈ আমি সকলোৱে চিন্তা আৰু চেষ্টা কৰা উচিত। যি নহওক অস্তিত্ব সংকটত থকা খাময়াং আৰু আইতন ভাষা দুটা সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত বহুতো সমস্যা আমাৰ সন্মুখত আহি পৰিছে। এই সমস্যাবোৰৰ মাজেৰে আমি সহজে আৰু কম সময়তে ভাষা পৰিকল্পনাৰ কিছুমান সৰল পদ্ধতি দ্বাৰাই ভাষা দুটাৰ সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা ল'ব পাৰোঁ। যাৰ সহায়ত ভাষা দুটাৰ অস্তিত্বৰ সংকট পৰা কিছুপৰিমাণে হ্ৰাস পাই আহিব। লগতে নৃ-গোষ্ঠী দুটাৰ নিজা পৰিচয় বহন কৰি ৰাখিব। টাই খাময়াং আৰু আইতন ভাষা সংৰক্ষণ ঃ এক বিশ্লেষণ শীৰ্ষক বিষয়টি আলোচনাৰ জৰিয়তে লাভ কৰা কেইটামান সিদ্ধান্ত উল্লেখ কৰা হ'ল—

- খাময়াং আৰু আইতন নৃ-গোষ্ঠী দুটাৰ মাজত নিজৰ ভাষাৰ প্ৰতি সজাগ-সচেতনতা সৃষ্টি কৰা।
- তেওঁলোকে ব্যৱহাৰ কৰা শব্দবোৰ উদ্ধাৰ, সংকলন আৰু সংৰক্ষণ কৰা।
- লিপি আৰু আখৰজোঁটনি ক্ষেত্ৰত শিথিলতা দূৰ কৰা।
- পৰিভাষা প্ৰস্তুতকৰণ অৰ্থাৎ নতুন নতুন শব্দ গঠন কৰি তেওঁলোক ভাষা দুটাৰ শব্দভাণ্ডাৰ চহকী কৰি তোলা।
- প্ৰচলিত মৌখিক সাহিত্যবোৰ লিখিত ৰূপ প্ৰকাশ কৰা।
- ভাষা দুটাত বিজ্ঞানসম্মত ব্যাকৰণ আৰু অভিধান প্ৰণয়ন কৰা।
- নিজৰ ভাষাত সাহিত্য চৰ্চা কৰা। পৰ্যাপ্ত পৰিমাণে ভাষা দুটালৈ দৈনন্দিন প্ৰয়োজনীয় পুথি-পাঁজিবোৰ অনুবাদ কৰা। লগতে অন্য ভাষালৈ তেওঁলোক লিখিত সাহিত্যবোৰ আনুবাদ কৰা।
- ভাষা দুটা সকলোৱে সহজে আয়ত্ব কৰিবলৈ আদিপাঠ, কুঁহিপাঠ প্ৰস্তুত কৰা।
- প্ৰাথমিক শিক্ষা ব্যৱস্থাত ভাষা দুটা অন্তৰ্ভুক্তিকৰণৰ লগতে প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা কৰা।
- খাময়াং আৰু আইতনসকলৰ অধ্যুষিত অঞ্চলবোৰত সৰু সৰু উন্নতমানৰ লাইব্ৰেৰী প্ৰতিষ্ঠা কৰা।
- দুয়োটাৰ ভাষা পৰিচয়ৰ পৰা আৰম্ভৰ কৰি ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি সকলোবোৰ তথ্য ইণ্টাৰনেট, উইকিপিডিয়া, গ'গলত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা। লগতে তেওঁলোকৰ ভাষাত আনাতাঁৰ, টেলিভিছনৰ জৰিয়তে বাতৰি, ধাৰাবাহিক তথ্য-চিত্ৰ আদি প্ৰকাশ কৰা। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মহন্ত চৌধুৰী, সুবাসনা আৰু বৰা, জয়ন্তকুমাৰ (স.).ভাষা-সাহিত্য অধ্যয়নৰ বিবিধ দিশ. ডিব্ৰুগড় ঃ ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, প্ৰথম প্ৰকাশ ২০১৪.
Ferguson, G. Language Planning and Education, Edinburgh : Edinburg University press.2006.
Shohamy, Elana. Language Policy: Hidden agender and new ap proaches. 1971.
https://en.wikipedia.org/wiki/Khamyang_people#Distribution
http://www.ethnologue.com/17/cloud/ksu/
https://www.ethnologue.com/cloud/aio
https://www.google.co.in/search?q = language+preservation+theory
http://www.fpcc.ca/files/PDF/Language/FPCC_NationalDialogueSessionReportAbridged.pdf

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

অসমৰ মেচ-কছাৰীসকলৰ পৰম্পৰাগত গীত-মাত ঃ হুৰই-ৰাঙলী গীতৰ বিশেষ উল্লিখন

ড° প্রয়াসী দত্ত

লোক সংস্কৃতি বিভাগ
পাণ্ডু মহাবিদ্যালয়, মালিগাঁও
গুৱাহাটী, অসম-৭৮১০১২
৯৭০৬৮৪৮২৮৮
prayashee111@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ অসম ভূ-খণ্ড বিভিন্ন জাতি জনগোষ্ঠীৰ সমন্বয়ৰ ক্ষেত্ৰ। এই সকলো জাতি-জনগোষ্ঠীৰে কলা-সংস্কৃতি, ভাষা আৰু জীৱন যাত্ৰাৰ এক সুকীয়া পদ্ধতি আছে। প্ৰত্যেক জাতি-জনগোষ্ঠীৰ কলা-সংস্কৃতি, ৰীতি-নীতি আদিয়ে জাতিটোৰ এক নিজস্ব সুকীয়া পৰিচয় বহন কৰি আহিছে। অসম ৰাজ্যত বসবাস কৰা মেচ-কছাৰীসকলো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। প্ৰাচীন কামৰূপৰ শাসনকৰ্তা মেচ-কছাৰীসকল অসমৰ ভূমিপুত্ৰ আৰু লোকসংস্কৃতিৰ বিভিন্ন সমলেৰে তেওঁলোক চহকী। সময়ৰ সোঁতত আৰু প্ৰবজনৰ ফলত জাতিটোৱে কিছু নিজস্ব ৰূপ হেৰুৱাব লগীয়া হৈছে যদিও জনগোষ্ঠীয় চেতনাৰ ফলস্বৰূপে সেইসমূহৰ পুনৰুদ্ধাৰৰ ক্ষেত্ৰতো মেচসকল সফল হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। অতীতৰে পৰা প্ৰচলিত বহুতো লোকগীত, ফকৰা-যোজনা, নৃত্যগীত মেচসকলৰ সমাজত আজিও বিদ্যমান। এই গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে অসমৰ মেচ-কছাৰীসকলৰ কৃষি উৎসৱৰ লগত জড়িত হুৰই-ৰাঙলী গীতৰ পৰিচয়, গীতৰ চৰ্চা আৰু মেচসমাজত সেই গীতসমূহৰ গুৰুত্ব আদি বিভিন্ন দিশসমূহৰ আলোচনাৰ এক প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

লোকসংস্কৃতি, মৌখিক পৰম্পৰা, লোকগীত, হুৰই-ৰাঙলী, প্ৰচাৰ, প্ৰসাৰ।

বিষয়বস্তুৰ পৰিচয় ঃ

আৰম্ভণি ঃ সংস্কৃতি হৈছে জাতি একোটাৰ লগত নিৰন্তৰ প্ৰৱাহমান এটি বিষয়। জাতি এটাৰ প্ৰায় সকলো দিশ সংস্কৃতিয়ে আৱৰি ৰাখে। জাতি একোটাৰ পৰিচয়, ভাষা, সাহিত্য, উৎসৱ-পাৰ্বন, খাদ্যাভাস, সাজ-পাৰ ইত্যাদি সকলোখিনি সামৰি সংস্কৃতিৰ ধাৰাটো প্ৰস্তুত হৈছে। আনহাতে সংস্কৃতিৰ গৱেষক, পণ্ডিতসকলে সংস্কৃতিক দুটা প্ৰধান ভাগত বিভক্ত কৰিছে, ইয়াৰে প্ৰথমটো হৈছে লোকসংস্কৃতি আৰু আনটো অভিজাত সংস্কৃতি। (গগৈ, ২০১০, পৃ-৬-৭)

গৱেষকসকলৰ মত অনুসৰি লোকসংস্কৃতিৰ ৰূপটোৱে হৈছে সংস্কৃতিৰ প্ৰকৃত ৰূপ বা পৰিচয়। লোকসংস্কৃতি বা ইংৰাজী Folkloreৰ সংজ্ঞা অনুসৰি সমাজৰ সকলো শ্ৰেণীৰ মানুহৰ গাত প্ৰৱাহমান হৈ থকা সংস্কৃতিৰ প্ৰকৃত ৰূপটোৱে হৈছে লোকসংস্কৃতি। লোকসংস্কৃতিৰ আন এটা নাম হৈছে লোককৃষ্টি। সমাজ এখনৰ

প্ৰত্যেকজন মানুহৰ মূল আধাৰ হৈছে জীৱিকা আৰু জীৱন ধাৰণ প্ৰণালী। পৃথিৱীৰ বেছি সংখ্যক জাতি জনজাতিৰ জীৱন ধাৰণ প্ৰণালী কৃষিভিত্তিক। কৃষিকৰ্মৰ লগতে তেওঁলোকে ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত হৈ আছে। ইয়াৰে কৃষিকেন্দ্ৰিক আচাৰ অনুষ্ঠানৰ পৰাই কৃষ্টি শব্দটো ব্যৱহাৰ হৈছে। গতিকে ক'ব পাৰি লোককৃষ্টি হৈছে লোকসংস্কৃতিৰ বৰভেটি স্বৰূপ। এই লোককৃষ্টি বা জনকৃষ্টিৰ অন্তৰ্গত মৌখিক সাহিত্যৰ শ্ৰেমীসমূহৰ ভিতৰত পৰম্পৰাগত গীত-মাতসমূহো অন্যতম। (ডৰচন, ১৯৭২, পৃ-২-৫)

বিষয়বস্তুৰ গুৰুত্ব ঃ

অসমৰ অতি প্ৰাচীন জনগোষ্ঠী মেচ-কছাৰীসকল সমাজগত আৰু জাতিগতভাৱে মৌখিক সাহিত্যৰ বিশাল পৰিসৰেৰে এক চহকী জাতি। তাৰ ভিতৰত জাতিটোৰ পৰম্পৰাগত গীত-মাতসমূহো অন্যতম। এই মেচ-কছাৰীসকলৰ দৈনন্দিন জীৱন চৰ্চা, কৰ্ম, পূজা, উৎসৱ-পাৰ্বন আদিত বিবিধ লোকগীত জড়িত হৈ আছে। কিন্তু এই লোকগীতবিলাকৰ অধ্যয়নৰ চৰ্চা আৰু বিশ্লেষণৰ অবিহনে কালৰ কুটিল গতিত বিলুপ্ত হ'ব ধৰিছে যদিও কিছু কিছু অঞ্চলত এইসমূহৰ চৰ্চা বৰ্তমানেও দেখিবলৈ পোৱা যায়।

বিষয়ৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

বিষয়ৰ লক্ষ্য যদিও মেচসকলৰ পৰম্পৰা গীত-মাত, অধ্যয়নৰ সুবিধাৰ বাবে মেচ-কছাৰীসকলৰ ৰঙালী বিহুৰ সময়ত পৰিবেশন কৰা মাগন নৃত্যৰ হুৰই-ৰাঙলী গীতসমূহক নিৰ্বাচন কৰি বিষয়টো সীমাবদ্ধ কৰি লোৱা হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে অসমৰ মেচ-কছাৰী জাতিৰ হুৰই-ৰাঙলী গীতৰ পৰিচয়, এই গীতৰ চৰ্চা, ৰঙালী বিহুৰ লগত সামঞ্জস্য আৰু মেচসকলৰ সমাজত এই গীতসমূহৰ গুৰুত্ব আদি দিশসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ সমল আৰু পদ্ধতি ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰৰ বিষয়টো ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু সমল ব্যক্তিৰ সহায়ত ইয়াৰ সমলসমূহ সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। আনহাতে বিষয়টোৰ সন্দৰ্ভত কিছুমান গ্ৰন্থৰো সহায় লোৱা হৈছে। বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে বিভিন্ন সমল ব্যক্তিৰ সাক্ষাৎকাৰ, পৰ্যবেক্ষণ, অংশগ্ৰহণকাৰী পৰ্যবেক্ষণ পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

প্ৰাচীন জনগোষ্ঠী মেচ-কছাৰীসকল ঃ

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ 'কীৰ্ত্তনঘোষা'ত উল্লিখিত "কাটি মাৰি ম্লেচক কৰিব বুন্দামাৰ" ঘোষাফাকিৰ 'ম্লেচেই মেচ' বুলি অসমৰ জনগাঠনিত বহুলভাৱে প্ৰচাৰিত হৈছিল। প্ৰকৃততে 'মেচ' আৰু ম্লেচ শব্দ দুটাৰ বুৎপত্তি বাখ্যা কৰাৰ পূৰ্বে প্ৰাচীন অসমৰ ইতিহাসত চকু ফুৰোৱাটো প্ৰয়োজনীয়। খ্ৰীষ্ট জন্মৰ ২০০০ বছৰ আগৰ পৰাই বিভিন্ন ভাষা-ভাষী নৃগোষ্ঠীয় সকলে অসমত প্ৰৱেশ কৰাৰ কথা ইতিহাসৰ পাততে পোৱা যায়। দক্ষিণ তিব্বত আৰু নেপালৰ বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন পথেৰে কছাৰীসকলৰ বিভিন্ন উপভাষী শাখা সমূহ অসমত প্ৰৱেশ কৰিছিলহি। ইতিহাসবিদ চিডনী এণ্ডেলৰ মতে, এই কছাৰী সকল দক্ষিণ তিব্বতৰ পৰা পশ্চিম দিশেদি নামনি অসম হৈ সোমাইছিল (Endl. 1911:10)। এডৱার্ড গেইটৰ মতে, তিব্বত বৰ্মী ভাষী কছাৰীসকল পূৱ দিশৰ পৰাহে অসমত প্ৰৱেশ কৰি ঠায়ে ঠায়ে বসতি স্থাপন কৰিছিল (গেইট, ১৯০৬ :১১)।

অসম ভূ-খণ্ডত প্ৰৱেশ কৰা এই কিৰাট কছাৰী জাতিৰ তিনিটা ঠালৰ এটা এই মেচ কছাৰীসকল। প্ৰাচীন কামৰূপত সৰহখিনি সময় কছাৰীসকলৰ ভিতৰত মেচৰ ফৈদটোৱে ৰাজ্য শাসন কৰিছিল বুলি জনা যায়। আনুমানিক ৬৫০ চন মানত বৰ্মন সকলৰ শেষ ৰজা তথা পূৱ ভাৰতৰ এজন প্ৰতাপী নৃপতি ভাস্কৰ বৰ্মনৰ মৃত্যুৰ পাছত ম্লেচসকলৰ নেতা শালস্তম্ভই সেই সময়ৰ কামৰূপ দখল কৰা দৰাচলতে এই অঞ্চলৰ ইতিহাসৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ঘটনা। প্ৰকৃততে ভেমি নৰক, পুষ্যবৰ্মন, শালস্তম্ভ, চুকাফা আৰু বিশ্বসিংহৰ ৰাজনৈতিক অভ্যুদয়। এইকেইটা ঐতিহাসিক ঘটনাই ১৮২৬ চনলৈকে থকা অসমৰ জনগাঠনিটোৰ স্বৰূপ নিৰূপণ কৰিছে। আনহাতে, ৰত্নপালৰ (৯২০-৯৬০ চন) বৰগাওঁ শিলালিপিতি শালস্তম্ভৰ ক্ষমতা দখলৰ সময়খিনি এক বিশেষ শব্দৰে সূচিত কৰিছে। এই শিলালিপিত উল্লেখ থকা মতে, "বিধিছলনাবশত" শালস্তম্ভই কামৰূপৰ ৰাজ্যভাৰ দখল কৰে। (শৰ্মা, ২০২২, পৃ-১১)

বৰগাঁও শিলালিপিত উল্লেখ থকা ম্লেচ হ'ল মেচ শব্দৰ সংস্কৃত কৰণ। সেয়েহে চিডনী এণ্ডেল, নগেন্দ্ৰ নাথ বসু, ৰিচলে আদি পণ্ডিতসকলে সংস্কৃত শব্দ ম্লেচৰ পৰা 'মেচ' শব্দৰ উৎপত্তি হোৱা বুলি অভিহিত কৰে। (Endl. 1911:11) প্ৰকৃতাৰ্থত মেচ শব্দটোৰ উৎপত্তিৰ মূল বিচাৰি উভতি যাব লাগিব মেচসকলৰ আদি বাসস্থান তিব্বত নেপালৰ 'মেচি' (Mechi) নদীৰ পাৰলৈ। সেই সময়ত বৃহত্তৰ কছাৰী গোষ্ঠীৰ লোকসকল নেপাল আৰু দক্ষিণ তিব্বতৰ বৃহৎ অংশত সিঁচৰিত হৈ আছিল আৰু তেওঁলোকে মেচী নদীৰ পাৰত বসতি স্থাপন কৰিছিল বাবেই সেই জনগোষ্ঠীক মেচ বুলি অভিহিত কৰা হয়। সময়ে সময়ে প্ৰৰজনৰ সোঁতত বৰ্তমান ঘাইকৈ পশ্চিমবংগৰ উত্তৰ আৰু পূৱ বংগ অঞ্চল আৰু নেপালৰ কিছু কিছু অঞ্চলৰ লগতে সোনকোষ নদী পাৰ হৈ অসমৰ গোৱালপাৰা জিলাত বসতি স্থাপন কৰে। পিছলৈ

অসমৰ শোণিতপুৰ, দৰং, নগাঁও, কার্বিআংলং, বোকাজান, গোলাঘাট, দেৱগাঁও, যোৰহাট, শিৱসাগৰ, ডিব্রুগড়, তিনিচুকীয়া, শদিয়া আদি ঠাইত বসতি স্থাপন কৰে আৰু সেই সময়ৰ পৰাই একোটা অভিন্ন প্ৰাচীন সংস্কৃতিৰে চহকী জাতি হিচাপে পৰিচয় বহন কৰি আহিছে।

লোকসাহিত্য ঃ

লোকসংস্কৃতি পৰিসৰৰ বিভিন্ন স্তৰত অসমৰ মেচসকল চহকী। লোকসংস্কৃতিৰ বিভিন্ন ভাগসমূহৰ ভিতৰত এটা উল্লেখনীয় ভাগ হৈছে লোকসাহিত্য বা মৌখিক সাহিত্য বা মৌখিক পৰম্পৰাসমূহ, যিসমূহ এটা প্ৰজন্মৰ পৰা আন এটা প্ৰজন্মলৈ মুখে মুখে প্ৰচলিত। সেই পৰম্পৰা সমূহৰ ভিতৰত লোকসাহিত্য, ফকৰা-যোজনা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, নিচুকনি গীত, বিভিন্ন অনুষ্ঠানমূলক গীত আদিৰ বিশাল সম্ভাৰেৰে মেচসকল জাকত জিলিকা। বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতসমূহৰ ভিতৰ আইনাম, বিয়ানাম, ধাইনাম, মাগন নৃত্যৰ লগত জড়িত হুৰই ৰাঙলী গীত, জাকৈ নৃতৰ লগত জড়িত জাকৈ নাম, ববাই বা আদৰণি নাম, চিলা হালি নৃত্যৰ লগত জড়িত নাম, তাঁতশালৰ লগত জড়িত নাম আদি উপশ্ৰেণীত ভগাব পাৰি।

লোকগীত ঃ

সাধাৰণতে লোকগীত বুলিলে সেইসমূহ পৰম্পৰাগত গীতক বুজোৱা হয় যি সমূহৰ পুনৰাবৃত্তিমূলক ঠাঁচ আছে আৰু যিসমূহৰ প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰ মৌখিক ৰূপত হয়। "লোকসমাজৰ জীৱন্ত প্ৰয়াসত লোকগীতসমূহ জীৱন্ত হৈ থাকে, অৰ্থাৎ লোকগীতত এটি কেন্দ্ৰীয় কাহিনী থাকে আৰু নাটকীয়ভাৱে কাহিনীসমূহৰ বিকাশ ঘটে। "(বড়ো, ২০০১:২৯২)।"

উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ গীত ঃ

উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ গীত-মাত বুলিলে ঋতুকালীন কৃষি উৎসৱ। যেনে - হুৰই ৰাঙলী, ব'ৰাই, আইছাগী আদি উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ সৈতে সম্পৰ্কযুক্ত গীতকে বুজিব লাগিব।

অসমৰ মেচ-কছাৰীসকল পৰম্পৰাগত গীত মাতত অধিক চহকী। বিভিন্ন ঋতুভিত্তিক উৎসৱৰ লগতে বহুকেইটা কৃষি উৎসৱও তেওঁলোকে পালন কৰে। প্ৰতিটো উৎসৱৰ সৈতে তেওঁলোকৰ লোকগীত আৰু লোকনৃত্যৰ এক চহকী পৰম্পৰা আছে। ওপৰত আলোচনা কৰা মতে, অসম ভূখণ্ডত বাস কৰা মেচ-কছাৰীসকলে অসমীয়া ভাষাক চৰকাৰী ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে। সেয়েহে তেওঁলোকৰ সকলো লোকসংস্কৃতিৰ সমল অসমীয়া ভাষাতে পোৱা যায়। তথ্যদাতা মহন্ত মেচে (কুটুহা মেচ গাওঁ, ডিব্রুগড় জিলাৰ মেচ কছাৰী যুৱ পৰিষদৰ এজন সদস্য) উল্লেখ কৰি কৈছে যে, "আমাৰ পৰম্পৰাগত লোকগীত সমূহত অসমীয়া শব্দৰ উপৰিও পুৰণি মেচ সমাজত প্ৰচলিত কিছুমান শব্দৰো উল্লেখ আছে যি সমূহ আমাৰ উন্নয়ন পৰিষদ আৰু যুৱ পৰিষদৰ সদস্যসমূহে বিভিন্ন জিলাৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰিছে।"

কৃষি উৎসৱৰ লগত জড়িত মেচসকলৰ হুৰই-ৰাঙলী গীতৰ কিয়দাংশ তলত উল্লেখ কৰা হ'ল—

মেচসকলৰ হুৰই-ৰাঙলী গীত ঃ

মেচসকলৰ হুৰই-ৰাঙলী গীতসমূহ মাগন নৃত্যত পৰিৱেশন কৰা গীত। বিশেষকৈ বহাগ বিহুত এই নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰে। ব'হাগ বিহুৰ প্ৰথম দিনটো সন্ধিয়াৰ পৰা বয়োজেষ্ঠসকলৰ সমন্বিতে যুৱক-যুৱতীসকলে নামঘৰ বা ৰাজহুৱা নামঘৰত ঘাট জুৰি জ্ঞাতীৰ সাদুংগ্ৰাৰাৰ ঘৰৰ পৰা হুঁচৰি জুৰি গাঁৱৰ ঘৰে ঘৰে পৰিবেশন কৰে। গাঁৱৰ প্ৰত্যেকটো ঘৰত হুঁচৰি গোৱাৰ লগতে বিহু খুৱাৰ প্ৰথাৰো প্ৰচলন আছে। হুঁচৰিৰ সামৰণিত গৃহস্থই বিহুৱা ৰাইজক দক্ষিণা, গুৱাপান আদিৰ লগতে চাউল, নিমখ আদি দ্ৰব্য দি সেৱা লয় আৰু লগতে জৌ (পৰম্পৰাগত পানীয়) আৰু বিভিন্ন পৰম্পৰাগত খাদ্য সম্ভাৰৰ যোগান ধৰে। জৌ নোখোৱা সকলক পিঠা-পনা, জা-জলপান আদিৰে আপ্যায়ন কৰে। শেষত বিহুৱা ৰাইজে নতুন বছৰটোৰ কুশল কামনা কৰি গৃহস্থক আশীৰ্বাদ দিয়ে। হুঁচৰি পৰিৱেশনৰ যোগেদি নানা ধেমেলীয়া গীতেৰে বস্তু খুজি বিহু নৃত্য কৰাৰ বাবে এই বিহুক মাগন বিহু বুলি কোৱা হয় আৰু নৃত্যটোক মাগন বা ভিক্ষা নৃত্য বুলি কয়। এইদৰে হুঁচৰি গাই গোটোৱা সামগ্ৰীৰে সাতদিনৰ দিনা সাদুংগ্ৰাৰা ঘৰত বা নৈৰ পাৰত ভোজ-ভাত খাই আৰু ৰাহি হোৱা দক্ষিণাসমূহেৰে গাঁৱৰ পূজা থান বা নামঘৰলৈ প্ৰয়োজনীয় বস্তুৰ যোগান ধৰে।

এই মাগন বা ভিক্ষা নৃত্য পৰিবেশন কৰোতে মেচ কছাৰী সমাজত অতীজৰে পৰা প্ৰচলিত বাদ্যযন্ত্ৰ যেনে ঢোল, পেঁপা, খুটিতাল, যাম (ডাঙৰ ঢোল বা মাদল), গগনা, চিফুং, থৰকা, টকা, কৰতাল, আদিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এই নৃত্য পৰিৱেশন কৰাৰ আগতে গৃহস্থৰ পদুলিৰ পৰা গুৰু বন্দনা বা বাট বুলনি কৰি আগবাঢ়ে আৰু গৃহস্থৰ চোতাল পোৱাৰ পাচত তলত উল্লেখিত ধৰণেৰে গীত জুৰি নৃত্য আৰম্ভ কৰে—

"ইয়াৰ গীৰি ক'ত গ'ল চৰাই হাল ৰায়
ভিক্ষা দিবাৰ দৰতে২,

বেৰা ভঙলাই চাই, ঐ বেৰা ভঙলাই চাই
হুৰই হুৰই হুৰই ৰাঙলি।
আকৌ গীত জুৰে—
আবু আবু আবু ঐ
চৰাই ধান খাই
চৰাই খেদোং হাঁই হাঁই২
দাঙ বাৰি নাই ঐ
দাঙ বাৰি নাই
হুৰই হুৰই হুৰই ৰাঙলী।
পঘা গুনুং নুগুনং তিনিগুনীয়া
মানুহখিনি চিকুন চাকান ভিতৰ ঘুণীয়া
হুৰই হুৰই হুৰই ৰাঙলী।
শিমলু গছৰ গুৰিতে
ভালুক খচৰাই
আমাৰ আবুই নাচিছে ধূলা উজুৰাই
হুৰই হুৰই হুৰই ৰাঙলী।
আঠিয়া কলৰ পাত পচলা
মনুহৰ কলৰ পুলি
ঘৰে ঘৰে মাগি আহিলি গভেয়া ৰাখক বুলি
হুৰই হুৰই হুৰই ৰাঙলী।
আম ক'লি ক'লি ঐ
কঠাঁল মুচি মুচি হাজাৰ টকা নিদিলে নাযাং আমি গুচি ঐ
হুৰই হুৰই হুৰই ৰাঙলী।

এইদৰে পদ লগাই লগাই গীতৰ মাজেৰে মাগন নৃত্য পৰিবেশন কৰে।

এই নৃত্য গীতৰ জড়িয়তে গাঁৱৰ বয়োজেষ্ঠ আৰু ডেকা গাভৰুসকলে বছৰটোৰ বাবে গৃহস্থক আশীৰ্বাদ দি যায়।

সামৰণি ঃ

লোকগীত, কিংবদন্তি, সাধুকথা, ফকৰা-যোজনা আদি মৌখিক সাহিত্যৰ সমলসমূহ অসমৰ মেচ-কছাৰী জাতিটোৰ বাবে ইতিহাস আৰু পৰিচয়ৰ একমাত্ৰ উৎস। এই মৌখিক পৰম্পৰাৰ অসংখ্য ৰূপে অতীতৰ ইতিহাস আৰু সমসাময়িক পৰিস্থিতিৰ অভিজ্ঞতা প্ৰকাশ কৰে। উল্লেখনীয় যে সাম্প্ৰতিক সময়ত পৰিৱৰ্তনৰ গৰাহত পৰি জাতিটোৰ অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত মেচ-কছাৰী সকলে বহুতো কষ্টৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছে। সময়ৰ সোঁততে আৰু প্ৰবজনৰ গৰাহত পৰি লোকসংস্কৃতিৰ অধিকাংশ ৰূপ মেচ সমাজে হেৰুৱাই পেলাইছে বুলি ক'ব পাৰি। মেচসকলৰ সমল ব্যক্তিৰ মত অনুসৰি, 'মেচ সকলক এক ৰূপান্তৰৰ প্ৰয়োজন যিয়ে এক সুস্থিৰ মনৰ গঢ় দি এক নতুনত্বৰ বাবে জাতিৰ উত্থানৰ হকে কাম কৰি গৈ জাতিটোৰ কলা, কৃষ্টি, সাহিত্য, নিজা সাজপাৰ, ৰীতি-নীতিসমূহৰ যোগেদি সমাজত এক সুকীয়া পৰিচয় দাঙি ধৰিব পাৰে আৰু কেৱল জনগোষ্ঠীয় চেতনাৰ জৰিয়তে এয়া সম্ভৱ হৈ উঠিব বুলি বিশ্বাস।'

বৰ অসমৰ ভেটিত অসমৰ প্ৰাচীনতম শাসনকৰ্তা জনগোষ্ঠী হিচাপে নিজৰ এক সুকীয়া স্থান দখল কৰাত লোকসংস্কৃতিৰ এই বিশাল সমলসমূহে মেচসকলৰ এক পৰিচয় বহন কৰি আহিছে। এই সমলসমূহৰ সংৰক্ষণ, প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰে মেচ জাতিৰ সৰ্বাংগীন বিকাশৰ লগতে সমগ্ৰ বিশ্বৰ আগত এক প্ৰাচীন সবল জাতি ৰূপে স্বীকৃতি দিয়াত সহায়ক হ'ব। ❑

প্ৰসংগ টীকা ঃ

১. তথ্য সংগ্ৰহ, ডিব্ৰুগড়, ২০১৭
২. সংগ্ৰহৰ স্থান ঃ পাৰখোৱা, কাৰ্বিআংলং সমল ব্যক্তি ঃ শ্ৰী আমিন মেচ তাৰিখ ঃ ৬ জুন, ২০১৮

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃ লীলা গগৈ ঃ অসমৰ সংস্কৃতি, ২০০৯-১০, ৭ম, সংশোধিত সংস্কৰণ ড০ নাৰায়ণ দাস
ড° পৰমানন্দ ৰাজবংশী ঃ অসমীয়া সংস্কৃতিৰ কনিকা, ২০০৬, তৃতীয় সংস্কৰণ
নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা ঃ লোকসংস্কৃতি, ১৯৯৯
ড° প্ৰহ্লাদ কুমাৰ বৰুৱা ঃ অসমীয়া লোকসাহিত্য, ২০০১
সমিৰণ মেচ ঃ মেচ জনগোষ্ঠী আৰু সমাজ-সংস্কৃতিৰ চমু পৰিচয়, ২০১৩
বিশ্বজিৎ মেচ ঃ হিড়িম্ব ঃ স্মৃতিগ্ৰন্থ মেচ-কছাৰী সাংস্কৃতিক মহোৎসৱ, ২০১৯
ড° ডিম্বেশ্বৰ শৰ্মা ঃ প্ৰাগ্‌জ্যোতিষৰ ইতিহাস, ২০০২

ইংৰাজী গ্ৰন্থ ঃ Dorson. M. Richard : Folklore and Folklise, an introduction, 1972
Endle, Sidniy : The Kacharis, 1999
Gait, Edward : A History of Assam, 1906

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

প্রাক্-স্বাধীনতা কালছোৱাত পূর্ববংগৰ পৰা অসমলৈ ঘটা জনপ্রব্রজনৰ গতি-প্রকৃতি

(নির্বাচিত অসমীয়া উপন্যাসৰ আধাৰত এক সমীক্ষাত্মক অধ্যয়ন)

ড° মনালিছা কছাৰী

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
পদ্মনাথ গোহাঞি বৰুৱা চৰকাৰী আদর্শ মহাবিদ্যালয়
কাকো পথাৰ, তিনচুকীয়া-৭৮৬১৫২
৯৬৭৮৬১৫৪২৮
monalishakachari8811@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

অসমলৈ বিভিন্ন সময়ত এনে অনেক জনগোষ্ঠীৰ প্রব্রজন ঘটিছিল, যিবোৰ জনগোষ্ঠীয়ে সামাজিক নিৰাপত্তা আৰু অর্থনৈতিক স্বচ্ছলতাৰ সন্ধানত নিজৰ জন্মভূমিৰ প্রতি থকা মোহ ত্যাগ কৰি অচিনাকী ঠাই এখনলৈ আহিবলৈ বাধ্য হৈছিল। পূর্ববংগৰ মৈমনসিং, পাবনা, ৰংপুৰ ইত্যাদি বিভিন্ন জিলাৰ পৰা আর্থ-সামাজিক কাৰণত দৰিদ্র-সর্বস্বান্ত খেতিয়কসকলে অসমলৈ আহি চৰ-চাপৰিত বসতি আৰম্ভ কৰে। সামগ্রিকভাৱে চৰ-চাপৰিত মুছলমান সম্প্রদায়ৰ লোকেই হ'ল সংখ্যাগৰিষ্ঠ। এই চৰ চাপৰিৰ মুছলমান লোকসকলক পৰবর্তী সময়ত মৈমনসিঙীয়া, মিঞা, পমুৰা, ন-অসমীয়া, চৰুৱা, অভিভাষী ইত্যাদি বিভিন্ন নামেৰে নামাকৰণ কৰা হয়। কিন্তু পূর্বে এই লোকসকলক 'মৈমনসিঙীয়া' বুলিয়েই অভিহিত কৰা হৈছিল। বিভিন্ন আর্থ-সামাজিক কাৰণত পূর্ববংগৰ লোকসকলৰ অসমলৈ অবিৰত প্রব্রজন ঘটিছিল। এই প্রব্রজিত লোকসকলক লৈ অসমৰ একাংশ মানুহ শংকিত আৰু সৰৱ হৈ উঠাৰ বিপৰীতে একাংশ মানুহে উদ্গনি যোগাইছিল। চৈয়দ আব্দল মালিকৰ *ৰূপাবৰীৰ পলস*, উমাকান্ত শর্মাৰ *কাজলীৰ ৰোগ* আৰু অৰুণ শর্মাৰ *আশীর্বাদৰ ৰং* উপন্যসত প্রাক্-স্বাধীনতা কালছোৱাত পূর্ববংগৰ পৰা হোৱা প্রব্রজনৰ ছবিখন তথ্যসহকাৰে বাস্তৱ প্রেক্ষাপটত দাঙি ধৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। এই গৱেষণা কর্মৰ জৰিয়তে আলোচ্য উপন্যাসকেইখনত দাঙি ধৰা বিৱৰণৰ আধাৰত প্রব্রজনৰ অন্তৰালত থকা কাৰণসমূহ উদ্ঘাটন কৰি, সেই সময়ছোৱাত প্রব্রজন সন্দর্ভত অসমৰ মানুহে কেনেধৰণৰ প্রতিক্রিয়া প্রকাশ কৰিছিল সেই দিশসমূহ উন্মোচনৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

পূর্ববংগ, অসম, প্রব্রজন, জমিদাৰী ব্যৱস্থা, কৃষক, মৈমনসিঙীয়া, চৰ-চাপৰি, পতিত মাটি।

০.০ প্রস্তাৱনা ঃ

০.১ বিষয় পৰিচয় ঃ

বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকৰ পৰাই ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ আগলৈকে অসমৰ ৰাজনৈতিক বাতাবৰণ পূৰ্ববংগৰ বিভিন্ন জিলাৰ পৰা অবিৰতভাৱে হৈ থকা প্ৰব্ৰজনৰ সমস্যাটোৱে উত্তপ্ত কৰি ৰাখিছিল। ইংৰাজ আগমনৰ সময়ৰেপৰা বৰ্তমানলৈ অসমলৈ চাৰিটা জনস্ৰোতৰ প্ৰব্ৰজন ঘটে - (১) চাহশ্ৰমিক জনগোষ্ঠী (২) পূৰ্ববংগীয় মুছলমান খেতিয়ক (৩) নেপালী সম্প্ৰদায় আৰু (৬) দেশ-বিভাজনৰ পিছত অহা হিন্দু বঙালী শৰণাৰ্থী।[১] পূৰ্ববংগৰ পৰা দৰিদ্ৰ ভূমিহীন মুছলমান কৃষকসকলৰ আগমনৰ সময়ত (১৯০৫-১৯৪৭) পূৰ্ববংগ আৰু অসম ব্ৰিটিছ শাসিত অখণ্ড ভাৰতবৰ্ষৰ দুখন অংগৰাজ্য আছিল। সেয়ে একেখন দেশৰে দুখন অংগৰাজ্য হোৱাৰ বাবে পূৰ্ববংগৰ পৰা খেতিয়কসকলে অসমলৈ গৈ বসতি স্থাপন কৰাত কোনোধৰণৰ সাংবিধানিক বাধা নিষেধৰ সন্মুখীন হোৱা নাছিল। পূৰ্ববংগৰ পৰা মাটিৰ সন্ধানত অসমলৈ আহি বসতি স্থাপন কৰাৰ ইতিবৃত্ত বহুকেইখন অসমীয়া উপন্যাসত বাস্তৱসন্মত ৰূপত দাঙি ধৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। সাহিত্যই সামাজিক ইতিহাসৰ লগতে ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰো সাক্ষ্যবহন কৰি আহিছে। ইতিহাসৰ একোটা সময়ৰ ৰাজনৈতিক ঘটনা-পৰিঘটনা, বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ আৰ্থ-সামাজিক অৱস্থা, তদানীন্তন সময়ছোৱাৰ মানুহৰ চিন্তা-চেতনা, ভাৱ-অনুভূতি, বিভিন্ন ঘটনাক লৈ বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া আদি সাহিত্যই কলাসন্মত ৰূপত তুলি ধৰা পৰিলক্ষিত হয়। অসমীয়া ঔপন্যাসিকসকলে অসমৰ ৰাজনীতি কেইবাদশক ধৰি উত্তপ্ত কৰি ৰখা পূৰ্ববংগৰ পৰা হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰসংগটো অতি গুৰুত্বসহকাৰে উপস্থাপন কৰিছে। প্ৰব্ৰজনৰ বিষয়টোক লৈ যথেষ্ট অধ্যয়ন আৰু গৱেষণা হৈছে, কিন্তু পূৰ্ববংগীয় মানুহবোৰে কি পৰিস্থিতিত বাধ্য হৈ নিজৰ আপোন ঘৰখন, আত্মীয় স্বজন সকলো এৰি এখন অচিনাকি ঠাইলৈ আহিবলগীয়া হৈছিল তথা তেওঁলোকৰ চিন্তা-চেতনা, জীৱন সংগ্ৰাম আদি দিশসমূহৰ ওপৰতো আলোকপাত কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। এই দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাত ঔপন্যাসিকসকলৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ অৱদান আছে। উপন্যাসসমূহত দাঙি ধৰা ঘটনাক্ৰমৰ আলোচনাৰ জৰিয়তে প্ৰব্ৰজনৰ লগত জড়িত বিভিন্ন দিশসমূহ অধিক স্পষ্ট ৰূপত প্ৰতিভাত হৈ উঠিব।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল-

(ক) পূৰ্ববংগৰ পৰা হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ গতি-প্ৰকৃতি নিৰ্ণয় কৰা।

(খ) প্ৰব্ৰজনত উদ্গনি যোগোৱা কাৰকসমূহ উদ্ঘাটন কৰা।

(গ) বাস্তৱ তথ্যৰ আধাৰত প্ৰব্ৰজনৰ কাৰণসমূহ বিচাৰ কৰি চোৱা।

(গ) পূৰ্ববংগৰ পৰা হৈ থকা প্ৰব্ৰ জন সন্দৰ্ভত সমাজৰ বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ লোকসকলে প্ৰকাশ কৰা প্ৰতিক্ৰিয়া সম্পৰ্কে অৱগত হোৱা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পূৰ্বে অসমলৈ পূৰ্ববংগৰ পৰা হোৱা অবাধ প্ৰব্ৰজন আৰু স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পাছত হোৱা অবৈধ অনুপ্ৰৱেশৰ সমস্যা দুটা অসমৰ ৰাজনৈতিক তথা সামাজিক প্ৰেক্ষাপটত এক জলন্ত সমস্যা হিচাপে বিবেচিত হৈ আহিছে। প্ৰব্ৰজন আৰু অনুপ্ৰৱেশ সম্পৰ্কে স্পষ্ট ধাৰণা এটা নথকাৰ বাবেই বহুসময়ত একোটা উত্তপ্ত পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হোৱা দৃষ্টিগোচৰ হয়। এই বিষয়ক অধ্যয়নে এনেধৰণৰ ঘটনা ৰোধত নিশ্চিতভাৱে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিব। জনসাধাৰণক সচেতন কৰি তোলাৰ ক্ষেত্ৰত এই অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

সাহিত্যৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নে সাহিত্যৰ জৰিয়তে সমাজৰ বিভিন্ন দিশ অধ্যয়ন কৰে। এই অধ্যয়নত সাহিত্যৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ অন্তৰ্গত সমাজ-বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। ইয়াৰ উপৰি প্ৰয়োজনসাপেক্ষে সমীক্ষাত্মক পদ্ধতিৰো প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

পূৰ্ববংগৰ পৰা হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰসংগটোক বহুকেইগৰাকী ঔপন্যাসিকে উপন্যাসৰ বিষয়বস্তু হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছে আৰু যথেষ্টসংখ্যক উপন্যাসত কাহিনীৰ প্ৰয়োজনত এই প্ৰসংগটো উত্থাপন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

এই অধ্যয়ন কম পৰিসৰত সামৰিবলগীয়া হোৱাৰ বাবে নিৰ্বাচিত তিনিখন উপন্যাসৰহে আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব। এই উপন্যাস তিনিখন হ'ল- চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ *ৰূপাবৰীৰ পলস*, উমাকান্ত শর্মাৰ *কাজলীৰ ৰোগ* আৰু অৰুণ শর্মাৰ *আশীৰ্বাদৰ ৰং*।

১.০ পূৰ্ববংগৰ পৰা অসমলৈ ঘটা প্ৰব্ৰজন ঃ

১.১ অসমীয়া উপন্যাসত প্ৰতিফলিত প্ৰব্ৰজনৰ গতি-প্ৰকৃতি ঃ

ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষ দশকৰ পৰাই অসমলৈ পূৰ্ববংগৰ মুছলমান খেতিয়কৰ প্ৰব্ৰজন আৰম্ভ হয়। ১৯২১ চনলৈ গোৱালপাৰা আৰু অসমৰ বিভিন্ন জিলাত বসতি কৰা পূৰ্ববংগীয় প্ৰব্ৰজনকাৰীৰ পৰিমাণ আছিল যথাক্ৰমে ১,৪১,০০০ আৰু ১,১৭,০০০।[২] প্ৰব্ৰজনৰ এই গতি প্ৰবাহ ১৯৪৭ চনলৈকে চলি থাকে। অসমীয়া ঔপন্যাসিকসকলে প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰসংগটো অত্যন্ত সচেতনভাৱে গৱেষকৰ দৃষ্টিভংগীৰ উত্থাপন কৰি বিভিন্ন দিশ চালি-জাৰি চোৱাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ *ৰূপাবৰীৰ পলস* উপন্যাসখনত পূৰ্ববংগৰ মৈমনসিঙীয়া মুছলমানসকলৰ অসমলৈ প্ৰব্ৰজন আৰু সংস্থাপন, সংমিশ্ৰণ আৰু সংশ্লেষণৰ পৰিণতিস্বৰূপে এই লোকসকল অসমীয়া হৈ পৰাৰ এই সমগ্ৰ ঐতিহাসিক পৰিক্ৰমাটো অতি বাস্তৱসম্মত ৰূপত দাঙি ধৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। উপন্যাসখনৰ কাহিনী আৰম্ভ হৈছে ১৯৩৬ চনৰ পৰা, যি সময়ত বংগত ফজলুল হক আৰু অসমত চাৰ চৈয়দ চাদুল্লাৰ শাসন আছিল। ঔপন্যাসিকে ১৯৩৬ চনৰ পৰা হোৱা প্ৰব্ৰজনৰ বিশদ বর্ণনা দাঙি ধৰিছে যদিও, ইয়াৰ পূৰ্বেও বহু লোক অসমলৈ আহি সংস্থাপিত হোৱাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰথম অংশত পূৰ্ববংগৰ জমিদাৰী ব্যৱস্থাই দুৰ্বিষহ কৰি তোলা কৃষকসকলৰ জীৱন চৰ্যাৰ বর্ণনাৰ সমান্তৰালভাৱে অসম আৰু পূৰ্ববংগৰ শাসনব্যৱস্থাৰ মাজত থকা পার্থক্যৰ আভাস দিছে। অসম আৰু পূৰ্ববংগ দুয়োখন প্ৰদেশ প্ৰকৃতার্থতে বৃটিছে শাসন কৰি আছিল যদিও দুয়ো ঠাইৰ শাসন ব্যৱস্থাৰ মাজত পার্থক্য আছিল। পূৰ্ববংগত অসমৰ দৰে মাটিৰ মালিকীস্বত্ব খেতিয়কৰ হাতত নাছিল। বংগদেশত বৃটিছ চৰকাৰৰ তলত জমিদাৰ আৰু নবাবৰ শাসন চলিছিল। জমিদাৰে প্ৰজাৰ পৰা খাজনা আদায় কৰি চৰকাৰৰ ঘৰত জমা দিয়ে। মাটি আৰু প্ৰজা উভয়েই জমিদাৰৰ সম্পত্তি। আনহাতে অসমত নামনি অসমৰ ফালে দুখনমান জমিদাৰী আছিল যদিও, বাকী অংশত ৰায়তৰাৰী ব্যৱস্থা আছিল। মৌজাদাৰ তহচীলদাৰ গাঁওবুঢ়াই প্ৰজাৰ খাজনা তুলি চৰকাৰৰ ঘৰত জমা দিয়াৰ ব্যৱস্থা আছিল। দুয়োটা ব্যৱস্থাৰ মাজত পার্থক্য এইখিনিতে যে, বংগত খেতিয়কৰ মাটিৰ ওপৰত কোনো অধিকাৰ নথকাৰ বাবে জমিদাৰে যাতে তেওঁৰ মাটিত খেতি কৰিবলৈ দিয়ে তাৰ বাবে জমিদাৰক সকলো ফালৰ পৰা খেতিয়কসকলে সন্তুষ্ট কৰি ৰাখিবলগীয়া হয়। বহুসময়ত জমিদাৰৰ অকথ্য নির্যাতন বিনা প্ৰতিবাদে মূৰ পাতি ল'বলগীয়া হয়। ইয়াৰ বিপৰীতে অসমত বিভিন্ন জিলাত পৰি আছিল বিস্তৰ পতিত মাটি, জলাহ মেটেকানি, হাবিয়নি, নৈৰ চৰ চাপৰি। উপন্যাসখনত দেখা গৈছে যে, এনেধৰণৰ পতিত মাটিৰ সন্ধানত পূৰ্ববংগৰ পৰা দলে দলে মানুহ অসমলৈ আহিছে। উপন্যাসখনৰ নায়ক বাবৰ জমিদাৰৰ ভয়ত তথা জমিদাৰৰ অত্যাচাৰত অতীষ্ঠ হৈ অসমলৈ অহা এটা দলৰ লগত গুচি আহিছে। বাবৰে অসমলৈ আহি প্ৰথমে আশ্ৰয় গ্ৰহণ কৰে ছৰীফ গাঁওবুঢ়াৰ ঘৰত। ছৰীফ গাঁওবুঢ়াৰ হাতত মালিকীস্বত্ব থকা মাটিৰ পৰিমাণ আছিল যথেষ্ট আৰু তেওঁ আছিল সমাজৰ এজন গণ্য-মান্য ব্যক্তি। এইজন ছৰীফ গাঁওবুঢ়াও এটা সময়ত মাটিৰ সন্ধানত পূৰ্ববংগৰ পৰা আহি অসম পাইছিলহি।

পূৰ্ববংগীয় লোকসকলৰ প্ৰব্ৰজনৰ এই যাত্ৰা আছিল অত্যন্ত কষ্টকৰ। উপন্যাসখনত দাঙি ধৰা যাত্ৰাৰ বর্ণনা অতি বাস্তৱধর্মীআৰু হৃদয়স্পর্শী। ঘৰত বোৱা লুঙী দুখন, বগা কপাহী কাপোৰৰ টুপিটো, এটা বনিয়ন বা কূর্তা, দা'খন, দুটা বা এটা এলুমিনিয়ামৰ ডেক্‌চি কেৰাহী, বাচন-বাটিৰ টোপোলা কান্ধত লৈ সিহঁতে চিনাকি গাঁও, চিনাকি 'দেশ' এৰি আচামলৈ বুলি যাত্ৰা কৰিছিল। কোনোবাই কোনোবা ৰেল ষ্টেচন পাবলৈ মাইলৰ পিছত মাইল খোজ কাঢ়িছিল, বাটত কোনোবা গছৰ তলত ৰাতি কটাইছিল, টোপোলা বান্ধি অনা চাউল-মুড়ি-চিৰাৰে ভোক মাৰ নিয়াই ছিল। হঁাহ-কুকুৰা-ছাগলী বেচি গোটোৱা পইচাকেইটাৰে ৰেলৰ তৃতীয় শ্ৰেণীৰ টিকট কিনিছিল আৰু বহুতেই বিনা টিকটেৰে ৰেলত উঠিছিল। বিনা টিকটেৰে ৰেলত উঠাৰ বাবে য'তে ধৰা পৰে তাতেই তেওঁলোক নামি পৰিছিল। অচিনাকি নতুন দেশত,

অচিনাকি ৰেল ষ্টেচনত নামি শংকা, সন্দেহ, আশা নিৰাশাৰে, অচিনাকি মানুহৰ গাঁৱলৈ গৈছিল আশ্রয় বিচাৰি। ক্রমে সিহঁতৰ কোনো কোনোৱে দুর্গম পিতনি, মেটেকানি আৰু অগম্য বনাঞ্চলত খেতিৰ মাটি ভাঙি উলিওৱাত লাগিছিল আৰু জীৱনৰ নিশ্চিত নিৰাপত্তা বিচাৰি লৈছিল।[৩] এনেদৰে এই দৰিদ্র নিঃসম্বল পূর্ববংগীয় খেতিয়কসকল আহিছিল খেতিৰ মাটি বিচাৰি, জীয়াই থকাৰ এক নিশ্চিত সম্বল বিচাৰি।

উমাকান্ত শর্মাৰ *কাজলীৰ ৰোগ* উপন্যাসখনতো জমিদাৰী ব্যৱস্থাৰ চেপাত উপায়হীন হৈ পূর্ববংগৰ বহু খেতিয়কে নিজৰ আপোন ঘৰখন এৰি অহাৰ জীৱন্ত ছবি এখন প্রতিফলিত হৈছে। অসমত এডোখৰ আশ্রয়স্থলী বিচাৰি ল'বলৈ সংগ্রাম কৰি থকা খেতিয়কৰ মনৰ ক্ষোভৰ আৰু দুখৰ প্রকাশ ঘটিছে এনেদৰে- "উভটি মৈমনসিঙলৈ গ'লে তাত কি পাম! সেই একে অনাহাৰী অৱস্থা। তই গাই এজনী পুহি তোৰ নিজৰ কেঁচুৰাক গাখীৰ এটুপি দিব নোৱাৰ, এক চোতাল ধান মৰণা মাৰি নিজৰ পৰিয়ালটোৰ বাবে আৱশ্যকীয় ধানখিনি ৰাখিব নোৱাৰ।"[৪]

তদানীন্তন কালৰ চৰকাৰেও পূর্ববংগৰ খেতিয়কসকলৰ প্রব্রজনক উদ্গনি দিছিল। *কাজলীৰ ৰোগ* উপন্যাসখনত এই কথা স্পষ্টভাৱে উল্লেখ কৰিছে। চৰকাৰে 'গ্র ম'ৰ ফুড' নামেৰে এখন আঁচনি প্রস্তুত কৰি উলিয়াইছিল।[৫] অসমত পৰি থকা পতিত মাটিত পূর্ববংগৰ পৰা খেতিয়ক আনি খেতি কৰাই অধিক শস্য উৎপাদনৰ উদ্দেশ্যে এই আঁচনি গ্রহণ কৰা হৈছিল।

অৰুণ শর্মাই *আশীর্বাদৰ বং* উপন্যাসখনত খেতিৰ মাটিৰ সন্ধান পাই পূর্ববংগৰ দৰিদ্র কৃষকসকলে কেনেদৰে অসমত প্রৱেশ কৰিলেহি, তাৰ বাস্তৱসম্মত বিৱৰণ দাঙি ধৰিছে। ব্রহ্মপুত্রত সেই সময়ত কলিকতাৰপৰা অসমলৈ অসমৰপৰা কলিকতালৈ জাহাজ চলিছিল। পূর্ববংগৰ ঢাকা, মৈমনসিং, চিটাগাং আদিৰ মানুহে জাহাজৰ খালাছী কাম কৰিছিল। *আশীর্বাদৰ বং* উপন্যাসখনত খালাচী কাম কৰা মনচুৰ মিঞাই আহি অসমৰ মাটিত ভৰি দি বিস্তৰ অঞ্চল পতিত হৈ পৰি থকা দেখা পাই আশ্চর্যচকিত হৈ উঠিছে। মনচুৰ মিঞাই এই মাটি এনেদৰেই মানুহৰ ভৰিৰ গচক নপৰাকৈ পৰি থকাৰ কথা জানিব পাৰি তৎমূহুর্ততে সিদ্ধান্ত গ্রহণ কৰিলে যে, তেওঁ পত্নী-কন্যাৰ সহিতে আহি এই ঠাইত বসতি আৰম্ভ কৰিবহি। মনচুৰে অসমলৈ আহি নদীৰ বালিচাপৰিত থাকিবলৈ লোৱাৰ কিছুদিন পাছত মনচুৰৰ লগৰীয়া কাদেৰ খাঁ আহি বহেহি। এনেদৰে পৰৱর্তী সময়ত কেইবাটাও দলত তেওঁলোকৰ চিনাকী মানুহ আহি বহাৰ ফলত ঠাই ডোখৰ এটাসময়ত মিঞাগুবুৰীত পৰিণত হয়। আচাম-বেংগল ৰেল আৰু জাহাজৰ চলাচলে পূর্ববংগৰ খেতিয়কসকল অহাৰ পথ সুচল কৰি তুলিছিল।

পূর্ববংগৰ পৰা অহা এই খেতিয়কসকল আছিল অত্যন্ত পৰিশ্রমী। তেওঁলোকে নদীৰ বালিচাপৰিকো শস্যৰে নদন বদন কৰি গঢ়ি তুলিলে। এই লোকসকলে বান, বৰষুণ, ধুমুহা, মহামাৰীৰ লগত অবিৰাম যুঁজ কৰি জীয়াই থকাৰ সংগ্রাম কৰিছিল। অতি কষ্টকৰ জীৱন যাপন কৰিও এই লোকসকলে মাটিৰ বুকুতেই জীৱন বিচাৰি ল'ব জানিছিল।

১.২ প্রব্রজনৰ কাৰক ঃ

বিভিন্ন আর্থ-সামাজিক পৰিস্থিতিৰ হেঁচাত উপায়হীন হৈ অনিশ্চিত ভৱিষ্যতক সম্বল কৰি পূর্ববংগৰ এই পৰিশ্রমী দৰিদ্র খেতিয়কসকলে নিজৰ জন্মস্থান এৰি অসমলৈ আহি ছিল। আলোচ্য উপন্যাসসমূহত প্রব্রজনত উদ্গনি যোগোৱা এই আর্থ-সামাজিক কাৰণসমূহৰ সূক্ষ্ম আৰু তথ্যসমৃদ্ধ বিশ্লেষণ দাঙি ধৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। তাৰে প্রথমটো কাৰণ হ'ল, বংগৰ জমিদাৰী ব্যৱস্থাৰ অধীনত ভূমিৰ মালিকে কৃষকৰ ওপৰত সামন্তবাদী শোষণ চলোৱাৰ ফলত এই দৰিদ্র কৃষকসকলৰ জীৱন অত্যন্ত দুর্বিষহ হৈ উঠিছিল। *কাজলীৰ ৰোগ* উপন্যাসখনৰ বর্ণনা অনুসৰি পূর্ববংগত খেতিয়েই খেতি, ধানেই ধান; অথচ তাৰ কৃষকসকলে দুবেলা দুমুঠি পেট ভৰাই ভালদৰে খাবলৈ নাপায়। কৃষকসকলে বছৰি যথেষ্ট ধান উৎপাদন কৰে যদিও অধিকাংশই মাটিৰ গৰাকী জমিদাৰক দিবলগীয়া হয়। ইয়াৰ উপৰি জমিদাৰৰ চাকৰিয়ালক, পিয়দা মহাজনকো উপঢৌকনস্বৰূপে উৎপাদিত সামগ্রীৰ একোটা অংশ দিবলগীয়া হয়। সকলো পক্ষক দিয়াৰ পাছত নিজৰ পৰিয়ালটোৰ বাবে যি সামান্য পৰিমাণৰ খাদ্যশস্য ৰাহি হয়, সেই সামান্য পৰিমাণৰ খাদ্যই বছৰটোৰ অভাৰ পূৰণ কৰিব নোৱাৰে। *ৰূপাৰৰিৰ পলস* উপন্যাসখনৰ বর্ণনা অনুসৰিও এনেধৰণৰ ব্যৱস্থাৰ বাবেই খেতিৰ

উৎপাদন ভাল হোৱাৰ পাছতো খতিয়কসকলে বছৰটোৰ অধিকাংশ সময় খালি পেটেৰেই পথাৰত কাম কৰিবলগীয়া হয়।

দ্বিতীয়তে, জমিদাৰী ব্যৱস্থাত কৃষকসকলৰ নিজৰ বুলি দাবী কৰিব পৰা সামান্য পৰিমাণৰ ভূমিও নাছিল। কাৰণ ভূমি নীতি অনুসৰি মাটিৰ মালিক আছিল জমিদাৰসকল। খেতিয়কসকলে সেই মাটিত জমিদাৰসকলৰ সন্মতি অবিহনে খেতি কৰিব নোৱাৰে। জমিদাৰৰ মাটিৰ ওপৰতেই তেওঁলোক নির্ভৰশীল। খেতিৰ মাটি লাভৰ স্বার্থতে কোনোদিনে জমিদাৰৰ বিৰুদ্ধাচৰণ বা প্রতিবাদ কৰাৰ কথা ভাবিব নোৱাৰে। *ৰূপাবৰীৰ পলস* উপন্যসখনৰ নায়ক বাবৰৰ পিতৃয়ে উৎপাদিত সামগ্রীৰ অধিকাংশই মাটিৰ মালিক জমিদাৰক দিবলগীয়া হোৱাৰ ফলত পৰিয়ালটোৰ সাধাৰণ প্রয়োজনীয়তাখিনিও পূৰণ কৰিব পৰা নাই। তদুপৰি জমিদাৰে খেতিৰ মাটি যাতে আনক দি নিদিয়ে তাৰ বাবে যৎপৰোনাস্তি জমিদাৰক সন্তুষ্ট কৰিবলৈ ৰাখিবলৈ অহোপুৰোযার্থ কৰি আহিছে। জমিদাৰক সন্তুষ্ট কৰিবলৈকে পুহমহীয়া ঠেটুৰৈ ধৰা জাৰত পুৱতি নিশাই নদীত মাছ ধৰিবলৈ গৈছে। কিন্তু জমিদাৰৰ ওচৰত প্রজাৰ এই কষ্টৰ কোনো মূল্য নাই। জমিদাৰৰ অতিথিক খুৱাবলৈ দুহাত জোখৰ মাছ আনি দিব নোৱাৰাৰ বাবে বাবৰৰ পিতৃৰ পিঠিত সৌকাৰ কোব পৰিছে আৰু বেইমান আখ্যা পাইছে। উপায়হীন বাবৰৰ পিতৃয়ে মৌনভাৱে সকলো সহ্য কৰিছে। কিয়নো, প্রতিবাদ কৰিবলৈ গ'লেই জমিদাৰে মাটিত খেতি কৰিবলৈ অনুমতি নিদিব আৰু তেনে পৰিস্থিতিত পৰিয়ালটো অৱস্থাৰ অধিক অৱনতি ঘটিব।

তৃতীয়তে, অসমতো খেতিয়কসকলে গাঁওবুঢ়া, মৌজাদাৰৰ জৰিয়তে ব্রিটিছ চৰকাৰক মাটিৰ খাজানা দিবলগীয়া হৈছিল যদিও, পূর্ববংগতকৈ তুলনামূলকভাৱে অসমত কম ৰায়তী শোষণ চলিছিল। অসমত পতিত ৰূপত পৰি থকা বিস্তৰ মাটিয়ে এই লোকসকলক অসমলৈ অহাত উদ্গনি যোগাইছিল। জনসংখ্যা অনুপাতে অসমৰ ভূমিৰ পৰিমাণ যথেষ্ট আছিল বাবেই থলুৱা লোকসকলে পতিত জলাহ অঞ্চলত খেতি কৰিবলৈ আগ্রহী নাছিল। পূর্ববংগৰ লোকসকলে একোটা দল বান্ধি খেতিৰ মাটিৰ সন্ধানত আহে আৰু নদীকাষৰীয়া অব্যৱহৃত মাটিত বা অন্য ঠাইৰ পতিত মাটিত বসতি স্থাপন কৰে। এই প্রথমে অহা লোকসকলেই পৰৱর্তী সময়ত পূর্ববংগৰ পৰা দলে দলে আন মানুহ অনাৰ ক্ষেত্রত উদ্যোগ লয়। এই ক্ষেত্রত তদানীন্তন চৰকাৰেও অধিক খাদ্য শস্য উৎপাদনৰ নামত 'গ্র ম'ৰ ফুড ' নামৰ আঁচনি প্রৱর্তন কৰি পমুৰা মুছলমানৰ প্রব্রজনত উৎসাহ যোগাইছিল। একাংশ সচেতন অসমীয়াৰ প্রতিবাদত ব্যধ্য হৈ চৰকাৰে লাইন প্রথাৰ প্রৱর্তন কৰিছিল যদিও, এই ব্যৱস্থাই প্রব্রজনত বাধা প্রদান কৰিব পৰা নাছিল। বিংশ শতিকাত অসমলৈ হোৱা জনপ্রব্রজনৰ গুৰিতেই আছিল অর্থনৈতিক কাৰণ।

এনেধৰণৰ কাৰকাৰোৰৰ বাবেই অসমলৈ অবিৰতভাৱে পূর্ববংগৰ পৰা দলে দলে দৰিদ্র কৃষকৰ প্রব্রজন হ'বলৈ ধৰে। *ৰূপাবৰিৰ পলস* ৰ নায়ক 'বাবৰ' যিটো দলৰ লগত অসমলৈ আহে, সেই দলটোৰ লোকসকলে খোৱা-পিন্ধাৰ অভাৱৰ বাবে নিজৰ জন্মস্থান এৰি এছোৱা খোজ কাঢ়ি আৰু এছোৱা ৰেলেৰে যাত্রা কৰি অসমত উপস্থিত হয়। *আশীর্বাদৰ ৰং* আৰু *কাজলীৰ ৰোগ* ত ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰা বর্ণনা অনুসৰি পূর্ববংগৰ এই লোকসকল নাৰেৰে আহি অসমত প্ররেশ কৰে। ১৮৯১-৯২ খ্রী.ত অসম বংগৰ মাজত পোনপ্রথমে ৰেল চলাচল আৰম্ভ হয়। পূর্ববংগৰ চট্টগ্রামৰ পৰা অসমৰ তিনিচুকীয়ালৈ ৰেলপথ সম্প্রসাৰিত কৰা হয়।[৬] ৰেল চলাচল কৰাৰ পাছত যাতায়ত সুচল হৈ পৰে।

১.৩ অসমৰ মানুহৰ প্রতিক্রিয়া ঃ

আলোচ্য তিনিওখন উপন্যাসতে প্রব্রজনক লৈ অসমৰ মানুহে কেনেধৰণৰ প্রতিক্রিয়া প্রকাশ কৰিছিল তাৰ বিশদ বিৱৰণ দাঙি ধৰা দেখা গৈছে। বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয় দশকৰ পৰা প্রব্রজনক লৈ এচাম শিক্ষিত মধ্যবিত্ত শ্রেণীৰ মাজত কিছু সচেতনতা আহিছিল যদিও, অধিকাংশই এই বিষয়টোক লৈ কোনোধৰণৰ প্রতিক্রিয়া প্রকাশ কৰা নাছিল। *ৰূপাবৰীৰ পলসত* এই সন্দর্ভত ঔপন্যাসিকে কৈছে- "অসমৰ বহুতে ক'ব নোৱাৰিলে, বহুতে নেদেখিলে, বহুতে নুবুজিলে, সিহঁত অহাত কোনোৱে বেয়া নেপালে। বহুতে ভাল পালে সস্তাত কামলা বিচাৰিলেই পোৱাৰ কাৰণে। দিনৰ দিনটো মৰিতৰি পথাৰত কাম কৰি দিয়া এবিধ নতুন খেতিয়ক পোৱাৰ কাৰণে।"[৭]

পূর্ববংগৰ পৰা হৈ থকা প্রব্রজনে যে অসমৰ

অর্থনীতিত ৰূপান্তৰ সংঘটিত কৰিবলৈ ওলাইছে, সেই কথা বহুতেই অনুধাৱন কৰিব পৰা নাছিল। আনহাতে নগৰ-চহৰৰ শিক্ষিত মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ লোকসকল তেতিয়া ৰেল, ডাকঘৰ আদি চৰকাৰী কাৰ্যালয়ত বাঙালী চৰকাৰী কেৰাণী-মহৰীৰ প্ৰতিপত্তিৰ বিৰুদ্ধে নিস্ফল আস্ফালন কৰাত ব্যস্ত আছিল। প্ৰব্ৰজনৰ সম্ভাব্য ৰাজনৈতিক প্ৰতিক্ৰিয়া সম্পৰ্কে ভাবিবলৈ এই লোকসকলৰ আহৰি নাছিল। অৱশ্যে পৰৱৰ্তী সময়ত ক্ৰমে সেই সময়ৰ ৰাজনীতিবিদসকল এই প্ৰব্ৰজনৰ ৰাজনৈতিক তাৎপৰ্য সম্পৰ্কে সজাগ হৈ উঠিছিল। একাংশই এই প্ৰব্ৰজনত বাধা প্ৰদান কৰাৰ আৰু একাংশই সংখ্যা নিয়ন্ত্ৰণৰ পৰামৰ্শ আগবঢ়ালে। একাংশই আকৌ এই বহিৰাগতবিলাকৰ কাৰণে নিৰ্দিষ্ট সীমা নিৰ্ধাৰণৰ দাবী জনালে আৰু প্ৰব্ৰজনৰ বিৰুদ্ধে জনমত গঢ়ি তুলিবলৈ চেষ্টা চলালে। বহুতেই পূৰ্ববংগৰ মুছলমান খেতিয়ক দলে দলে অসমলৈ আহি বসতি কৰিবলৈ লোৱাত অসমত মুছলমানৰ সংখ্যা বৃদ্ধি কৰাৰ গোপন ষড়যন্ত্ৰৰ অভিযোগ উত্থাপন কৰিলে। অসমৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী চাৰ চাদুল্লাই বংগৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী ফজলুল হকৰ সৈতে সন্ধি কৰি অসমক মুছলমান সংখ্যাগৰিষ্ঠ প্ৰদেশ কৰিবলৈ ষড়যন্ত্ৰ কৰাৰ মুকলিকৈ অভিযোগ উত্থাপন হ'বলৈ ধৰিলে। ক্ৰমে অসমীয়া মানুহবোৰ বিষয়টোক লৈ অধিক সচেতন হৈ উঠিল, কিন্তু ভাৰতৰে এটা অঞ্চলৰ পৰা প্ৰব্ৰজিত লোক গৈ আন এটা অঞ্চলত বসতি কৰাত আইনী প্ৰক্ৰিয়াৰে বাধা প্ৰদান কৰিব নোৱাৰি। অসমীয়া লোকসকলে নিজৰ অধিকাৰ সুৰক্ষিত ৰাখিবলৈ 'লাইন' প্ৰথাৰ ব্যৱস্থা কৰিবলৈ দাবী জনালে। লাইন প্ৰথা প্ৰৱৰ্তন কৰি অসমীয়া কৃষকক ৰক্ষণাৱেক্ষণ দিয়াৰ এটা ব্যৱস্থা কৰা হ'ল।

কাজলীৰ ৰোগ উপন্যাসখনৰ মতে আৰম্ভণিতে স্থানীয় অসমীয়া লোকসকলে প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰসংগটোক লৈ কোনোধৰণৰ প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰকাশ কৰা নাছিল, কিয়নো চৰকাৰে নিজেই' গ্ৰ মৰ ফুড' আঁচনি প্ৰস্তুত কৰি প্ৰব্ৰজনত উদ্‌গনি যোগাইছিল। কিন্তু পৰৱৰ্তী সময়ত অসমীয়া মানুহবোৰ সচেতন হৈ উঠিছে। অৱশ্যে একাংশই ধনৰ লোভত ট্ৰাইবেল ব্লকৰ মাটিও বিক্ৰি কৰি দিছে। উপন্যসখনৰ এটা চৰিত্ৰ নাছিৰে নিজে জমিদাৰৰ দৰে শাসন কৰাৰ উদ্দেশ্যে পতিত হৈ পৰি থকা ট্ৰাইবেল ব্লকৰ মাটি উকা কাগজত চহী কৰোৱাই কিনি লৈ জুপুৰি সাজি দি পূৰ্ববংগৰ ভূমিহীন কৃষক আনি বহুৱাইছেহি। অসমৰ অদূৰদৰ্শী লুভীয়া এক শ্ৰেণীৰ লোকে নাছিৰৰ দৰে চক্ৰান্তকাৰীৰ এনে কাৰ্যৰ প্ৰতিবাদ কৰাৰ পৰিৱৰ্তে সহযোগিতা আগবঢ়াইছে।

আশীৰ্বাদৰ ৰং উপন্যাসখনৰ মতে স্থানীয় অসমীয়া লোকসকলে মৈমনসিঙীয়া লোকসকলৰ প্ৰতি একেবাৰে নিৰুদ্বেগ আছিল। কিয়নো এই লোকসকলে অসমীয়া মানুহৰ কোনোদিনে খোজ নপৰা ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বালিচাপৰিত বসতি আৰম্ভ কৰিছিল। বজাৰলৈ খেতিৰ উৎপাদিত সামগ্ৰী বিক্ৰী কৰিবলৈ অহাৰ সময়তহে এই মৈমনসিঙীয়া মানুহবোৰৰ লগত স্থানীয় মানুহৰ দেখা সাক্ষাৎ ঘটিছিল। সেয়ে এই মানুহবোৰক লৈ উদ্বিগ্ন হোৱাৰ কোনো কাৰণ বিচাৰি পোৱা নাছিল।

আলোচ্য তিনিওখন উপন্যাসতে এটা কথা স্পষ্টভাৱে উল্লেখ কৰিছে যে, পূৰ্ববংগৰ পৰা অহা লোকসকলে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ মাজত নিজকে বিলীন কৰি দিবলৈ অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল। *ৰূপাবৰীৰ পলস* উপন্যাসখনৰ নায়ক পূৰ্ববংগৰ পৰা অহা বাবৰৰ জীয়েক কেতেকীয়ে অসমীয়া সাহিত্য চৰ্চা কৰিছে। *কাজলীৰ ৰোগ* উপন্যাসখনৰ কবীৰ আৰু নাজমাই অসমীয়া মাধ্যমত পঢ়াশুনা কৰি পৰৱৰ্তী সময়ত স্কুল-কলেজত শিক্ষকতা কৰিছে। পূৰ্ববংগীয় মূলৰ এই লোকসকলে অসমীয়া ভাষাক নিজৰ কৰি ল'লে আৰু পৰৱৰ্তী সময়ত বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজৰ এটা অংগত পৰিণত হ'ল।

২.০ উপসংহাৰ ঃ

এই অধ্যয়নৰ অন্তত উপনীত হোৱা সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ -

ক) পূৰ্ববংগৰ খেতিয়কসকলৰ অসমলৈ ঘটা প্ৰব্ৰজনৰ অন্তৰালত আছিল জমিদাৰী শাসন-শোষণ। নিৰ্মম জমিদাৰী শোষণ-নিৰ্যাতনত অতীষ্ঠ হৈ খেতিয়কসকলে নিশ্চিত অৰ্থনৈতিক নিৰাপত্তা আৰু আশ্ৰয়ৰ সন্ধানত অসমলৈ আহিছিল। অসমত পতিত হৈ পৰি থকা নৈৰ চৰ চাপৰি, বনাঞ্চল আদিত খেতি কৰি শস্য উৎপাদন কৰাত তেওঁলোকে কোনোধৰণৰ বাধাৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া পৰিস্থিতিৰ উদ্ভৱ হোৱা নাছিল। ফলত এটা দল আহি বসতি আৰম্ভ কৰাৰ পিছত তেওঁলোকৰ

সহযোগত অথবা নেতৃত্বতে পৰৱর্তী সময়ত ছামে ছামে পূর্ববংগৰ খেতিয়ক আহিবলৈ ধৰিলে।

খ) পূর্ববংগৰ পৰা ঘটা প্রব্রজনক লৈ অসমৰ মানুহৰ প্রতিক্রিয়া আছিল লক্ষণীয়। একাংশ মধ্যবিত্ত শ্রেণীয়ে কম-মজুৰিৰ কৃষি বনুৱা লাভ কৰাৰ বাবে প্রব্রজনত উদ্‌গনি যোগাইছিল আৰু একাংশই প্রব্রজিত লোকসকলৰ বাঢ়ি অহা জনসংখ্যালৈ দৃষ্টি ৰাখি প্রতিবাদমুখৰ হৈ উঠিছিল। আনহাতে, প্রব্রজনৰ প্রতি একাংশই মনোযোগ প্রদান কৰা নাছিল, কিয়নো প্রব্রজিত বনুৱাসকলে অনা পতিত হৈ পৰি থকা বনাঞ্চল, ব্রহ্মপুত্রৰ চৰ-চাপৰিতহে নিজৰ বসতি স্থাপন কৰিছিল।

পূর্ববংগৰ পৰা অহা এই লোকসকলে কালক্রমত অসমীয়া ভাষা- সংস্কৃতিক আকোৱালি লৈ পৰৱর্তী সময়ত অসমীয়া জাতিৰ এটা অংগত পৰিণত হ'ল। ❑

প্রসংগ সূত্র ঃ

১. আব্দুল মান্নান, *অনুপ্রৱেশ ঃ অসম আন্দোলনৰ আদি কথা*, পৃ. ৯৬
২. ৰমেশ চন্দ্র কলিতা, *অসমীয়া মানুহৰ ৰাজনৈতিক সূত্রায়ণ*, পৃ. ৩৭
৩. চৈয়দ আব্দুল মালিক, *ৰূপাৰৰীৰ পলস*, পৃ. ৪২
৪. উমাকান্ত শর্মা, *কাজলীৰ ৰোগ*, পৃ. ২
৫. উল্লিখিত, পৃ. ৭
৬. অহিজুদ্দিন শেখ, 'ব্রহ্মপুত্রৰ চৰ-অঞ্চলত জনপ্রব্রজন সংঘাত আৰু সমন্বয়', ইছমাইল হোছেইন আৰু আনোৱাৰ হুছেইন (সম্পা.), *চৰ-চাপৰিৰ জীৱন চর্যা*, পৃ. ২৬
৭. চৈয়দ আব্দুল মালিক, উল্লিখিত, পৃ. ৪৪

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

ক) আধাৰ গ্রন্থ ঃ

মালিক, চৈয়দ আব্দুল ঃ *ৰূপাৰৰীৰ পলস*, গুৱাহাটী, চন্দ্র প্রকাশ, প্রথম সংস্কৰণ, ২০১২

শর্মা, অৰুণ ঃ *আশীর্বাদৰ ৰং*, নলবাৰী, জার্ণাল এম্পৰিয়াম, চতুর্থ সংস্কৰণ, ২০০৬

শর্মা, উমাকান্ত ঃ *কাজলীৰ ৰোগ*, গুৱাহাটী, ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্টৰচ্, প্রথম প্রকাশ, ২০০১

খ) সহায়ক গ্রন্থ ঃ

কলিতা, ৰমেশ চন্দ্র ঃ *অসমীয়া মানুহৰ ৰাজনৈতিক সূত্রায়ণ* গুৱাহাটী, অশোক বুক ষ্টল, প্রথম প্রকাশ, ২০১১

গুহ, অমলেন্দু ঃ *প্লেণ্টাৰ ৰাজৰ পৰা স্বৰাজলৈ*, অনু- গোপাল বৰদলৈ গুৱাহাটী, অন্বেষা পাব্লিকেশ্যনছ, অন্বেষা সংস্কৰণ, ২০১৫

মান্নান, আব্দুল ঃ *অনুপ্রৱেশ ঃ অসম আন্দোলনৰ আদি কথা* গুৱাহাটী, আয়না প্রকাশন, প্রথম প্রকাশ, ২০১৭

সভাপণ্ডিত, ৰণজিৎ ঃ *ছৈয়দ সাদ্‌উল্লাৰ পৰা গোপীনাথ বৰদলৈলৈ ১৯৩৭-৫০ অসমৰ ৰাজনৈতিক ইতিহাস*, গুৱাহাটী, অসম পাবলিচিং কোম্পানী প্রথম প্রকাশ, ২০১৪

হোছেইন, ইছমাইল (জ্যেষ্ঠ) আৰু ঃ *চৰ-চাপৰিৰ জীৱন চর্যা*
আনোৱাৰ হুছেইন (সম্পা.) গুৱাহাটী, নতুন সাহিত্য পৰিষদ, প্রথম প্রকাশ, ২০০০

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

উত্তৰ পূৰ্ব ভাৰতৰ ধৰ্মীয় নেতা আৰু স্বাধীনতা আন্দোলন ঃ পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী আৰু ৰাণী গাইডালুৰ কার্য্যৱলীৰ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন

ড° বিনয় কুমাৰ নাথ

সহকাৰী অধ্যাপক, ইতিহাস বিভাগ
সন্দিকৈ ছোৱালী মহাবিদ্যালয়, গুৱাহাটী
binoy3112@gmail.com

পাতনি ঃ

ধৰ্মক একান্তই ব্যক্তিগত বিষয় বুলি বিশ্বাস কৰা হয় যদিও সদায় এনেকুৱা ধাৰণা গ্ৰহণযোগ্য নহয়। আৰু সেইবাবেই পৃথিৱীত ধৰ্মীয় পৰম্পৰাৰ প্ৰতিষ্ঠানিকৰণ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। ধৰ্মই অনুগামীসকলৰ মাজত সম্প্ৰীতি স্থাপন কৰাত যথেষ্ট সহায় কৰে যদিও কেতিয়াবা প্ৰতিষ্ঠানিকৰণে বিভিন্ন ধৰ্মৰ মাজত সংঘাত সৃষ্টি কৰাৰো উদাহৰণ পোৱা যায়। (Henderson, 2020)। ঔপনিবেশিক যুগত খ্ৰীষ্টান ধৰ্মৰ আগমন ঘটাৰ ফলত ভাৰতত বৰ্তি থকা ধৰ্মসমূহে এক প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হৈছিল। ফলত ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাইত সংস্কাৰ আৰু পুনৰুজ্জীৱনবাদী আন্দোলনৰ আৰম্ভণি হৈছিল।

মধ্যযুগৰ সমাজত ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানে যথেষ্ট প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছিল। আনকি কেতিয়াবা গীৰ্জা আৰু মঠ-মন্দিৰে শাসকৰ সিদ্ধান্ত নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব পাৰিছিল। আধুনিক দেশসমূহে যদিও ৰাজনীতিক ধৰ্মৰ পৰা পৃথক কৰাৰ চেষ্টা কৰা দেখা যায় তথাপিও ৰাজনৈতিক জীৱনত ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ প্ৰত্যক্ষ বা পৰোক্ষভাৱে প্ৰায়ে অনুভৱ কৰা হয়। ধৰ্মীয় অনুষ্ঠান আৰু নেতাসকলে বিভিন্ন সামাজিক দিশত কেতিয়াবা চৰকাৰৰ সৈতে ঘনিষ্ঠ সহযোগিতাৰে আৰু কেতিয়াবা চৰকাৰৰ মতামতৰ বিৰুদ্ধে কাম কৰে। খ্ৰীষ্টান জগতত গীৰ্জাসমূহ হৈছে ৰাজহুৱা বিষয়সমূহৰ নৈতিক-ধৰ্মীয় তাৎপৰ্য্য বিশ্লেষণ কৰাৰ ক্ষমতা থকা স্বেচ্ছামূলক সংঘ (Bernardin, 1984)। আমেৰিকাৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ত বহুতো প্ৰটেষ্টাণ্ট ধৰ্মাৱলম্বী লোকে ব্ৰিটিছৰ বিৰুদ্ধে উপনিবেশিকসকলৰ কার্য্যক সমৰ্থন কৰিবলৈ আগবাঢ়ি আহিছিল। কিছুমান পণ্ডিতে এই আন্দোলনটোক সেয়েহে অৰ্ধ-ধৰ্মীয় আন্দোলন বুলি অভিহিত কৰে (Derek, 1994)। একেদৰে দক্ষিণ আফ্ৰিকাত বৰ্ণবৈষম্য বিৰোধী আন্দোলনত কিছুমান ধৰ্মগোষ্ঠী চৰকাৰী নীতিৰ সমৰ্থক হৈ পৰিছিল, আনহাতে কিছুমানে ইয়াৰ বিৰোধীতা কৰিছিল। উদাহৰণ স্বৰূপে স্থানীয় মণ্ডলীসমূহে ইচ্ছাকৃতভাৱে বহুজাতিক মণ্ডলী স্থাপন কৰি আইন উলংঘা কৰিছিল (Sponge, 2003, P.8)। ওৱাশ্বিংটনৰ ছিয়াটলত মার্ক এ মেথিউছে দুর্নীতি, মদ আৰু জুৱাৰ বিৰুদ্ধে যুঁজিছিল (Soden, Matthews, Reverend Mark, 1867-1940, 2007)। একেদৰে ১৯৬৩ চনৰ ছিয়াটল নাগৰিক অধিকাৰ সংগ্ৰামকো খ্ৰীষ্টিয়ান পুৰোহিতসকলে সমৰ্থন

কৰিছিল। ঠিক সেইদৰে ভাৰতত ব্ৰিটিছ যুগত ধৰ্মীয়-সামাজিক সংস্কাৰ আন্দোলনৰ নেতাসকলে সমাজখনক বহু পৰিমাণে প্ৰভাৱিত কৰিছিল।

আলোচনা ঃ

সত্ৰসমূহ হৈছে অসমীয়া সমাজৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। অসমৰ মাজুলী সপ্তদশ শতিকাত প্ৰতিষ্ঠা হোৱা সত্ৰ ক্ৰমে-কমলাবাৰী, আউনীআটি, কুৰুৱাবাহী আৰু গড়মূৰ সত্ৰৰ বাবে বিখ্যাত। এই সত্ৰসমূহে সাধাৰণ মানুহৰ জীৱনত যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলাইছিল। আৰম্ভণিতে যদিও সত্ৰসমূহ উদাৰবাদী নীতিৰ দ্বাৰা পৰিচালিত হৈছিল, কিন্তু ক্ৰমান্বয়ে বহু সত্ৰই পূৰ্বৰ গুৰুত্ব হেৰুৱাই পেলাইছিল। আনকি কানিৰ দৰে ৰাগীয়াল বস্তুৰ প্ৰতিও কিছুসংখ্যক সত্ৰাধিকাৰৰ মাজত আসক্তি দেখা পোৱা গৈছিল। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই তেওঁৰ 'কানিয়াৰ কীৰ্ত্তন'ত এই বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে (গোস্বামী জে., ১৯৯৯, পৃ. ৩)। দেখা গৈছিল যে দক্ষিণপাট আৰু আউনীআটি সত্ৰৰ মাটি কানি খেতিৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল। ইয়াৰ বাবে শিৱসাগৰ জিলা প্ৰশাসনে আউনীআটি সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ দত্তদেৱ গোস্বামী আৰু দক্ষিণপাট সত্ৰৰ বাসুদেৱ গোস্বামীক পাঁচশ টকা জৰিমনা বিহিছিল (শইকীয়া, ২০১৪, পৃ. ১৮৯৪)। মাজুলীৰ চাৰিখন সত্ৰ ব্ৰিটিছ শাসকৰ প্ৰতি সহানুভূতিশীল আছিল বুলিও কেতিয়াবা অভিযোগ উত্থাপন হয়। যি সময়ত ঔপনিবেশিক চৰকাৰৰ বিৰুদ্ধে সংগ্ৰামৰ সময়ছোৱাত জনসাধাৰণক পথ দেখুৱাবলৈ সুদক্ষ নেতৃত্বৰ প্ৰয়োজন হৈছিল, সেই সময়ত অসমৰ এই সত্ৰবোৰৰ মুৰব্বীসকল নিমাত হৈ আছিল।

কিন্তু এনেকুৱা সময়ত গড়মূৰ সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী অসমীয়া মানুহৰ পথ প্ৰদৰ্শনৰ বাবে আগবাঢ়ি আহিছিল। ১৮৮৫ চনৰ ১০ জুনত জন্মগ্ৰহণ কৰা গোস্বামীদেৱ ১৯১৪ চনৰ মাৰ্চ মাহত গড়মূৰ সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ পদত অধিষ্ঠিত হয়। সত্ৰাধিকাৰ পদত অধিস্থিত হৈয়ে তেওঁ সত্ৰৰ সংস্কাৰৰ কামত মনোনিবেশ কৰিব ধৰিলে। ১৯১৫ চনত তেওঁ গড়মূৰ সত্ৰত থকা অ-বৈবাহিক জীৱন বিলুপ্ত কৰিছিল। সত্ৰাধিকাৰসকলে শিষ্যসকলৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা কৰবো বিৰোধিতা কৰিছিল। ১৯০৯ চনৰ পৰা তেওঁ কানি খোৱাৰ অভ্যাসৰ বিৰুদ্ধে মুকলিকৈ মাত মাতিব আৰম্ভ কৰিছিল। তেওঁৰ কানি বিৰোধী অভিযান আনকি লক্ষীমপুৰ, শিৱসাগৰ আৰু যোৰহাটৰ জনজাতীয় আৰু পিছপৰা অঞ্চললৈও গৈছিল (নাথ, ২০০০, পৃ. ১৩৭)। তেওঁ নিজেই উল্লেখ কৰিছিল যে তেওঁক সমৰ্থন কৰাৰ পৰিৱৰ্তে আন সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰসকলে তেওঁৰ কানি বিৰোধী কাৰ্যকলাপৰ প্ৰতি ভাবুকি কঢ়িয়াই আনিছিল (অসমীয়া, ১৯২৩)। তেওঁ অস্পৃশ্যতা আৰু জাতি-ভেদ প্ৰথাৰ বিৰুদ্ধে যুঁজি অস্পৃশ্য সম্প্ৰদায়ক নিজৰ সত্ৰৰ নামঘৰত প্ৰৱেশ কৰিবলৈ দি তেওঁলোকক তাৰ সাংস্কৃতিক কাৰ্যকলাপৰ সৈতে জড়িত কৰাইছিল। বাল্যবিবাহৰ বিৰুদ্ধে মাত মাতি তেওঁ বিধৱা বিবাহ আৰু মহিলা শিক্ষাৰ সপক্ষে যুক্তি আগবঢ়াইছিল। ১৯২৩ চনত তেওঁ মাজুলীত ছোৱালীৰ বাবে প্ৰাথমিক বিদ্যালয় স্থাপন কৰিছিল (কাকতি, ২০১৫, পৃ. ৪৭)।

পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামীয়ে এই কথাটো ভালদৰে বুজি উঠিছিল যে হিন্দু ধৰ্মৰ গুৰুসকলৰ অৱহেলাৰ বাবে বহু লোক অন্য ধৰ্মলৈ ধৰ্মান্তৰিত হৈছিল। ইতিমধ্যে উত্তৰ-পূৱৰ বহু অঞ্চল খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীসকলৰ কবলত পৰিছিল। তেওঁ বুজি পাইছিল যে শিক্ষা আৰু সজাগতাৰ অভাৱেই অসমৰ পাহাৰত বাস কৰা জনজাতিসকল ধৰ্মান্তৰিত হোৱাৰ প্ৰধান কাৰণ। তেওঁ মিকিৰ পাহাৰ (কাৰ্বি আংলং)ৰ জনজাতীয় লোকসকলক হিন্দু ধৰ্মৰ গণ্ডিৰ ভিতৰত ৰাখিবলৈ যথেষ্ট চেষ্টা কৰিছিল। ১৯৪৫ চনত কাৰাগাৰৰ পৰা মুক্তি পোৱাৰ পিছত ১৯৪৭ চনৰ মে' মাহলৈকে তেওঁ কাৰ্বি পাহাৰতে থাকে। কিন্তু সেই সময়ত তেওঁ জনসাধাৰণৰ লগতে চৰকাৰৰ পৰা প্ৰয়োজনীয় সমৰ্থন নাপালে। তেওঁ বহু লোকক খ্ৰীষ্টিয়ান মিছনেৰীসকলৰ সংস্পৰ্শলৈ অহাত বাধা দিবলৈ সফল হৈছিল। কম সময়ৰ ভিতৰতে তেওঁ সোতৰখন বিদ্যালয় প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। যদি তেওঁৰ এই প্ৰচেষ্টা আন সত্ৰাধিকাৰ আৰু চৰকাৰে বুজি পালেহেঁতেন তেন্তে বৰ্তমান কাৰ্বি আংলঙৰ পৰিস্থিতি বেলেগ হৈ পৰিলহেঁতেন (বৰবৰুৱা, ২০১৫, পৃ. ১৫)।

তেওঁ অসমত এক অৰ্থনৈতিক বিপ্লৱ আনিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। ৰাইজক কৃষি কৰ্মত উৎসাহিত কৰাৰ উপৰিও তেওঁ মাজুলীত সমবায় আন্দোলনৰ সূচনা কৰিছিল। জাতীয়তাবাদী ভাৱধাৰাৰে পৰিপুষ্ট এইগৰাকী সত্ৰাধিকাৰে সত্ৰসমূহত বাংলা ভাষাত নাটক পৰিবেশন কৰাত শোক প্ৰকাশ কৰি অসমীয়াত নাটক লিখিবলৈ আৰম্ভ কৰে। মৈমনসিংহৰ পৰা অহা মুছলমান কৃষকৰ প্ৰব্ৰজনে বিশেষকৈ নামনি অসমক ক্ষতিগ্ৰস্ত কৰাক লৈ তেওঁ যথেষ্ট চিন্তিত হৈছিল (অসমীয়া, ১৯২৬)।

প্ৰাৰম্ভিক অৱস্থাত তেওঁ ব্ৰিটিছ শাসনৰ সমৰ্থন কৰিছিল আৰু চৰকাৰে আয়োজন কৰা সভাত অংশগ্ৰহণো কৰিছিল। তেওঁৰ মতে ব্ৰিটিছ শাসনে ভাৰতৰ বিভিন্ন অঞ্চলৰ মানুহৰ মাজত একতাৰ বান্ধোন কটকটীয়া কৰিছিল (অসমীয়া, ১৯২৬)। কিন্তু লাহে লাহে ব্ৰিটিছ শাসনৰ প্ৰতি তেওঁৰ মনোভাৱ সলনি হ'ল আৰু বহু গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়ত ব্ৰিটিছ চৰকাৰৰ বিৰুদ্ধে মাত মাতিব ধৰিলে। গোস্বামীদেৱ সত্ৰ আৰু সমাজ সংস্কাৰত ব্যস্ত থকাৰ সময়তে অসমত অসহযোগ আন্দোলন আৰম্ভ হৈছিল। ডিব্ৰুগড় ভ্ৰমণৰ সময়ত মহাত্মা গান্ধীক সাক্ষাৎ কৰাৰ পাছত তেওঁ স্বৰাজ আৰু অহিংস নীতিৰ দ্বাৰা অনুপ্ৰাণিত হৈছিল। কিন্তু মন কৰিবলগীয়া কথা যে গান্ধীজীয়ে বিদেশী সামগ্ৰী বৰ্জনৰ আহ্বান জনোৱাৰ আগতেই এইগৰাকী সত্ৰাধিকাৰে অসমবাসীক ১৯১১ চনৰ পৰা বিদেশী সামগ্ৰী বৰ্জন কৰিবলৈ পৰামৰ্শ দিছিল। তেওঁ মাজুলী, লখিমপুৰ, যোৰহাট আৰু শিৱসাগৰৰ অতি দুৰ্গম অঞ্চল পৰিদৰ্শন কৰি স্বদেশী সামগ্ৰীৰ সপক্ষে জনসাধাৰণক সজাগ কৰি তুলিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। আনকি তেওঁ জনসাধাৰণক অসহযোগ আন্দোলনৰ আদৰ্শ মানি চলিবলৈ পৰামৰ্শ দি প্ৰচাৰ পত্ৰিকাও বিতৰণ কৰিছিল (নাথ, ২০০০, পৃ. ১৩৯)। গড়মূৰ সত্ৰত তেওঁ চৰকাৰ বিৰোধী জনসভা পাতিছিল। তেওঁ ৰাইজৰ মাজত খাজনা বিৰোধী অভিযান চলাইছিল (ডেকা, ২০১৫, পৃ. ৫৪)। ধৰ্মগুৰুৰ বেশত সত্ৰাধিকাৰগৰাকীৰ এই ৰাজনৈতিক কাৰ্যকলাপবোৰ লাহে লাহে ব্ৰিটিছ চৰকাৰৰ দৃষ্টিগোচৰ হ'ব ধৰিলে। আনকি মাজুলীৰ আন আন সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ সকলেও তেওঁৰ ইংৰাজ বিৰোধি কাৰ্যকলাপবোৰ ভাল পোৱা নাছিল। তেওঁলোকে শাসক কৰ্ত্তৃপক্ষৰ বিৰুদ্ধে গঢ়ি উঠা স্বাধীনতা আন্দোলনত সত্ৰৰ অংশগ্ৰহণ বিচৰা নাছিল আৰু আনকি মাজুলীৰ চাৰিখন সত্ৰৰ সংঘৰ পৰা তেওঁক বহিস্কাৰ কৰাৰ কথাও বিবেচনা কৰিছিল। গুৱাহাটীৰ পাণ্ডুত অনুষ্ঠিত হোৱা ৪১ সংখ্যক কংগ্ৰেছৰ অধিৱেশনৰ সময়ত মহাত্মা গান্ধী আৰু লগতে সেই সময়ৰ বহুকেইজন সৰ্বভাৰতীয় নেতাক লগ পোৱাৰ সুযোগো তেওঁ লাভ কৰিছিল (হাজৰিকা, ১৯৭৩, পৃ. ২)। ১৯২৬ চনত পণ্ডিত মদনমোহন মালব্যই সভাপতিত্ব কৰা হিন্দু মহাসভাৰ বাৰ্ষিক অধিৱেশনৰ আদৰণি ভাষণো তেওঁ অসমীয়া ভাষাত প্ৰদান কৰিছিল। স্বাধীনতা আন্দোলনত তেওঁ লোৱা ভূমিকাই ব্ৰিটিছ চৰকাৰক চিন্তিত কৰি তুলিছিল। ইতিমধ্যে ব্ৰিটিছে গড়মূৰ সত্ৰৰ ডেকা সত্ৰাধিকাৰ কৃষ্ণদেৱ গোস্বামীক ১৯৪২ চনৰ নৱেম্বৰ মাহত ব্ৰিটিছ বিৰোধী কাৰ্যকলাপৰ বাবে গ্ৰেপ্তাৰ কৰে আৰু পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামীৰ মুক্ত কাৰ্যকলাপত বাধা দিবলৈ আৰম্ভ কৰে। ১৯৪৩ চনৰ জুলাই মাহত তেওঁক ইংৰাজে গ্ৰেপ্তাৰ কৰি দুবছৰৰ বাবে যোৰহাটৰ কাৰাগাৰত ভৰাই থয়। ১৯৪৫ চনৰ ২৩ এপ্ৰিল তাৰিখে তেওঁক কাৰাগাৰৰ পৰা মুকলি কৰি দিয়া হয় যদি তিনিমাহৰ বাবে কোনো ধৰণৰ বক্তৃতা দিয়াৰ পৰা বঞ্চিত কৰিছিল।

ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাই যেনে মধ্যপ্ৰদেশ, মহাৰাষ্ট্ৰ, কৰ্ণাটক, বংগদেশ আদিৰ আদিবাসীসকলেও মহাত্মা গান্ধীৰ নেতৃত্বত হোৱা স্বাধীনতা আন্দোলনত অংশগ্ৰহণ কৰিছিল (Chandra, 1989, P. 277)। ঠিক তেনেকৈ উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ নগা পাহাৰ, মণিপুৰ আৰু উত্তৰ কাছাৰ (ডিমা হাছাও)ত বসবাস কৰা জনজাতিসকল বিশেষকৈ নগাসকল স্বাধীনতা আন্দোলনৰ অংশ হৈ পৰিছিল। আৰম্ভণিতে নগাসকলে একপ্ৰকাৰৰ জীৱবাদৰ কথা স্বীকাৰ কৰিছিল যদিও ক্ৰমান্বয়ে মিছনেৰী আৰু কুকিসকলৰ দ্বাৰা বহু নগা খ্ৰীষ্টান ধৰ্মৰ সংস্পৰ্শলৈ আহিছিল। লাহে লাহে নগা বসতি প্ৰধান অঞ্চলত ধৰ্মক লৈ পৰস্পৰৰ মাজত থকা সদভাৱ নোহোৱা হোৱা দেখা গ'ল। ব্ৰিটিছ বিষয়া জে. এইচ হাটনে উল্লেখ কৰিছিল যে খ্ৰীষ্টানসকলক দিয়া মুকলি স্বাধীনতাই জনজাতিসমূহৰ অস্বস্তিৰ অন্যতম কাৰণ আছিল (Samson, 2014, P. 175)। নগাসকলে ব্ৰিটিছৰ কৰ ব্যৱস্থাটো ভাল পোৱা নাছিল। ঔপনিৱেশিক চৰকাৰে নগাসকলক তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত জীৱিকা পদ্ধতিৰ পৰা বিভিন্ন উপায়েৰে বঞ্চিত কৰি পেলোৱাৰ নীতিয়ে সমগ্ৰ মণিপুৰ পাহাৰ আৰু বিশেষকৈ জেলিয়াংৰং ভূমিত * ক্ষোভৰ সৃষ্টি কৰিছিল (Samson, 2014, P. 150)। যাৰ বাবে জডোনাঙ আৰু গাইডালুৰ অধীনত নগাসকলে এটা আন্দোলন আৰম্ভ কৰে যিয়ে পিছলৈ অৰ্ধসামৰিক, অৰ্ধধৰ্মীয় আৰু ৰাজনৈতিক আন্দোলনলৈ ৰূপান্তৰিত হয়।

জডোনাঙে হেৰাকা অৰ্থাৎ বিশুদ্ধ নামেৰে জনাজাত এক ধৰ্মৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল। ইয়াত সকলো বলিদান পৰিহাৰ পৰি কেৱল টিংৰাঙ (পৰম ঈশ্বৰ) কহে পূজা কৰা হৈছিল (Longkumar, 2010, P. 3)। এই ধৰ্মত বিশ্বাসীসকলে প্ৰতীক হিচাপে কাণফুলি ব্যৱহাৰ কৰিছিল। মণিপুৰৰ তামেংলঙ জিলাৰ ৰংমেই নগাসকলৰ জীয়ৰী গাইডালু আছিল জডোনাঙৰ আত্মীয়। ১৯১৫ চনৰ ২৬ জানুৱাৰীত জন্মগ্ৰহণ

কৰা এই কাবুই ছোৱালীজনীক মণিপুৰৰ ব্ৰিটিছ ৰাজনৈতিক এজেণ্ট জে. চি. হিগিন্সে মাইবি (পুৰোহিত) বুলি সম্বোধন কৰিছিল।

হেৰাকা আন্দোলনটো দেখাত খ্ৰীষ্টান বিৰোধী আছিল (Dena, 1983, P. 185), কিন্তু ইয়াৰ জৰিয়তে ব্ৰিটিছ কৰ্ত্তৃত্ব নোহোৱা কৰি জেলিয়াংৰং গোটৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীক এটা ছাতিৰ তললৈ আনিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছিল। জডোনাঙে আনকি নগাসকলক সকলো বিদেশীৰ বিৰুদ্ধে যুঁজিবলৈ সাজু থাকিবলৈও কৈছিল (Khangchain, 2019)। জেলিয়াংৰং নগাসকলে ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসনক গৃহকৰ নিদিয়া, পোথাং ব্যৱস্থা প্ৰত্যাখ্যান কৰা আৰু লেম্বুৰ (চৰকাৰে নিযুক্তি দিয়া দোভাষী) প্ৰতি অবাধ্যতা প্ৰদৰ্শন কৰা আদি ব্যৱস্থা হাতত লৈছিল (Longkumar, 2010, P. 49)। জডোনাঙে বিদেশীৰ ঠাইত নগাৰ শাসন প্ৰতিষ্ঠা হ'ব বুলি সাধাৰণ মানুহক পতিয়ন নিয়াব চেষ্টা কৰিছিল। তেওঁ ৰিফেন নামৰ এক সামৰিক শাখাও গঠন কৰিছিল আৰু গাইডালুক ইয়াৰ নেতৃত্ব অৰ্পন কৰিছিল (Samson, 2014, P. 96)। তেওঁলোকৰ পৰিকল্পনা আৰু কাৰ্যসূচীসমূহ আছিল এনে ধৰণৰ - ধন সংগ্ৰহ, অস্ত্ৰ-শস্ত্ৰ সংগ্ৰহ কৰি যুৱক-যুৱতীক প্ৰশিক্ষণ দিয়া আদি। কিন্তু ১৯৩১ চনত ব্ৰিটিছে জডোনাঙক গ্ৰেপ্তাৰ কৰি ফাঁচী দিয়াৰ পিছতে গাইডালু জেলিয়াংৰং নগাসকলৰ নেতা হৈ পৰে। আন্দোলনৰ নেতৃত্ব লোৱাৰ সময়ত তেওঁৰ বয়স আছিল মাত্ৰ ষোল্ল বছৰ।

মহাত্মা গান্ধীৰ নেতৃত্বত আৰম্ভ হোৱা ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সৈতে জেলিয়াংৰং জনসাধাৰণক পৰিচয় কৰাই দিছিল গাইডালুৱে (Mahadevan, 1974)। ব্ৰিটিছ চৰকাৰক নগাসকলে যাতে কৰ নিদিয়ে তাৰ বাবে তেওঁ প্ৰচাৰ চলাইছিল। তেওঁ অনুগামীসকলক কৈছিল যে তেওঁলোক মুক্ত মানুহ আৰু সেয়েহে ব্ৰিটিছক তেওঁলোকৰ ওপৰত শাসন কৰিবলৈ দিয়া উচিত নহয় (Singh, 1980)। তেওঁৰ এই কাৰ্য্যসূচীয়ে জেলিয়াংৰং আন্দোলনক ভাৰতীয় জাতীয় আন্দোলনৰ অংশ হিচাপে ৰূপান্তৰ কৰাত সফল হৈছিল (Khangchain, 2019)। তেওঁ যেতিয়া নগাসকলক চৰকাৰী আদেশক অৱজ্ঞা কৰা, মিছা কথা কোৱা আৰু ব্ৰিটিছক প্ৰকৃত তথ্যৰ যোগান নধৰিবলৈ উপদেশ দিবলৈ ধৰিলে তেতিয়াৰে পৰা ব্ৰিটিছ চৰকাৰে তেওঁৰ কাৰ্যকলাপৰ ওপৰত সন্দেহ প্ৰকাশ কৰিব ধৰিলে (Gaidinliu Affairs, 1932)। চৰকাৰে তেওঁক আত্মসমৰ্পণ কৰিবলৈ কৈছিল যদিও তেওঁ মানি নল'লে। তেওঁ মুক্ত কণ্ঠে ঘোষণা কৰিলে যে তেওঁৰ জীৱনৰ একমাত্ৰ উদ্দেশ্য হ'ল ব্ৰিটিছসকলক নিজৰ মাটিৰ পৰা খেদি পঠিওৱা (Nayyar, 2001, P. 37)। ব্ৰিটিছ চৰকাৰে গাইডালুৰ বিষয়ে খবৰ দিয়া জনক ৫০০ টকাৰ পুৰস্কাৰ ঘোষণা কৰিছিল। ইপিনে নগা পাহাৰৰ উপায়ুক্তই আছাম ৰাইফলছৰ ৩য় আৰু ৪র্থ বেটেলিয়নক যিকোনো প্ৰকাৰে তেওঁক গ্ৰেপ্তাৰ কৰিবলৈ নিৰ্দেশ দিয়ে (Reid, 1942, P. 171)। বৰ্ত্তমানৰ মণিপুৰৰ পশ্চিম অংশ নাগালেণ্ডৰ দক্ষিণ অঞ্চল আৰু অসমৰ উত্তৰ কাছাৰ পাহাৰীয়া অঞ্চলত গাইডালুৰ ফটো ব্যাপকভাৱে প্ৰচাৰ কৰিছিল। উল্লেখ আছে যে ব্ৰিটিছ কৰ্ত্তৃপক্ষৰ জেৰাৰ আশংকাত বহু ছোৱালীয়ে নাম সলনি কৰিবলগীয়া হৈছিল আৰু আনকি গাইডালুৱেও নিজৰ নামটো সলনি কৰি 'ডিলেনলিউ' গ্ৰহণ কৰিছিল (Samson, 2014, P. 200)। তেওঁৰ সমৰ্থকসকলক ধৰি ব্ৰিটিছে শাস্তি বিহিছিল আৰু বহুতো গাঁও জ্বলাই দিছিল। তথাপিও গাঁৱৰ ৰাইজে তেওঁৰ বিষয়ে ব্ৰিটিছক একো জনোৱা নাছিল। ১৯৩২ চনৰ মাৰ্চ মাহত অসম ৰাইফলৰ আউটপোষ্টত আক্ৰমণ সংঘটিত কৰাৰ বাবে ব্ৰিটিছে তেওঁক দোষী সাব্যস্ত কৰে আৰু ১৯৩২ চনৰ ১৭ অক্টোবৰত তেওঁক কেনোমাত গ্ৰেপ্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হয় (Gaidinliu Affairs, 1932)। এই অভিযানৰ সময়ত গাইডালুৰ বহু অনুগামীয়ে প্ৰাণ হেৰুৱাইছিল, আহত হৈছিল আৰু কিছুমান তেওঁৰ লগতে বন্দী হৈছিল। যাৱজ্জীৱন কাৰাদণ্ডৰ হুকুম দিয়াৰ পাছত তেওঁক গুৱাহাটী জেলত এবছৰ, শ্বিলং জেলত ছয় বছৰ, আইজল জেলত তিনি বছৰ আৰু তুৰা জেলত পাঁচ বছৰ ৰখা হৈছিল। ১৯৩৭ চনৰ পিছত কংগ্ৰেছে তেওঁক মুক্তিৰ বাবে চেষ্টা কৰিছিল যদিও মণিপুৰ ব্ৰিটিছ শাসিত প্ৰদেশ নহয় বাবে সফলতা লাভ কৰা নাছিল। অসম ভ্ৰমণৰ সময়ত জৱাহৰলাল নেহৰুৱে তেওঁৰ বিষয়ে জানিছিল আৰু ব্ৰিটিছ সংসদৰ সদস্য লেডী এষ্টৰৰ জৰিয়তে তেওঁৰ মুক্তিৰ বাবে চেষ্টা চলাইছিল। কিন্তু তেওঁৰ মুক্তিয়ে অসম আৰু মণিপুৰৰ শান্তি বিঘ্নিত কৰিব পাৰে বুলি বিদেশ সচিবে সেই প্ৰস্তাৱ নাকচ কৰে (Singh, 1980)। ৰাণী সম্বোধনেৰে পৰিচিত হোৱা গাইডালুক ভাৰতে স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পিছতহে কাৰাগাৰৰ পৰা মুকলি কৰি দিয়া হৈছিল।

উপসংহাৰ ঃ

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা আমি এই সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰো যে ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৱ অংশত ঔপনিৱেশিক শক্তিক

প্রতিহত কৰিবলৈ কিছু সংখ্যক ব্যক্তিয়ে ধর্মক আহিলা হিচাপেও ব্যৱহাৰ কৰিছিল। অসমৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামীয়ে কেৱল ধর্মীয় বিষয়ত নিজকে ব্যস্ত ৰখা নাছিল। তেওঁ নিজৰ সত্ৰৰ সংস্কাৰ সাধন কৰি প্ৰদেশখনৰ জ্বলন্ত সমস্যাৰ লগতো জড়িত হৈ পৰিছিল। ধর্মীয় অনুষ্ঠানৰ মুৰব্বী হিচাপে তেওঁ অসংখ্য সামাজিক ব্যাধিৰ বিৰুদ্ধে অকলশৰীয়াকৈ যুদ্ধ কৰিবলগা হৈছিল। তেওঁৰ সামাজিক-ধর্ম সংস্কাৰ আন্দোলন ক্ৰমান্বয়ে ঔপনিৱেশিক শাসনৰ বিৰুদ্ধে ৰাজনৈতিক আন্দোলনলৈ পৰিণত হৈছিল।

নগা বসতিপ্ৰধান অঞ্চলত জডোনাঙে আৰম্ভ কৰা আৰু পিছলৈ গাইডালুৰ নেতৃত্বত হোৱা হেৰেকা আন্দোলন পুনৰোত্থানবাদী প্ৰকৃতিৰ আছিল। খ্ৰীষ্টান ধর্মৰ আগমনৰ বাবে ভাবুকিৰ সন্মুখীন হোৱা জেলিয়াংৰং লোকসকলক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই এই আন্দোলন গঢ়ি উঠিছিল। যেতিয়াই তেওঁলোকে ঔপনিৱেশিক শক্তিৰ বিৰুদ্ধে কথা ক'বলৈ ধৰিলে তেতিয়াই এই অর্ধসামৰিক, অর্ধধর্মীয় আন্দোলনটো ৰাজনৈতিক আন্দোলনলৈ পৰিণত হ'ল। জেলিয়াংৰং অঞ্চলত গাইডালুৰ আন্দোলনে ঔপনিৱেশিক শাসনৰ বিৰুদ্ধে বহু সংখ্যক নগা জনজাতিৰ মাজত একতাৰ বান্ধোন গঢ়ি তুলিছিল। তেওঁৰ আন্দোলনটো মহাত্মা গান্ধীৰ নেতৃত্বত হোৱা গণ আন্দোলনৰ লগত কাকতলীয়া সংযোগ ঘটিছিল। যেনেকৈ ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামীয়ে আন সত্ৰাধিকাৰৰ পৰা সমর্থন নাপালে, একেদৰে গাইডালুৱেও সকলো নগা জনগোষ্ঠীৰ পৰা সমর্থন লাভ কৰাত ব্যর্থ হৈছিল। তথাপিও উত্তৰ-পূৱৰ পাহাৰীয়া অঞ্চল আৰু বিশেষকৈ নগা বসতি প্ৰধান অঞ্চললৈ ভাৰতৰ জাতীয় নেতাসকলৰ দৃষ্টি আকর্ষণ কৰাত গাইডালু কিছু সফল হৈছিল। ❑

তথ্যসূত্ৰ ঃ

(১) (১৩ মার্চ ১৯২৬)। অসমীয়া।

(২) (১৭ মে' ১৯২৬)। অসমীয়া।

(৩) (২৩ ম' ১৯২৬)। অসমীয়া।

(৪) (৩১ মে' ১৯২৬)। অসমীয়া।

(৫) (৭ ফেব্ৰুৱাৰী ১৯২৭)। অসমীয়া।

(৬) বৰবৰুৱা, এছ চি (২০১৫)। পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামীৰ বংশ-বৃক্ষ। ইছমাইল হোছেইন, ভাৰত গৌৰৱ সত্ৰাধিকাৰ পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।

(৭) Bernardin, J. C. (1984). 'Role of the Religious Leader in the Development of Public Policy'. *Journal of Law and Religion ,* Vol. 2, No. 2 (1984), 369-379.

(৮) Chandra, B. (1989). *India's struggle for Independence.* New Delhi: Penguin Books.

(৯) ডেকা, কে চি (২০১৫)। পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী। ইছমাইল হোছেইন, ভাৰত গৌৰৱ সত্ৰাধিকাৰ পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।

(১০) Dena, L. (1983). *Christian Missions and Colonialism: A Study of Missionary Movement in Northeast India with particular reference to Manipur and Lushai Hills 1894-1947.* Jawaharlal Nehur University. New Delhi: Jawaharlal Nehur University.

(১১) Derek, D. H. (1994). Religion and the American Revolution. *Journal of Church and State ,* Vol. 36 (No. 4), 709-724.

(১২) (1932). *Gaidiliu Affairs.* Assam State Archives, Political Branch, Guwahati.

(১৩) গোস্বামী, এইচ (২০১২)। প্ৰবাদপুৰুষ শ্ৰীশ্ৰী পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী প্ৰভু। যোৱহাটঃ বৰকটকী কোম্পানী।

(১৪) গোস্বামী, জে (১৯৯৯)। হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী ৰচনাৱলী। গুৱাহাটী ঃ হেমকোষ প্ৰকাশন।

(১৫) হাজৰিকা, জি (১৯৭৩)। মহাপুৰুষ শ্ৰী শ্ৰীমৎ ধর্মাচার্য পীতাম্বৰদেৱ। তিতাবৰ, যোৱহাটঃ গংগাধৰ হাজৰিকা।

(১৬) Henderson, Z. M. (2020). *Scriptures, Shrines, Scapegoats, and World Politics: Religious Sources of Conflict and Cooperation in the Modern Era.* University of Michigan Press.

(১৭) কাকতি, বি (২০১৫)। অসমৰ জাতীয় জীৱনলৈ স্বৰ্গীয় পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামীৰ উপচাৰ। ইছমাইল হোছেইন, ভাৰত গৌৰৱ সত্ৰাধিকাৰ পীতাম্বৰদেৱ গোস্বামী। গুৱাহাটীঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।

(১৮) Kalita, K. (2020). A study on the Relationships between the Colonial Government of Assam and the Satras of Majuli. *International Journal of Future Generation Communication and Networking ,* Vol. 13 (No. 4), 685-688.

(১৯) Khangchain, V. (2019). Understanding conflict in Manipur: A Socio-Historical Perspectives. *Social Change and Development ,* Vol. XVI No.2, 42-58.
(২০) Longkumar, A. (2010). *Reform, Identity and Narratives of Belonging: the Heraka Movement of Northeast India.* London: Continnum International Publishing Group Ltd.
(২১) Mahadevan, R. (1974). Zeliangrong Naga Uprising of 1930-32: A Brief Summary. *Proceeding of the Indian History Congress*, Vol.35, pp. 253-259.
(২২) Nath, D. (2000). A Satradhikar's Role in National Awakening. In J. Barua (Ed.), *Nationalist Upsurge in Assam* (First ed.). Guwahati: Government of Assam.
(২৩) Nayyar, K. (2001). *Rani Gaidinliu.* New Delhi: Prabhat Prakashan.
(২৪) Niumai, A. (2018). Rani Gaidinliu: The Iconic woman of Northeast India. *Indian Journal of Gender Studies,* Vol. 25(3) , 351-367.
(২৫) Rajkhowa, P. S. (2015). Satras *In Colonial Assam A Study Of Their Responses To The Contemporary Socio Political Issues,.* Dibrugarh: Unpublished thesis, Dibrugarh University.
(২৬) Reid, R. (1942). *History of the Frontier Area.* Shillong: Assam Government Press.
(২৭) Roy, B. (2013). "Mapping the Heraka Identity:Are We Engaged Truly?". *Economic and Political Weekly ,* Vol.48, No.40, 76-78.
(২৮) শইকীয়া, এন (২০১৪)। বেণুধৰ শর্মা ৰচনাৱলী, তৃতীয় খণ্ড। গুৱাহাটী ঃ অসম প্রকাশ বর্ড।
(২৯) Samson, K. (2014). *Zeliangrong Movement in North East India.* Guwahati : Unpublished thesis, Tata Institute of Social Science.
(৩০) Singh, G. (1980). Evaluation of the role of some triabl leaders of northeast India in the struggle for freedom: From the beginning of Swadeshi movement to the end of Gandhian Age, 1905-1947". *Proceedings of the Indian History Congress*, Vol. 41, pp. 554-562.
(৩১ Soden, D. E. (2007). Matthews, Reverend Mark (1867-1940). Retrieved from HistoryLink. org: https://www.historylink.org/File/8049
(৩২) Soden, D. E. (Spring 2013). The Role of Religious Activists in the Seattle Civil Rights Struggles of the 1960s . *The Pacific Northwest Quarterly ,* Vol. 104 (No.2), 55-71.
(৩৩) Sponge, A. R. (2003). *Religion and Reconciliation in South Africa, Voices of Religious Leaders.* Pennsylvania: Templeton Foundation Press.
(৩৪) Yonuo, A. (1948). *The Rising Nagas: A Historical and Political Study.* Delhi: Manas Publications.

* জেমি, লিয়াংমাই আৰু ৰংমেই আদি নগাসকলে বিশ্বাস কৰিছিল যে তেওঁলোক একেটা শাখাৰ আৰু তেওঁলোকৰ মাজত এক শক্তিশালী বন্ধন আছে, কিন্তু ঔপনিৱেশিক প্রশাসনিক ব্যৱস্থাৰ বাবে তেওঁলোক পৃথক হৈ পৰিল।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

সংস্কৃত সাহিত্যৰে প্ৰভাৱিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্য

ডঃ নয়নমণি বৰুৱা

সাৰাংশ ঃ

অসমীয়া শিশু-সাহিত্য বৰ্তমান সময়ত অসমীয়া সাহিত্যৰ এক বিকশিত ধাৰা। অসমীয়া শিশু-সাহিত্যই গল্প, উপন্যাস, নাটক, কবিতা আদি বিবিধ ধাৰাত বিকাশ লাভ কৰিছে। বিকাশৰ পৰিক্ৰমাত শিশু-সাহিত্যই একাধিক উৎসৰপৰা সমল আহৰণ কৰিছে। তাৰে এক বিশেষ উৎস হৈছে সংস্কৃত সাহিত্য। এই আলোচনাত সংস্কৃত সাহিত্যৰপৰা সমল আহৰণ কৰি বিকাশ লাভ কৰা অসমীয়া শিশু-সাহিত্য সম্পৰ্কে অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা হৈছে। উল্লেখযোগ্য যে, শিশু-সাহিত্যক বহল অৰ্থত প্ৰধানকৈ দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। প্ৰথম, শিশু উপযোগী লোকসাহিত্য আৰু দ্বিতীয়, আধুনিক শিশু-সাহিত্য। দুয়োধৰণৰ ক্ষেত্ৰতে সংস্কৃত সাহিত্যৰ প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। এই আলোচনাত এই দুয়োটা দিশ সামৰি লোৱা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ সংস্কৃত সাহিত্য, অসমীয়া সাহিত্য, শিশু-সাহিত্য

১.০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

সাহিত্যৰ স্থায়িত্বৰ বাবে শিশু-সাহিত্যৰ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ অত্যন্ত প্ৰয়োজনীয়। শিশু অৱস্থাৰ পৰা সাহিত্যৰ পঠন-পাঠনৰ অভ্যাসে ব্যক্তিৰ ভৱিষ্যত জীৱনত গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে। সেয়ে শিশু-সাহিত্যৰ উপযুক্ত বিকাশে সাহিত্যৰ বিকাশ ত্বৰান্বিত কৰে।

অসমীয়া শিশু-সাহিত্যয়ো বৰ্তমান সময়ত কিছু পৰিমাণে বিকাশ লাভ কৰিছে। বিকাশৰ পৰিক্ৰমাত অসমীয়া শিশু-সাহিত্যই মৌলিক আৰু অনূদিত-এই দুয়োটা ৰূপতে সমৃদ্ধি লাভ কৰিছে। এই দুয়োধৰণেৰে বিকাশ লাভ কৰোতে একাধিক উৎসৰপৰা সমল আহৰণ কৰা হৈছে। তাৰ ভিতৰত লৌকিক, দেশী আৰু বিদেশী সমলৰ কথা ক'ব পাৰি। লৌকিক উৎস বুলি কওঁতে পৰম্পৰাগতভাৱে মৌখিক ৰূপত চলি অহা কথা-কাহিনী, গীত-মাত আদিৰ কথা উল্লেখ কৰিব পাৰি। দেশীয় সমলৰ ক্ষেত্ৰত সংস্কৃত সাহিত্যৰ লগতে অন্যান্য ভাৰতীয় ভাষাৰপৰা আহৰণ কৰা সমলসমূহলৈ আঙুলিয়াব পাৰি। আনহাতে বিদেশী সমল বুলি কওঁতে পৃথিৱীৰ আন আন দেশৰ সাহিত্যিক সমল, বিশেষকৈ পাশ্চাত্য সাহিত্যৰপৰা আহৰণ কৰা সমলৰ কথা ক'ব পাৰি। এই আলোচনাত প্ৰধানকৈ অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত সংস্কৃত সাহিত্যৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে। আলোচনাৰ সুবিধাৰ বাবে প্ৰধানকৈ পৰিচয়মূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

সহকাৰী অধ্যাপক
পূব কামৰূপ মহাবিদ্যালয়
বাইহাটা চাৰিআলী, কামৰূপ,
অসম, পিন-৭৮১৩৮১
৯৭০৬৩৫৯৭২৭
baruahnayana98@gmail.com

উল্লেখ নিষ্প্রয়োজন যে, সংস্কৃত সাহিত্যই প্রায়সমূহ ভাৰতীয় সাহিত্যৰ সমৃদ্ধিত গুৰুত্বপূর্ণ প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰিছে। ভাষিক দিশত এই প্রভাৱ মন কৰিলে শব্দসম্ভাৰৰপৰা ব্যাকৰণগত দিশলৈকে দেখা যায়। আনহাতে সাহিত্যৰ ক্ষেত্রত বিষয়বস্তুগত ক্ষেত্রৰপৰা সাংস্কৃতিক চেতনালৈকে এই প্রভাৱ পৰিলক্ষিত হয়।

১.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

বর্তমান সময়ত অসমীয়া শিশু-সাহিত্য বিবিধ ধাৰাৰে বিকশিত হৈছে। বিকাশৰ এই পৰিক্রমাত বিবিধ উৎসৰপৰা সমল আহৰিত হৈছে। সংস্কৃত সাহিত্যৰ পৰা কেনেধৰণৰ সমল আহৰণ কৰা হৈছে, এই আলোচনাত সেই সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰাৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

১.২ অধ্যয়নৰ সামগ্রী ঃ

সমল আহৰণ কৰা অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰাজিক আধাৰ হিচাপে লোৱা হৈছে। অধ্যয়নৰ লগত প্রাসঙ্গিক হোৱা তথ্য কিতাপ, আলোচনী অথবা ইণ্টাৰনেটৰপৰা সংগ্রহ কৰা হৈছে।

১.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি ঃ

এই আলোচনাত প্রধানকৈ পৰিচয়মূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন পদ্ধতিৰ প্রয়োগ কৰা হৈছে। বিষয়বস্তু উপস্থাপনৰ বাবে MLA পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

২.০ শিশু-সাহিত্য আৰু অসমীয়া শিশু-সাহিত্য ঃ

সাহিত্যৰ অন্যান্য ৰূপৰ দৰেই শিশু-সাহিত্যয়ো বর্তমান সময়ত যথেষ্ট গুৰুত্ব লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। পৃথিৱীৰ প্রায় প্রত্যেক ভাষাৰ সাহিত্যতে শিশু উপযোগী এক শ্রেণীৰ সাহিত্যৰ প্রচলন পৰিলক্ষিত হয়। অৱশ্যে শিশু-সাহিত্য আখ্যা দিলেও ইবিলাকৰ পৰা বয়স্কসকলেও সমানেই আনন্দ লাভ কৰা দেখা যায়। তথাপি শিশুৰ মানসিকতাৰ প্রতি লক্ষ্য ৰাখি এই শ্রেণীৰ সাহিত্যৰ স্বৰূপ, বিষয়বস্তু, শ্রেণী বিভাজন আদি সম্পর্কে আলোচনা কৰাৰ অৱকাশ আছে। শিশু-সাহিত্যত শিশুৰ বয়সৰ ভেদ, ভাষিক দক্ষতা অনুসৰি কলা-কৌশল, বিষয়, উপযোগিতা, ৰূপ-ভিন্নতা আদি বিবিধ বিষয় আলোচনাৰ আওতালৈ অনাৰ প্রয়োজন। শিশু-সাহিত্য বুলিলে সাধাৰণতে শিশুৰ বাবে ৰচনা কৰা সাহিত্যকে ধৰা হয়। উল্লেখ্য যে শিশুৰে ৰচনা কৰা সাহিত্যকো বহু সময়ত শিশু-সাহিত্য আখ্যা দিয়া হয়। কিন্তু এইধৰণৰ সাহিত্যক শিশুৰে ৰচনা কৰা সাহিত্য বুলিলে ধাৰণাটো অধিক স্পষ্ট কৰিব পৰা যায়। আনহাতে শিশু-সাহিত্য অভিধাৰে শিশুৰ বাবে বয়োজ্যেষ্ঠসকলে নির্বাচন কৰা আৰু শিশুৰে নিজে নিজৰ বাবে নির্বাচন কৰা—এই দুয়োধৰণৰ সাহিত্যকো সামৰি লোৱা হয়। উল্লেখযোগ্য যে, শিশু-সাহিত্যৰ গুৰুত্ব পাঠকৰ দৃষ্টিৰেহে নির্ণয় কৰা সম্ভৱপৰ। শিশু পাঠকৰ ৰুচি, আকর্ষণ আদিৰ কষটি শিলতহে শিশু-সাহিত্যৰ সার্থকতা নির্ণয় কৰিব পৰা যায়।

লোক-সাহিত্য প্রচলনৰ সময়ৰে পৰা অসমীয়া সাহিত্যত শিশুৰ মনোৰঞ্জনধর্মী আৰু জ্ঞানবর্ধনকাৰী বিবিধ গীত, সাধুকথা আদি প্রচলিত হৈ আহিছে। অসমীয়া লোক-সাহিত্যত শিশুৰ বাবে উপযোগী বিবিধ গীত-মাত, সাধুকথা আদিৰ প্রচলন আছে। ইবিলাকক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ প্রাচীন ৰূপ আখ্যা দিব পাৰি। শিশু উপযোগী লোক-সাহিত্যৰ ভিতৰত প্রধানকৈ সাধুকথা, লোকগীত আৰু সাঁথৰৰ কথা ক'ব পাৰি। মৌখিক সাহিত্যৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়েই পৰৱর্তী সময়ছোৱাত লিখিত শিশু-সাহিত্য গঢ় লৈ উঠিছে বুলি ক'ব পাৰি। মন কৰিবলগীয়া কথাটো হ'ল, প্রাচীন অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ লগত আধুনিক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ প্রধান পার্থক্য হৈছে বিষয়বস্তু, আংগিক আৰু কলা-কৌশল সম্পর্কীয়। বর্তমান সময়ত অসমীয়া শিশু-সাহিত্যই গল্প, উপন্যাস, কবিতা, নাটক, জীৱনী, ভ্রমণ সাহিত্য, বিজ্ঞান বিষয়ক তথা প্রকৃতি বিষয়ক ৰচনা আদি বিবিধ ৰূপত সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ লাভ কৰিছে।

৩.০ অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ বিকাশত সংস্কৃত সাহিত্যৰ ভূমিকা ঃ

অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ সমৃদ্ধিৰ ক্ষেত্রতো সংস্কৃত সাহিত্যৰ প্রভাৱ মন কৰিব পাৰি। সংস্কৃত সাহিত্যৰ বিশাল সাহিত্য সম্ভাৰৰ ভিতৰত অসমীয়া শিশু-সাহিত্যই প্রধানকৈ মহাকাব্য দুখনৰপৰা বিষয়বস্তু, কাহিনী আৰু চৰিত্র আহৰণ কৰিছে। ভালেসংখ্যক শিশু উপযোগী পুথিত ভাগৱত, পুৰাণ, গীতা আদিৰপৰাও বিষয়বস্তু আহৰণ কৰা হৈছে।

মহাকাব্য ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰতে প্রাচীন কালৰে পৰা ভাৰতীয় সমাজ-সভ্যতাৰ ওপৰত এৰাব নোৱৰা প্রভাৱ পেলাইছে। সমাজ-জীৱনৰ বিভিন্ন দিশত এই প্রভাৱ অতি সহজে অনুভৱ কৰিব পাৰি। জাতি, জনগোষ্ঠী, সামাজিক-সাংস্কৃতিক, ভৌগোলিক বৈচিত্র্য থকা সত্ত্বেও ভাৰতৰ সকলো

জনসাধাৰণে নিজকে ভাৰতীয় বুলি ভাবিব পৰাৰ মানসিকতা গঢ় দিয়াত এই মহাকাব্য দুখনৰ প্ৰভাৱ অনস্বীকাৰ্য। ইয়াৰ কথা-কাহিনীৰ সৈতে পৰিচিতি তথা একাত্মবোধৰ ধাৰণাই ভাৰতীয় সংস্কৃতিক বৈচিত্ৰ্যৰ মাজতো ঐক্যৰ বান্ধোনেৰে বান্ধি ৰাখিছে। অসমীয়া সাহিত্যকো মহাকাব্যিক পৰম্পৰাই ভাৰতীয় সাহিত্যৰ অংগীভূত কৰি ৰখাত অৰিহণা যোগাইছে। অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ পদে পদে ৰামকথা অথবা ৰামায়ণৰ প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। লোক-সমাজে লোক-বিশ্বাস, লোক-পৰম্পৰা, লোক-সাহিত্য আদিৰ মাজত ৰামায়ণৰ প্ৰভাৱ সজীৱ কৰি ৰাখিছে। মৌখিক সাহিত্য বা লোক-সাহিত্যৰ যুগৰে পৰা সাহিত্যৰ আধুনিক যুগলৈকে এই প্ৰভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়।

প্ৰাচীন কালত সাহিত্য অভিধাৰে কেৱল কাব্যক বুজোৱা হৈছিল। আধুনিক সময়ৰ সাহিত্যই বিভিন্ন ৰূপত প্ৰকাশ আৰু বিকাশ লাভ কৰিছে। তাৰ ভিতৰত কবিতা, গল্প, উপন্যাস, নাটক আদি অগ্ৰগণ্য। আধুনিক কালত বিকশিত সাহিত্যৰ এটি বিশেষ ধাৰা হৈছে শিশু-সাহিত্যৰ ধাৰা। বৰ্তমান সময়ত শিশুৰ বাবে বিশেষ সাহিত্যৰ প্ৰয়োজনীয়তা অনুভৱ কৰি সেই অনুৰূপে সাহিত্যৰ সৃষ্টিৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হৈছে। ইয়াৰ পৰিপ্ৰেক্ষিততে বৰ্তমান সময়ত শিশু-সাহিত্যই সাহিত্যৰ এক সুকীয়া ধাৰা হিচাপে বিকাশ লাভ কৰিছে। শিশু-সাহিত্যসমূহত বিবিধ শিশু উপযোগী বিষয়ে ঠাই পাইছে। ৰামকথা অথবা ৰামায়ণৰ কাহিনীক আধাৰ হিচাপে লৈও একাধিক শিশু-সাহিত্য অসমীয়া ভাষাত ৰচিত হৈছে।

৩.১ ৰামায়ণ আধাৰিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্য ঃ

ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰদেশৰ সমাজ তথা ভাষাৰ দৰেই অসমীয়া সমাজতো ৰামায়ণ, মহাভাৰত আদি মহাকাব্যৰ কাহিনী মৌখিক পৰম্পৰাৰে বহু অতীতৰে পৰা চলি আহিছে। অসমীয়া সাহিত্যত ৰামকথা আধাৰিত শিশু-সাহিত্য সৃষ্টিৰ পৰম্পৰা বহু পুৰণি। লোকগীতসমূহৰ ভিতৰত কিছুমান শিশু উপযোগী গীতত ৰামকথাৰ প্ৰভাৱ লক্ষ্য কৰিব পাৰি। একেদৰে আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যত ৰামকথা বা ৰামায়ণ আধাৰিত একাধিক শিশু উপযোগী ৰচনা প্ৰকাশিত হৈছে। তাৰ ভিতৰত অসম্পূৰ্ণ হ'লেও জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ "জ্যোতি ৰামায়ণ" মাইলৰ খুঁটিস্বৰূপ। তদুপৰি অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ "ৰামায়ণৰ ৰহঘৰা", কেশদা মহন্তৰ "ৰঘুবংশৰ কথা" আৰু "ৰামায়ণৰ সাধু দুটামান কওঁ", গুণমণি নাথৰ "ৰামায়ণৰ মৌ-কোঁহ" আদি উল্লেখযোগ্য।

৩.১.১ শিশু উপযোগী অসমীয়া লোক-সাহিত্যত ৰামকথাঃ

যিকোনো ভাষাৰে মূল ভেটি হ'ল লোক-সাহিত্য। লোক-সাহিত্যৰ আধাৰতে লিখিত সাহিত্যৰ ভেটি গঢ়ি উঠে। অসমীয়া সাহিত্যও ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। আনহাতে লোক-সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া সাহিত্য যথেষ্ট চহকী। লোক-সাহিত্য প্ৰচলনৰ সময়ৰে পৰা অসমীয়া সাহিত্যত শিশুৰ মনোৰঞ্জনধৰ্মী আৰু জ্ঞানবৰ্ধনকাৰী বিবিধ গীত, সাধুকথা আদিৰ প্ৰচলন হৈ আহিছে। সেয়ে অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ উদ্ভৱৰ আলোচনা প্ৰসংগত লোক-সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ চকু ফুৰাব লগা হয়। অসমীয়া লোক-সাহিত্যত শিশুৰ বাবে উপযোগী বিবিধ গীত-মাত, সাঁথৰ, সাধুকথা আদিৰ প্ৰচলন আছে। ইবিলাকক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ প্ৰাচীন ৰূপ আখ্যা দিব পাৰি।

সাধুকথাবোৰৰ মাজত এখন দেশ, জাতি আৰু সমাজৰ বিভিন্ন দিশৰ প্ৰতিফলন ঘটে। শিশুৰ লগতে সমাজৰ প্ৰায় প্ৰতিজন লোকেই সাধুকথা ভাল পায়। মনোৰঞ্জনৰ মাজেৰে শিক্ষা প্ৰদানতো সাধুকথাৰ বিশেষ গুৰুত্ব আছে। অসমীয়া সাহিত্যত পুৰণি কালৰে পৰা বিবিধ সাধুকথা প্ৰচলিত হৈ আহিছে। তাৰে ভালেমান সাধুকথা ৰামকথা আধাৰিত অথবা ৰামায়ণৰ কাহিনীৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছে।

অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰাচীন কালৰে পৰা বিবিধ উপলক্ষত বিভিন্ন শিশু উপযোগী গীতৰ প্ৰয়োগ পৰিলক্ষিত হয়। উপযোগিতা আৰু ব্যৱহাৰৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি শিশু-লোকগীতসমূহক বেলেগ বেলেগ ভাগত ভগাব পাৰি। ওমলোৱা, টোপনি নিওৱা আৰু নিচুকনি গীত আদি বিবিধ গীতৰ কথা এই প্ৰসংগত ক'ব পাৰি। ইয়াৰে প্ৰতিটো ভাগেই যথেষ্ট আকৰ্ষণীয়। অৱশ্যে প্ৰতিটোতে ৰামকথাৰ উল্লেখ পোৱা নাযায়। লোক-সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত অনুষ্ঠানমূলক গীতসমূহত ৰামকথাৰ প্ৰভাৱ মন কৰিবলগীয়া। উল্লেখ থাকে যে প্ৰধানকৈ শিশু আৰু কিশোৰে অংশগ্ৰহণ কৰা আৰু পালন কৰা ভালেমান অনুষ্ঠান অসমীয়া লোক-সমাজত প্ৰচলিত হৈ আছে। এনে অনুষ্ঠানসমূহত জ্যেষ্ঠসকলে অংশগ্ৰহণ কৰে

যদিও অসমৰ ঠায়ে ঠায়ে মূলতঃ শিশুৱে পৰিচালনা কৰে আৰু কিছুমান গীতো গায়। এনেধৰণৰ অনুষ্ঠানৰ ভিতৰত প্ৰধানকৈ কাতি বিহুৰ অন্তৰ্গত তুলসীৰ গুৱিত পতা অনুষ্ঠানৰ কথা ক'ব পাৰি। তুলসীৰ গুৱিত পতা অনুষ্ঠানত প্ৰধানকৈ ৰামায়ণৰ কাহিনীৰ লগত জড়িত বিষয়বস্তু গীতত সন্নিৱিষ্ট হোৱা দেখা যায়---

"তুলসীৰ তলে তলে মৃগপহু চৰে
তাকে দেখি ৰামচন্দ্ৰই শৰধনু ধৰে..."

আনহাতে শিশু উপযোগী লোকগীতৰে ধাইনামৰ অন্তৰ্গত নিচুকনি গীততো ৰামকথাৰ প্ৰভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। উল্লেখ থাকে যে এনে গীতক অসমৰ নলবাৰী জিলাত চ'লি ভুৱকোৱা গীত আৰু গোৱালপাৰা জিলাত নিন্দালি গীত বা ছাৱা ভুৱকা গীত বুলি কোৱা হয়। নিচুকনি গীতত ৰামকথাৰ উদাহৰণস্বৰূপে উল্লেখ কৰিব পাৰি।

কলমৌ পাতৰে নাও সাজি ল'লো
ইকৰা পাতৰে ব'ঠা
অকল ৰামচন্দ্ৰই কি যজ্ঞ পাতিছে
লগত নাই সাৱথি সীতা।।

[মহন্ত ২০১১ ঃ ৭০৪]

লোক-সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত সাঁথৰসমূহ গদ্য আৰু পদ্য— উভয় ৰূপতে পোৱা যায়। ইবিলাকে এহাতে মনোৰঞ্জন আৰু আনহাতে বুদ্ধিৰ অনুশীলন তথা বিকাশ, দুই ধৰণৰ কাৰ্য সম্পাদন কৰে। শিশুৱে সাঁথৰৰ জৰিয়তে এই দুই ধৰণৰ ফল লাভ কৰিব পাৰে। গতিকে শিশু-লোকসাহিত্যৰ বিষয় হিচাপে সাঁথৰবোৰ যথেষ্ট গুৰুত্বপূৰ্ণ। ৰামকথাৰ প্ৰভাৱযুক্ত সাঁথৰৰ উদাহৰণস্বৰূপে উল্লেখ কৰিব পাৰি—

"ৰাৱণ নহয় পিছে আছে দশশিৰ
দিনে দিনে বাঢ়ি যায় কোমল শৰীৰ
ৰজাৰ পৰা প্ৰজালৈকে সকলোৱে খায়
আহিন কাতি পাৰ হ'লে পাবলৈ নাই।"

(উত্তৰ ঃ জিকা)

সাধুকথাসমূহতো ৰামায়ণৰ প্ৰসংগ লোক-সমাজৰ দৃষ্টিৰে উপস্থাপিত হৈছে। বেজবৰুৱাৰ 'বুঢ়ী আইৰ সাধু'ৰ 'তীখৰ আৰু চুটিবাই' সাধুটোত এই প্ৰসংগৰ উল্লেখ এনেধৰণৰ—

"এ সীতা শান্তি এ,
তোক মই নোবোলো ভাল।
সুবৰ্ণই দলিচাই গা জুৰ নহ'লে,
তোক লাগে মিৰিগৰ ছাল।"

[বেজবৰুৱা ২০০৯ ঃ ৯৫]

৩.১.২ শিশু উপযোগী আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যত ৰামকথা ঃ

আধুনিক অসমীয়া সাহিত্য বুলিলে প্ৰধানকৈ 'অৰুণোদয়'ৰ পৰৱৰ্তী কালৰ সাহিত্যক বুজোৱা হয়। ৰামায়ণ আধাৰিত আধুনিক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ প্ৰতি লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে ৰামায়ণৰ কথা বা কাহিনীয়ে এই আধুনিক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যত বেলেগ বেলেগ ৰূপত বিকাশ লাভ কৰিছে। ৰামায়ণী গ্ৰন্থ হিচাপে বিকশিত হোৱাৰ লগতে এই সময়ছোৱাত সাধুকথা, কবিতা, গীতি-নাট আদি ধাৰাৰ কথাও এই প্ৰসংগত উল্লেখ কৰিব পাৰি।

স্বাধীনতা পূৰ্বকালৰ ৰামকথা আধাৰিত আধুনিক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ আটাইতকৈ ভাল উদাহৰণ পোৱা যায় জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ (১৯০৩-১৯৫১) '**জ্যোতিৰামায়ণ**'ত। স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কালত একাধিক ৰামকথা আধাৰিত শিশু-সাহিত্য প্ৰকাশিত হৈছে। তাৰ ভিতৰত অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাই তেওঁৰ শিশু উপযোগী কবিতা, অন্যান্য ৰচনা আদিতো ৰামায়ণৰ অনুষংগ ব্যৱহাৰ কৰিছে। বৰ্তমান সময়লৈকে প্ৰকাশ পোৱা আধাৰিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ এখনি অসম্পূৰ্ণ তালিকা এনেধৰণৰ (লেখকসকলৰ নাম বৰ্ণানুক্ৰমিকভাৱে উল্লেখ কৰা হৈছে)—

লেখকৰ নাম	**গ্ৰন্থৰ নাম**	**প্ৰকাশৰ চন**
অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকা		
(১৯০৩-১৯৮৬)	ঃ অংকীয়া নাটৰ সাধু	(১৯৫০)
	ঃ ৰামায়ণৰ ৰহঘৰা	(১৯৫৬)
অৰুণজ্যোতি নাথ	ঃ ৰামায়ণ	(২০০৭)
কেশদা মহন্ত		
(১৯৩৯-২০১৬)	ঃ ৰঘু বংশৰ কথা	(১৯৭২)
	ঃ ৰামায়ণৰ সাধু	

	দুটামান কণ্ড	(১৯৮৮)
খগেন্দ্রনাৰায়ণ দত্ত বৰুৱা	ঃ শিশু ৰামায়ণ	
গুণমণি নাথ	ঃ ৰামায়ণৰ মৌ-কোঁহ	(২০০০)
গোপীনাথ বৰদলৈ	ঃ শ্রীৰামচন্দ্র	(১৯৮৬)
চাৰুপ্রভা ডেকা	ঃ ৰামায়ণৰ সাধু	(২০০৯)
জ্যোতিপ্রসাদ আগৰৱালা		
(১৯০৩-১৯৫১)	ঃ জ্যোতি ৰামায়ণ	(অসম্পূর্ণ)
দামোদৰ শর্মা	ঃ ৰামায়ণ জ্যোতি	(১৯৮৬)
ধর্মদাস চৌধাৰী	ঃ মইনাৰ ৰামায়ণ	
নৰেন্দ্রনাথ শর্মা	ঃ অকণিৰ ৰামায়ণ	(১৯৯৮)
নৰকান্ত বৰুৱা	ঃ কিশোৰ ৰামায়ণ	(১৯৮৭)
নুৰুল ইছলাম শইকীয়া	ঃ অকণিৰ ৰামায়ণ	(২০০৭)
পুৰেন্দ্র প্রসাদ শইকীয়া	ঃ ৰামায়ণৰ ৰসাল কাহিনী	(২০০৯)
পুষ্পলতা কলিতা	ঃ ৰামায়ণৰ আদিকাণ্ড	(২০০৫)
প্রদীপ কুমাৰ	ঃ অকণিৰ ৰামায়ণ	(২০০০)
বৰুৱা আৰু বৰুৱা	ঃ অকণিৰ ৰামায়ণ	(১৯৫৩)
ভাৰত চন্দ্র পাঠক	ঃ ৰামায়ণৰ মৌ কোঁহ	(১৯৫৯)
মহেন্দ্রনাথ হাজৰিকা	ঃ অকণিৰ ৰামায়ণৰ সাধু	(২০০৬)
মিত্রদেৱ মহন্ত		
(১৮৯৪-১৯৮৩)	ঃ মৌ ৰামায়ণ	(অসম্পূর্ণ)
মোহন চন্দ্র চৌধুৰী	ঃ লক্ষ্মণৰ ভাতৃভক্তি	
	ঃ সীতাৰ পতিভক্তি	
যোগেন্দ্র নাৰায়ণ গোস্বামী	ঃ ৰঘু বংশৰ কাহিনী	(২০০২)
লক্ষ্মীপ্রভা শইকীয়া	ঃ ৰামায়ণ-মহাভাৰতৰ সাধু	(২০০০)
সদানন্দ মহন্ত	ঃ অশোক বনত সীতা	(১৯৮৮)
সৰলা শর্মা	ঃ ৰামায়ণৰ কাহিনী	(২০০০)
সুৰেন্দ্র কুমাৰ দাস	ঃ শিশুৰ ৰামায়ণ	

তালিকাখনত সন্নিৱিষ্ট প্রায়বোৰ গ্রন্থতে ৰামকথা অথবা ৰামায়ণত উল্লিখিত ৰামৰ লগত সম্পর্ক জড়িত কাহিনী উপস্থাপন কৰা হৈছে। পূর্বে উল্লেখ কৰা হৈছে যে স্বাধীনতা পূর্বকালত ৰচিত জ্যোতিপ্রসাদ আগৰৱালাৰ '**জ্যোতিৰামায়ণ**' ৰামায়ণ আধাৰিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ জগতত এটি উল্লেখযোগ্য সংযোজন। শিশু উপযোগী প্রায়বোৰ অন্যান্য ৰামায়ণ আধাৰিত ৰচনা বা ৰামায়ণ কথা, কাহিনী বা সাধুকথা হিচাপে গদ্যত লিখা হৈছে। সেই ফালৰ পৰা চাবলৈ গ'লে 'জ্যোতি ৰামায়ণ' হৈছে পদ্য হিচাপে লিখা একমাত্র শিশু উপযোগী ৰামায়ণ। কাব্যখনৰ আন এটি বিশেষত্ব হ'ল যে গোটেই কাব্যখন লেখকে সম্পূর্ণ মহাকাব্যিক ঠাঁচত গঢ় দিয়াৰ চেষ্টা কৰিছে। ৰামায়ণখন আগৰৱালাই সম্পূর্ণ কৰিব নোৱাৰিলে যদিও যিমানখিনি লিখি গৈছে তাৰ মাজতে ইয়াৰ মহত্ত্ব প্রতিফলিত হৈছে। মহাকাব্যিক পৰম্পৰাক অনুসৰণ কৰি কাব্যকাৰে ইয়াক কেইবাটাও ভাগত বিভক্ত কৰি লৈছে। তাৰে আগকথাত দেশৰ অতীত গৌৰৱগাথা সুঁৱৰি 'সেৱা জননী' শীর্ষক, দ্বিতীয় ভাগত নিজৰ বংশ পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। তৃতীয় অংশত 'বাল্মীকি মুনিৰ কথা' হিচাপে ৰত্নাকৰৰ পৰা বাল্মীকিৰ জন্মৰ আখ্যান মনোৰমকৈ বর্ণনা কৰা হৈছে। চতুর্থ অংশ অর্থাৎ 'বাল্মীকিৰ বনত কবিতাৰ জন্ম'ত শিশুক সহজে আকর্ষণ কৰিব পৰাকৈ অনুকাৰ শব্দৰ প্রচুৰ প্রয়োগেৰে ধ্বনি মাধুর্যৰ সৃষ্টি কৰি বাল্মীকিৰ বনৰ বর্ণনা আৰু তেওঁ ৰামায়ণৰ কাহিনী লিখিবলৈ আৰম্ভ কৰাৰ কাহিনীৰ গুৰি ধৰা হৈছে। ইয়াৰ পৰৱর্তী 'আদিকাণ্ড'ৰ অন্তর্গতভাৱে ৰামৰ জন্ম কথাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ঋষ্যশৃংগ মুনিক অনাৰ কথা, দশৰথৰ পুত্রেষ্টি যজ্ঞৰ কথা, ৰামৰ ল'ৰা কাল, মাৰীচ আৰু সুবাহু বধ, তাড়কা ৰাক্ষসী বধ, অহল্যা উদ্ধাৰ, কান্যকুব্জ দেশৰ কথা, সীতা সয়ম্বৰ, সয়ম্বৰ সভালৈ সীতাৰ প্রৱেশ, সীতাৰ বিয়া, বিবাহ সভা, সীতা বিদায়লৈকে সামৰি লোৱা হৈছে। সীতা বিদায়ৰ পিছতে ৰামায়ণৰ বর্ণনাৰ অন্ত পৰিছে। বর্ণনাৰ মাধুর্য, চৰিত্র উপস্থাপনৰ সৰলতা, কাহিনী কথনৰ নৈপুণ্য এই ৰামায়ণখনৰ মন কৰিবলগীয়া দিশ। ৰামৰ জন্মৰ বর্ণনা প্রসংগত পৃথিৱীত যুগে যুগে অৱতাৰৰ আৱির্ভাৱৰ দৰে গীতাৰ প্রসংগও টানি অনা হৈছে। ৰামৰ জন্মৰ লগে লগে দশৰথৰ ৰাজ্যৰ সকলো প্রজাৰে বিপদ-বিঘিনি, ৰোগ-ব্যাধি আদি আঁতৰি যোৱাৰ বর্ণনা মনোৰম। অল্পায়ু জ্যোতিপ্রসাদ আগৰৱালাই সম্পূর্ণ কৰিবলৈ সময় পোৱা হ'লে এই ৰামায়ণখন অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ জগতত নিঃসন্দেহে আটাইতকৈ গুৰুত্বপূর্ণ ৰচনা হিচাপে পৰিগণিত হ'লহেঁতেন।

স্বাধীনতাৰ পৰৱর্তী কালত ৰামকথা আধাৰিত একাধিক শিশু-পুথি ৰচিত হৈছে। এই সময়ছোৱাৰ লেখকসকলৰ ভিতৰত অতুলচন্দ্র হাজৰিকাই ৰামায়ণৰ কথা-কাহিনীৰ আধাৰত একাধিক শিশু উপযোগী পুথি ৰচনা কৰিছে। '**ৰামায়ণৰ ৰহঘৰা**'ত ৰাম সম্পর্কীয় কাহিনী বিভিন্নজন ৰচকৰ

ৰচনাৰ পৰা আহৰণ কৰি একত্ৰ কৰা হৈছে। কাহিনীসমূহৰ নিৰ্বাচনৰ ক্ষেত্ৰত মন কৰা হৈছে যাতে ৰামায়ণৰ আদিকাণ্ডৰ পৰা উত্তৰাকাণ্ড আনকি তাৰ পাছৰ কাহিনীও সামৰি লোৱা হয়। '**ৰামায়ণৰ ৰহঘৰা**' হ'ল অসমীয়া ৰামায়ণী কাহিনীৰ আধাৰত যুগুত কৰা পুথি। বিভিন্ন ৰামায়ণী গ্ৰন্থৰ ৮টা কাহিনী ইয়াত শিশু উপযোগীকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। কাহিনীকেইটা হ'ল- মাধৱদেৱৰ আদিকাণ্ডৰ ভিত্তিত 'ৰাম জন্ম' আৰু 'সীতা সয়ম্বৰ'; মাধৱ কন্দলীৰ ৰচনাৰ পৰা 'ৰামৰ বনবাস'; দুৰ্গাবৰ কায়স্থৰ 'গীতি ৰামায়ণ'ৰ পৰা 'সীতা হৰণ'; অনন্ত কন্দলীৰ ৰচনাৰ পৰা 'মন্দোদৰীৰ মণিহৰণ', 'লক্ষ্মণৰ শক্তিশেল'; ৰাম সৰস্বতীৰ পৰা 'মৈৰাৰণ বধ'; গংগাৰামৰ ৰচনাৰ পৰা 'সীতাৰ বনবাস' আৰু ৰঘুনাথ মহন্তৰ ৰচনাৰ পৰা 'অদ্ভুত ৰামায়ণ'ৰ কাহিনী যুগুত কৰি পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট কৰা হৈছে। গ্ৰন্থখনত মূলৰ কাহিনীৰ পৰা আঁতৰি অহা নাই। একেখন পুথিতে ৰামায়ণৰ কাহিনী আৰু বিভিন্ন লেখকৰ ৰচনাৰ স্বাদ শিশুসকলক দিয়াৰ প্ৰচেষ্টা পুথিখনৰ লক্ষণীয় বৈশিষ্ট্য। এই প্ৰচেষ্টাই শিশুসকলক প্ৰাচীন অসমীয়া কবিসকলৰ লগতো পৰিচয় কৰাই দিবলৈ সক্ষম হৈছে।

তদুপৰি কবিতা, জীৱন-কথা, নাটকৰ কাহিনী, গীতি-নাট আদি হিচাপেও ৰামকথা সম্পৰ্কীয় কাহিনী হাজৰিকাই শিশু উপযোগী কৰি লিখি উলিয়াইছে। তাৰ ভিতৰত "অংকীয়া নাটৰ সাধু"ত শংকৰদেৱৰ 'ৰাম বিজয়' নাটৰ কাহিনী চমুকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। জীৱনীমূলক গ্ৰন্থ "বিশ্বজ্যোতি"ত 'শ্ৰীৰামচন্দ্ৰ' শীৰ্ষকেৰে ৰামৰ জীৱন-কাহিনী চমু অথচ প্ৰাঞ্জলকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। কবিতা পুথি "মাণিকী মধুৰি"ত 'শূৰ্পনখাৰ চিভিল মেৰেজ', 'সোণৰ লঙ্কা' আৰু 'হনুমানৰ বস্ত্ৰ হৰণ' শীৰ্ষক খুহুতীয়া কবিতা অন্তৰ্ভুক্ত হৈছে। "পুৰণি সাহিত্যৰ পাৰিজাত"ত 'উত্তৰাকাণ্ডৰ সীতা'; "আমাৰ দেশ" পুথিত 'ৰামায়ণৰ ৰামৰাজ্য' আৰু "আমাৰ ভাৰত" পুথিত সন্নিৱিষ্ট 'ৰামায়ণৰ কথা' হাজৰিকাদেৱৰ ৰামকথা আধাৰিত অন্যান্য শিশু উপযোগী ৰচনা।

ওপৰৰ তালিকাত সন্নিৱিষ্ট প্ৰায়বোৰ পুথিতে ৰামায়ণৰ কথা, কাহিনী আদি সাধুকথা হিচাপে উপস্থাপিত হৈছে। ১৯৫৩ চনত বৰুৱা আৰু বৰুৱাৰ নামেৰে প্ৰকাশিত "অকণিৰ ৰামায়ণ" শীৰ্ষক পুথিত সাধু কোৱাৰ কৌশলেৰে সপ্তকাণ্ড ৰামায়ণৰ বিষয়বস্তু সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰা হৈছে। "ৰামায়ণৰ সাধু দুটামান কওঁ"ৰ দৰে পুথিত প্ৰত্যক্ষভাৱে ৰামৰ কাহিনী কোৱা হোৱা নাই, কিন্তু ৰামায়ণৰ অন্তৰ্গত বিভিন্ন উপ-কাহিনীক ঠাই দিয়া হৈছে। এই কাহিনীবোৰো ৰামৰ মূল কাহিনীৰ দৰেই মনোৰম তথা জ্ঞানপ্ৰদায়ক।

অসমত ৰামকথাৰ প্ৰভাৱ যথেষ্ট প্ৰাচীন। লোক-সাহিত্য বা মৌখিক সাহিত্যৰ সময়ৰে পৰা এই প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। লোক-সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত কিছুমান সাধুকথাৰ লগতে শিশু উপযোগী লোকগীত, সাঁথৰ আদিৰ মাজত ৰামকথা বা ৰামায়ণৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়। বৰ্তমান সময়লৈকে অসমীয়া ভাষাত প্ৰকাশ পোৱা ৰামকথা আধাৰিত শিশু-সাহিত্যৰাজিত ৰামকথাৰ উপস্থাপনৰ জৰিয়তে শিশুৰ মানসিক তথা নৈতিক চৰিত্ৰৰ গঠন আৰু উৎকৰ্ষ সাধনৰ ওপৰত লেখকসকলে যথেষ্ট গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে। এই সাহিত্যৰাজিত ৰামায়ণৰ ৰাম-সীতাৰ মূল কাহিনীটোৰ বাহিৰেও ৰামায়ণত উল্লেখ থকা অন্যান্য উপ-কাহিনীসমূহকো লেখকসকলে সাধুকথাৰ আকাৰত উপস্থাপন কৰিছে। প্ৰায় ক্ষেত্ৰতে এই কাহিনীসমূহৰ জৰিয়তে শিশুসকলক ন্যায়-নীতি, ধৰ্ম-অধৰ্ম, সত্য-অসত্যৰ দ্বন্দ্ব দেখুৱাবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে। মন কৰিবলগীয়া কথা যে ইতিপূৰ্বে ৰামায়ণৰ কথা ভাৰতৰ বহু ভাষাৰ বহুজন লেখকে বেলেগ বেলেগ ধৰণেৰে উপস্থাপন কৰি আহিছে। আনকি মূল বাল্মীকি ৰামায়ণৰো চাৰিটাকৈ পাঠ পোৱা যায়। গতিকে লেখকসকলে এনে বেলেগ বেলেগ ৰামায়ণৰ পৰা কাহিনীভাগ আহৰণ কৰিছে।

৩.২ মহাভাৰত আধাৰিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্য ঃ

অসমীয়া সমাজত মহাভাৰতৰ কথা আৰু কাহিনী যথেষ্ট জনপ্ৰিয়। মহাভাৰত চৰিত্ৰ আৰু ঘটনাৰাজিক কেন্দ্ৰ কৰি লোক-সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত বিবিধ সাহিত্য গঢ় লৈ উঠিছে। তাৰ ভিতৰত সাধুকথা, গীত, প্ৰবচন আদি উল্লেখযোগ্য। মহাভাৰতৰ বিবিধ কাহিনী অসমীয়া সমাজত সাধুকথা হিচাপে অতীজৰে পৰা মৌখিক পৰম্পৰাৰে প্ৰচলিত হৈ আহিছে। এনে কাহিনীৰ ভিতৰত প্ৰধানকৈ পাণ্ডৱৰ বনবাসৰ সময়ছোৱাৰ বিবিধ কাহিনী অসমীয়া জনসমাজত যথেষ্ট জনপ্ৰিয়। তদুপৰি প্ৰবাদ-প্ৰবচন, খণ্ডবাক্য আদিতো মহাভাৰতৰ কাহিনী বা চৰিত্ৰৰ প্ৰভাৱ পৰিছে।

অসমীয়া মানুহে বিশ্বাস কৰে যে 'যি নাই মহাভাৰতত,

সেয়া নাই ভাৰতত'। এনেধৰণৰ কথাই জনসমাজত মহাভাৰতৰ প্ৰভাৱকে প্ৰতিফলিত কৰে। 'কৌৰৱৰ লোণ খাই পাণ্ডৱৰ গুণ গোৱা', 'অশ্বত্থামা হত, ইতি গজ' আদি প্ৰবচন অসমীয়া সমাজত সততে ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। তদুপৰি বিবিধ প্ৰসংগত 'সুভদ্ৰা হৰণ', 'জতুগৃহ দাহ', 'ভীষ্মৰ শৰশয্যা', 'খাণ্ডৱ-দাহ', 'যুধিষ্ঠিৰৰ স্বৰ্গযাত্ৰা' আদি মহাভাৰতৰ প্ৰসংগ সম্বলিত খণ্ডবাক্য সঘনে ব্যৱহৃত হয়।

বৈষ্ণৱ যুগত ৰচিত 'ভীমচৰিত'-ৰ দৰে পুথি মহাভাৰতৰ ভীম চৰিত্ৰক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত জনপ্ৰিয় সাহিত্য। শিশুক উদ্দেশ্য কৰি ৰচনা কৰা হোৱা নাছিল যদিও পুথিখন এসময়ত শিশুৰ মাজত যথেষ্ট জনপ্ৰিয় আছিল বুলি জনা যায় [বৰা ১৮৭৮ শক ঃ ৯৩]।

আধুনিক অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ জগতত মহাভাৰতৰ কাহিনী অথবা চৰিত্ৰক কেন্দ্ৰ কৰি কিছুসংখ্যক শিশু উপযোগী পুথি ৰচনা কৰা পৰিলক্ষিত হয়। ইয়াৰে প্ৰায়বোৰ পুথিয়েই কাহিনীৰ পুথি। তাৰ ভিতৰত অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ 'অমৃত মহাভাৰত'; তাৰানাথ বৰপূজাৰীৰ 'মহাভাৰতৰ ৰহঘৰা', 'মহাভাৰতৰ মৌ-বিচনী'; ৰোষেশ্বৰ শৰ্মাৰ 'কথা মহাভাৰত'; সুৰেন্দ্ৰ কুমাৰ দাসৰ 'ভীমৰ সাধু'; কেশদা মহন্তৰ 'মহাভাৰতৰ সাধু দুটামান কওঁ'; মায়া বৰুৱাৰ 'মহাভাৰতৰ কাহিনী' (১৯৯৪); কৰবী ডেকা হাজৰিকাৰ 'প্ৰাচীন ভাৰতীয় আখ্যান' (১৯৯৯); খগেন্দ্ৰনাৰায়ণ দত্ত বৰুৱাৰ 'অকণিৰ মহাভাৰত'; নিৰুপমা মিশ্ৰৰ 'মহাভাৰতৰ কাহিনী'; গুণমণি নাথৰ 'মহাভাৰতৰ মনোৰম কাহিনী'; প্ৰদীপ কুমাৰৰ 'অকণিৰ মহাভাৰত'; হৰিনাৰায়ণ দত্তবৰুৱাৰ 'শিশু মহাভাৰত'; হৰেন্দ্ৰ নাথ শৰ্মাৰ 'সাবিত্ৰী', 'নল-দময়ন্তী'; ভাৰত চন্দ্ৰ পাঠকৰ 'মহাভাৰতৰ মৌ কোঁহ'; চাৰুপ্ৰভা ডেকাৰ 'মহাভাৰতৰ সাধু' আদি উল্লেখযোগ্য। ইয়াৰে প্ৰায়বোৰ পুথিতে মহাভাৰতৰ নিৰ্বাচিত কাহিনী সংকলিত হৈছে। আনহাতে মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ 'মৌ-মহাভাৰত', অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ 'অমৃত মহাভাৰত' আদি হৈছে মহাভাৰতৰ সম্পূৰ্ণ অথচ সংক্ষিপ্ত সংস্কৰণ।

মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ 'মৌ-মহাভাৰত' (১৯২৫) মহাভাৰতৰ কাহিনীৰ শিশু উপযোগী সংক্ষিপ্ত সংস্কৰণ। **মৌ-মহাভাৰততে** মহাকাব্যখনৰ কাহিনী অতি চমুকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। মহাকাব্যখনৰ মুঠ ওঠৰটা পৰ্ব বা অধ্যায়ৰ কাহিনীভাগ অতি চমুকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। পুথিৰ আৰম্ভণিতে 'জোৰণি' অংশত ব্যাসদেৱে মহাভাৰত ৰচনা কৰাৰ আঁৰৰ কথাখিনি উল্লেখ কৰিছে। পুথি ৰচনা কৰিবলৈ মন কৰি লেখাৰু হিচাপে সহায় বিচাৰি ব্যাসদেৱ ব্ৰহ্মাৰ ওচৰ চাপিলত তেওঁ গণেশৰ সহায় বিচাৰিবলৈ উপদেশ দিয়ে। লিখি থাকোঁতে ৰ'বলগীয়া হ'লে কাপ এৰিব বুলি কৰা গণেশৰ চৰ্তৰ উত্তৰত কোনো শ্লোক বা শব্দ নুবুজাকৈ লিখিব নোৱাৰিব বুলি ব্যাসদেৱে চৰ্ত বান্ধি দিয়ে। সেই অনুসৰি মহাভাৰতৰ মাজে মাজে কিছুসংখ্যক কঠিন শ্লোকৰ সমাৱেশ ঘটিছে, এইবোৰক মহাভাৰতৰ গাঁঠি বোলা হৈছে।

মহাভাৰতৰ মুঠ এশটা পৰ্ব বা আধ্যাৰ ভিতৰত ওঠৰটা হৈছে আচল পৰ্ব। সেইকেইটা হৈছে-

"বিৰাট, উদ্যোগ, ভীষ্ম, আদি, সভা, বন।
কৰ্ণ, শল্য, সৌপ্তিক, স্ত্ৰী, শান্ত্যানুশাসন।।
আশ্ৰমবাসাশ্বমেধ, মূষলানুশাসন।
মহাপ্ৰস্থানৰ লগে স্বৰ্গ আৰোহণ।।"

অৰ্থাৎ আদি, সভা, বন, বিৰাট, উদ্যোগ, ভীষ্ম, দ্ৰোণ, কৰ্ণ, শল্য, সৌপ্তিক, স্ত্ৰী, শান্তি, অনুশাসন, অশ্বমেধ, আশ্ৰমবাস, মূষল, মহাপ্ৰস্থান আৰু স্বৰ্গাৰোহণ পৰ্ব। আদিপৰ্বৰ ৰুৰু-প্ৰমদ্বৰাৰ আখ্যানৰ পৰা আৰম্ভ কৰি উপমন্যু, আৰুণি, উতংকৰ কাহিনী; জন্মেজয়ৰ সৰ্পযজ্ঞৰ কাহিনী; দুষ্মন্ত-শকুন্তলাৰ আখ্যান আদিৰ পিছত শান্তনু-গংগা-সত্যৱতীৰ কাহিনীৰে মহাভাৰতৰ মূল কাহিনীৰ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। কৌৰৱ আৰু পাণ্ডৱৰ জন্মৰ কাহিনী অথবা মহাভাৰতৰ বিবিধ অলৌকিক কাহিনীসমূহ সহজ-সৰল ভাষাৰে অতি চমুকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। মিত্ৰদেৱ মহন্তই মহাভাৰতৰ ভিন ভিন কাহিনীসমূহৰ মাজত যিবোৰ কাহিনীত কম বয়সীয়া পাঠক-পাঠিকাৰ মনত মানৱীয় গুণৰাজি-দয়া, ক্ষমা, কৰুণা আদি ভাব কৰ্ষণৰ সুযোগ আছে; সেইসমূহ কাহিনীকহে অধিক গুৰুত্ব দিছে। যুদ্ধাদিৰ বৰ্ণনাতকৈ মহাভাৰতৰ সৰু সৰু লোকৰঞ্জক কাহিনীহে 'মৌ-মহাভাৰত'ৰ আকৰ্ষণ। ভীমৰ বীৰত্বৰ কাহিনীয়েও যথেষ্ট গুৰুত্ব লাভ কৰিছে। প্ৰসংগক্ৰমে উল্লেখযোগ্য যে ভীম আৰু বকাসুৰৰ আখ্যানত লেখকে ৰাম সৰস্বতীৰ জনপ্ৰিয় কাব্য 'ভীম-চৰিত'ৰ পদ উদ্ধৃত কৰিছে। ঠিক সেইদৰে আন আন কাহিনীৰ প্ৰসংগত নাটকীয় কলা-কৌশল প্ৰয়োগ কৰা হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে, শকুনি আৰু যুধিষ্ঠিৰৰ পাশাখেলৰ বৰ্ণনা প্ৰসংগত নাটকীয় কৌশলৰ

প্রয়োগ ঘটিছে। চৰিত্রসমূহৰ বৰ্ণনাৰ ক্ষেত্রত লেখকে প্রতিটো চৰিত্রৰ প্রতি পাঠকৰ সহমর্মিতা আকর্ষণ কৰাত সফল হৈছে।

অতুলচন্দ্র হাজৰিকাৰ 'অমৃত মহাভাৰত' (১৯৯৬)-তো মহাভাৰতৰ প্রধান পর্বকেইটাৰ কাহিনী সংক্ষিপ্তভাৱে সংকলিত হৈছে। ইয়াতো সমগ্র মহাভাৰতৰ সৰু সৰু কথা-কাহিনী আদি শিশুৰ উপযোগীকৈ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। লেখকৰ দেহাৱসানৰ পৰৱর্তী কালত প্রবীণ চন্দ্র দাসৰ সম্পাদনাত পুথিখন প্রকাশ পায়। 'অমৃত মহাভাৰত'ৰ বাহিৰেও অতুলচন্দ্র হাজৰিকাই মহাভাৰতৰ কাহিনী বা চৰিত্রক কেন্দ্র কৰি কিছু শিশু উপযোগী কবিতা, কাহিনী আদি ৰচনা কৰিছে। তেওঁৰ কবিতা পুথি 'ৰুণুক-জুনুক'ত দুর্যোধন, কর্ণ, শ্রীকৃষ্ণ আদিক কেন্দ্র কৰি কবিতা সংকলিত হৈছে। চমু কবিতাকেইটাত এই চৰিত্রকেইটিৰ কাহিনী সাৱলীলভাৱে সামৰি লোৱা হৈছে। যেনে—

"মহাভাৰতৰ মহাবীৰ মই
সূতপুত্র কর্ণ নাম-
ক্ষত্রিয়া মাতৃ দেৱতা পিতৃ
গুৰু জামদগ্ন্য ৰাম।" ('কর্ণ')

তেওঁৰ 'ভাৰত জেউতি'ত মহাভাৰতৰ কেইটিমান চৰিত্র, ভীষ্ম, দ্রোণাচার্য্য, কর্ণ, ভগদত্ত, ঘটোৎকচ, অভিমন্যু আৰু বিদুৰৰ জীৱন কাহিনী বিতংভাৱে বর্ণিত হৈছে। একেদৰে 'আগৰ দিন'ত ভগদত্ত আৰু ঘটোৎকচৰ কাহিনী চমুকৈ বর্ণিত হৈছে। 'আমাৰ দেশ'ত মহাভাৰতৰ মহাযুদ্ধৰ কাহিনী আদিৰ পৰা অন্তলৈ একেবাৰে চমুকৈ সন্নিৱিষ্ট হৈছে। আনহাতে 'ৰংমহল'ত ভীষ্ম, একলব্য, দাতা কর্ণ আদিৰ কাহিনী চমু গীতি-নাটিকা হিচাপে বর্ণনা কৰা হৈছে।

বর্তমান সময়ত মহাভাৰতৰ কাহিনী আৰু চৰিত্রক কেন্দ্র কৰি সৰু সৰু সচিত্র কাহিনী-পুথি ৰচিত হৈছে। এই সচিত্র পুথিসমূহেও পাঠকৰ সমাদৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

৩.৩ পুৰাণ আধাৰিত অসমীয়া শিশু-সাহিত্য ঃ

বিভিন্ন পুৰাণসমূহৰ কথা-কাহিনী, চৰিত্র আদিক কেন্দ্র কৰিও শিশু-সাহিত্য ৰচিত হৈছে। পুৰাণৰপৰা কাহিনী আহৰণ কৰোঁতে প্রধানকৈ শিশুক নৈতিক অথবা ধর্মীয় শিক্ষা দিবপৰা ধৰণৰ কাহিনী নির্বাচন কৰা হৈছে। বিষ্ণুপুৰাণ, ভাগৱত পুৰাণ আদিত বর্ণিত ধ্রুৱ, প্রহ্লাদ আদি চৰিত্রৰ কাহিনী শিশু উপযোগী ধৰণেৰে লিখি উলিওৱা হৈছে। ধর্মেশ্বৰ কটকীৰ 'অকণিৰ ধ্রুৱ', 'প্রহ্লাদ' আদি পুথিৰ কথা এই প্রসঙ্গত উল্লেখ কৰিব পাৰি।

৩.৪ অন্যান্য ঃ

সংস্কৃত সাহিত্যৰ আন গুৰুত্বপূর্ণ সম্ভাৰৰ ভিতৰত পঞ্চতন্ত্র, হিতোপদেশ, বত্রিশ সিংহাসন, কথাসৰিৎসাগৰ আদিৰ কথা উল্লেখ কৰিব পাৰি। এই কাহিনীসমূহৰ প্রাচীনত্ব সম্পর্কে বাদানুবাদ থাকিলেও এটা কথা স্পষ্ট যে এইধৰণৰ কাহিনী পৰম্পৰাই ভাৰতবর্ষতে বিকাশ লাভ কৰিছিল। এই পুথিসমূহক কেন্দ্র কৰি অসমীয়া ভাষাত ভালেসংখ্যক শিশু উপযোগী পুথি ৰচিত আৰু প্রকাশিত হৈছে।

সংস্কৃত সাহিত্যৰ এই সাহিত্য সম্ভাৰৰ পৰা বিষয়বস্তু আহৰণ কৰা অসমীয়া শিশু উপযোগী পুথিৰ ভিতৰত ইন্দ্রধৰ ৰাজখোৱাৰ 'হিতোপদেশ', 'মিত্রলাভ'; প্রভাত চন্দ্র শর্মাৰ 'পঞ্চতন্ত্র' (১৯৬৬); দণ্ডিৰাম দত্তৰ 'বত্রিশ পুতলা'; মহেশ চন্দ্র ভট্টাচার্যৰ 'ভাৰতীয় কাহিনী' (১৯৭২); নির্মলপ্রভা বৰদলৈৰ 'কথা-সৰিৎ-সাগৰ' (১৯৭৫); কৈলাস শর্মাৰ 'কথা সৰিৎ সাগৰ'; মহেশ চন্দ্র কটকী১ 'বেতাল পঞ্চবিংশতি', 'গজমুকুতা'; দণ্ডিৰাম দত্তৰ 'বত্রিশ পুতলা'; মহিম বৰাৰ 'বত্রিশ পুতলাৰ সাধু' (১৯৮৮); সুৰেন্দ্রনাৰায়ণ গোস্বামীৰ 'কথা সৰিৎ সাগৰৰ সাধু'; খগেশ্বৰ শর্মাৰ 'পঞ্চতন্ত্রৰ সাধু'; চিত্রভানুৰ 'বিক্রম বেতালৰ সাধু', 'বত্রিশ পুতলাৰ সাধু'; প্রদীপ নাৰায়ণ ভট্টৰ 'পঞ্চতন্ত্রৰ সাধু' (২০১৬); নৰকান্ত বৰদলৈৰ 'বেতালৰ সাধু' (২০১৬); সুৰেন্দ্র নাৰায়ণ গোস্বামীৰ 'কথা সৰিৎ সাগৰৰ সাধু'; অভিজিৎ শর্মা বৰুৱাৰ 'হিতোপদেশৰ সাধু' আদিৰ কথা ক'ব পাৰি। এই শিশু উপযোগী পুথিসমূহত মূল সংস্কৃত গ্রন্থৰপৰা কাহিনী অথবা চৰিত্র আহৰণ কৰা হৈছে।

৪.০ সামৰণি ঃ

এই আলোচনাৰপৰা স্পষ্ট হয় যে, সংস্কৃত সাহিত্যই অসমীয়া শিশু-সাহিত্যৰ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। শিশু-সাহিত্যিকসকলে শিশুৰ বাবে কাহিনী লিখি উলিয়াওঁতে এইকেইটা দিশৰ প্রতি লক্ষ্য কৰা পৰিলক্ষিত হয়—

(ক) এই সাহিত্যৰাজিয়ে শিশুসকলক প্রাচীন কথা-কাহিনীৰ সোৱাদ দিবলৈ সক্ষম হৈছে। মহাকাব্য ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰতৰ কাহিনীৰ পৰম্পৰা অসমত যথেষ্ট প্রাচীন। গতিকে

ব্যক্তিয়ে সৰুকালৰে পৰা ইবিলাক কাহিনীৰ বিষয়ে জনা অত্যন্ত প্ৰয়োজনীয়। শিশু-সাহিত্যই এই দিশৰ প্ৰতিও লক্ষ্য ৰাখিছে।

(খ) ৰামায়ণৰ কাহিনীভিত্তিৰ শিশু-সাহিত্যত ৰামক আদৰ্শ চৰিত্ৰ হিচাপে উপস্থাপন কৰা হৈছে। শিশুসকলক যাতে চৰিত্ৰ গঠনৰ ক্ষেত্ৰত ৰামৰ চৰিত্ৰৰ পিতৃভক্তি, সত্যবাদিতা, ন্যায়নিষ্ঠতা, কৰ্তব্যপৰায়ণতা আদি গুণৰ দ্বাৰা অনুপ্ৰাণিত কৰিব পৰা যায়, সেই দিশত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হৈছে।

(গ) শিশুক নীতি-নৈতিকতা, ধৰ্ম-অধৰ্মৰ ধাৰণা দিয়াৰ লগতে শিশুৰ মাজত মানৱীয় গুণৰাশিৰ কৰ্ষণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

(ঘ) এই সাহিত্যৰাজিৰ জৰিয়তে অসমত প্ৰচলিত বিভিন্ন ৰামায়ণ, মহাভাৰত তথা পঞ্চতন্ত্ৰ, হিতোপদেশ আদিৰ নৈতিক কাহিনীসমূহৰ সোৱাদ দিয়াৰ দিশলৈও মন কৰা হৈছে।

(ঙ) সাধুকথা বা কাহিনীৰ প্ৰতি শিশুৰ কৌতূহলী মন অতি সহজে আকৰ্ষিত হয়। গতিকে শিশু-সাহিত্যসমূহত প্ৰাচীন সংস্কৃত সাহিত্যৰ কথা, কাহিনী আকাৰে উপস্থাপন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা দেখা যায়। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জীঃ

গোহাঁই, হীৰেন (সম্পা), ২০০৩ (১৯৮১) ঃ **জ্যোতিপ্ৰসাদ ৰচনাৱলী**, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ষষ্ঠ সং

বৰা, জ্ঞাননাথ, ১৮৭৮ শক, ভাদ ঃ 'ভীম চৰিত', ৰজনীকান্ত দেৱশৰ্মা সম্পাদিত ***অসম সাহিত্য সভা পত্ৰিকা***, পঞ্চদশ বছৰ, দ্বিতীয় সংখ্যা, web, পৃঃ ৯৩-৯৬

বেজবৰুৱা, লক্ষ্মীনাথ, ২০০৯ (১৯১১) ঃ **বুঢ়ী আইৰ সাধু**, ভৱানী প্ৰিণ্ট এণ্ড পাব্লিকেশ্যনচ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ

মহন্ত, কেশদা, ২০১১ (২০০৮) ঃ **অসমীয়া ৰামায়ণী সাহিত্য ঃ কথাবস্তুৰ আঁতিগুৰি**, বেদকণ্ঠ, যোৰহাট

মহন্ত বেজবৰা, নীৰাজনা, ২০০৪ ঃ **লোকতত্ত্ব জিজ্ঞাসা**, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, প্ৰথম সং

শইকীয়া, নগেন (মুখ্য সম্পা), অজয় কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্য আৰু সত্যকাম বৰঠাকুৰ (সম্পা.), ২০১২ ঃ **মিত্ৰদেৱ মহন্ত ৰচনাৱলী**, প্ৰেমানন্দ ন্যাস, দুলীয়াজান, প্ৰথম প্ৰকাশ

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰ নাথ, ২০০৬ ঃ **অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত**, সৌমাৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, নৱম সং

হাজৰিকা, সূৰ্য (সম্পা), ২০০৭ ঃ **সাহিত্যাচাৰ্য অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকা শিশু সাহিত্য সম্ভাৰ (তিনিটা খণ্ড)**, এছ. এইছ. এডুকেশ্বনেল ট্ৰাষ্ট, গুৱাহাটী

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

পাৰিৱেশিক সমালোচনা সাহিত্য, গভীৰ পাৰিৱেশিক তত্ত্ব, পাৰিৱেশিক আধ্যাত্মিকতা আৰু ৱর্ডছৱর্থৰ নির্বাচিত কবিতা ঃ এক অধ্যয়ন

ড° জ্ঞানেন্দ্র বর্মন

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৯৮৬৪৪৪৪৯৮৬
jnanendrabarman9@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

কাব্যজগতত ইংৰাজ কবি ৱিলিয়াম ৱর্ডছৱর্থৰ (১৭৭০-১৮৫০) এক বিশেষ স্থান আছে। ইংৰাজী সাহিত্যত ৰোমাণ্টিক আন্দোলনৰ অন্যতম হোতা ৱর্ডছৱর্থ আছিল প্রকৃতিৰ কবি। ৱর্ডচৱর্থৰ কাব্যতত্ত্বই কবিতাত চহা জীৱনৰ বিষয়বস্তু আৰু চহা জীৱনৰ কথিত ভাষাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। তেওঁৰ প্রকৃতি কেন্দ্রিক কবিতাসমূহে আমাক প্রকৃতি জগততো এক ঈশ্বৰিক সত্তাৰ উপস্থিতি অনুভূত কৰায়। পশ্চিমীয়া দর্শন আৰু সাহিত্যৰ বাগধাৰাত মুনষ্যকেন্দ্রিক দৃষ্টিভংগীৰ আধিপত্যৰ বিপৰীতে ৱর্ডছৱর্থৰ কবিতাত দেখিবলৈ পোৱা প্রকৃতি কেন্দ্রিক দৃষ্টিভংগীয়ে তেওঁক ভাৰতীয় দর্শনৰ কাষ চপাই আনে। মনুষ্যকেন্দ্রিক বিচাৰধাৰাত মানুহক সকলো বাগধাৰাৰ কেন্দ্রত অৱস্থান কৰাই প্রকৃতিৰ প্রান্তীয় উপস্থিতিকহে মান্যতা দিয়া হয়। প্রকৃতিৰ ওপৰত চলা শোষন নির্যানতৰ বাবে এই মুনষ্যকেন্দ্রিক বিচাৰধাৰাকে দোষী সাব্যস্ত কৰি পাৰিবেশিক দার্শনিক সকলে প্রকৃতি কেন্দ্রিক বিচাৰধাৰাৰ উত্থানৰ প্রয়োজনীয়তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। আমাৰ এই আলোচনাত গভীৰ পাৰিবেশিক আন্দোলন (Deep Ecology Movement) আৰু আধ্যাত্মিক পাৰিবেশিকতাবাদৰ আলোকত ৱর্ডছৱর্থৰ নির্বাচিত কবিতাৰ এক বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ পাৰিবেশিক আধ্যাত্মিকতা, গভীৰ পাৰিবেশিক তত্ত্ব

প্রস্তাৱনা ঃ

ৰেনেছা যুগত ঈশ্বৰ কেন্দ্রিক ধাৰণাৰ পৰিৱর্তে মনুষ্য কেন্দ্রিক ধাৰণা গাঢ় হোৱা দেখা যায়। ফ্রান্সিছ বেকনে *The advancement of Learning* গ্রন্থত মানুহৰ স্বার্থত প্রকৃতিৰ ওপৰত মানুহৰ শোষনক নায্যতা প্রদান কৰা দেখা যায়। ১৬ শতিকাৰ পৰা উদ্যোগিক বিপ্লৱলৈ এই সময়ছোৱাত য়ুৰোপীয় সমাজত যুক্তিবাদৰ বাগধাৰা মহাবৃত্তান্ত ৰূপত উত্থান হোৱাৰ সমান্তৰালে প্রকৃতিৰ ব্যৱহাৰিক বা উপযোগী মূল্যৰ ওপৰতহে গুৰুত্ব দিয়াৰ প্রৱণতা শক্তিশালী হয়। ইয়াৰ পৰিণতি স্বৰূপে প্রকৃতিৰ ওপৰত মানুহৰ শোষন নির্যাতন চলিল অবৰাম। পৰৱর্তী শতিকা কেইটাত এই সংকট অধীক ঘণীভূত হৈ পৰিল। প্রকৃতিলৈ নামি অহা এই সংকটে সমগ্র বিশ্বক উদ্বিগ্ন কৰি ৰাখিছে। প্রকৃতিৰ

অৰক্ষয় মানৰ সভ্যতাৰ বিনাশৰ কাৰণ হ'ব পাৰে। প্ৰকৃতিৰ ওপৰত মানুহৰ শোষণেই প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশৰ ভাৰসাম্য বিনষ্ট কৰিছে, পৰিৱেশ প্ৰদূষণে ভয়াবহ ৰূপ লৈছে। কাৰ্বন-ডাই-অক্সাইডৰ নিৰ্গমন প্ৰতি বছৰে ৩৫ বিলিয়ন টনলৈ বৃদ্ধি হৈছে। ১৯৭০ চনৰ পৰা পূৰ্বৰ তুলনাত কাৰ্বন-ডাই-অক্সাইডৰ নিৰ্গমন ৯০% বৃদ্ধি হৈছে। যোৱাটো শতিকাত পৃথিৱীৰ উপৰিভাগৰ উষ্ণতা ০.৬% বৃদ্ধি হৈছে; ঊনৈশ শতিকাৰ শেষভাগৰ পৰা এতিয়ালৈ ১ ডিগ্ৰী চেলছিয়াছ উষ্ণতা বৃদ্ধি হৈছে। গোলকীয় উষ্ণতা বৃদ্ধি পালে এণ্টাৰ্কটিকা মহাদেশৰ বৰফ গলিবলৈ আৰম্ভ কৰিব; সিয়ে বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তলৈ ভয়াবহ ভাবুকি কঢ়িয়াই আনিব। পৰিবেশ সংকটৰ পৰা পৰিত্ৰাণ বিচাৰি বিশ্বজুৰি সজাগতা আৰম্ভ হৈছে। মানুহ প্ৰকৃতিৰ সু-সম্পৰ্কৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ ওপৰতো গুৰুত্ব দিয়া হৈছে। মনুষ্য কেন্দ্ৰিক বিচাৰধাৰাৰ পৰিৱৰ্তে প্ৰকৃতিকেন্দ্ৰিক বিচাৰধাৰাৰ পোষকতা কৰা হৈছে। সাহিত্য ক্ষেত্ৰটো প্ৰকৃতি কেন্দ্ৰিক সাহিত্যিক সাহিত্যৰ মুখ্য ধাৰাত প্ৰতিষ্ঠাৰ চেষ্টা চলোৱা হৈছে। সাহিত্যত মানুহ প্ৰকৃতিৰ সম্পৰ্কৰ উপস্থাপনৰ ওপৰত বিশ্লেষণ আৰম্ভ হৈছে। পাৰিবেশিক দাৰ্শনিক সকলে মানুহ-প্ৰকৃতিৰ সম্পৰ্কৰ নতুন দিগবিন্যাসৰ পোষকতা কৰি প্ৰকৃতি কেন্দ্ৰিক বাগধাৰাৰ উত্থানৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে।

প্ৰকৃতিলৈ নামি অহা সংকটৰ প্ৰেক্ষাপটত এক গভীৰ "আত্ম উপলব্ধি' আৰু 'জৈৱকেন্দ্ৰিক সমতা'ৰ দৃষ্টিভংগী লৈ মানুহ-প্ৰকৃতিৰ সম্পৰ্কৰ নতুন দিগবিন্যাসৰ প্ৰয়োজনীয়তা নুই কৰিব নোৱাৰি। গভীৰ পাৰিবেশিক তত্ত্ব আৰু আধ্যাত্মিক পাৰিবেশিকতাৰ মৌলিক ধাৰণা সমূহৰ আলোকত সাহিত্যৰ নতুন দিগবিন্যাসৰো প্ৰয়োজন অনুভৱ কৰা হৈছে।

সাহিত্য ক্ষেত্ৰত পাৰিবেশিক সমালোচনাই প্ৰকৃতি কেন্দ্ৰিক সাহিত্যক সন্মুখলৈ আনি মুখ্য বাগধাৰাত প্ৰতিষ্ঠাৰ প্ৰয়াস কৰে। এই দৃষ্টিৰে বিখ্যাত ইংৰাজ কবি ৱিলিয়াম ৱৰ্ডচৱৰ্থৰ সাহিত্য কৃতিৰ গুৰুত্ব অসীম। পশ্চিমীয়া মুনষ্যকেন্দ্ৰিক যুক্তিবাদৰ মহাবৃত্তান্তৰ আধিপত্যই প্ৰকৃতিক প্ৰান্তীয় স্থানলৈ নিৰ্বাসিত কৰাৰ বিপৰীতে ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ কবিতাত প্ৰকৃতিয়ে এক কৰ্তাৰ ৰূপত আৱিৰ্ভাৱ হোৱা দেখা যায়। ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ কবিতাৰ এক সুক্ষ্ম অধ্যয়নে এক প্ৰকৃতি কেন্দ্ৰিক বাগধাৰাৰ সন্ধান দিব বুলি আশা কৰিব পাৰি।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্ৰকৃতিলৈ নামি অহা সংকটে মানৱ সভ্যতালৈ ভাবুকি কঢ়িয়াই অনাৰ প্ৰেক্ষাপটত মানুহ-প্ৰকৃতিৰ সু-সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিব পৰা এক বাগধাৰাৰ প্ৰয়োজন অনুভৱ কৰা হৈছে। গভীৰ পাৰিৱেশিক আন্দোলনৰ হোতা আৰ্ণেছে এক প্ৰকৃতিকেন্দ্ৰিক (ecocentric) দৃষ্টিভংগীৰ পোষকতা কৰে; প্ৰকৃতিৰ পবিত্ৰতা, স্বতন্ত্ৰ উপস্থিতিক মান্যতা দিয়াৰ পোষকতা কৰে। সাহিত্য ক্ষেত্ৰত পাৰিবেশিক সমালোচক সকলে (Eco critic) প্ৰকৃতিকেন্দ্ৰিক সাহিত্যক সন্মুখলৈ আনি সাহিত্যৰ মুখ্য ধাৰাত স্থান দিবলৈ প্ৰয়াস কৰে। আমাৰ এই প্ৰবন্ধত গভীৰ পাৰিবেশিক আন্দোলন আৰু আধ্যাত্মিক পাৰিবেশিকতাৰ আলোকত ৱিলিয়াম ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ নিৰ্বাচিত কবিতাৰ এক বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হ'ব। ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ কবিতাত প্ৰকৃতি কেন্দ্ৰিক বাগধাৰাৰ অন্বেষণ এই অধ্যয়নত কৰা হ'ব।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গভীৰ পাৰিবেশিক আন্দোলনৰ মুখ্য বিন্দুবোৰ ৰাৰু আধ্যাত্মিক পাৰিবেশিকতাৰ মূল ধাৰণাসমূহৰ আলোকত ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ "টিণ্টাৰ্ণ এবি" আৰু "দ্য টেবলচ টাৰ্ণড" কবিতাৰ আলোচনা কৰা হ'ব। প্ৰবন্ধটি মূলতঃ বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তা ঃ

বিদ্যায়তনিক ক্ষেত্ৰত পাৰিবেশিক সমালোচনা সাহিত্যৰ ওপৰত আলোচনা বা চৰ্চা হৈছে যদিও গভীৰ পাৰিবেশিক আন্দোলন আৰু আধ্যাত্মিক পাৰিবেশিকতাবাদৰ ওপৰত অসমীয়া ভাষাত গভীৰ অধ্যয়ন বা চিন্তা চৰ্চা পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। এই তত্ত্ব সমূহৰ আলোকত ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ কবিতাৰ আলোচনা বা বিশ্লেষণ অসমীয়া ভাষাত আমাৰ চকুত পৰা নাই। অসমৰ বিদ্যায়তনিক আৰু বৌদ্ধিক বাগধাৰাত এই বিষয়টিৰ সংযোজনে সাহিত্য ক্ষেত্ৰত প্ৰকৃতি সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নক এক নতুন মাত্ৰা দিব বুলি আশা কৰিব পাৰি।

পাৰিৱেশিক আধ্যাত্মিকতা ঃ

পাৰিৱেশিক আধ্যাত্মিকতাই আধ্যাত্মিকতা আৰু পাৰিপাৰ্শ্বিকতাৰ সম্পৰ্কৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি এক আধ্যাত্মিক দৃষ্টিভংগীয়ে পাৰিৱেশিক আধ্যাত্মিকতাক নিৰ্দেশিত কৰে বুলি ক'ব পাৰি। ব্যক্তি বা সম্প্ৰদায়ৰ ধৰ্মীয় দৃষ্টিকোণে প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি মানুহৰ দৃষ্টিভংগী বহু পৰিমাণে নিৰূপন কৰে। উদাহৰণ স্বৰূপে ভাৰতীয় দৰ্শন আৰু পৰম্পৰাত প্ৰকৃতিৰ মাজতো ঐশ্বৰিক সত্তাৰ উপস্থিতিক মান্যতা দিয়া হয়। মৎস, কুৰ্ম, বৰাহ আদি প্ৰকাৰৰ ঈশ্বৰৰ অৱতাৰ সমূহে ভাৰতীয় পৰম্পৰাত গভীৰ পাৰিৱেশিক আধ্যাত্মিক চেতনাৰ উমান দিয়ে।

পশ্চিমীয়া খ্ৰীষ্টিয়ান সভ্যতাত সৰ্বেশ্বৰবাদৰ স্থান নাই যদিও প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি গভীৰ আধ্যাত্মিক চেতনাৰ এক সুঁতি পশ্চিমীয়া সভ্যতাত অন্বেষণ কৰিব পাৰি।

সাহিত্যত পাৰিবেশিক তত্ত্বই প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ সম্পৰ্কৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। পাৰিবেশিক তাত্ত্বিকসকলে মনুষ্য কেন্দ্ৰিক (anthropocen tric) বিচাৰধাৰাৰ পৰিবৰ্ত্তে এক পৰিবেশ কেন্দ্ৰিক (eco-centric) বিচাৰধাৰাৰ উত্থানৰ সম্ভাৱনাৰ অন্বেষণ কৰে। প্ৰকৃতি বিষয়ক লেখাৰ পৰা প্ৰকৃতি কেন্দ্ৰিক সাহিত্যলৈ এক নতুন সাহিত্যৰ সূঁতি সাহিত্য ক্ষেত্ৰত দেখিবলৈ পোৱা যায়।

সমালোচক Buell এ পাৰিবেশিক সমালোচনা সাহিত্যৰ দুটা পৰ্যায় চিনাক্ত কৰিছে ঃ

(১) পাৰিবেশিক সমালোচনাৰ প্ৰথমটোৱে প্ৰধানত প্ৰকৃতি লেখা, অৰণ্য আৰু মহিলা জীৱনৰ প্ৰকৃতিৰ সৈতে থকা গভীৰ সামঞ্জস্যতাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰে।

(২) পাৰিবেশিক সমালোচনাৰ দ্বিতীয় ঢৌৱে পাৰিবেশিক ন্যায়, চৰহীয়া পাৰিপাৰ্শ্বিক অৱস্থা, সংবাদ মাধ্যম আৰু সাহিত্যৰ বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত মনোনিবেশ কৰে।

পাৰিবেশিক সমালোচনা সাহিত্যৰ তৃতীয়টো ঢৌৱে এক নতুন প্ৰকাৰৰ সমালোচনামূলক লেখাক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে যিয়ে ৰাষ্ট্ৰীয় সীমাৰ পৰিধি অতিক্ৰমি বিভিন্ন সাংস্কৃতিক প্ৰেক্ষাপটত মানুহৰ অভিজ্ঞতাৰ তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰে। গভীৰ পৰিবেশ আন্দোলনৰ হোতা আৰ্ণেছে (Arne Naess) মত প্ৰকাশ কৰে যে প্ৰকৃতি জগতৰো অন্তনিৰ্হিত (intrinsci) মূল্য আছে আৰু এই মূল্য মনুষ্য নিৰ্ভৰ নহয়। প্ৰকৃতি জগতৰ জীৱকুলৰো জীয়াই থকাৰ আৰু বিকশি উঠাৰ (flourish) অধিকাৰ আছে। মানুহৰ উপযোগীতাৰ বাবে প্ৰকৃতি সংৰক্ষণ কৰিব লাগে বোল দৃষ্টিভংগীক অগভীৰ পাৰিবেশিকতা বুলি আৰ্ণেছে সমালোচনা কৰিছে। ইয়াৰ বিপৰীতে তেওঁ প্ৰকৃতি জগতৰ অন্তৰ্নিহিত মূল্য আৰু স্বায়ত্ততাক মান্যতা দিয়াৰ পোষকতা কৰে।

১৯৭০ৰ দশকত গভীৰ পাৰিবেশিকতাবাদ এক আন্দোলন হিচাপে উত্থান হয় আৰু তেতিয়াৰ পৰাই ই পশ্চিমীয়া সমাজত পৰিবেশ সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত আটাইতকৈ প্ৰভাৱশালী আন্দোলন হিচাপে মান্যতা পাই আছে। মনুষ্য কেন্দ্ৰিক পৰিবেশ সংৰক্ষণৰ আন্দোলনক অগভীৰ আখ্যা দি এই আন্দোলনে প্ৰকৃতিৰ অন্তৰ্নিহিত মূল্যক মান্যতা প্ৰদানৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে।

"Nature, as conceived by field ecologist, is not the passive dead, value-neutral nature of mechanistic science but is akin to the active, perfect 'Deu Sive Nature' of Spinoza. It is all inclusive, creative (as nature naturans) infinitely diverse, and alive in the broad sense of Spinozic Panpsychism" (Naess 226)

মনুষ্যকেন্দ্ৰিক বিচাৰধাৰাৰ পৰা পৰিবেশকেন্দ্ৰিক বিচাৰধাৰাৰ পোষকতা কৰি গভীৰ পৰিবেশ তাত্ত্বিক সকলে প্ৰকৃতি জগত নৈ, জান-জুৰি, পাহাৰ আদিৰ প্ৰতিও সমমাত্ৰিক আচৰণৰ পোষকতা কৰে।

"Deep ecology is concerned with encouraging an egalitarian attitude on the part of humans not only towards all members of the ecosphere, but even toward all identifiable entities or forms in the ecosphere. Thus this attitude is intended to include species and social system considered in their own right" (Garrard 21).

প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি এক পবিত্ৰ দৃষ্টিভংগী গ্ৰহণ কৰি গভীৰ পাৰিবেশিক আন্দোলনৰ হোতা আৰ্ণেছে পাৰিবেশ সংৰক্ষণৰ বাবে ৮ টা নীতি আগবঢ়াইছে।

(১) মনুষ্য আৰু অন্য-মনুস্য জীৱনৰ মঙ্গল আৰু বিকাশৰ নিজস্ব/স্বতন্ত্ৰ মূল্য আছে। এই মূল্যবোৰ মানুহৰ উদ্দেশ্য পূৰণৰ অৰ্থে অনা মনুষ্য জগতৰ উপকাৰিতাৰ ধাৰণাৰ পৰা মুক্ত বা স্বাধীন (The well-being and flourishing if human and non human life on Earth have value in themselves. These values are independent of the usefulness of the non-human world for human purpose).

(২) সমৃদ্ধ আৰু জীৱনৰ বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ বিচিত্ৰতাই এই মূল্যবোৰ উপলব্ধি কৰাত বৰঙণি যোগায় (Richness and diversity of life forms contribute to the realization of these values and are also values in themselves).

(৩) জীৱনৰক্ষাৰ প্ৰয়োজনীয়তা পূৰণৰ বাহিৰে মানুহৰ এই ঐশ্বৰ্য আৰু বিচিত্ৰতা হ্ৰাস কৰাৰ কোনো অধিকাৰ নাই। (Humans have no right to reduce this richness and diversity except to satisfy vital needs).

(৪) মানৱ জীৱন আৰু সংস্কৃতিৰ বিকাশ জনসংখ্যা হ্ৰাসৰ সৈতে সামঞ্জস্যপূৰ্ণ। অনা মনুষ্য জীৱনৰ বিকাশৰ বাবে মানৱ জনসংখ্যা হ্ৰাস হোৱাটো প্ৰয়োজনীয়। (The flourishing of human life and culture is compartible with a substantial decrease of the human population. The flourishing of non-human life

requires such a decrease.)

(৫) বর্তমান সময়ত অনা মনুষ্য জীৱকুলৰ জগতত মানৱৰ হস্তক্ষেপ অত্যাধিক আৰু এই পৰিস্থিতি দ্রুতগতিত অধিক বেয়াৰ ফালে গৈ আছে। (Present human interference with the nonhuman world is excessive, and the situation is rapidly worsening).

(৬) সেইবাবে, আঁচনিসমূহ সলনি হবই লাগিব। নতুন আঁচনিসমূহে মৌলিক অর্থনৈতিক, প্রযুক্তিগত, আৰু মতাদর্শগত গাঁথনি প্রভাৱিত কৰিব। ইয়াৰ পৰিণামগত কাম কাজ বর্তমানৰ পৰা গভীৰভাৱে পৃথক হব। (Policies must therefore be changed. These policies affect the basic economic, technological, and ideological structures. The resulting state of affairs will be deeply different from the present).

(৭) এই আদর্শগত পৰিবর্ত্তন মূলতঃ ক্রমবর্ধমান উচ্চতৰ জীৱনৰ মানদণ্ডৰ লগত সংলগ্ন হৈ থকাতকৈ গুণগত জীৱনৰ (অন্তর্নিহিত মূল্যৰ পৰিবেশত বাস কৰে) প্রশস্তিৰ বাবে। ইয়াত "ডাঙৰ" আৰু "মহান"ৰ মাজত সুগভীৰ সজাগতা থাকিব। (The ideological change is mainly that of appreciating lufe quality (dwelling in situations of inhereent value) rather than adhering to an increasingly higher standard of living. There will be a profound awarness of the difference between big and great.)

(৮) যিসকলে ওপৰত উল্লেখিত দিশবোৰৰ লগত সহমর্মিতা প্রকাশ কৰে সেইসকলৰ প্রয়োজনীয় পৰিবর্তন কার্যকৰীকৰণত প্রত্যক্ষ দায়বদ্ধতা আছে। (Those who subxcribe to the foregoing points have an obligation directly to try to implement the necessary change).

মানুহ-প্রকৃতিৰ উন্নত সম্পর্কৰ স্বার্থত গভীৰ পৰিবেশবিদসকলে পাৰিবেশিক সত্ত্বা (eco self)ৰ উত্থানৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। প্রকৃতিৰ প্রতি এক আধ্যাত্মিক দৃষ্টিভংগী লৈ গভীৰ পৰিবেশবিদসকলে আন জীৱকুলকো সাঙুৰি ল'ব পৰাকৈ মানৱ সত্ত্বাৰ বিস্তৃতিৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়ে। মানৱ সত্তাৰ বিস্তৃতিৰ বাবে মানুহ আৰু আন জীৱকুলৰ মাজত থকা 'দ্বৈত ৰূপক' (Binary) সম্পর্কৰ উত্তৰণ ঘটাতো প্রয়োজনীয়। প্রকৃতিও মানৱ সত্তা নির্মাণকাৰী উপাদান। পাৰিবেশিক সত্ত্বাৰ উত্থানৰ বাবে মানুহে নিজৰ "অহং সত্তা" (Ego self) ৰ উত্তৰণ ঘটোৱাটো প্রয়োজনীয়। Freya Mathews এ উনুকিওৱা কথা এইক্ষেত্রত প্রণিধানযোগ্য ঃ

'The individual denoted by 'I' is not constituted merely by a body or a personal ego or consciousness. I am, off course, partially constituted by these immediate physical and mental structures, but I am also constituted ecological relations with the elements of my enviroment...".

ৱর্ডছৱর্থৰ নির্বাচিত কবিতাত প্রকৃতিকেন্দ্রিক দৃষ্টিকোণ ঃ

১৭৯৮ চনৰ ১৩ জুলাই তাৰিখে ৱর্ডছৱর্থে দ্বিতীয়াবাৰৰ বাবে ৱাই (WYE) নদীৰ পশ্চিম পাৰত অৱস্থিত টিন্টার্ণ এবি ভ্রমণ কৰে। তাৰ প্রাকৃতিক সৌন্দর্যই কবিক গভীৰ ভাবে প্রভাৱিত কৰে আৰু কবিয়ে অনুভৱ কৰে প্রকৃতিৰ চৈতন্য সত্তা। "টিনন্টার্ণ এবি" কবিতাত কবিৰ এই ভ্রমণৰ অভিজ্ঞতা বর্ণিত হৈছে। কবিতাটিত কবিয়ে বর্ণনা কৰিছে কেনেদৰে জীৱনৰ বেলেগ বেলেগ পর্যায়ত প্রকৃতিয়ে কবিৰ মানৱ সত্তাক প্রভাৱিত কৰিছে। কবিৰ প্রকৃতিৰ প্রতি দৃষ্টিভংগীও উপস্থাপন হৈছে নৈসর্গিক ৰূপত।

মনুষ্যকেন্দ্রিক সমাজ ব্যৱস্থাত মানুহে প্রকৃতিৰ ওপৰত প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰি আহিছে। কিন্তু ৱর্ডছৱর্থৰ 'টিন্টার্ণ এবি' কবিতাত প্রকৃতিয়ে মানৱ সত্তাৰ ওপৰত প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰা দেখা যায়। মানৱ সত্তাক যেন উত্তৰণৰ বাট দেখুৱাব পাৰে প্রকৃতি দেৱীয়ে ঃ

"She can so inform

The mind that is within us so impress
With quietness and beauty, and so feed
With lofty thoughts...

প্রকৃতিৰ কোলাত পৰম আনন্দ অনুভৱ কৰিছে। প্রকৃতিয়ে যেন কবিক পার্থিবৰ পৰা অপার্থিৱ/ আধ্যাত্মিক প্রশস্তি উপলব্ধি কৰাইছে ঃ

"...that serene and blessed mood,
In which the affections gently lead us on,
Until, the breath of this corporeal fame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In bodv. and become a living loul"

ৱর্ডছৱর্থে তেওঁৰ মানৱ সত্তাৰ ওপৰত প্রকৃতিৰ ভূমিকা ঘোষণা কৰিছে এইদৰে ঃ "The anchor of my purest thoughts, the nurse/ The guide, the guardian of my heart, and soul/ Of all my moral being"

ভাৰতীয় সৰ্বেশ্ৱৰবাদী দৰ্শনৰ এক গভীৰ আধ্যাত্মিক উপলব্ধি ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ কবিতাত অধিক স্পষ্ট ৰূপত ধৰা দিয়ে। "টিন্টার্ণ এবি"ত ৱৰ্ডছৱৰ্থে নিজকে প্ৰকৃতিৰ উপাসক বুলি ঘোষণা কৰে ঃ

"...and that I, so long/ A worshipper of Nature, hither came..."

বিশিষ্ট সমালোচক মহেন্দ্ৰ বৰাৰ মন্তব্য এই ক্ষেত্ৰত প্ৰণিধানযোগ্য ঃ

"গছ-লতা, ঘাঁহ-ফুলত প্ৰাণৰ নিশাহ অনুভৱ কৰিয়েই তেওঁ ক্ষান্ত হোৱা নাছিল। অৱশেষত, তেওঁৰ তীক্ষ্ণ সন্ধানী দৃষ্টিয়ে প্ৰকৃতিৰ সমাজতে বিশ্ৱৰ কাৰণ-সত্তাক আৱিষ্কাৰ কৰিছিল। তেওঁ যে কেৱল অভ্ৰভেদী পৰ্বত-চূড়া, দিগন্তপ্ৰসাৰী সমুদ্ৰ অথবা অতলস্পৰ্শী জলপ্ৰপাতৰ দৰে অতি মহৎ, বিৰাট আৰু বিশাল ৰূপৰ মাজতে সেই বিশ্ৱৰ কাৰণ-সত্তাৰ অন্বেষণ কৰিছিল, এনে নহয়। কুলিৰ কুজন, ডেইজী ফুলৰ হাঁহি, লিনেট চৰাইৰ গান আৰু বন-ফৰিঙৰ পাখিৰ দৰে অতি ক্ষুদ্ৰ, তুচ্ছ আৰু সাধাৰণ ৰূপৰ মাজতো তেওঁ বিশ্ব-সত্তাৰ দিব্য অস্তিত্ব উপলব্ধি কৰিছিল।"

নিজৰ মানৱ সত্তা এক উচ্চতৰ পৰ্যায়ৰ উপলব্ধি আমি ৱৰ্ডছৱৰ্থৰ কবিতাটিত দেখিবলৈ পাওঁ। মানৱ সত্তৱ উত্তৰণ হৈ প্ৰকৃতিকো আত্মাত ধাৰণ কৰি ৱৰ্ডছৱৰ্থে এক নতুন দৃষ্টিভংগীৰ উন্মেষ ঘটোৱা বুলি ক'ব পাৰি।

১৭৯৮ চনত ৰচিত ৱৰ্ডচৱৰ্থৰ "The Tables Turned" কবিতাত প্ৰকৃতিক মানুহৰ শিক্ষাগুৰু হিচাপে উপস্থাপন কৰা হৈছে। প্ৰকৃতিৰ সৰলতা আৰু সৌন্দৰ্যক উদ্‌যাপন কৰা কবিতাটিত প্ৰকৃতিৰ পৰা শিকিবলৈ আহ্বান জনাইছে ঃ

"Come outside into the sunlight and allow
Yourself to learn from nature

প্ৰকৃতিৰ বুকুতে কবিয়ে মানৱতাৰ কণ্ঠস্বৰ শুনিবলৈ পাইছে। কবিয়ে অনুভৱ কৰিছে যে আটাইতকৈ জ্ঞানী মানুহতকৈও অধিক ভালকৈ প্ৰকৃতিয়ে আমাক মানৱতাৰ কথা শিকাব পাৰে ঃ

A forest in Spring will teach you more about
humanity, mor about wickdness and
goodness, than even the wisest of people ever could

কবিতাটোৰ আৰম্ভণিতে কবিয়ে তেওঁৰ এজন বন্ধুক কিতাপ এৰি প্ৰকৃতিৰ বুকুলৈ আহি প্ৰকৃতিৰ পৰা শিক্ষা ল'বলৈ আহ্বান জনাইছে। প্ৰকৃতিয়ে যি শিক্ষা দিব, গ্ৰন্থ অধ্যয়নেও যেন সেই শিক্ষা দিব নোৱাৰে।

আত্ম উপলব্ধিৰ ধাৰণা পৰম্পৰাগত আত্ম উপলব্ধিৰ ধাৰণাৰ পৰা পৃথক। এজন ব্যক্তি ভৱিষ্যতে ডাক্তৰ হ'ম বুলি লক্ষ্য নিৰ্দ্ধাৰণ কৰিছে আৰু এটা সময়ত গৈ ডাক্তৰ হৈছে- পৰম্পৰাগত অৰ্থত সেয়া আত্ম উপলব্ধি। এজনী পক্ষীয়ে আহত হৈ চটফটাই পৰি আছে, আপুনি প্ৰত্যক্ষ কৰিছে আৰু পক্ষীজনীৰ দুখ/কষ্ট বুলি অনুভৱ কৰিছে- গভীৰ পাৰিবেশিক দৃষ্টিভংগীৰে সেয়া আপোনাৰ আত্ম উপলব্ধি। প্ৰকৃতি জগতৰ দুখ কষ্ট, আবেগ আকাংক্ষা ধাৰণ কৰি আপোনাৰ সত্তা ই বিস্তৃতি লাভ কৰিছে, এক নতুন উপলব্ধি হৈছে। গভীৰ পাৰিবেশিক চেতনাৰ দৃষ্টিভংগীৰে সত্তাৰ বিস্তৃতিৰ উপলব্ধিয়ে হ'ল আত্ম উপলব্ধি। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

Garrard. Greg. *Ecocrticism*. Landon and New York : Routledge, 2004.

Naess. Arne. *Community and Lifestyle*. New York, Chambridge UP, 1989.

Neog. Maheswar. *Shankardeva and His Times*. Guwahati : Lawyers Book Stall, 1965.

Radhakrishnan. S. *Indian Philosophy Vol. 2* New Delhi : Oxford University Press, 1989.

Sarma. Chandradhar. *A Critical Survey of Indian Philosophy*. Delhi : Motilal Banarsidass Publishers, 2009.

Sessions. George and Devall. Bill *Deep Ecology*. Utah : Bibbs Smith, 2007.

Singer. Peter. Animal Liberation : *A New Ethics for our Treatment of Animals*. New York : The New York Review, 1975.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

ঐতিহ্যমণ্ডিত কলিয়াবৰ ঃ স্বাধীনতা সংগ্রামৰ জোৱাৰ আৰু গুণেশ্বৰী দেৱী

ড° অকুণ্ঠিতা বৰঠাকুৰ

অৱতৰণিকা ঃ

নগাঁও জিলাৰ পূব দিশত অৱস্থিত এক বৈশিষ্টপূর্ণ আৰু মহিমামণ্ডিত ঠায়েই হ'ল কলিয়াবৰ। কলিয়াবৰৰ উত্তৰে বৈ গৈছে মহাবাহু ব্রহ্মপুত্র। দক্ষিণে শাৰীপাতি আছে কার্বি পাহাৰৰ সেউজীয়া পাহাৰবোৰ। পশ্চিমে ঐতিহাসিক চামধৰা গড় আৰু পূৱে বিখ্যাত কাজিৰঙা অভয়াৰণ্য। ঠাই এখনৰ বুৎপত্তিগত পুনঃবিশ্লেষণৰ প্রয়োজন পৰৱর্তী সময়ত এই বাবেই অনুভৱ কৰা যায় যেতিয়া সময় আৰু সমাজ ব্যৱস্থাই উক্ত অঞ্চলটোক সাৰথি কৰি গণমুখী আন্দোলন এটালৈ আগ্রাসী ৰূপ কঢ়িয়াই আনে অথবা বৃহৎ সমাজ সংস্কাৰৰ বাট বোলে। বৃটিছ ঔপনিৱেশিক শক্তিৰ অপশাসনৰ বিৰুদ্ধে ভাৰতবাসীৰ মনত পুঞ্জীভূত ক্ষোভৰ মুক্ত প্রকাশ ঘটিছিল স্বাধীনতা আন্দোলনৰ জৰিয়তে। বৃটিছ প্রশাসন যন্ত্রৰ বিৰুদ্ধে একগোট হৈ থিয় দিয়াৰ প্রৱনতা সমগ্র ভাৰতবাসীৰ মনত বিয়পি পৰিছিল। এই সংগ্রামে সমাজৰ বিভিন্ন স্তৰৰ মানুহক এক লক্ষ্যৰ বাবে একগোট কৰি এক বৃহৎ ঔপনিৱেশিক শক্তিক আঁঠু ল'বলৈ বাধ্য কৰিছিল। সাম্রাজ্যবাদী শাসনে ঘূণীয়া কৰা ভাৰতীয় মনটোক মহাত্মা গান্ধীৰ একো একোটা আহ্বানে যেন উদ্বেলিত কৰি তুলিছিল। স্বাভিমানেৰে জীয়াই থকাৰ তাড়ণা ইমানেই গভীৰ আৰু আত্মপ্রত্যয়পূর্ণ আছিল যে বহিৰাগত শক্তিৰ ওচৰত আঁঠু লোৱাতকৈ আত্মবলিদান অধিক অর্থবহ বুলি বিবেচিত হৈছিল। জাতি, বর্ণ, ভাষাৰ ভেদাভেদ পাহৰি পুৰুষ-মহিলা সকলো ওলাই আহি দেশমাতৃৰ জয়গান গোৱা সেই দিনসমূহৰ একো একোটা ঘটনা কেৱল ইতিহাস লিখাৰ সমলেই নাছিল বৰং ই আছিল অনাগত প্রজন্মৰ সন্মুখত সহস্র সংগ্রামী সত্তাৰ জীৱন্ত দলিল।

এই মুক্তিযুঁজক সফল ৰূপ দিয়াত ভাৰতীয় নাৰীৰ অৱদান আছিল অতুলনীয় আৰু একক। কিছু সংখ্যকে যদি ৰাজনৈতিক কার্যকলাপত সক্রিয়ভাৱে অংশগ্রহণ কৰি সময়ে সময়ে আন্দোলনৰ নেতৃত্ব বহন কৰিছিল, আন বহুতে আকৌ নিজৰ বৌদ্ধিক দিশৰ প্রতিফলন ঘটাই হাতত কলম তুলি ৰাইজৰ মাজত সজাগতাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। সর্বভাৰতীয় প্রেক্ষাপটত গান্ধীজীৰ সক্রিয় অংশগ্রহণৰ লগে লগেই ভাৰতীয় মহিলাৰ অংশগ্রহণ বৃদ্ধি দেখা পোৱা যায়। তেওঁৰ আহ্বানত উদ্বুদ্ধ হৈ নাৰীসকলে যেন ঘৰৰ চাৰিবেৰৰ পৰা ওলাই আহি নিজৰ এক স্বাধীন পৰিচয় গঢ়ি তুলিবলৈ প্রেৰণা পাইছিল। গান্ধীজীৰ আদর্শ সাৰোগত কৰি অসমত স্বাধীনতা সংগ্রামত অংশগ্রহণ কৰা এক বিদূষী মহিলা আছিল কলিয়াবৰৰ গুণেশ্বৰী দেৱী। তেখেতে কেৱল নিজে অংশগ্রহণ কৰাই

সহযোগী অধ্যাপক, ইতিহাস বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১
৯৪৩৫৮৬৮৯৭৭
akunthita77@rediffmail.com

নহয়, আন বহুতো অসমীয়া মহিলাক এই আন্দোলনৰ অংশ হৈ দেশৰ স্বাধীনতাৰ সপোন বাস্তৱায়িত কৰিবলৈ উদ্বুদ্ধ কৰিছিল।

বীজ শব্দ ঃ

অসম, কলিয়াবৰ, গুণেশ্বৰী দেৱী, ভাৰত, স্বাধীনতা সংগ্ৰাম।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

কলিয়াবৰ ঠাইখনৰ এক ঐতিহাসিক মূল্যাংকন আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামত কলিয়াবৰীয়া ৰাইজৰ লগতে গুণেশ্বৰী দেৱীৰ অৱদান সম্পৰ্কে এই আলোচনা পত্ৰত বিশ্লেষণ কৰা হ'ব। স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ ইতিহাসত অসমৰ কলিয়াবৰৰ গুণেশ্বৰী দেৱীৰ যি গুৰুত্ব, তাক বিশ্লেষণ কৰাই এই আলোচনা পত্ৰৰ উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োটা উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে গুণেশ্বৰী দেৱীৰ পৰিয়ালৰ পৰা কিছু তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিভিন্ন গ্ৰন্থাদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

মূল বিষয় ঃ

জনশ্ৰুতি, লোকগাথা আৰু আখ্যানত বৰ্ণিত অসমীয়া সংস্কৃতিৰ ৰূপ-ৰস গন্ধে ৰমনীয় আৰু মোহনীয় মধ্য অসমস্থিত কলিয়াবৰ। প্ৰয়াত অভিৰাম ভূঞাদেৱৰ কবিতাৰ পংক্তিটোৱেও যেন সেই কথাকেই উনুকিয়াই দিয়ে।

"ধন্য কলিয়াবৰ,
ধন্য ধন্য তুমি তৰুবৰ
কলিয়াৰ পদ পৰশত
ধন্য যাৰ যুগে যুগে নাম।
সেই প্ৰভূ কলিয়াৰ কাম।"

কালানুক্ৰমে প্ৰচলিত হৈ অহা আখ্যান-উপাখ্যানে ঠাইখন সম্বন্ধে আমাৰ মনক আকৰ্ষিত কৰে। আখ্যান অনুসৰি ভগৱান শ্ৰীকৃষ্ণই ৰুক্মিণীক হৰণ কৰি আনি এজোপা বৰগছৰ ছাঁত জিৰাই ক্ষন্তেক আলাপ কৰিছিল আৰু তেতিয়াৰ পৰাই সেই বৰগছৰ নাম হয় কলিয়াবৰ। আকৌ আন কিছুমানৰ মতে খৃঃ ১৭৯৫ অব্দত আহোমৰ ক্ষমতাশালী বৰফুকন কলিয়াভোমোৰাই পশ্চিম অসমত সঘনে হৈ থকা বিদ্ৰোহ দমন কৰিবলৈ আহোম সৈন্যসকলৰ বাবে প্ৰয়োজন হোৱা এখন দলং নিৰ্মাণৰ কাৰ্য হাতত লয় আৰু ব্ৰহ্মপুত্ৰত স্তৰ বান্ধে লগতে বহু শালকাঠৰ খুঁটা গোটাই দ'ম কৰিছিল। সেই কলিয়াভোমোৰা ফুকনৰ নামেৰে কলিয়াবৰ নামটি থাকিলেও বিখ্যাত আৰু ঐতিহাসিকভাৱে খ্যাত হ'ব পাৰে। (কেওঁট, লক্ষীৰাম, ১৯৯৫, পৃষ্ঠা- ৫৭)।

প্ৰবাদমতে কলিয়াবৰ অঞ্চলত চ্যৱন মুণিৰ আশ্ৰম আছিল। দ্বিতীয় পাণ্ডৱ ভীমে বনবাসত থকা কালছোৱাত বধ কৰা বকাসুৰেও এই অঞ্চলত ৰাজ্য পাতিছিল। (কেওঁট, লক্ষীৰাম, ১৯৯৫, পৃষ্ঠা- ৫৭)। প্ৰবাদ বা আখ্যানসমূহৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি কোনো এখন ঠাইৰ ভৌগোলিক পৰিসীমা নিৰ্ধাৰণ কৰাটো সম্ভৱ নহয় যদিও ঠাইখনৰ অৱস্থিতিৰ সন্দৰ্ভত এক সম্যক জ্ঞান লাভ কৰিব পৰা যায়। ইতিহাতৰ পাতত খৃষ্টিয় ১৭৯৫ নৱম আৰু দশম শতিকাৰ ভিতৰত কামৰূপ শাসন কৰা শালস্তম্ভ ৰজাসকলে কলিয়াবৰ সীমনাৰে শিলঘাটৰ ৰজামুকুট পাহাৰত অসমৰ দ্বিতীয়খন কামাখ্যাধাম প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। (কেওঁট, লক্ষীৰাম, ১৯৯৫, পৃষ্ঠা- ৫৮)।

আহোম প্ৰশাসন ব্যৱস্থাত কলিয়াবৰ প্ৰশাসনৰ এক উল্লেখযোগ্য স্থান আছিল। স্বৰ্গদেউ প্ৰতাপসিংহৰ দিনত মোমাই তামুলি বৰবৰুৱাই কলিয়াবৰ পাতিছিল। বৰ্হিশত্ৰুৰ পৰা ৰাজধানী ৰক্ষা কৰিবৰ নিমিত্তে আহোম ৰজাসকলে কলিয়াবৰত সৈন্যৰ কোঠ নিৰ্মাণ কৰিছিল। মিছা কোঠ, দিজু কোঠ, সালনা পাহাৰৰ কোঠ আদিয়ে এই কথা প্ৰমাণ কৰে। আহোম ৰাজ্যৰ প্ৰথম বৰফুকন লাঙি পানীসিয়া আৰু প্ৰথম বৰবৰুৱা মোমাই তামুলীয়ে অতি বিচক্ষণতাৰে ৰাজকাৰ্য সমাপণ কৰিছিল। আহোম ৰাজত্বৰ প্ৰথমছোৱা কালত ৰাজ্যৰ পশ্চিমাংশত নিৰাপত্তাৰ ঠাই কলিয়াবৰেই আছিল বুলি বিভিন্ন তথ্যত পোৱা যায়। তদুপৰি মোগল সাম্ৰাজ্যৰ বিস্তৃতিক বাধা প্ৰদান কৰা আহোম ৰজাই এই অঞ্চলতে বহুবাৰ মোগলৰ সৈতে যুদ্ধত লিপ্ত হৈছিল। চামধৰা গড়, শলা গড়, শ্যামলা গড়, ৰাঙলু গড়, কচুকটা গড় আদি যেন এতিয়াও এই সকলোবোৰ ঘটনাৰ সাক্ষী হৈ আছে। ১৫ শতিকাত মোগল সেনাপতি তুৰ্বক খানৰ লগত যুদ্ধত হাৰি মূলাগাভৰু আৰু তেওঁৰ স্বামীয়ে মৃত্যুবৰণ কৰিছিল এই কলিয়াবৰত। (কেওঁট, লক্ষীৰাম, ১৯৯৫, পৃষ্ঠা- ৫৮)।

এনে অনেক ঘটনাৰ সাক্ষী কলিয়াবৰ। তদুপৰি স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যৰেও সমৃদ্ধ এই ভূ-খণ্ড। অসমৰ ধৰ্মীয় আৰু স্থাপত্যৰ ইতিহাসত কলিয়াবৰৰ শিলঘাটস্থিত কামাখ্যা মন্দিৰে বিশেষ স্থান দখল কৰি আহিছে। হাতীমূৰা পাহাৰৰ দূৰ্গা মন্দিৰ,

জখলাবন্ধাৰ নৃসিংহ দেৱালয় আদিয়ে এক স্বকীয় বৈশিষ্ট বহন কৰি আহিছে। কলিয়াবৰ মহকুমাৰ বিভিন্ন অঞ্চলত সত্ৰ আৰু নামঘৰসমূহৰ অৱস্থিতি দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিভিন্ন সত্ৰ যেনে— জখলাবন্ধা সত্ৰ, চামগুৰি সত্ৰ, নসত্ৰ, পুৱণি সত্ৰ, বৰভকতি সত্ৰ আৰু এই সত্ৰসমূহত বিদ্যমান স্থাপত্যসমূহ কলিয়াবৰৰ অনুপম সম্পদ। প্ৰয়াত শ্ৰী লীলাধৰ বৰাদেৱৰ গ্ৰন্থ 'ঐতিহ্যমণ্ডিত কলিয়াবৰ' এ বহন কৰিছে কলিয়াবৰৰ হেৰাই যাব খোজা ইতিহাস। (বৰা, লীলাধৰ, ২০২৩, পৃষ্ঠা-০০)। বিশিষ্ট লোকসংস্কৃতিবিদ প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যই কলিয়াবৰৰ বিষয়ে এইদৰে বৰ্ণনা কৰিছে —

" কলিয়াবৰ-হাটবৰ...
বুৰঞ্জীৰ যাদুঘৰ...
সংস্কৃতিৰ বৰঘৰ... ।"

ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰাম বিশ্বৰ ভিতৰতে এক উল্লেখযোগ্য ৰাজনৈতিক ঘটনা। স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ পাছৰ পৰ্যায়ত আধুনিক ভাৰতৰ ধাৰণা, নিৰ্মাণ আৰু বৈশিষ্ট্যসমূহ এদোপ-দুদোপকৈ বিকশিত হৈছিল। কিন্তু এই স্বাধীনতা আঁজুৰি আনিবৰ বাবে ভাৰতীয়সকলে কৰা নিৰন্তৰ প্ৰচেষ্টাৰ ফলস্বৰূপে সাম্ৰাজ্যবাদী শাসকসকলে ভাৰতবাসীৰ ওচৰত নত হ'বলৈ বাধ্য হয়। অলেখ মুক্তিকামী নৰ-নাৰীৰ ত্যাগ, প্ৰাণাহুতি আৰু যাতনাৰ যেন এক গাথা এই স্বাধীনতা সংগ্ৰাম। পিছে পৰিতাপৰ বিষয় এয়ে যে ভাৰতৰ মূলসুঁতিৰ ইতিহাসত সদায় উপেক্ষিত হৈ আহিছে সেইসকল অখ্যাত অনামী নৰ-নাৰী যিসকলে কোনো পৰিচয় বা অভিধা বা লাভালাভৰ অংক নকৰাকৈ দেশমাতৃৰ উদ্ধাৰৰ নিমিত্তে নিজৰ প্ৰাণ আহুতি দিবলৈও কোনো ধৰণৰ কুণ্ঠাবোধ কৰা নাছিল। এইক্ষেত্ৰত Subaltern Groupৰ প্ৰধান হোতা ইতিহাসবিধ ড° ৰণজিৎ গুহই দাবী কৰে যে 'Indian Nation-State was hollow nationalism of the elites, while real nationalism was that of the masses' (Bandopadhyay, Sekhar, 2004, P. 188)

১৯২০ চন। গান্ধীজীৰ নেতৃত্বত দেশজুৰি আৰম্ভ হয় অহিংস অসহযোগ আন্দোলন। দেশৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ লগতে অসমতো আন্দোলনৰ জোৱাৰ উঠিল। জিলাই জিলাই স্থাপন হ'ল কংগ্ৰেছ কমিতি যাৰ উদ্দেশ্য আছিল বৃটিছ অপশাসনৰ বিৰুদ্ধে দেশবাসীক জাগ্ৰত কৰোৱা। নগাঁও জিলাতো বেবেজীয়া অঞ্চলৰ পণ্ডিত কনকচন্দ্ৰ শৰ্মা কাব্যতীৰ্থ আৰু নগাঁৱৰ মাজমজিয়াৰ কংগ্ৰেছৰ প্ৰধান হোতা পূৰ্ণচন্দ্ৰ শৰ্মাৰ প্ৰচেষ্টাত কংগ্ৰেছৰ সভা-সমিতি অনুষ্ঠিত কৰি সাধাৰণ ৰাইজৰ মাজত কংগ্ৰেছৰ নীতি আৰু অসহযোগ আন্দোলনৰ কথা আৰু মাদক দ্ৰব্য নিবাৰণ কাৰ্যসূচীৰ বিতং আলোচনা কৰা হয়। কলিয়াবৰ অঞ্চলৰ উদ্বাউল জনতাৰ মুক্তিপিয়াসী মনটো যেন হঠাৎ সাৰ পাই উঠিল। আন্দোলনৰ সময়খিনিত বৰভগীয়াৰ ৰাইজে মাটিৰ খাজনা বন্ধ কৰি আইন অমান্য আন্দোলন আৰম্ভ কৰিছিল। এই চনৰে আগষ্ট মাহত মহাত্মা গান্ধীয়ে কলিয়াবৰৰ শিলঘাটত বিদেশী বস্তু বৰ্জন আৰু অস্পৃশ্যতা দূৰীকৰণৰ ব্যাখ্যাৰে জনতাক সজাগ কৰি তুলিছিল। ১৯২১ চনৰ ৩ মাৰ্চত জখলাবন্ধা, শিলঘাট, সোণাৰী গাঁও, নসত্ৰ আদি ঠাইত হোৱা সভাসমূহত কনকচন্দ্ৰ শৰ্মাৰ বাগ্মীতাই বহু লোকক মুগ্ধ কৰিছিল।

এই আন্দোলনত পুৰুষৰ সমানেই কলিয়াবৰৰ মহিলাসকলেও হাত উজান দিছিল। এই ক্ষেত্ৰত সকলোতকৈ আগৰণুৱা আছিল সেইসময়ৰ কলিয়াবৰৰ কংগ্ৰেছৰ প্ৰথম সভাপতি প্ৰয়াত গণেশচন্দ্ৰ বৰঠাকুৰৰ দ্বিতীয় পত্নী প্ৰয়াত গুণেশ্বৰী দেৱী। অসহযোগৰ কালছোৱাত কলিয়াবৰ অঞ্চলত কানিভাঙাৰ দোকানত পিকেটিং কৰা দোষত তেখেতৰ স্বামীক তেতিয়াৰ পুলিচ চুপাৰ মিঃ ৰাউৎলেজে গ্ৰেপ্তাৰ কৰি থানালৈ প্ৰেৰণ কৰে। স্বামীক গ্ৰেপ্তাৰ কৰাৰ পিছত গুণেশ্বৰী দেৱীয়ে কংগ্ৰেছৰ অংশীদাৰ হৈ এক বিপ্লৱী ৰূপ ধাৰণ কৰি জেইল খাটে।

১৯২৯ চনত পণ্ডিত জৱাহৰলাল নেহৰুৰ সভাপতিত্বত লাহোৰত বহা নিখিল ভাৰত কংগ্ৰেছ অধিৱেশনত "পূৰ্ণ স্বৰাজ" প্ৰস্তাৱ গৃহীত হয়। নগাঁও টাউনৰ পৰা শ্ৰীপূৰ্ণ শৰ্মাদেৱে ৭/৮ জনীয়া স্বেচ্ছাসেৱকৰ দল লগত লৈ আহি কলিয়াবৰৰ ভিএগৰি চুকৰ নামঘৰত সভা পাতে। "পৰাধীন হৈ থকাতকৈ ভাৰতমাতৃৰ মুক্তিৰ কাৰণে জীৱন উৎসৰ্গা কৰাই ভাল"- এই ধৰণৰ উদ্বাত্ত ভাষণ যেন যথেষ্ট আছিল এম.ই স্কুলত পঢ়ি থকা সোমেশ্বৰ বৰা, বিষ্ণু ভূএগ আদি প্ৰমুখ্য কৰি ভালেমান লোকক আন্দোলনৰ পথত থিয় দিয়াবলৈ। প্ৰয়াত নৰেন্দ্ৰনাথ বৰাদেৱৰ গ্ৰন্থ 'ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামত কলিয়াবৰৰ ভূমিকা' - ত উল্লেখ আছে যে লাহোৰ কংগ্ৰেছৰ আহ্বানমৰ্মে নগাঁও জিলা কংগ্ৰেছ কমিটিয়ে যেতিয়া ২৬ জানুৱাৰী, ১৯৩০ চনটো 'স্বাধীনতা দিৱস' পতাৰ মনস্থ কৰিলে পূৰ্ণ শৰ্মাদেৱৰ নেতৃত্বত কলিয়াবৰৰ প্ৰায় ১৫০ জনীয়া স্বেচ্ছাসেৱকৰ দল এটিয়ে খোজকাঢ়ি নগাঁও টাউন অভিমুখে যাত্ৰা কৰে। সেইসকলৰ ভিতৰত থানুৰাম ভূএগ, বদনচন্দ্ৰ বৰদলৈ, তুৰাকান্ত মহন্ত, পূৰ্ণ ভূএগ, বকুল ভূএগ, নন্দিৰাম ভূএগ, ৰবিৰাম ভূএগ, ভোগৰাম বৰা, মহবুব দেৱান, গোলোক

বৰঠাকুৰ, উপেন চৌধুৰী, ভদৰাম বৰা, লব গোস্বামী, ভগীৰথ দাস, দণ্ডিধৰ শর্মা আদি উল্লেখযোগ্য।

এই সমদলৰ লগে লগেই গুণেশ্বৰী দেৱীয়ে প্রায় চাৰিশমান মহিলাৰ এটা সমদল উলিয়াই নগাঁও টাউনলৈ যাত্রা আৰম্ভ কৰে। পদব্রজে যাত্রা কৰা এই সমদলটিয়ে সকলো শ্রেণীৰ লোকৰ অন্তৰতে প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। ১৯৩০ চনৰ ২৬ জানুৱাৰীত এই সমদল গৈ নগাঁও টাউনৰ জুবিলি পথাৰত একত্রিত হয় আৰু অন্যান্য অঞ্চলৰ পৰা অহা লোকসকলৰ লগত একেলগে স্বাধীনতা দিৱস পালন কৰে। (শর্মা, পূর্ণচন্দ্র, ১৯৭৩, পৃষ্ঠা- ৪)। স্বৰাজৰ পতাকা উত্তোলন কৰিবৰ সময়তে পুলিচ বাহিনী আহি উপস্থিত হয় আৰু গুণেশ্বৰী দেৱী সহিতে তেওঁৰ সহকর্মী দৰবাৰী মেচ, মুক্তাবালা বৈষ্ণৱী, মোহিনী গোহাই , কিৰণবালা বৰা আৰু আন বহুতকে গ্রেপ্তাৰ কৰে। তদুপৰি পুলিচ বাহিনীয়ে মহিলাসকলৰ পৰা বলপূর্বকভাৱে স্বৰাজৰ পতাকা কাঢ়ি লৈ যায়।

নগাঁৱৰ ৰাইজে ১৯৩০ চনৰ ১২ নৱেম্বৰত পুলিচ বাহিনীয়ে নিৰস্ত্র মানুহৰ ওপৰত কৰা অবর্ণনীয় অত্যাচাৰৰ বিৰুদ্ধে ১৩ নৱেম্বৰ তাৰিখে এখন সভা আহ্বান কৰে। গুণেশ্বৰীৰ নেতৃত্বত নগাঁও হাইস্কুলৰ সন্মুখত প্রায় ২০জনীয়া মহিলাৰ দলে (আনকি এগৰাকীৰ কোলাত কেচুৱা) পিকেটিং আৰম্ভ কৰে। বেছিসংখ্যক মহিলাক পুলিচে গ্রেপ্তাৰ কৰিলেও গুণেশ্বৰী আৰু তেওঁৰ সহযোগী মুক্তাবালাক সেইদিনাই খালাচ কৰি দিয়ে। পাছদিনা বিচাৰত তেওঁলোক দুয়োগৰাকীকে ১০ টকাকৈ জৰিমনা বিহা হয়। কিন্তু যিহেতু জৰিমনা আদায় দিবলৈ তেওঁলোক অমান্তি হয় আৰু তাৰ ফলস্বৰূপে ১৫ দিনৰ কাৰণে জেললৈ প্রেৰণ কৰা হয়। গুণেশ্বৰী দেৱী আৰু মুক্তাবালা বৈষ্ণৱী হৈছে ব্রহ্মপুত্র উপত্যকাৰ প্রথম দুগৰাকী মহিলা যি ১৯৩০ চনৰ আইন অমান্য আন্দোলনত অংশগ্রহণ কৰি কাৰাবাস বৰণ কৰিবলগীয়া হৈছিল। কাৰাবাসত তেওঁলোক দুয়োগৰাকীক 'দ্বিতীয় শ্রেণী' (B)ৰ কাৰাবাসী বুলি গণ্য কৰা হৈছিল। কাৰাবাসৰ পৰা ওলাই আহি গুণেশ্বৰী দেৱীয়ে সাংগঠনিক কামত মনোনিৰেশ কৰে। বিদেশী বস্তু বর্জন, স্বদেশী বস্তুৰ প্রচলন, কানি নিবাৰণীকে ধৰি কংগ্রেছৰ বিভিন্ন কার্যসূচীত তেওঁ অংশগ্রহণ কৰে। তেওঁৰ পদক্ষেপৰ ফলশ্রুতিত বহু মহিলাই কংগ্রেছ যোগদান কৰে।

প্রথম ঘূৰণীয়া মেজমেল (১৯৩১)ৰ সময়তো গুণেশ্বৰী দেৱীৰ অৱদান অপৰিসীম। প্রথম ঘূৰণীয়া মেজমেলৰ বিপক্ষে আকৌ এবাৰ এক সমদলৰ নেতৃত্ব বহন কৰি নগাঁও চহৰৰ মাজমজিয়াত থকা জুবিলী পথাৰলৈ তেখেত ৰাওনা হয়। পুলিচে কেৱল বাধা প্রদানতে ক্ষান্ত নাথাকি তিনিজন চাব ইন্সপেক্টৰ গুণেশ্বৰী দেৱীক গ্রেপ্তাৰ কৰিবলৈ আগুৱাই আহিল। কিন্তু দৃঢ়মনা এই গৰাকী মহিলাই কোনো ধৰণৰ বাধা নামানি জুবিলী পথাৰত প্রবেশ কৰিলে। গুণেশ্বৰী দেৱীৰ ভাষাত, "মই সিহঁতক বাধা দিছিলোঁ লাঠিত থাপ মাৰি ধৰি আৰু আগুৱাই গৈছিলোঁ।" (শর্মা, দীপ্তি, ১৯৯৩, পৃষ্ঠা- ৯৬)।

১৯৩২ চনত গুণেশ্বৰী দেৱীক আকৌ গ্রেপ্তাৰ কৰা হয় আৰু প্রায় ১৮ মাহৰ কাৰণে জেললৈ প্রেৰণ কৰা হয়। এই সময়ত প্রথমে তেওঁক তৃতীয় শ্রেণীৰ (C) কাৰাবাসী বুলি গণ্য কৰা হৈছিল যদিও পাছত আবেদনৰ ভিত্তিত দ্বিতীয় শ্রেণী (B)ত অন্তর্ভুক্ত কৰা হয়। গুণেশ্বৰী দেৱীৰ কার্য্যক্রমণিকাই গোটেই অসমৰ মহিলা সমাজত এক আলোড়নৰ সৃষ্টি কৰিলে।

১৯৪২ চনৰ সংগ্রামখনতো গুণেশ্বৰী দেৱীৰ অৱদান স্বকীয়। স্বাধীনতা সংগ্রামৰ এগৰাকী প্রধান হোতা চন্দ্রপ্রভা শইকীয়ানীয়ে যেতিয়া নগাঁৱৰ পৰা বৰপেটালৈ গমন কৰিলে সেই সময়ত গুণেশ্বৰী দেৱীয়ে নগাঁও জিলাৰ মহিলাসকলক একত্রিত কৰাৰ দায়িত্ব মূৰ পাতি লয় (শর্মা, দীপ্তি, ১৯৯৩, পৃষ্ঠা- ৯৬)। সংগ্রামৰ বিভিন্ন কার্যসূচী ৰূপায়নৰ নামত দিহিঙে-দিপাঙে ঘূৰি ফুৰিবলগীয়া হয় আৰু পুলিচৰ অত্যাচাৰৰ সন্মুখীন হয়। প্রায় ডেৰ বছৰ জেইলত থকাৰ পাছত তেওঁৰ স্বাস্থ্যৰ অৱনতি ঘটে, আনকি তেওঁৰ আন এগৰাকী সংগী দাৰিকী মেছে জেইলৰ ভিতৰতে মৃত্যুবৰণ কৰিবলগীয়া হয়। (শর্মা, দীপ্তি, ১৯৯৩, পৃষ্ঠা- ৯৭)। পাছৰ পর্যায়ত নগাঁও ক'র্টৰ সন্মুখত পিকেটিং কৰাৰ অপৰাধত তেওঁক আকৌ এবছৰৰ বাবে কাৰাগাৰলৈ প্রেৰণ কৰা হয়। গুণেশ্বৰী দেৱীৰ সবল নেতৃত্বত এনামাই বৰা, জয়মতী শইকীয়া, মাইচেনা শইকীয়া, দময়ন্তী বৰা, দৈবকী দাস, হেমন্তী শইকীয়া আদিকে ধৰি বহু পিছপৰা অঞ্চলৰ মহিলা স্বাধীনতা সংগ্রামখনৰ প্রতি আকর্ষিত হৈছিল। মুক্তিকামী এইসকল মহিলাই নানা নির্যাতন, লাঞ্ছনা সহ্য কৰিবলগীয়া হোৱা সত্বেও কিন্তু পিছহুহুকি যোৱা নাছিল, পৰম সাহসেৰে বুকুত মাৰ বান্ধি থিয় হৈছিল বৃটিছ সাম্রাজ্যবাদী শক্তিক মষিমূৰ কৰিবলৈ। এয়া যেন পুৰুষপ্রধান সমাজ এখনত নাৰীৰ জাতীয়প্রেম আৰু সংগ্রামী চেতনাৰ প্রোজ্বল উদাহৰণ। এলবার্ট আইনষ্টাইনৰ ভাষাত "মানুহৰ জীৱনটোৰ নৈতিক মূল্য অকল তেওঁৰ নিজা উন্নতিৰ ওপৰত নির্ভৰ নকৰে। নির্ভৰ কৰে জগতবাসীক কি

দিলে ঘাইকৈ তাৰ ওপৰত।” গুণেশ্বৰী দেৱীৰ দৰে অসংখ্য মহিলাই ভৱিষৎ প্ৰজন্মলৈ বাট দেখুৱাই গ'ল। আনুষ্ঠানিক স্বীকৃতি অবিহনেই তেওঁলোক আজি আমাৰ মাজত বন্দিত, চিৰ নমস্য। কিন্তু পৰিতাপৰ কথা এইয়াই যে সেই সময়ৰ সাম্ৰাজ্যবাদী দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰভুত্বৰ ফলস্বৰূপে হয়তু এনে বহুতো মহিলাৰ অৱদানৰ বিষয়ে আমি অৱগত নহয়। বাস্তৱ আৰু বিভ্ৰমৰ আৱৰ্তত বহুতো মহিলাৰ অৱদান বুৰঞ্জীৰ সিপাৰে ৰৈ গ'ল। অন্যসকলৰ বাবে ভোগৰ ৰাজআলি বান্ধি থৈ তেওঁলোক যেন আজিও অৱহেলিত। অথচ, যাৰ সামুহিক বলিদানৰ ফলস্বৰূপেই ভাৰতবৰ্ষৰ সকলো নাগৰিকে পৰাধীনতাৰ শিকলি খুলি মুক্তভাৱে বিচৰণ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

উপসংহাৰঃ ঘৰ-সংসাৰৰ মোহৰ পৰা উৰ্দ্ধলৈ গৈ দেশৰ প্ৰতি সৰ্বোচ্চ উজাৰি দিয়া মহান ব্যক্তিসকলৰ অৱদান সঁচাই একক আৰু অতুলনীয়। এটা কথা অনস্বীকাৰ্য যে সকলো শ্ৰেণীৰ লোকৰে পৰাধীনতাৰ কাল অমানিশাৰ পৰা মুক্তিৰ হাবিয়াস তীব্ৰৰ পৰা তীব্ৰতৰ হৈ পৰিছিল। সাম্ৰাজ্যবাদী শক্তিৰ ওচৰত আঁঠু লোৱাতকৈ আত্মবলিদান সকলোৰে বাবে যেন হৈ পৰিছিল সহজ আৰু সন্মানীয় পথ। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন প্ৰান্তত জোকাৰণি তোলা এই অহিংস আন্দোলনৰ ব্যাপ্তি আৰু গভীৰতালৈ মন কৰিলে নিজেই আচৰিত হওঁ। এখন দেশৰ স্বকীয়তা জ্ঞান-অন্বেষী স্বাধীনচিতীয়া জনতাৰ আকুণ্ঠ অৱদানৰ মাজতেই লালিত-পালিত হয়। তদুপৰি নিজ জন্মস্থানৰ প্ৰতি থকা মানুহৰ ভালপোৱাৰ বহিঃপ্ৰকাশ সময়ান্তত বহুতেই দি আহিছে। আখ্যান, লোককথা আৰু ইতিহাসে যি ঠাইক মহীয়ান কৰিছে সেই ঠাইৰ জনতাই আনৰ বহতীয়া হৈ থাকিব বুলি ভবাতো কিমান যুগুত আছিল সেয়া উপনিৱেশিক শাসকসকলে দেখি গৈছে। ভাৰতীয় নাগৰিকে দেশমাতৃৰ প্ৰতি থকা অফুৰন্ত আবেগৰ তীব্ৰতা প্ৰতীয়মান কৰিছে সময় আৰু পৰিস্থিতিয়ে কঢ়িয়াই অনা বিভিন্ন সংকটকালত। সম্ভৱতঃ এয়াই ভাৰতীয় সংস্কৃতিৰ বিশ্বসংস্কৃতিৰ প্ৰতি আগুৱাই দিয়া মহান অৱদান। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

অসমীয়া ঃ

১) কেওঁট, লক্ষীৰাম ঃ 'কথা মুক্তি সংগ্ৰামত নগাঁও', পঞ্চমী পাব্লিকেচন ছ'চাইটি, হয়বৰগাঁও, নগাঁও, অসম, ১৯৯৫ চন।

২) বৰা নৰেন্দ্ৰ নাথ ঃ 'ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামত কলিয়াবৰৰ ভূমিকা', কলিয়াবৰ মুক্তি যুজাঁৰু সম্মিলন, কুঁৱৰীটোল, নগাঁও, অসম, ১৯৯৯ চন।

৩) বৰা, লীলাধৰ ঃ 'ঐতিহ্যমণ্ডিত কলিয়াবৰ', লয়ার্ছ বুক ষ্টল, ২০২৩।

৪) বৰঠাকুৰ অকুণ্ঠিতা (সম্পা.), 'অনিৰ্বাপ্তিত অনল', প্ৰকাশন কোষ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী, অসম, ২০২২ চন।

৫) শৰ্মা, পূৰ্ণচন্দ্ৰ ঃ 'মোৰ অতীতৰ সোঁৱৰণী আৰু নগাঁও জিলাৰ মুক্তি সংগ্ৰাম', শৰ্মা প্ৰকাশ ভৱন, নগাঁও, অসম, ১৯৭৩।

ইংৰাজীঃ

1) Bandopadhya, Sekhar: 'From Plassey to Partition: A History of Modern India', Orient Longman, New Delhi, Reprint, 2004.

2) Sarma, Dipti: 'Assamese Women in the Freedom Struggle', Ashok Book Stall, Guwahati, 1993.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপৰ সৈতে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ তুলনা

ড° মলয়া গগৈ

পকীমুৰী হাবি গাওঁ
ডাকঘৰ- আৰ.আৰ.এল
পিন- ৭৮৫০০৬, জিলা-যোৰহাট
৬০০০৫৪৩৪৫২
malayagogoi9@gmail.com

সংক্ষিপ্ত-সাৰ ঃ

অসমৰ ভাষিক ক্ষেত্রখন বৈচিত্র্যপূর্ণ। অসমৰ ভাষিক ক্ষেত্রখনত ইণ্ডো-ইউৰোপীয়, চীন-তিব্বতীয়, অষ্ট্র-এচিয়াটিক, দ্রাবিড় আদি ভাষা পৰিয়ালৰ লোকে বসবাস কৰি আছে। এই ভাষা পৰিয়ালসমূহৰ পৰা উদ্ভৱ হোৱা বহু ভাষা অসমৰ ভিন্ ভিন্ অঞ্চলত প্রচলন হৈ আছে। এই পৰিয়ালসমূহৰ ভিতৰত চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ ভাষা ব্যৱহাৰকাৰীৰ সংখ্যাই অসমত সর্বাধিক। চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তর্গত এটা ভাষা হৈছে বড়ো ভাষা। বড়ো ভাষাটো বর্তমান সময়ত এটা শক্তিশালী ভাষা। বিদ্যালয়ৰ পৰা আৰম্ভ কৰি বর্তমান উচ্চ শিক্ষাৰ ক্ষেত্রত মাধ্যম হিচাপে বড়ো ভাষাটো ব্যৱহাৰ হৈছে। বড়ো ভাষাৰ বিভিন্ন ঔপভাষিক ৰূপ থকা দেখা যায়। এই অধ্যয়নত মান্যৰূপৰ সৈতে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ এক তুলনামূলক আলোচনা দাঙি ধৰা হৈছে। বিষয়টো অধ্যয়নৰ ক্ষেত্রত তথ্য সংগ্রহ কৰোঁতে প্রধানকৈ ক্ষেত্র অধ্যয়ন পদ্ধতি আৰু তথ্য বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্রত বৈপৰীত্যমূলক ভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতি গ্রহণ কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ বড়ো, মান্যৰূপ, অবিভক্ত দৰং, ঔপভাষিক ৰূপ, তুলনা

০.০ প্রস্তাৱনা ঃ

উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰ অংগৰাজ্য অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মিলনভূমি। অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ ভিতৰত এটা জনগোষ্ঠী হৈছে 'বড়ো'। বড়োসকল অসমৰ কোক্ৰাঝাৰ, বৰপেটা, নলবাৰী, বাক্সা, কামৰূপ, দৰং, ওদালগুৰি, শোণিত পুৰ, শিৱসাগৰ, চৰাইদেউ, ডিব্রুগড়, আদি ভিন্ ভিন্ জিলাত বাস কৰি আছে। নৃতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণেৰে মংগোলীয় গোষ্ঠীৰ আৰু ভাষিক দিশৰ পৰা চীন তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ তিব্বতবর্মী শাখাৰ অন্তর্ভুক্ত বড়োসকলে অসমৰ উপৰি অৰুণাচল প্রদেশ, নেপাল, পশ্চিমবংগ আদিতো বসতি স্থাপন কৰি আছে।

বড়ো ভাষাৰ ভাষাবিদসকলে ভাষাটোৰ বিভিন্ন ঔপভাষিক ৰূপৰ কথা আলোচনা কৰিছে যদিও অধিক সংখ্যকেই পশ্চিম, পূব আৰু দক্ষিণ বড়ো ঔপভাষিক ৰূপৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। এই ৰূপসমূহৰ ভিতৰত পশ্চিম বড়ো উপভাষাই মান্যৰূপ হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰিছে। এই অধ্যয়নত *বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপৰ সৈতে অবিভক্ত দৰং*

জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ তুলনা— শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনা কৰা হৈছে। উল্লেখযোগ্য যে, অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপটো পূব বড়ো উপভাষাৰ অন্তর্ভুক্ত। অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো উপভাষাত দৰং, ওদালগুৰি আৰু শোণিতপুৰ জিলাৰ কিছু ঠাই অন্তর্ভুক্ত হৈ আছে।[১] সেয়ে এই অধ্যয়নত দৰং, ওদালগুৰি আৰু শোণিতপুৰ জিলাখনক অবিভক্ত দৰং জিলা হিচাপে সামৰি লৈ আলোচনা কৰা হৈছে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপৰ সৈতে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ তুলনামূলক আলোচনা দাঙি ধৰাই হৈছে এই অধ্যয়নৰ মুখ্য উদ্দেশ্য।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপত ব্যৱহাৰ হোৱা শব্দৰ অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত বিভিন্ন দিশত হোৱাপৰিৱর্তন আৰু শব্দ প্রয়োগৰ ক্ষেত্রত ৰূপ দুটাৰ মাজত থকা সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্যসমূহ পোহৰলৈ আহিব।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে ব্যৱহাৰ হোৱা পদ্ধতিসমূহক দুটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। সেইবোৰ হৈছে—

০.৩.১ তথ্য সংগ্রহৰ পদ্ধতি ঃ

তথ্যসমূহ সংগ্রহ কৰোঁতে প্রধানকৈ ক্ষেত্র অধ্যয়ন পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। ক্ষেত্র অধ্যয়নৰ জৰিয়তে তথ্যসমূহ সংগ্রহ কৰোঁতে প্রধানকৈ প্রশ্নসূচী প্রস্তুতকৰণ আৰু সাক্ষাৎকাৰ, পর্যবেক্ষণমূলক পদ্ধতি গ্রহণ কৰা হৈছে।

০.৩.২ তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি ঃ

তথ্যসমূহ বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্রত বৈপৰীত্যমূলক ভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতি গ্রহণ কৰা হৈছে। বৈপৰীত্যমূলক ভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতিত সমগোত্রীয় বা বিসমগোত্রীয় দুটা বা ততোধিক ভাষাৰ মাজত বর্ণনাত্মক দৃষ্টিভংগীৰে তুলনা কৰা হয়।

১.০. মূল আলোচনা ঃ

বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপত ব্যৱহাৰ হোৱা কিছুমান শব্দৰ অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত ধ্বনিগত আৰু ৰূপগত আদি বিভিন্ন দিশত পৰিৱর্তন হোৱা দেখা যায়। ইয়াৰ উপৰি শব্দ প্রয়োগৰ ক্ষেত্রত দুয়োটা ৰূপৰ মাজত সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য থকা দেখা যায়। এই বিষয়ে তলত বহলাই আলোচনা কৰা হৈছে—

১.১ ধ্বনিগত পৰিৱর্তন ঃ

বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপ আৰু অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপ দুয়োটাতে /হি/, /ঔ/, উ/, /এ/, / অ'/ আৰু /আ/ এই ছটা স্বৰবর্ণ পোৱা যায়। ব্যঞ্জন বর্ণৰ ক্ষেত্রত মান্যৰূপত /ব/, /দ/, /গ, /ফ/, /থ/, /খ/, /ম/, /ন/, /ঙ/, /স/ , /জ/, /হ/, /ৰ/, /ল/, /ৱ/ আৰু /য়/ এই ষোল্লটা ব্যঞ্জন আছে। মান্যৰূপৰ দৰে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপতো উক্ত ব্যঞ্জনসমূহ পোৱা যায়। অৱশ্যে এই ষোল্লটা ব্যঞ্জনৰ উপৰিও ঔপভাষিক ৰূপটোত / প/, /ত/, /ক/, /ভ/, /ধ/, /ঘ/, /ঝ/ আদিৰ উচ্চাৰণ পোৱা গৈছে। এই ব্যঞ্জনকেইটাৰ উচ্চাৰণৰ বৈশিষ্ট্যত অসমীয়া ভাষাৰ প্রভাৱ বিদ্যমান। তলত মান্যৰূপৰ শব্দৰ ঔপভাষিক ৰূপটোত কেনেদৰে ধ্বনি পৰিৱর্তন হৈছে সেয়া উদাহৰণসহ দেখুওৱা হৈছে।

➢ বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপত শব্দৰ আদিত থকা মূলীয়, উচ্চ, বিবৃতৌষ্ঠ /ঔ/ স্বৰৰ সলনি কেতিয়াবা অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত মূলীয়, উচ্চ, সংবৃতৌষ্ঠ্য /উ/ স্বৰৰ ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
ঔৱা	''' উৱা 'বাঁহ'

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ মাজত থকা প্রান্তীয়, উচ্চ বিবৃতৌষ্ঠ্য /হি/ স্বৰৰ সলনি কেতিয়াবা অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত প্রান্তীয় মধ্য, বিবৃতৌষ্ঠ্য /এ/ স্বৰৰ ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
সিখা	সেখা 'দা

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ আদিত থকা মূলীয়, উচ্চ, বিবৃতৌষ্ঠ্য /ঔ/ স্বৰৰ পৰিৱর্তে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো

ঔপভাষিক ৰূপত কেন্দ্রীয়, নিম্ন, বিবৃতৌষ্ঠ্য /আ/ স্বৰৰ ব্যৱহাৰ হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
ঔংখাম	আখাম 'ভাত'

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ মাজত থকা প্রান্তীয়, মধ্য, বিবৃতৌষ্ঠ্য /এ/ স্বৰৰ সলনি অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপটোত কেতিয়াবা উচ্চ, মূলীয়, বিবৃতৌষ্ঠ্য / ঔ/ স্বৰৰ ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
গেদেৰ	গৌদৌৰ 'ডাঙৰ'

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ আগত থকা কেন্দ্রীয়, নিম্ন, বিবৃতৌষ্ঠ্য /আ/ স্বৰৰ আগত কেতিয়াবা অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত কণ্ঠ্য, সঘোষ, উষ্ম /হ/ ব্যঞ্জনৰ আগম হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
আখাই	হাখাই 'হাত'

➢ মান্যৰূপত ব্যৱহৃত শব্দৰ আদ্য ঔষ্ঠ্য, সঘোষ, স্পর্শ, অল্পপ্রাণ /ব/ ব্যঞ্জন অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত কেতিয়াবা সঘোষ /ভ/ লৈ পৰিৱর্তন হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
বাখ্রী	ভাখ্রী 'ভঁৰাল'

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ আদ্য দন্তমূলীয়, সঘোষ, স্পর্শ, অল্পপ্রাণ /'দ/ ব্যঞ্জন অবিভক্ত দৰঙৰ ঔপভাষিক ৰূপটোত কেতিয়াবা পশ্চতালব্য, অঘোষ, স্পর্শ, মহাপ্রাণ /খ/ হিচাপে ব্যৱহাৰ হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
দিছি	খিথি 'দেখুওৱা'

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ আগত আৰু মাজত থকা দন্তমূলীয় অঘোষ, উষ্ম /স/ ব্যঞ্জন অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত পশ্চতালব্য, অঘোষ, স্পর্শ, মহাপ্রাণ/খ/ হিচাপে ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়।

উদাহৰণ—

শব্দৰ আগত—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ. ৰূ**
সান	খান 'সূর্য'

শব্দৰ মাজত—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
মসৌ	মখৌ 'গৰু'

➢ মান্যৰূপত শব্দৰ আগত থকা দন্তমূলীয়, সঘোষ, পার্শ্বিক /ল/ ব্যঞ্জনৰ সলনি অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত কেতিয়াবা দন্তমূলীয়, সঘোষ, নাসিক্য /ন / ব্যঞ্জনৰ ব্যৱহাৰ হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ . ৰূ**
লামা	নামা 'ৰাস্তা'

১.২ ৰূপগত পৰিৱর্তন ঃ

কাৰকবাচক ৰূপৰ প্রয়োগ ঃ

মান্যৰূপ আৰু অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপ এই দুয়োটা ৰূপতে কর্তা, কর্ম, কৰণ, নিমিত্ত, সম্প্রদান, অপাদান, সম্বন্ধপদ আৰু অধিকৰণ এই আঠটা কাৰক পোৱা যায়। দুয়োটা ৰূপতে কিছুমান একে কাৰবাচক ৰূপ প্রয়োগ হয় যদিও কিছু কিছু কাৰকৰ ক্ষেত্রত ৰূপৰ পৰিৱর্তন হোৱা দেখা যায়। সেইবোৰ এনেধৰণৰ—

➢ মান্যৰূপত কর্ম কাৰকৰ ক্ষেত্রত {-খৌ} ৰূপ প্রয়োগ হোৱাৰ বিপৰীতে অবিভক্ত দৰঙৰ বড়ো ভাষাৰ

ঔপভাষিক ৰূপটোত {-খী} ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়। উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
.নীহাৰা ৰামখৌ বুদীং	নীহাৰা ৰামখী বুদী 'নীহাৰে ৰামক পিটিছে'
নীহাৰে ৰাম কা.ৰূ পিটিছে	নীহাৰে ৰাম কা.ৰূ. পিটিছে।

➢ মান্যৰূপত কৰণ কাৰকত {-জীং} কাৰকবাচক ৰূপ সংযোগ হয়। আনহাতে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত {-দী} কাৰকবাচক ৰূপ যোগ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
আখাইজীং জা	হাখাইদী জা 'হাতেৰে খা'
হাত কা.ৰূ. খা	হাত.কা.ৰূ খা

কালৰ অৱস্থাসূচক ৰূপৰ প্ৰয়োগ ঃ

দুয়োটা ৰূপতে বৰ্তমান, অতীত আৰু ভৱিষ্যত এই তিনিটা কাল পোৱা যায়। দুয়োটা ৰূপৰে বৰ্তমান কালক নিত্য বৰ্তমান আৰু স্বৰূপ বৰ্তমান এই দয়োটা ভাগত ভগাব পাৰি। অতীত কালক সুদূৰ আৰু নিকট অতীত কাল এই দুটা ভাগত ভগাব পাৰি। ভৱিষ্যত কালৰ সুদূৰ আৰু নিকট ভৱিষ্যত এই দুটা ভাগ পোৱা যায়।

দুয়োটা ৰূপৰে কালবাচক ৰূপসমূহৰ মাজত সাদৃশ্য আছে যদিও মান্যৰূপত ব্যৱহাৰ হোৱা স্বৰূপ বৰ্তমান কালৰ অৱস্থাসূচক ৰূপৰ অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত কিছু পৰিৱৰ্তন হোৱা দেখা যায়। যেনে—

➢ মান্যৰূপত স্বৰূপ বৰ্তমান কালৰ ক্ৰিয়া বুজাবলৈ ক্ৰিয়ামূলৰ লগত {-দীং} কালৰ অৱস্থাসূচক ৰূপ সংযোগ কৰা হয়। আনহাতে অবিভক্ত দৰঙৰ ঔপভাষিক ৰূপটোত {-দী} ৰূপ সংযোগ হয়।

উদাহৰণ—

মা.ৰূ	**অ.বি.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
থাংদীং	থাংদী 'গৈছে'
জাদীং	জাদী 'খাইছে'

১.৩ শব্দৰ প্ৰয়োগত সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্য ঃ

শব্দৰ ক্ষেত্ৰত দুয়োটা ৰূপৰ মাজত থকা সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্যসমূহ এনেধৰণৰ—

শব্দৰ প্ৰয়োগত সাদৃশ্য ঃ

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
হা	হা 'মাটি'
মা	মা 'কি'
গাব	গাব 'কান্দ্'
বু	বু 'পিট্'
মাই	মাই 'ধান'

শব্দৰ প্ৰয়োগত বৈসাদৃশ্য ঃ

মা.ৰূ	**অ.দ.জি.ব.ভা.ঔ.ৰূ**
দাইহু	জিদু 'কলহ'
অখাফৌৰ	নুখুমব্রী / উখুমব্রী 'জোনবাই'
ৰৌইমালি	থিয়া খান্থাল 'মাটি কঁঠাল'
দুন্দিয়া	নিমন্ধু 'ধনীয়া'
এসে	মাহায় 'অলপ'
মৌদীমফুল	উমুথু/ মৌইথু 'অমিতা'
সেংগ্রা	জল' 'ডেকা'
থৌসি	থপ্সি 'উৰাল'
মুসুগুৰ	মেগন মৌস্রীম 'চেলাউৰি'

২.০ সিদ্ধান্ত ঃ

বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপৰ সৈতে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ তুলনা—শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনাৰ অন্তত প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ—

➢ মান্যৰূপত ব্যৱহৃত কিছুমান শব্দৰ অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপটোত ধ্বনি পৰিৱৰ্তন হৈছে।

➢ মান্যৰূপত ব্যৱহাৰ হোৱা কাৰকবাচক আৰু কালৰ

অৱস্থাসূচক ৰূপ কিছুমান অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত পৰিৱৰ্তিত ৰূপত ব্যৱহাৰ হৈছে।

➢ মান্যৰূপত ব্যৱহাৰ হোৱা শব্দৰ অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত ৰূপগত পৰিৱৰ্তনতকৈ ধ্বনিগত পৰিৱৰ্তন অধিকভাৱে হোৱা দেখা যায়।

➢ মান্যৰূপ আৰু অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপত ব্যৱহৃত কিছুমান শব্দৰ সাদৃশ্য আছে যদিও দুয়োটা ৰূপতে যথেষ্ট পৰিমাণে সুকীয়া সুকীয়া শব্দৰ ব্যৱহাৰো পোৱা যায়।

৩.০ সামৰণি ঃ

সমগ্ৰ আলোচনাৰ অন্তত দেখা গ'ল যে, বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপ আৰু অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ মাজত কিছু কিছু ক্ষেত্ৰত সাদৃশ্য আছে যদিও ৰূপ দুটাৰ মাজত থকা বৈসাদৃশ্যৰ জৰিয়তে দুয়োটা ৰূপেই যে সুকীয়া সেয়া প্ৰমাণিত হৈছে। বড়ো ভাষাৰ মান্যৰূপৰ বিষয়ে যথেষ্ট পৰিমাণে অধ্যয়ন হৈছে যদিও অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা গ্ৰন্থৰ সংখ্যা নিচেই কম। উঠি অহা নৱ-প্ৰজন্মৰ মাজৰ পৰা লাহে লাহে অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপটো হেৰাই যাবলৈ ধৰিছে। গতিকে এই অধ্যয়নে ঔপভাষিক ৰূপটোৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবৰ্দ্ধনত কিছু পৰিমাণে হ'লেও অৱদান আগবঢ়াব বুলি আশা কৰিব পাৰি কাৰণ ভাষা বা উপভাষা একোটাৰ বিজ্ঞানসম্মত অধ্যয়ন আৰু চিন্তা-চৰ্চাৰ ওপৰত সিবোৰৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবৰ্দ্ধনৰ দিশটো বহু পৰিমাণে নিৰ্ভৰশীল। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১. মলয়া, গগৈ, *অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ শব্দগঠন প্ৰক্ৰিয়া,* পৃ.৩৪

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

Editorial Board, *Swdwb Bihung (Darrangari Rao),* Odalguri District Bodo Sahitya Sabha,1stpublication, January, 2011

Narzi, Dhireswar, *Subung Harimuni Rifithai,* Nilima Prakashani, Baganpara, Baksa, B.T.A.D (Assam)

অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ ঃ

গগৈ, মলয়া, *অবিভক্ত দৰং জিলাৰ বড়ো ভাষাৰ ঔপভাষিক ৰূপৰ শব্দগঠন প্ৰক্ৰিয়া,* ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগত পিএইচ.ডি উপাধিৰ বাবে দাখিল কৰা গৱেষণা গ্ৰন্থ, ২০২৩

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্ত্বমূলক আলোচনা ঃ এটি চমু আভাস

জ্যোৎস্না বড়ো

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

বড়োসকল অসমৰ প্ৰথম বৃহৎ জনজাতীয় গোষ্ঠী। নৃ-তাত্ত্বিক ফালৰ পৰা দেখা যায় এই গোষ্ঠীৰ লোকসকল মংগোলীয় আৰু ভাষাতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত। এই বড়ো জনজাতিৰ লোকসকলৰ এটা দল পোনতে তিব্বত বা ভোট দেশৰ পৰা উত্তৰ-পূব কোণেৰে আহি ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত উপস্থিত হয় আৰু প্ৰথম অৱস্থাত নামনিৰ ঘন জংঘলেৰে আৱৰি থকা ঠাইত বসবাস কৰিবলৈ লয়। এই লোকসকলেই পৰৱৰ্তী সময়ত নিজকে বড়ো বুলি পৰিচয় দিছিল।

ভাষা মানুহৰ ভাব প্ৰকাশৰ সৰ্বশ্ৰেষ্ঠ মাধ্যম। ভাষাৰ জৰিয়তে মানুহে মনৰ ভাৱ এজনৰ পৰা আন এজন ব্যক্তিক প্ৰকাশ কৰে। এনেদৰে ব্যক্তিৰ পৰা সমাজ, সমাজৰ পৰা আন এখন সমাজলৈ বিয়পি পৰে। অসমৰ বিভিন্ন প্ৰান্তত বসবাস কৰা বৰোসকলৰ নিজস্ব ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰে সমৃদ্ধ হৈ আহিছে। অসম এখন বহুভাষিক ৰাজ্য। অসমৰ সকলো জনজাতিৰে নিজা নিজা ভাষা আছে। আন আন ভাষাৰ লগতে সুৰ প্ৰধান ভাষা হিচাপে বড়ো ভাষাৰো নিজা গুণ আৰু ভাষাতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্যৰে সমৃদ্ধ। বড়ো ভাষাৰ ভাষাতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্যসমূহ নিৰ্দিষ্ট নিয়মৰে বান্ধ খায় আছে। এই ভাষাতাত্ত্বিক দিশসমূহ হৈছে ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব আৰু শব্দৰূপ। ইয়াৰে ৰূপতত্ত্বমূলক দিশটো এই গৱেষণা পত্ৰৰ বিষয় হিচাপে লোৱা হৈছে। বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্ত্বমূলক বৈশিষ্ট্যসমূৰ বিষয়ে উদাহৰণসহ এই আলোচনাত দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.০০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

বড়ো ভাষা আৰু বড়োভাষিক সম্প্ৰদায় উভয়কে বুজাবলৈ 'বড়ো' শব্দই প্ৰয়োগ কৰা হয়। জাতিগত পৰিচয়ৰ ফালৰ পৰা ই বৃহৎ মংগোলীয় পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত এটি ভাষিক সম্প্ৰদায়। অসমত বসবাস কৰা নৃগোষ্ঠীয় ভাষাসমূহৰ ভিতৰত ই প্ৰথম স্থান দখল কৰিছে। ২০০১ চনৰ জনসংখ্যা গণনা অনুসৰি অসমত বৰো ভাষা কোৱা লোকৰ সংখ্যা মুঠ ১২,৯৬,১৬২ জন। ১৯৭৫ চনৰ পৰা বড়ো ভাষাৰ বাবে অসমীয়া লিপিৰ সলনি দেৱনাগৰী লিপিয়ে স্বীকৃতি পাইছে। বড়ো ভাষাটো ভাৰতীয় সংবিধানৰ অষ্টম অধ্যয়ত অনুসূচিত জাতি হিচাপে অন্তৰ্ভুক্ত হৈছে। বড়ো ভাষা-ভাষিৰ বেছি ভাগ লোকে অসমৰ অবিভক্ত গোৱালপাৰা, কামৰূপ, দৰং আৰু নগাঁও জিলাৰ বসবাস কৰি আছে। শিৱসাগৰ, লক্ষীমপুৰ, কাৰ্বি আংলং আৰু গাৰো পাহাৰতো কিছু সংখ্যাক এই ভাষা-

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৮৪৭১৮১৪৯৩৬
borojyotsna61@gmail.com

গোষ্ঠীৰ লোক পোৱা যায়। বড়ো ভাষাৰ প্ৰধান চাৰিটা উপভাষাৰ ভিতৰত কোকৰাঝাৰ অঞ্চলৰ ভাষাই (উত্তৰ-পশ্চিম উপভাষা) মান্য ভাষাৰ মৰ্যাদা লাভ কৰিছে। অন্যান্য উপভাষাৰ ক্ষেত্ৰসমূহ হ'ল দক্ষিণ-পশ্চিম উপভাষা (গোৱালপাৰা, দক্ষিণ কামৰূপ আৰু গাৰো পাহাৰ অঞ্চল), উত্তৰ -মধ্য অসমৰ উপভাষা (দৰং-লক্ষিমপুৰ-অৰুণাচলৰ কিছু কিছু অঞ্চল) আৰু দক্ষিণ অসম উপভাষা (নগাঁও, উত্তৰ- কাছাৰ কাৰ্বি আংলঙৰ পাৰ্শ্ববৰ্তী অঞ্চল)। আনহাতে বহুতে পশ্চিমবংগ আৰু নাগালেণ্ডত প্ৰচলিত মেছ ভাষাকো বৰোৰে উপভাষা হিচাপে দেখুওৱা বিচাৰে। বৰো ভাষাত বিভিন্ন ধৰণৰ লোক সাহিত্য পোৱাৰ ওপৰিও বিভিন্ন আধুনিক সাহিত্য পোৱা যায়।

বড়ো ভাষাৰ বিভিন্ন সমলবোৰ ধ্বনিতত্ব, ৰূপতত্ব আৰু বাক্যতত্ব এই তিনিটা প্ৰধান দিশ। ইয়াৰে ৰূপতত্বৰ দিশটো আমাৰ গৱেষণা পত্ৰৰ আলোচনাৰ বিষয় হিচাপে লোৱা হৈছে। ধ্বনিতত্ব দিশৰ পৰা চালে দেখা যায় যে বড়ো ভাষাত আক্ষৰিক সুৰ বিশিষ্ট ধ্বনি আৰু অক্ষৰে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। বড়ো ভাষাত বিশিষ্ট ধ্বনিৰ সংখ্যা অতি সীমিত। ছটা স্বৰধ্বনি (ই,এ,আ,ও,উ,উ'), ১৪টা ব্যঞ্জনধ্বনি (ফ, থ, খ, ব, দ, গ, ম, ন, ঙ, ছ, জ, হ, ল, ৰ) আৰু দুটা অৰ্দ্ধ স্বৰ (ৱ, য়)ৰ লগতে ৪টা সুৰৰ প্ৰয়োগ আছে। অৱশ্যে বৰোৰ উচ্চ আৰু নিম্ন সুৰ দুটাহে অতি প্ৰবল ৰূপত ধৰা দিয়ে। (অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা-উপভাষা ঃ ড° উপেন ৰাভা হাকাচাম)

ভাষাবিজ্ঞানৰ সূত্ৰমতে নুন্যতম অৰ্থযুক্ত ধ্বনিৰ (phoneme) ৰ সমষ্টিয়ে ৰূপ (morpheme)। ই নিজে অৰ্থযুক্ত হ'লে মুক্ত (free morpheme), নিজে অৰ্থ সূচনা নকৰিলে বদ্ধৰূপ (bound morpheme) হয়। ৰূপতত্বিক পৰিচয় বিষয়ে আলোচনা কৰিবলৈ হ'লে প্ৰধানকৈ শব্দৰ গঠন প্ৰণালী ওপৰতেই গুৰুত্ব দিয়া হয়। লগতে ৰূপ বা বিভিন্ন ধৰণৰ প্ৰাকৃতি ভূমিকাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হয়। বৈয়াকৰণিক বিভাগসমূহৰ প্ৰায়োগিক ভূমিকাৰ ওপৰত আলোকপাত কৰাই প্ৰধানভাৱে ৰূপতাত্বিক আলোচনাৰ লক্ষ্য।

০.০১ উদ্দেশ্য ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হৈছে বৰো ভাষাৰ ৰূপতত্বমূলক দিশসমূহ আলোচনা কৰি উদাহৰণসহ বৰ্ণনা কৰা।

০.০২ পদ্ধতি ঃ

'বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্বমূলক আলোচনা ঃ এটি চমু আভাস'— শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনি অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত ঘাইকৈ বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও সমলসমূহ বিভিন্ন ভাষাবিষয়ক গ্ৰন্থ, আলোচনী আদিৰ পৰা আহৰণ কৰা হৈছে।

০.০৩ ক্ষেত্ৰ ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনত ৰূপতত্বমূলক সকলো দিশ বিস্তৰ আলোচনা সম্ভৱ নহয়, যদিও বিষয়টোৰ দিশসমূহ সীমিত পৰিসৰত আলোচনা কৰা হ'ব।

০.০৪ মূল বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ ঃ

বড়ো ভাষাৰ ৰূপতাত্বিক বৈশিষ্ট্যসমূহ এনেদৰে আলোচনা কৰিব পাৰি। অন্যান্য ভাষাৰ দৰে বৰো ভাষাটো বিশেষনৰ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। বড়ো ভাষাত বিশেষণক 'লালি' বুলি কোৱা হয়। বিশেষ্য গুণ বুজোৱা এই লালি বৰো ভাষাত তিনি প্ৰকাৰৰ। সেয়া হ'ল— ক) বিশেষ্য বিশেষণ (মুংমা লালিত) খ) বিশেষনীয় বিশেষত (লালিনি লালি) গ) ক্ৰিয়া বিশেষক (থাই লালি)

ক) বিশেষ্য-বিশেষণ (মুংমা লালি) ঃ যি বিশেষণে বিশেষ্য বা সৰ্বনামৰ গুণ বা অৱস্থাক বুজায় তাকে মুংমা লালি বুলি কোৱা হয়। উদাহৰণস্বৰূপে— দুটাং মানষি (দুষ্ট মানুহ), থিউৰিয়া গথ (খঙাল ল'ৰা)।

খ) বিশেষণীয় বিশেষণ (লালিনি লালি) ঃ যি লালিয়ে লালিৰেই গুণ বা অৱস্থা বুজায় তাকে লালিনি লালি বুলি কোৱা হয়। যেনে— জৌবৌৎ গৌজ্বা (বৰ ৰঙা), বাৰা গৌজাং (বেছি ভাল)।

গ) ক্ৰিয়া বিশেষণ বা থাই লালি ঃ যি লালিয়ে ক্ৰিয়াৰ গুণ বা অৱস্থা বুজায় তাকে থাই লালি বুলি কোৱা হয়। যেনে— লাছৈ লাছৈ (লাহে লাহে), গৌদৈ গৌদৈ বুংদৌং (মধুৰ মধুৰকৈ কোৱা)। ক্ৰিয়া বিশেষক আকৌ তিনিটা ভাগত ভাগ কৰা হয়। সেয়া হ'ল— (১) কালবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণ বা বৌথীৰ ফৌৰমায়গ্ৰা লালি (২) স্থানবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণ বা থাওনি ফৌৰমায়গ্ৰা (৩) সংখ্যাবাচক ক্ৰিয়াবিশেষণ বা অঞ্জিমা ফৌৰমায়গ্ৰা লালি।

বড়ো ভাষাত বহুবচনৰ ধাৰণা। বড়ো ভাষাত বহুবচনৰ

ধাৰণা সূচাবলৈ বিশেষ্য বা সর্বনাম পদৰ পিছত বহুবচনাত্মক প্ৰাকৃতি যোগ কৰা হয়। অৱশ্যে কেতিয়াবা বিশেষণ পদৰ লগতো বহুবচনাত্মক প্ৰাকৃতি যোগ দি বহুবচনৰ ধাৰণা দিয়া হয়। যথা, মৌজাং -ফৌৰ-খৌ মৌজাংফৌৰখৌ (ভালকেইটা, ভালবোৰ)। ইয়াত 'মৌজাং' শব্দৰ অর্থ 'ভাল' (-ফৌৰ) হ'ল বহুবচনাত্মক প্ৰত্যয়, (-খৌ) হ'ল কৰ্মকাৰকৰ লগত যোগ হোৱা দ্বিতীয় বিভক্তি। বৰো ভাষাত এই ধৰণৰ গাঁথনি বহুত আছে। বড়ো ভাষাত (-ফৌৰ) -অৰ প্ৰয়োগ প্ৰধানকৈ মানুহ, জীৱ-জন্তু, বস্তু বা গছ-গছনি ইত্যাদি বুজোৱা বিশেষ্য পদৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহাৰ হয়। যেনে—গথ'ফৌৰ (শিশুবোৰ)

মানচিফৌৰ (মানুহবোৰ)

দাউফৌৰ (চৰাইবোৰ)

(-মৌন) বহুবচনাত্মক প্ৰত্যয় সম্বন্ধবাচক শব্দ আৰু ব্যক্তিবাচক সর্বনামৰ লগত প্ৰয়োগ হয়। যেনে—

আফামৌন (দেউতাহঁত)

আদামৌন (ককাদেউতাহঁত)

কিন্তু দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় পুৰুষৰ ব্যক্তিবাচক সর্বনামৰ লগত ব্যৱহাৰ হ'লে ইয়াৰ আগত মান্যার্থবাচক (থাং) ৰূপৰ প্ৰয়োগ হয়। যেনে—

নৌংথাংমৌন (আপোনাক)

বিথাংমৌন (তেখেতসকল) ইত্যাদি।

(-চৌৰ) ২য় আৰু ৩য় তুচ্ছার্থ বুজোৱা ব্যক্তিবাচক সর্বনামৰ পিছত, সাধাৰণ অর্থত কিন্তু সন্মানার্থে একবচনত যেনে—

নৌংচৌৰ (তহঁত, তোমালোক)

বিচৌৰ (সিহঁত)।

বৰো ভাষাত লিংগৰ ধাৰণা। বৰো ভাষাত পুৰুষ-স্ত্ৰী বা মতা-মাইকীৰ ওপৰত নির্ভৰ কৰিহে লিংগভেদ নির্ণয় কৰা হয়। সাধাৰণতে তিনিটা পদ্ধতিৰে লিংভেদ নির্ণয় কৰা হয়।

(১) পুৰুষবাচক 'হৌৰা' আৰু স্ত্ৰীবাচক 'হিঞ্জাৰ' শব্দ বেলেগ বেলেগ ব্যৱহাৰ কৰি লিংভেদ ধাৰণা দিয়া হয়। যেনে—

পুংলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
হৌৰা-চা (ল'ৰা)	হিঞ্জাউ-চা (ছোৱালী)

ইয়াত পুৰুষ আৰু স্ত্ৰীবাচক শব্দৰ পিছত ব্যৱহাৰ হোৱা 'চা' হ'ল সন্তানবাচক ৰূপ। জীৱ-জন্তু আৰু চৰাই-চিৰিকতিৰ ক্ষেত্ৰত সুকীয়া সুকীয়াকৈ লিংগ নিৰূপণ শব্দ ব্যৱহাৰ আছে। চৰাইৰ ক্ষেত্ৰত মতা বুজাবলৈ 'জৌলা' আৰু মাইকী বুজাবলৈ 'জৌ' শব্দৰ ব্যৱহাৰ আছে। যেনে—

পুংলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
দাউ জৌলা	দাউ জৌ

ইয়াত 'দাউ' শব্দৰ অর্থ চৰাই। ছাগলীৰ ক্ষেত্ৰত মতা/পঠা বুজাবলৈ 'ফান্ থা' আৰু মাইকী/পাঠী বুজাবলৈ 'ফান্ থি ' শব্দৰ প্ৰয়োগ আছে। যেনে—

পুংলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
বৌৰমা ফান্ থা (ছাগলী পঠা)	বৌৰমা ফান্ থি (ছাগলী পাঠী)

সেইদৰে গাহৰি ক্ষেত্ৰত 'বুন্দা-বুন্দি' শব্দৰ ব্যৱহাৰ আছে। যেনে—

পুংলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
অমা বুন্দা (মতা গাহৰি)	অমা-বুন্দি (মাইকী গাহৰি)

(২) বেলেগ বেলেগ মতা-মাইকী বা পুৰুষ-স্ত্ৰী সূচোৱা শব্দ ব্যৱহাৰ কৰিও বৰো ভাষাৰ লিংগ ভেদ নির্ণয় কৰা হয়। যেনে—

পুংলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
আদা (ককাইদেউ)	বাজৈ (বৌ)
আবৌ (ককাদেউতা)	আবৈ (আইতা)
গুমৈ (ভিনীদেউ)	আবৌ (বাইদেউ)।

(৩) বৰো ভাষাত স্ত্ৰী লিংগবাচক পৰ-সর্গ প্ৰয়োগ কৰিও লিংভেদৰ ধাৰণা সূচোৱা হয়। যেনে—

পুংলিংগ	স্ত্ৰীলিংগ
(-ই) ঃ বেংগা (কলা)	বেংগি (কালৰী)

(-উ) ঃ হায়থা (চাপৰ মতা মানুহ) হায়থু (চাপৰ মাইকী মানুহ)

নির্দিষ্টবাচকতাৰ ধাৰণা সূচাবলৈ সংখ্যাবাচক শব্দৰ আগত নানান ধৰণৰ প্রত্যয় বা ৰূপ প্রয়োগ কৰা হয়। জীৱ-জন্তু, বস্তু-বাহানি আদিৰ ৰূপ আকাৰ বা শ্রেণী নিদিষ্ট বা সঠিকভাৰে দেখুৱাবলৈ বিভিন্ন ৰূপ বা প্রাকৃতিৰ প্রয়োগ আছে। বৰো ভাষাত প্রয়োগ হোৱা নিদিষ্টতাবাচক প্রত্যয় কিছুমান হ'ল—

(-গাং) ঃ হি গাং-চে (কাপোৰ এখন) হি-কাপোৰ, গাং-নির্দিষ্টবাচক প্রত্যয়, চে -এক সংখ্যা।

(-মা) ঃ না মা-চে (মাছ এটা) না-মাছ, মা-নির্দিষ্টবাচক প্রত্যয়, চে -এক সংখ্যা।

(-চা) ঃ চা-চে মানচি (এজন মানুহ) চা-নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয়, চে-এক সংখ্যা, মানচি-মানুহ।

এইধৰণৰ অসংখ্য নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় ব্যৱহাৰ বৰো ভাষাত আছে। আনহাতে সংখ্যা নির্দিষ্টকৈ নুবুজালে নির্দিষ্টতাবাচক ৰূপৰ পিছত (-চৌ) পৰ-সর্গ প্রয়োগ কৰা দেখা যায়। যেনে—

মা-চে-চৌ > মাচেচৌ (এটা মান)

ইয়াত (মা-) হ'ল জীৱ-জন্তু, অন্যান্য প্রাণী, মাছ ইত্যাদিৰ লগত জড়িত নির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় আৰু 'চে' হ'ল এক সংখ্যা সূচোৱা ৰূপ আৰু 'চৌ' হ'ল অনির্দিষ্টতাবাচক প্রত্যয় বা ৰূপ।

বড়ো ভাষাত সর্বনামৰ প্রয়োগৰ ধাৰণা কেইবা প্রকাৰে দেখুৱাব পৰা যায়। বৰো ভাষাত পুৰুষবাচক সর্বনামৰ দ্বিতীয় পুৰুষত সন্মানার্থক আৰু তুচ্ছার্থক দুটা সুকীয়া ৰূপ পোৱা যায়। মূল পুৰুষবাচক সর্বনাম শব্দৰ পাছত বহুবচনৰ প্রত্যয় ফৌৰ, মৌন্, চৌৰ্ যোগ কৰি বহুবচনৰ অর্থ বুজোৱা হয়। আনহাতে তৃতীয় পুৰুষৰ লিংগভেদে নাই যদিও মানুহ আৰু ইতৰ বস্তুক বুজাবৰ বাবে ভিন ভিন ৰূপৰ প্রয়োগ আছে। বড়ো ভাষাৰ পুৰুষবাচক সর্বনামবোৰ পুৰুষ আৰু বচনভেদে এনেদৰে উল্লেখ কৰিব পাৰি।

	একবচন	**বহুবচন**
প্রথম পুৰুষ ঃ	আঙ 'ম্ই'	জৌঙ্ 'আমি'
		জৌঙ্-ফৌৰ 'আমি সকলো'
দ্বিতীয় পুৰুষ ঃ	নৌঙ্ 'ত্ই'	নৌঙ্-চৌৰ 'তহঁত'
	(তুচ্ছার্থক)	নৌঙ্-থাম-ফৌৰ
	নৌঙ-থাম্ 'তুমি'	'তোমালোক সকলো'
	(সন্মানার্থক)	নৌঙ্-থাম-মৌন্
		'তোমালোক'
তৃতীয় পুৰুষ ঃ	বি 'সি'	বি-চৌৰ্ 'সিহঁত'
	'তাই'	বে-চৌৰ্ 'সিহঁত'
		বি-ফৌৰ্ 'সিহঁত'
		বি-ফৌৰী 'সিহঁত'।

বড়ো ভাষাৰ কেইটামান সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য শব্দ তলত উল্লেখ কৰা হ'ল। মন কৰিবলগীয়া যে ৰূপ কৰাৰ সময়ত পুৰুষবাচক সর্বনামটোৱে সম্বন্ধ শব্দটোৰ ওপৰত প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰে। পুৰুষবাচক সর্বনামটো সম্বন্ধ শব্দটোৰ আগত যোগ হয় আৰু সম্বন্ধ শব্দটোৰ শেষৰ এটা অংশহে থাকি যায়। এনেকৈ দুয়োটা শব্দৰ সংযোগত সৃষ্টি হোৱা নতুন শব্দটো দ্বি-অক্ষৰীয় হয়। যেনে—

আংফা/আঠা <আঙ্ নি + আফা (আঙ্ নি -মোৰ, আফা -দেউতা)

নৌংফা<নৌংনি + আফা (নৌংনি -তোমাৰ, আফা -দেউতা)

বিফা<বিনি + আফা (বিনি - তেওঁৰ/তাইৰ, আফা -দেউতা) ইত্যাদি।

কাৰক আৰু বিভক্তিৰ মাজত অবিচ্ছেদ্য সম্পর্ক আছে। শব্দ বিভক্তিৰ প্রয়োগৰ দ্বাৰা কাৰক আৰু ক্রিয়াৰ মাজৰ সম্পর্কক নির্ধাৰণ কৰিব পাৰি। এনে সম্পর্কক নির্ধাৰণ কৰিবৰ বাবে বড়ো ভাষাত ছয় প্রকাৰৰ শব্দ বিভক্তিৰ প্রয়োগ আছে। উল্লেখযোগ্য যে অসমীয়া ভাষাৰ দৰে বৰো ভাষাটো অপাদান কাৰকৰ ধাৰণা দিবলৈ ষষ্ঠী বিভক্তিৰ চিন (-নি)ৰ পাছত (-ফ্রায়) পৰ-সর্গ প্রয়োগ হয়। যেনে—

দংফাং -নি-ফ্রাই (গছৰ পৰা)

অখ্রাং-নি-ফ্রাই (আকাশৰ পৰা)

বৰো ভাষাত কর্তা-কাৰকৰ ধাৰণা দিবলৈ প্রধানকৈ দুই

প্রকাৰৰ শব্দ বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ আছে। যেনে— (-আ, আ)

বীৰমাৰা গাংচী জায়ী (ছাগলীয়ে ঘাঁহ খায়)

বিয়ী মাল্লা থাংগীন (সি কেতিয়া যাব)।

কৰ্ম-কাৰকৰ ধাৰণা দিবলৈ দ্বিতীয় বিভক্তিৰ ৰূপ (-খী)ৰ ব্যৱহাৰ হয়। কেতিয়াবা শূণ্য প্ৰাকৃতিৰ (বিভক্তি) প্ৰয়োগেৰেও কৰ্মকাৰকৰ ধাৰণা দিয়া হয়। যেনে—

বিয়ী বিজাব ফৰায়দীং (সি কিতাপ পঢ়িছে)

কিন্তু যাৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি ক্ৰিয়া সম্পাদন হয়, সি ব্যক্তি (মানুহ) অৰ্থাৎ ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম হ'লে কৰ্ম কাৰকৰ লগত (-খী) বিভক্তি লগ লাগে। যেনে—

আং বিমা-খী বংদীং (মই মাক ক'লো)

আং নীং-খী মীজাং মীনী (মই তাক ভাল পাওঁ)।

কৰণ কাৰকৰ ধাৰণা দিবলৈ তৃতীয় বিভক্তি চিন (-জী) প্ৰয়োগ হয়। যেনে—

আং চিখা-জীং-গ'ই দানদীং (মই কটাৰিৰে তামোল কাটিছোঁ)

বড়ো ভাষাত সম্প্ৰদান কাৰকৰ অৰ্থত (-নী) বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ আছে। ই চতুৰ্থী বিভক্তিৰ চিন। যেনে—

আং নীং-নী লাইজাম হৰগৌন (মই তোমালৈ চিঠি পঠিয়াম)

কিন্তু প্ৰতি, অভিমুখ আদি অৰ্থত (-চিম) পৰ-পদ ব্যৱহাৰ কৰিও সম্প্ৰদান কাৰকৰ ধাৰণা দিয়া হয়। যেনে—

বিয়ী ন-চিম থাংবায় (সি ঘৰলৈ গ'ল)

যাৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি ক্ৰিয়া সম্পাদন হয়, সি ব্যক্তি বা ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম হ'লেও (-চিম) পৰ-পদ যোগ হোৱাৰ আগতেই সম্বন্ধ পদৰ (-নি)ৰ প্ৰয়োগ হয়। যেনে—

বিয়ী নীং-নি-চিম থাংগীন (সি তোমাৰ তালৈকে যাব)

সম্বন্ধ পদৰ ধাৰণা দিবলৈ (-নি) বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ আছে। যেনে—

বিয়ী আং-নি আদা (সি মোৰ ককাইদেউ)

ভাৰতা জীং-নি হাদৰ (ভাৰতবৰ্ষ আমাৰ দেশ)।

অধিকৰণ কাৰকৰ অৰ্থত (-আও) বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ হয়। ই সপ্তমী বিভক্তিৰ চিন। যেনে—

বিয়ী গুৱাহাটীয়াও (-আও) থায়ী (সি গুৱাহাটীত থাকে)

দৈয়াও (-আও) না থায়ৌ (পানীত মাছ থাকে)।

বড়ো ভাষাত ক্ৰিয়াৰ গঠন আৰু প্ৰয়োগৰ দিশলৈ চালে দেখা যায় যে গাঁথনিক দিশৰ পৰা আলোচনা কৰিলে তিনি প্ৰকাৰৰ ক্ৰিয়াৰ গঠন বৰো ভাষাত পোৱা যায়। সেইয়া হ'ল—

ক) সৰল ৰূপ ক্ৰিয়া (simple verb)

খ) জটিল বা মিশ্ৰিত ৰূপৰ ক্ৰিয়া (complex verb)

গ) সংযুক্ত ৰূপৰ ক্ৰিয়া (compound verb)

সৰল গঠন ক্ৰিয়াবোৰ সাধাৰণতে বড়ো ভাষাত একাক্ষৰীয়। ই কেতিয়াবা মুক্ত আৰু বদ্ধমূল হ'ব পাৰে। জা(খা), থাং(যা), ফৈ (আহ্), থৈ (মৰ্), লাং (লৈ যা) ইত্যাদি। এনেধৰণৰ সৰল প্ৰকৃতিৰ ক্ৰিয়ামূলৰ আগত বা পিছত নানান ধৰণৰ প্ৰাকৃতি বা সৰ্গ যোগ কৰি বিভিন্ন অৰ্থৰ ক্ৰিয়া শব্দৰ গঠন কৰিব পৰা যায়। সাধাৰণতে এইবোৰ জটিল বা মিশ্ৰিত ৰূপৰ ক্ৰিয়া শব্দ। উদাহৰণস্বৰূপে—

দা-জা > দাজা (নাখাবা)

দা-থাং > দাথাং (নাযাবা)।

ইয়াত (-দা) হ'ল নঞৰ্থক পূৰ্ব-সৰ্গ আৰু ইয়াৰ পিছত থকা ৰূপ দুটি ক্ৰিয়ামূল। ইয়াৰ জৰিয়তে ক্ৰিয়াৰ নঞৰ্থকতা প্ৰথম প্ৰকাশ পাইছে। পাঁচনি ক্ৰিয়া গঠনৰ পদ্ধতিও বৰো ভাষাত আছে। কিছুমান পাঁচনিবাচক পূৰ্ব-সৰ্গ যেনে— (ফৌ, ফে-, ফু-, চৌ-) আদি যোগ কৰি পাঁচনি ক্ৰিয়া সম্পাদন কৰা হয়। যেনে—

(ফৌ-) ঃ ফৌ-জাম > ফৌজাম (পুৰণি বা ক্ষয় কৰ)

ফৌ-ৰান > ফৌৰান (শুকান কৰ্ম)

(ফে-) ঃ ফে-দেৰ > ফেদেৰ (ডাঙৰ কৰ্ম)

ফে-চেং > ফেচেং (পাতল কৰ্)

(ফু-) ঃ ফু-চুং > ফুচুং (চুটি কৰ্)

ফু-দুং > ফুদুং (গৰম কৰ্)

(চী-) ঃ চী-গ্রাৱ (ধাকা খোৱা)

চী-মাৱ (লৰোৱা)

দুটা বা ততোধিক ক্রিয়াৰ মূলৰ সংযুক্তিৰ ফলত সংযুক্ত ক্রিয়াৰ গঠন হয়। ফলত অর্থৰ বিকাশৰ ক্ষমতা বৃদ্ধি হ'ব পাৰে। বড়ো ভাষাত দুটা ক্রিয়ামূলৰ সংযুক্তি এনেদৰে দেখুৱাব পাৰি—

জা (খা) + জীব (শেষ হ) — জাজীব (খাই শেষ কৰ)

লাব (ল) + বী (টান) — লাবী (আন, লৈ আহ্)।

তিনিটা ক্রিয়ামূলৰ সংযুক্তি এনেদৰে দেখুৱাব পাৰি—

হৰ (দি) + ফৈ (আহ্) + জীব (শেষ হ) — হৰফৈজীব (সমূদায় দেহি)

দান (কাট্) + ফায় (ভাঁজ কৰ্) + জীব (শেষ হ) দানফায়জৌব (সমূদায় কাটি শেষ কৰ)

চাৰিটা ক্রিয়ামূলৰ সংযুক্তি বড়ো ভাষাত আছে। যেনে—

লিং (মাত্) + হৰ (দি) + খীমা (হেৰা) + (জীব)— লিংহৰখীমাজীব। ইয়াৰ অর্থ মনে মনে আটাইকে মাত বা আহ্বান কৰা। এই ধৰণৰ অনেক সংযুক্ত ক্রিয়াৰ প্রয়োগ বৰো ভাষাত আছে।

ক্রিয়াৰ সম্পাদন কৰিবৰ বাবে বৰো ভাষাত প্রধানকৈ তিনি প্রকাৰৰ ক্রিয়াৰ কাল আছে। সেয়া হ'ল— অতীত কাল, বর্তমান কাল আৰু ভৱিষ্যৎ কাল। কালৰ ধাৰণা দিবলৈ ক্রিয়াৰ মূলৰ পিছত নানান ধৰণৰ ক্রিয়া বিভক্তিৰ যোগ কৰা হয়।

বর্তমান কালৰ প্রধান দুটা ৰূপ পোৱা যায়। এটা হ'ল নিত্য বর্তমান কাল আৰু আনটো হ'ল চলিত বর্তমান কাল। 'মানচিয়া জায়ী' (মানুহে খায়) এইটো নিত্য বর্তমান কাল। সেইদৰে 'বিয়ী লাইজাম লিৰ্-দৌং' (সি চিঠি লিখিছে) — এই বাক্যত চিঠি লিখা কার্য চলি থকা বুজাইছে। (লিৰ্) ক্রিয়াৰ মূল হৈছে (-দৌং) ক্রিয়াৰ বিভক্তি যোগ কৰি লিখা কার্য বর্তমান কালত চলি থকাৰ ধাৰণা প্রকাশ কৰা হৈছে।

ঠিক তেনেদৰে অতীত কালৰো কালত দুটা ৰূপ আছে। সুদূৰ অতীত কাল আৰু নিকট অতীত কাল। অতীত কালৰ ধাৰণা সূচাবলৈ (-মৌন) ক্রিয়া বিভক্তিৰ প্রয়োগ কৰা হয়। যেনে— 'আং ফৰায়চামৌন' (মই ছাত্র আছিলো)। আনহাতে সুদূৰ অতীতত কালৰ ধাৰণা দিবলৈ বর্তমান কালৰ ক্রিয়া বিভক্তি যোগ কৰাৰ পিছত অতীত কালৰ ক্রিয়াৰ বিভক্তি যোগ কৰা হয়। যেনে—

বিয়ী ফৰায়চা চমাও জৌবীদ বিজাব ফৰায় -দৌং-মৌন
(সি ছাত্র কালত খুব কিতাপ পঢ়িছিল)

এই উদাহৰণটোত 'ফৰায়' ক্রিয়াবাচক শব্দৰ লগত চলিত বর্তমান কালৰ ৰূপ (-দৌং) যোগ কৰা হৈছে। সেইদৰে নিকট অতীত কালৰ ধাৰণা দিবলৈ (-বায়) ক্রিয়া বিভক্তিৰ যোগ কৰা হয়। যেনে— বিয়ী আংখাম জাবায় (সি ভাত খালে)

ইয়াত 'জা' ধাতুৰ পিছত (-বায়) ক্রিয়া বিভক্তি যোগ কৰি নিকট অতীত কালৰ ধাৰণা দিয়া হৈছে। ভৱিষ্যৎ কাল সূচাবলৈ ক্রিয়া বিভক্তিৰ প্রয়োগ কৰা হয়। ভৱিষ্যৎ কালক দুই প্রকাৰে দেখুৱাব পাৰি। এটা হ'ল সুদূৰ ভৱিষ্যৎ কাল আৰু আনটো হ'ল নিকট ভৱিষ্যৎ কাল। কোনো কার্য আৰম্ভ হোৱা নাই, কিন্তু অচিৰেই আৰম্ভ হ'ব, এনে ধাৰণা সূচাবলৈ প্রতি, অভিমুখ আদি অর্থ বহন কৰা শব্দ বিভক্তি (-নৌ) যোগ কৰি (-চৈ) পৰ-সর্গ এটা সংযোগ কৰা হয় আৰু এনেদৰেই নিকট ভৱিষ্যৎ কালৰ প্রকাশ কৰা হয়। যেনে—

আং আংখাম জা-নৌ-চৈ (মই ভাত খাম) অচিৰেই খোৱা অর্থ প্রকাশ কৰিছে।

কিন্তু কার্যটোৰ যদি আৰম্ভ হোৱাৰ কোনো উমান নাথাকিলে তেতিয়া 'জা' ধাতুৰ পিছত (-গৌন) ক্রিয়া বিভক্তিৰ যোগ কৰি সুদূৰ সময়ৰ ধাৰণা প্রকাশ কৰিব পাৰি। যেনে—

আং আখাম জা-গৌন (মই ভাত খাম)।

সম্ভাৱনা অর্থত (ভৱিষ্যৎ কালত) ক্রিয়ামূলৰ পাছত 'গৌ' ৰূপ যোগ কৰাৰ পিছত অতীত কালবাচক বিভক্তি (-মৌন) যোগ কৰা হয়। যেনে— আং থাং-গৌ-মৌন (মই গ'লোহেঁতেন)।

উপসংহাৰ ঃ

মানুহে ভাষা এটা শুদ্ধকৈ ক'ব বা লিখিবলৈ কেতবোৰ বৈয়াকৰণিক দিশত চকু দিব লাগে। এই ক্ষেত্রত ভাষাটোৰ ভাষাতাত্ত্বিক সমলবোৰ যেনে— ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব আৰু বাক্যতত্ত্ব আদিৰ বিষয়ে জনাটো অতিকে আৱশ্যক। বর্তমান

সময়ত দেখা যায় যে বিদ্যালয়-মহাবিদ্যালয় বা সাহিত্য চর্চাৰ ক্ষেত্ৰত বড়ো ভাষাটো কিছু পৰিমাণে মাধ্যম হিচাপে প্ৰয়োগ কৰাৰ লগে লগে ভাষাটোৰ উন্নতিৰ পথত অগ্ৰসৰ হৈছে। এইক্ষেত্ৰত ভাষাটোৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনবোধ আহি পৰিছে। সেয়েহে এনেবোৰ দিশৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি বড়ো ভাষাৰ ৰূপতত্ত্বমূলক কিছু বৈশিষ্ট্য দাঙি ধৰাৰ প্ৰয়াসেৰেই এই আলোচনাটি আগবঢ়োৱা হৈছে। ❑

প্ৰসংগ টীকা ঃ

১। পাদুন, নাহেন্দ্ৰ (সম্পাঃ), ভাষাৰ তত্ত্ব-কথা , পৃষ্ঠা. ২৭৫
২। দাস, বিশ্বজিৎ, ফুকন চন্দ্ৰ বসুমতাৰী (সম্পাঃ), অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা, পৃষ্ঠা. ১০৮
৩। সদ্যোক্ত, পৃ. ১১৩
৪। সদ্যোক্ত, পৃ. ১১৪
৫। সদ্যোক্ত, পৃ. ১১৫
৬। সদ্যোক্ত, পৃ. ১১৬
৭। সদ্যোক্ত, পৃ. ১১৭
৮। সদ্যোক্ত, পৃ. ১১৯
৯। সদ্যোক্ত, পৃ. ১২০
১০। সদ্যোক্ত, পৃ. ১২১
১১। বৰুৱা, ভীমকান্ত, পৃষ্ঠা. ১৪৫
১২। সদ্যোক্ত, পৃ. ১৪৬
১৩। হাকাচাম, উপেন ৰাভা, পৃষ্ঠা. ১০

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ। অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ। গুৱাহাটী ঃ বৰুৱা এজেন্সি প্ৰকাশ, ১৯৯৬। মুদ্ৰিত।
পাদুন, নাহেন্দ্ৰ (সম্পা ঃ)। ভাষাৰ তত্ত্ব-কথা। গুৱাহাটী ঃ বাণী মন্দিৰ প্ৰকাশ, ২০০৪। মুদ্ৰিত।
দাস, বিশ্বজিৎ; ফুকন চন্দ্ৰ বসুমতাৰী (সম্পাঃ)। অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা। গুৱাহাটী ঃ আঁক-বাক প্ৰকাশ, ২০১০। মুদ্ৰিত।
বৰুৱা, ভীমকান্ত । অসমৰ ভাষা। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা প্ৰকাশ, ১৯৯০। মুদ্ৰিত।
নাৰ্জী, ভবেন। বৰো ভাষা। গুৱাহাটী ঃ বীণা লাইব্ৰেৰী, ১৯৯০। মুদ্ৰিত।
হাকাচাম, উপেন ৰাভা। অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা-উপভাষা। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০০৯। মুদ্ৰিত।

ইংৰাজী ঃ

Bhattacharya, Pramod Chandra. A Descriptive Analysis of the Boro Language (1977)

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

বিহু সংস্কৃতিত বয়নশিল্প ঃ এক আলোকপাত

অনুভা কলিতা
গবেষক ছাত্রী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী
৯১০১৩১৯২১৬
anubhakalia1@gmail.com

ড° চম্পাকলি তালুকদাৰ
সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী
৮৬৩৮৬২৫৩৩১
champachandan2@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

অসমীয়া জাতিৰ বহুধা বর্ণিল সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্রখনৰ পৰিসৰ ব্যাপক আৰু চহকী। চহকী অসমীয়া সংস্কৃতিক অতুলনীয় ৰূপত দাঙি ধৰিবলৈ চেষ্টা কৰা উপাদানসমূহৰ ভিতৰত বিশেষ উপাদানটিয়েই হ'ল — 'বিহু'। 'বিহু' — অসমীয়াৰ জাতীয় উৎসৱ। বিহুৰ মাজেৰে অসমীয়া সমাজ তথা সংস্কৃতিৰ স্পষ্ট প্রতিফলন ঘটে। কৃষি প্রধান অসমীয়া সমাজৰ মূলাধাৰ হ'ল— 'কৃষি'। অসমত কৃষিৰ পাছতে 'বস্ত্রশিল্প'ই স্থান লাভ কৰিছে। এই ৰাজ্যৰ বস্ত্রৰ পূর্বৰ শৈলী পৰম্পৰাগত আছিল যদিও বর্তমানেও এই শৈলীৰ প্রচলন আছে। বিজ্ঞান প্রযুক্তিৰ ন-ন আৱিষ্কাৰে বয়নশিল্পৰ ক্ষেত্রখনত আধুনিকতাৰ প্রবাহ বোৱাই আনিছে। বয়ন কার্য আৰু বস্ত্র সম্পর্কীয় বহু দিশ বিহুৰ সৈতে জড়িত হৈ আছে। বিহুগীতবোৰত সাধাৰণতে পৰম্পৰাগত শৈলীৰ বোৱা-কটা সঁজুলি, বিবিধ বস্ত্র আদিৰ বিষয়েহে উল্লেখ আছে। সেয়েহে, এই আলোচনাটিত আমি 'বিহু সংস্কৃতিত বয়ন শিল্প— এক আলোকপাত' শীর্ষক বিষয়টি বাছি লোৱাৰ প্রয়াস কৰিছোঁ।

বীজ শব্দ ঃ

বিহুৰ সাজপাৰ, বিহুৱান, বিহুগীতত প্রকাশ পোৱা বয়নশিল্পৰ প্রতিচ্ছবি।

বিহু অসমৰ জাতীয় উৎসৱ। এই উৎসৱ মূলতঃ কৃষিকেন্দ্রিক। অসমত অতীতৰ পৰাই বিহু উৎসৱ পৰম্পৰাগতভাবে পালন কৰি আহিছে। অসমীয়া জাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ নির্মল প্রতিচ্ছবি বিহু উৎসৱত পৰিস্ফুট হৈ উঠে। সম্বন্ধ, সামাজিক নীতি-নিয়ম আদিৰ সুন্দৰ আভাস বিহুৰ জৰিয়তে প্রকাশিত হয়। কৃষিপ্রধান অসমৰ কৃষিৰ পাছতে বয়নশিল্পই স্থান লাভ কৰিছে। বিহুৰ স'তেও বয়নশিল্পৰ বিভিন্ন দিশ সাঙোৰ খাই থাকে।

বিহুত অসমীয়াৰ সাজপাৰ ঃ

বিহুৰ সময়ছোৱাত অসমীয়া লোকসকলে সাজপাৰৰ ক্ষেত্রত বিশেষ গুৰুত্ব দিয়ে। সাধাৰণতে ব'হাগ, কাতি আৰু মাঘ — এই তিনিওটা বিহুত অসমীয়া জনসাধাৰণে জাতীয় পোছাক পৰিধান কৰি ভাল পায়। বিহু সংগীতে ৰাজকীয় মর্যাদা পোৱাৰ পাছৰে পৰা বিহু বুলিলে মুগাৰ সাজ পৰিধান কৰা পৰম্পৰাগত প্রথাৰ প্রচলন হ'বলৈ লয়। মুগাপলুৰ মুখৰ পৰা ওলোৱা আঁহৰ পৰা মুগাসূতা তৈয়াৰ কৰা হয়। মুগাৰ খেতি কেৱল অসমতে হয় বাবে মুগা অসমৰ অমূল্য সম্পদ। অসমত মুগাৰ সাজপাৰৰ ব্যৱহাৰ

আহোম সকলৰ সময়ৰ পৰাহে প্ৰচলিত হৈছিল। সেই সময়ছোৱাত সাধাৰণ প্ৰজাই কপাহ গছৰ পৰা অনা কপাহবোৰ ধুনি তাৰ পৰা উলিওৱা সূতাৰে তৈয়াৰী কাপোৰ পৰিধান কৰিব লাগিছিল। আহোম যুগত পাট আৰু মুগা পলুৰ মুখেৰে ওলোৱা আঁহৰ পৰা তৈয়াৰী পাট আৰু মুগা সূতাৰ বস্ত্ৰক বিলাসী তথা মৰ্যাদাপূৰ্ণ পোছাক ৰূপে স্বীকৃতি দিয়া হৈছিল। স্বীকৃতিপ্ৰাপ্ত সেই বস্ত্ৰ ৰজা বা ডা-ডাঙৰীয়াসকলেহে পৰিধান কৰাৰ নিয়ম আছিল। বৰ্তমান মুগাৰ সাজক লৈ তেনে কোনো বাধ্যবাধকতা নাই। প্ৰায় প্ৰতিটো শ্ৰেণীৰ লোকে বিহু বুলি মুগাৰ সাজ পৰিধান কৰে। সম্প্ৰতি, অসমীয়া লোকে টচ নামৰ মুগা সদৃশ সূতাবিধৰ পৰা তৈয়াৰী সাজো পৰিধান কৰা দেখা যায়। আজিৰ অসমীয়া মহিলাই বিহু বুলিলে পাট-মুগা-কপাহৰ লগতে এৰীপলুৰ পৰা পোৱা এৰীসূতাকে ধৰি বিবিধ সংমিশ্ৰিত সূতাৰে তৈয়াৰী মেখেলা-চাদৰ বা বিহা আৰু ব্লাউজ পৰিধান কৰে। মহিলাৰ দেহৰ অৱয়ব অনুসৰি ইয়াৰ জোখ নিৰ্ধাৰণ কৰিলেও ইয়াৰ আনুমানিক জোখ আঠৈমিটাৰ দীঘল আৰু ছয়ত্ৰিশ ইঞ্চি পুতল। দুইমূৰ খোলা মেখেলাৰ চানেকিযুক্ত ফালটো ভৰিৰ ফালে ওলমি থাকে। ওপৰৰ খোলা অংশ কোঁচ দি নাভিৰ সোঁমাজ বা নিম্নাংশত খোচনি মাৰি লৈ মেখেলা পিন্ধা হয়। অসমীয়া মহিলাই বক্ষ ঢাকিবলৈ পিন্ধা এবিধ প্ৰয়োজনীয় বস্ত্ৰই হ'ল — চাদৰ। মহিলাগৰাকীৰ বাওঁফালৰ কঁকালত চাদৰৰ এটা আঁচল কোচ কৰি আকৰ্ষণীয় ৰূপত খুচি লৈ আনটো আঁচল সোঁ-কান্ধৰ তলেৰে বুকু ঢাকি পুনৰ বাঁওকান্ধত পেলাই লয়। চাদৰখন কোচ দি নতুবা কোচ নিদিয়াকৈ খোলধৰণে বাওঁকান্ধত পেলাই লয়। ইয়াৰ জোখ প্ৰায় দীঘে এশ আঠাশী ইঞ্চি আৰু পুতলে চল্লিশ ইঞ্চিমান হ'ব।

প্ৰকৃত অসমীয়া মহিলাৰ সাজ বুলিলে পূৰ্বতে মেখেলা-চাদৰৰ লগতে বিহাৰ যুটিটোকহে বুজাইছিল। বিহাৰ দীঘ-পুতল ক্ৰমে এশ ত্ৰিশ ইঞ্চি আৰু আশীৰ পৰা নব্বৈ ছেঃমিঃ। পূৰ্বতে মহিলাসকলে বিহাৰ এটা আঁচল চাদৰৰ তলত আৰু আনটো মেখেলাৰ ওপৰত উলিয়াই ৰাখি এটা বিশেষ সৌন্দৰ্যৰ সংমিশ্ৰণেৰে উপস্থাপিত কৰিহে পিন্ধিছিল। কঁকালৰ নিম্নাংশৰ বৰ্তুল ৰেখা ঢকাটো বিহা পিন্ধাৰ মূল কাৰণ আছিল। বৰ্তমান বিহাৰ ব্যৱহাৰ চাদৰৰ ঠাইত কৰা হয়। বুৰঞ্জীৰ মতে, স্বৰ্গদেউ ৰুদ্ৰসিংহৰ দিনৰ পৰা বিহাৰ ব্যৱহাৰ অধিক জনপ্ৰিয় হৈ উঠে। বিহা আহোমসকলৰ নিজস্ব সম্পদ। সম্প্ৰতি বিহাক

বিহুৰতীৰ মৌলিক পোছাক হিচাপে মান্যতা প্ৰদান কৰা হৈছে। বহাগৰ বিহুত বিহুৰতীসকলে মুগাৰ বিহা আৰু মেখেলা পিন্ধে। বিহাৰ সলনি মুগাৰ চাদৰো ব্যৱহাৰ কৰে। বিহুৰতীসকলে পূৰ্বতে জাকিত চোলা পিন্ধিছিল। বৰ্তমান জাকিত চোলাৰ সলনি ব্লাউজ পৰিধান কৰা হয়। এই ব্লাউজ সাধাৰণতে ৰঙা ৰঙৰ হয় যদিও মুগাৰ উকা বা ফুলাম ব্লাউজো তেওঁলোকে ব্যৱহাৰ কৰে। বিহু নচা গাভৰুসকলে ব্যৱহাৰ কৰা আন এখন বস্ত্ৰ হ'ল — হাঁচতি। এইখন ৰুমালতকৈ কিছু দীঘে-বাণিয়ে ডাঙৰ। বিহুৰতীয়ে কঁকালত খোচনি মাৰি হাঁচতি লয়। বিহুতলীলৈ যাওঁতে তেওঁলোকে হাঁচতিত খাবলৈ তামোল-পাণ বান্ধি লৈ যায়।

বিহুগীত পৰিৱেশনৰ সময়ত কৰা বিহুৱাসকলৰ ধূতি, চোলা, পাগুৰি, চেলেং আদি সাজপাৰবোৰ আহোমসকলৰ পৰা হেনো অসমীয়া সংস্কৃতিলৈ আহিছিল। চুকাফাই যেতিয়া সৌমাৰলৈ আহিছিল; তেতিয়া দুই মূৰে ৰঙা আঁচৰ ফুল পিন্ধা কপাহী গামোছা মূৰত গাঁঠি মাৰি পিন্ধিছিল বুলি অসম দেশৰ বুৰঞ্জীত উল্লেখ আছে। আহোমৰ যুগত পাইক শ্ৰেণীৰ লোকেহে বিহু মাৰিছিল বুলি জনা গৈছিল। তেওঁলোকে বিহু গাওঁতে আঠুৰ ওপৰলৈকে থকা চুৰিয়া ব্যৱহাৰ কৰিছিল। ৰজা-ৰাণী-কুঁৱৰী বা ডা-ডাঙৰীয়াসকলে গোমচেং, চাপকন, কিংখাপ আদি মূল্যবান বস্ত্ৰ পৰিধান কৰি বিহু উপভোগহে কৰিছিল। কিংখাপ এবিধ বস্ত্ৰ নহয়, চানেকীহে। ৰাজকীয় সাজপাৰত এই চানেকী প্ৰস্তুত কৰি তোলা হৈছিল। এই কিংখাপ চানেকীটো চাপকন, মেখেলা, বচোৱাল, পইজাৰ আদি কাপোৰতো উপস্থাপন কৰা হৈছিল। তেনেকৈ গোমচেঙো কিংখাপৰ দৰে এক ফুলৰ আৰ্হি। গোম সাপৰ গাৰ মোতৰ দৰে দেখি বাবে এই আৰ্হি থকা বস্ত্ৰ বা কাপোৰক গোমচেং বুলি কয়। চানেকীটো কলা মেখেলা, চেলেং আদিত বেছিকৈ ব্যৱহাৰ হয়। উল্লিখিত চাপকন এবিধ হলৌ চোলাৰ দৰে আঁঠুলৈকে ওলমি পৰা বুটাম বিহীন হাত দীঘল চোলা। বুটামৰ সলনি ইয়াত ৰছীৰ ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। সম্প্ৰতি, বিহুৱা ডেকাই চুৰিয়াৰ সলনি ধূতি, ফুলাম গামোছা, মুগাৰ চোলা, চেলেং, টঙালি আদি পৰিধান কৰে। বিহুৱাসকলে আধুনিক চার্টৰ আৰ্হিত মুগাৰ কাপোৰৰ ফুলাম চোলা চিলাই কৰি পৰিধান কৰে। এই চোলাৰ ডিঙিটো খোলা বা চার্টসদৃশ আৰ্হিত চিলোৱা হয়। তেওঁলোকে মূৰত এখন ফুলাম গামোছা গাঁঠি মাৰি পিন্ধাৰ লগতে ডিঙিতো আন এখন ফুলাম গামোছা পৰিধান কৰে। অসমীয়া পাকৈত শিপিনীয়ে ৰঙা ৰঙৰ ফুলেৰে তৈয়াৰ কৰা বগা গামোছাখনত গঁড়, চৰাই, জাকৈয়া ছোৱালী, জাপি, জোনবিৰি, ঢোলবিৰি, পখিলাকে ধৰি ভিন ভিন ফুলৰ চানেকী হুবহু তোলে। অধোবস্ত্ৰ হিচাপে ধূতি নামৰ বস্ত্ৰখন পিন্ধে। ধূতিখন নাভিৰ সোঁমাজত সমানকৈ আঁচল দুটা ৰাখি মাজত গাঁঠি মাৰি লোৱা হয়। গাঁঠি মৰাৰ পাছত এটা আঁচল কঁকালৰ অংশত পোন্ধ মাৰি লোৱা হয়। আনটো আঁচল চুৰিয়াৰ দৰে নাভিৰ তলেৰে খুচি লোৱা হয়। চুৰিয়াৰ দীঘ আৰু পুতল ধূতিতকৈ কম। চুৰিয়া কেঁচা সুতাৰে তথা ধূতি কপাহী সুতাৰে তৈয়াৰ কৰা হয়। বিহুত হুঁচৰিৰ সময়ত বয়স্কসকলে চেলেং ব্যৱহাৰ কৰে। এই চেলেংখন আহোম যুগৰে পৰা এখন সন্মানীয় বস্ত্ৰ হিচাপে পৰিগণিত হৈ আহিছে। চেলেংখন কামিজ চোলাৰ ওপৰত কান্ধত পেলাই আকৰ্ষণীয় ৰূপত পৰিধান কৰা দেখা যায়। বিহুৱা ডেকাৰ আন এক আংগিক বস্ত্ৰ হ'ল — টঙালী। টঙালী কঁকালত ধূতিৰ ওপৰত গাঁঠি মাৰি পিন্ধা এখন দীঘল ৰঙীণ ফুলাম বস্ত্ৰ। পু�ৰুষৰ টঙালী আৰু মহিলাসকলে ব্যৱহাৰ কৰা হাঁচতি বাৰভূঞাসকলৰ অৱদান আছিল বুলি জানিব পৰা যায়।

অসমীয়াৰ আদৰৰ বিহুৱান ঃ

বস্ত্ৰ দান কৰিলে পূণ্য হয় বুলি এযাৰ কথা আছে। অসমীয়া সমাজতো উক্ত আপ্তবাক্যসাৰক সাৰোগত কৰি পৰিয়াল মিতিৰ আদিৰ মাজত দুৰ্গাপূজা, বহাগ বিহুৰ সময়ত কাপোৰৰ আদান-প্ৰদান চলে। বহাগৰ প্ৰথম দিনটোত অৰ্থাৎ মানুহ বিহুৰ দিনা গা ধুই গোঁসাইক সেৱা কৰি বিহুৱান লোৱা হয়। ফুলাম গামোছা বহাগ বিহুৰ মূল আকৰ্ষণৰ কেন্দ্ৰবিন্দু। ই প্ৰতিজন অসমীয়াৰে হেঁপাহ আৰু আদৰৰ। ফুলাম গামোছাৰ লগতে উকা আৰু তিয়নি গামোছাও বিহুৱানস্বৰূপে প্ৰতিজন অসমীয়াই পৰিয়াল তথা আত্মীয়সকলক প্ৰদান কৰে। তিয়নি গামোছাৰ ব্যৱহাৰ নামনি অসমত বেছিকৈ কৰা হয়। এই গামোছাখন উকাকৈ বোৱাৰ লগতে দুই বা এক ইঞ্চিৰ মূৰে মূৰে ৰঙীণ সূতা দুডালমানকৈ দি আঁচ টনা আৰ্হিৰেও বোৱা হয়। কঁকালৰ পৰা আঁঠুৰ তললৈকে পৰা এই গামোছাখন মহিলাসকলৰ চাদৰৰ লেখীয়া। মহিলাসকলৰ চাদৰতকৈ তিয়নি গামোছাৰ পৰিসৰ সীমিত। বৰ্তমান উজনি আৰু মধ্য অসমতো তিয়নি গামোছাৰ সমাদৰ বাঢ়িছে। উকা গামোছাৰ ব্যৱহাৰ ব্যৱহাৰিক কামত বেছিকৈ কৰা হয়। এইবিধ গামোছাত কাষৰিত আৰু আঁচলত দুটাকৈ পাৰি থাকে। এই পাৰি ৰঙা

ৰঙৰ সূতাৰে বোৱা হয়। উকা গামোছা কেঁচা সূতাৰে তৈয়াৰী; উকা গামোছাখন যিমানেই বেছিকৈ ধোৱা হয়, সিমানেই ৰঙটো উজ্জ্বল আৰু কোমল হোৱাৰ লগতে ব্যৱহাৰৰ উপযোগী হৈ পৰে। এনে বিশেষ বৈশিষ্ট্যই ইয়াৰ মূল্য বঢ়ায়। উজনি আৰু নামনি সকলোতে এই গামোছাৰ ব্যৱহাৰ আছে। বিহুৱান সম্পৰ্কীয় কিছু লোকবিশ্বাসো আছে। লোকবিশ্বাস অনুসৰি বহাগৰ মাহটো মলমাহ হ'লে অশুভ হ'ব বুলি কোনোৱে বিহুৱান নলয়। তদুপৰি, বহাগৰ পাছত ব'বলৈ থোৱা বিহুৱান কোনো পুৰুষক দিয়া নহয়। কাৰণ বহাগৰ পাছত বোৱা বিহুৱান পৰিধান কৰা পুৰুষজনৰ আয়ুস কমে বুলি বিশ্বাস কৰা হয়।

বিহুগীতত বস্ত্ৰ আৰু বয়নশিল্পৰ নিদৰ্শন ঃ

বহাগ বিহুত সজীৱ কৰি তোলা এক গুৰুত্বপূৰ্ণ উপাদান হ'ল — বিহুগীত। ই অসমীয়া মৌখিক সাহিত্যৰ অমূল্য সম্পদ। প্ৰেম বিহুগীতৰ মূল বিষয়বস্তু। বিহুগীতত প্ৰেমৰ, প্ৰাকৃতিক আৰু সামাজিক চিত্ৰ সুন্দৰভাৱে প্ৰতিফলিত হয়।

হুঁচৰি বহাগ বিহুৰ এক মাংগলিক অনুষ্ঠান। চ'তৰ শেষৰ দিনটোত ৰাতিৰ পৰা হুঁচৰি গোৱা আৰম্ভ হয়। হুঁচৰিৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল — ৰাইজৰ কল্যাণ কামনা কৰা। ই পুৰুষ প্ৰধান। হুঁচৰি গীতৰ মাজতো ঠাইবিশেষে সাজপাৰ আৰু পৰম্পৰাগত বয়নশিল্পৰ আভাস পোৱা যায় —

'সৰু সূতাৰ চেলেংখনি
বৈ দিয়া সৰু ভনী
হুঁচৰি গাবলৈ যাওঁ ঐ
গোবিন্দাই ৰাম' —

'বছৰেকৰ বিহুতে
গুৰু সেৱা কৰিবা
ভকতক কৰিবা মান
গৰুবিহুৰ দিনাখন
বস্ত্ৰদান কৰিবা
তেহে পাবা বৈকুণ্ঠত থান।'

তাহানি চ'ত মাহ সোমালে অসমীয়া ডেকা-গাভৰুৱে বেলেগে-বেলেগে পথাৰত বিহু নাচি হৰ্ষোল্লাস কৰিছিল। ইয়াক ৰাতি বিহু বুলি কোৱা হৈছিল। ৰাতিবিহুৰ মাজতো বয়নশিল্প তথা বস্ত্ৰৰ বিষয়ে প্ৰকাশ পাইছিল —

'জোকাৰি পিন্ধিলো সিংখাপৰ মেখেলা
মেৰিয়াই বান্ধিলো চুলি
দাপোণ চাই যোৰ ফোঁট মাৰিলো
বিহুলৈ ওলাই যাওঁ বুলি।'

'এইবেলি বিহুলৈ মাৰে নপঠিয়াই
অহাবেলি বিহুলৈ যাবি।
কটীয়া মুগাৰে ৰিহা বয়ে ল'বি
জাকতে জিলিকি যাবি।'

'ৰাতি চাকি জ্বলাই এৰীসূতা কাটিলা
কাৰ মৰমিয়াল তুমি
তোমাক অ' চেনেহী কোনে মন ভঙালে
মই দুখীয়া বুলি।'

গাঁৱৰ ডেকা গাভৰু উভয়ে বহাগ বিহুত মুকলি ঠাইত যেনে — যুৰীয়া আঁহতৰ তলত, চোমনিত, পথাৰত বা বৰগছৰ তলত আনন্দেৰে বিহুগীত জুৰি নাচে। মুকলি বিহুৰ গীতবোৰতো বয়নশিল্প তথা বস্ত্ৰ সম্পৰ্কীয় বিবিধ দিশ উদ্ভাসিত হয় —

'মুগাৰে মেখেলা পিন্ধিলি নাচনী
ককাঁলটি তোৰে চিয়াঁ
ৰিহাখন পিন্ধি লৈ বিহুলৈ আহিলি
শুৱনি তোৰে দেহা।'

'ঢোল বায় ঢুলীয়া আঁঠু মূৰত চুৰিয়া
ঢোলে ভালে কৰি বাবি
ঢোলৰ মাৰিয়ে নাকটি চিঙিলে
ঘৰলৈ উভতি যাবি।'

চ'ত মাহৰ শেষৰ ফালে গাঁৱৰ গাভৰু সকলে নৈৰ পাৰত বা চাপৰিত নতুবা গছৰ তলত বয়োজ্যেষ্ঠ সকলৰ পৰা আঁৰত থাকি গাভৰু বিহু পাতিছিল। এই বিহুত পুৰুষ মানুহৰ প্ৰৱেশ নিষেধ আছিল। গাভৰু বিহুৰ স্থলীলৈ যাব উছপিছাই থকা শিপিনীৰ তাঁতশালত মন নব'হা এক থৌকি বাথৌ মনৰ প্ৰতিচ্ছবি পৰিলক্ষিত হয় —

'তাঁতৰ পাটত বহি লৈ
চকুনো যায় আলিলৈ
মাকোনো সৰি সৰি পৰে,
তিতাকৈ কেৰেলা
খালেহে বুজিবা
মুখত কেনেকুৱা লাগে।'

তাঁতৰ পাতত বহা গাভৰুৰ চেনাইলৈ বোৱা বিহুৱানখন ফুলৰ চানেকিৰে কিদৰে সজাব তাৰ উৎকণ্ঠা অনুমান কৰিব পাৰি —

‘মাকোৰ খিট্‌খিট্‌নি
গৰকাৰ দপ্‌দপনি
ৰাতি নাহে টোপনি
ফুলৰ চানেকী
বকুল ফুল এপাহি বাছো।’

ধেমালিৰ চলেৰে ইংগিতপূৰ্ণ ভাষাৰে বিভিন্ন দিশৰ অৰ্থ প্ৰকাশ কৰা ফকৰা-যোজনা বা ধেমেলীয়া নামো বিহুৰ সৈতে অংগাগীভাৱে জড়িত। এই নামসমূহৰ ভিতৰত তাঁত ব’ব নজনা থুপৰীসকলক ব্যংগ কৰি গোৱা দুই এটা নাম আছে—

‘আগফালে এখনি পিছফালে এখনি
শিপিনীৰ দুখনি শাল
কাজী শিপিনীয়ে হাঁচতি দিছে
জাল মাৰিবলৈ ভাল।’

উপসংহাৰ ঃ

বিহুৰ সৈতে বয়ন শিল্পৰ সম্পৰ্কটো উপস্থাপন কৰাই আমাৰ প্ৰবন্ধটিৰ মূল উদ্দেশ্য। বিহুৰ মূল উপজীব্য ডেকা-গাভৰুৰ প্ৰেম-পীৰিতি হ’লেও ঠাই বিশেষে প্ৰাকৃতিক আৰু সামাজিক চিত্ৰও প্ৰতিফলিত হয়। বিহু আৰু বয়নশিল্পৰ বিষয়ে আলোচনা কৰোতে পৰম্পৰাগত বয়ন শিল্পটোকহে বেছিকৈ প্ৰাধান্য দিয়ে যেন লাগে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গগৈ, ৰঞ্জিত ঃ ‘বিহু সংস্কৃতিৰ ইতিবৃত্ত’, ‘ষ্টুডেন্টচ্ ষ্ট’ৰচ্ গুৱাহাটী, ২০১৭ (প্ৰকাশিত)
দাস, মীনাক্ষি লাহন ঃ ‘ব’হাগ বিহু আৰু বিহুৱান’ বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ২০১৫ (প্ৰকাশিত)
দাস, নাৰায়ণ
ৰাজবংশী, পৰমানন্দ (সম্পা) ঃ ‘অসমীয়া সংস্কৃতিৰ কণিকা’ প্ৰাগজ্যোতিষ মহাবিদ্যালয়, গুৱাহাটী, ১৯৯৬ (প্ৰকাশিত)
বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ ঃ ‘অসমৰ লোক-সংস্কৃতি’ বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ১৯৬১ (প্ৰকাশিত)

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ পটভূমি আৰু পৰিচয়

নীলাক্ষি দাস

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

শিশু চলচ্চিত্ৰ হৈছে শিশুৰ বাবে শিশুৰ উদ্দেশ্যে নিৰ্মাণ আৰু প্ৰচাৰ কৰা এক বিশেষ শ্ৰেণীৰ চলচ্চিত্ৰ। কিছুমান শিশু চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ লগতে প্ৰাপ্তবয়স্কসকলোকো সমানে আকৰ্ষিত কৰে। শিশু চলচ্চিত্ৰসমূহ শিশুৰ মনোজগতৰ লগত খাপ খাব পৰাকৈ নিৰ্মাণ কৰা হয়। শিশু চলচ্চিত্ৰ আকৰ্ষণী শক্তিয়ে সমাজৰ প্ৰতিজন ব্যক্তিকে অতি সহজে আকৰ্ষিত কৰিব পাৰে। চলচ্চিত্ৰসমূহৰ মাধ্যমেৰে প্ৰকাশ পোৱা সহজ-সৰল কথাবোৰে প্ৰাপ্তবয়স্কসকলক শৈশৱৰ সোঁৱৰণত আকৌ এবাৰ জীয়াই চাবলৈ সুযোগ দিয়ে।

দূৰদৰ্শনৰ অথবা পৰ্দাৰ মাধ্যমেৰে শিশু চলচ্চিত্ৰসমূহ শিশুৰ সমুখত উপস্থাপন কৰা হয়। সাধৰণতে শিশু চলচ্চিত্ৰসমূহ দুটা ভাগত ভগাব পাৰি—

(১) শিশুৱে অকলে চাব পৰা ছবি

(২) প্ৰাপ্তবয়স্কসকলে উপভোগ কৰিব পৰা লগতে শিশুকো উৎফুল্লিত কৰিব পৰা ছবি।

সাধৰণতে চঞ্চল মনৰ অধিকাৰী শিশুসকলক আকৰ্ষিত কৰি ৰাখিব পৰা বৰ উজু কাম নহয়। প্ৰতিটো সময়তে মন অস্থিৰ হৈ থকা ফলত শিশুৱে সুস্থিৰেৰে এঠাইত বহি থাকিবলৈ বেয়া পায়। ফলত এনে চঞ্চলমতী শিশুসকলক এঠাইত বহুৱাই চলচ্চিত্ৰ এখনৰ মাজেৰে আকৰ্ষিত কৰি ৰখাটো চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতাজনৰ বাবে প্ৰচুৰ প্ৰত্যাহ্বানৰ বিষয় হৈ পৰে। চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতাজনৰ শিশু মনস্তত্ত্বৰ জ্ঞান নাথাকিলে সুস্থ শিশু চলচ্চিত্ৰ এখন নিৰ্মাণ কৰিব পাৰিব বুলি ক'ব নোৱাৰি।

কিছুমান শিশু চলচ্চিত্ৰই শিশুক ইমানেই আকৰ্ষণ কৰে যে শিশুৱে তাক বাবে বাবে চাবলৈ বিচাৰে। এনে চলচ্চিত্ৰসমূহে শিশুৰ মনত সদায় বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰে। অৱশ্যে কিছুমান শিশু চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ লগতে মাজে সময়ে প্ৰাপ্তবয়স্কসকলোকো আকৰ্ষিত কৰা দেখা যায়। ফলত তেনে ধৰণৰ চলচ্চিত্ৰসমূহৰ সমাদৰ শিশুৰ উপৰিও প্ৰাপ্তবয়স্কসকলোৰ মাজতো বাঢ়ি আহে। প্ৰাপ্তবয়স্কসকলে শিশু চলচ্চিত্ৰসমূহৰ মাজত বিচাৰি পাই ল'ৰালিৰ মধুৰ সময়ছোৱা উপভোগ কৰাৰ আকৌ এবাৰ সুযোগ। সাধৰণতে শিশু চলচ্চিত্ৰ বেছিভাগ সময়তে হাস্যৰসাত্মক হোৱা দেখা যায় যদিও মাজে সময়ে

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ
বিশ্ববিদ্যালয়, নগাঁও-৭৮২০০১
৮৬৩৮৩৮৯৬০৪
dasnilakhi392@gmail.com

ইয়াত গধুৰ চিন্তাৰ সমাবেশো দেখিবলৈ পোৱা যায়। এনে গধুৰ চিন্তাসমূহে শিশুৰ লগতে প্ৰাপ্তবয়স্কসকলোকো চিন্তানিত কৰি তোলে। সৰু সৰু নভবা-নিচিন্তা গভীৰ কথা কিছুমান ভাবিবলৈ বাধ্য কৰাই তোলে। এই চলচ্চিত্ৰসমূহে ব্যক্তিৰ মনত সদায় বিশেষ সাঁচ বহুৱাবলৈ সক্ষম হয়।

শিশু চলচ্চিত্ৰসমূহত সাধৰণতে হাস্যৰসাত্মক বৰ্ণনা, নীতিশিক্ষা, দুঃসাহসিক অভিযান, ধৰ্মীয় বাণী, শিষ্টাচাৰৰ শিক্ষা, কল্পবিজ্ঞানৰ কাহিনী আদি দেখিবলৈ পোৱা যায়। শিশু চলচ্চিত্ৰত সহজবোধ্য বৰ্ণনাশৈলীয়ে কাহিনীক অতি আমোদপ্ৰদ কৰি তোলে। শিশু চলচ্চিত্ৰত চৰিত্ৰ নিৰ্মাণ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়। প্ৰতিটো চৰিত্ৰই শিশুক আকৰ্ষণ কৰিব নোৱাৰিলে চলচ্চিত্ৰখনৰ কিছু অংশৰ প্ৰতি শিশুৰ মনত অশান্তিকৰ ভাব উপজিব পাৰে। সেয়ে শিশু চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতাজন চৰিত্ৰ নিৰ্মাণ আৰু কাহিনী নিৰ্বাচনৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সাৱধান হোৱাৰ প্ৰয়োজন।

ভাৰতীয় চলচ্চিত্ৰত শিশু চলচ্চিত্ৰই এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰিছে। ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ ইতিহাসত ভালেকেইখন শিশু চলচ্চিত্ৰই বৰঙণি আগবঢ়াই আহিছে। ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ জগতখনত বিশেষভাৱে বৰঙণি আগবঢ়োৱা কেইখনমান চলচ্চিত্ৰ হ'ল— Taare Zameen Par, The Blue Umbrella, Hanuman, I am Kalam, Zokkomon, Chota Chetan, The Jungle Book, Bumm Bumm Bole, My Friend Ganesha, Krrish, Koi Mil Gaya, Chillar Party, Jajantharam Mamantaram, Makadee, Stanley ka Dabba, Rockford, Halo, Life of Christ, King Kong ইত্যাদি।

বীজশব্দ ঃ ভাৰতীয়, প্ৰাপ্তবয়স্ক, শিশু, চলচ্চিত্ৰ।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

শিশু চলচ্চিত্ৰ হৈছে এনে এক মাধ্যম যাৰ যোগেদি শিশুৰ মনঃপুত কাহিনী উপস্থাপৰ লগতে অভিনয়ৰ জৰিয়তে শিশুৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰি ৰাখিব পাৰে। নিৰ্দিষ্ট এক সময়লৈকে প্ৰদৰ্শন হোৱা শিশু চলচ্চিত্ৰই শিশুক বিভিন্ন ধৰণৰ জ্ঞান-বিজ্ঞান, মনোৰঞ্জন, অভিজ্ঞতা আদি প্ৰদান কৰে। একো একোখন ভাল চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মনত গভীৰ সাঁচ পেলাব পাৰে। শিশু চলচ্চিত্ৰই বিভিন্ন সময়ত শিশুক শিশুৰ আমোদ যোগোৱাৰ লগতে শিশুৰ চিন্তাশক্তিও বৃদ্ধি কৰা দেখা যায়।

শিশু চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাণ কৰাৰ সময়ত নিৰ্মাতাই কিছুমান কথাৰ প্ৰতি বিশেষভাৱে দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিবলগীয়াত পৰে। শিশুৰ মনত আঘাত কৰিব পৰা প্ৰত্যেকটো কথা তেখেতে পৰিহাৰ কৰাটো নিতান্তই প্ৰয়োজনীয়। চলচ্চিত্ৰ ব্যৱহৃত অশ্লীন শব্দ তথা দৃশাংশই শিশুৰ মগজু ভয়ংকৰভাৱে ক্ষতি কৰিব পাৰে। তদুপৰি ৰক্তক্ষয়ী দৃশ্য বা হতাহতিৰ দৃশ্যৰ ব্যৱহাৰেও শিশুৰ মনত ভয়ৰ সঞ্চাৰ কৰিব পাৰে। ফলত শিশুৰ বাবে অপ্ৰয়োজনীয় এনে কথাবোৰ এৰাই চলাটো জৰুৰী হৈ পৰে। অপ্ৰয়োজনীয় কথাৰ ব্যৱহাৰে শিশু চলচ্চিত্ৰ এখনক বহু সময়ত বিপথে পৰিচালিত কৰা দেখা যায়। সেয়ে চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতাৰ সথিক দৃষ্টিভংগীয়েহে শিশুৰ চলচিত্ৰক শিশু উপযোগী কৰি তুলিব পাৰে।

শিশু চলচ্চিত্ৰত অভিনয়ৰ এক মুখ্য স্থান আছে। ভাল অভিনয়ে সকলোকে চলচ্চিত্ৰখন চাবলৈ আগ্ৰহি কৰি তোলে। শিশু চলচ্চিত্ৰত প্ৰতিটো চৰিত্ৰই সজীৱ হোৱাটো নিতান্তই প্ৰয়োজনীয়। সাধৰণতে এই চলচ্চিত্ৰসমূহৰ মূখ্য চৰিত্ৰ হৈছে শিশু। শিশু চলচ্চিত্ৰত সাধৰণতে শিশুৱে এক বিশেষ চৰিত্ৰৰূপে ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। অৱশ্যে কেতিয়াবা শিশু চলচ্চিত্ৰত জীৱ-জন্তু আৰু প্ৰাপ্তবয়স্কসকলেও মুখ্য ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায়। তদুপৰি কেতিয়াবা প্ৰাপ্তবয়স্কসকলেও শিশু চলচ্চিত্ৰত মুখ্য চৰিত্ৰত অভিনয় কৰা দেখা যায়। শিশু চলচ্চিত্ৰত গছ-গছনি এজোপাইও কথা কয়, হাঁহে, খেলে, নিগনি এটাইও মানুহৰ লেখিয়াকৈ সংসাৰ গঢ়ে, পানীয়েও নিজৰ অনুভৱৰ কথা নিজ মুখেৰে ব্যক্ত কৰে। মুঠৰ ওপৰত প্ৰায়ভাগ শিশু চলচ্চিত্ৰত জড়-জীৱৰ পাৰ্থক্য নাথাকে। সকলোৱে যেন নিজৰ মনৰ ভাব ব্যক্ত কৰিব পৰা অনুভূতি সম্বলিত প্ৰাণীহে।

সাধৰণতে শিশু চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাণৰ সময়ত নিৰ্মাতা প্ৰতিটো মুহূৰ্তত সচেতন হৈ থাকিব লাগে। শিশুৰ মনত ভয়, আশংকা, ক্ৰোধ উৎপন্ন কৰিব পৰা দৃশাংশ তেখেতে পৰিহাৰ কৰি চলাই ভাল। একো একোটা ৰক্তক্ষয়ী দৃশ্য বা দুৰ্ঘটনাত পতিত হোৱা দৃশ্যই শিশুৰ মনত চিৰকাললৈ বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলাব পাৰে। এনেবোৰ দৃশাংশৰ ব্যৱহাৰে শিশুৰ মগজু ভয়ংকৰভাৱে ক্ষতি কৰিব পাৰে। চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতাই এইসমূহ বিষয়ৰ প্ৰতি দৃষ্টি নিদিলে শিশু চলচ্চিত্ৰখন কেতিয়াও সফল হোৱা বুলিব নোৱাৰি।

শিশু চলচ্চিত্ৰত কাহিনী নিৰ্বাচনে মুখ্য ভূমিকা পালন কৰে। কাহিনী সথিক নহ'লে শিশুৱে কেতিয়াও চলচ্চিত্ৰৰ

প্রতি আকর্ষিত নহয়। শিশু চলচ্চিত্র কাহিনী নির্বাচনৰ ক্ষেত্রত চলচ্চিত্র নির্মাতাজনৰ দৃষ্টিভংগীয়ে চলচ্চিত্র এখনক বিখ্যাত কৰি তুলিব পাৰে। শিশু চলচ্চিত্রৰ কাহিনী নির্মাণৰ ক্ষেত্র শিশু মনস্তত্ত্বৰ দিশটো গুৰুত্ব দিয়াটো নিতান্তই প্রয়োজনীয়। শিশু চলচ্চিত্রৰ কাহিনী সাধৰণতে হাস্যৰসিক হোৱা দেখা যায়। হাস্যৰসিকতাৰ উপৰিও কাহিনীত অৱশ্যে গভীৰ চিন্তা তথা জিজ্ঞাসাৰ সমাৱেশ দেখা যায়। এইসমূহে শিশুৰ চিন্তন শক্তিৰ বিকাশ ঘটাই।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ভাৰতত শিশু চলচ্চিত্র নির্মাণৰ ইতিহাস বৰ বেছি প্রাচীন নহয়। আৰম্ভণিৰ সময়ৰে পৰা শিশু চলচ্চিত্রই বিভিন্ন পর্যায়ৰ মাজেৰে আহি বর্তমানৰ ৰূপ লাভ কৰিছে। ভাৰতত শিশু চলচিত্রৰ ইতিহাসত ভালেসংখ্যক চলচ্চিত্র নির্মাণৰ কথা জানিব পৰা যায়। নির্মাতাই এই শিশু চলচ্চিত্রসমূহৰ মাজেৰে শিশু দর্শক সমূহক আকর্ষিত কৰি ৰখাৰ যৎপৰোনাস্তি চেষ্টা চলোৱা দেখা যায়। ভাৰতত শিশু চলচিত্র ইতিহাস ১৯৯৩ চনত আৰম্ভ হৈ বর্তমানলৈকে ইয়াৰ ধাৰা প্রবাহিত হৈ অহা দেখা যায়। ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্রৰ এই ধাৰাটোত বহুতো শিশু চলচ্চিত্রই অৱদান আগবঢ়াই আহিছে আৰু এই চলচ্চিত্রসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাই উক্ত গৱেষণামূলক প্রবন্ধটোৰ মূল উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ উৎস ঃ

গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুতিৰ বেলিকা মুখ্য উৎস হিচাপে বিভিন্ন ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্রসমূহৰ পৰা সমল সংগ্রহ কৰা হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও গৌণ উৎস হিচাপে আলোচনী, কিতাপ-পত্র আদিৰ পৰা বিষয়ৰ লগত সম্পর্কিত তথ্য সংগ্রহ কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

মূলত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি প্রয়োগ কৰি উক্ত গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুত কৰা হৈছে।

মূল আলোচ্য বিষয় ঃ

শিশু চলচ্চিত্র হৈছে শিশুৰ বাবে শিশুৰ উদ্দেশ্যে নির্মাণ কৰা এক বিশেষ শ্রেণীৰ চলচ্চিত্র য'ত শিশু মনস্তত্ত্বৰ প্রাধান্যতা অন্যতকৈ বেছি। শিশুৰ বাবে ভাল বেয়া আদি সকলোবোৰ দিশ চালি-জাৰি চাইহে শিশু চলচ্চিত্র নির্মাণ কৰা হয়। একো একোখন বিখ্যাত শিশু চলচ্চিত্রই শিশুৰ লগতে প্রাপ্তবয়স্কসকলোকো আকর্ষণ কৰিব পাৰে। প্রাপ্তবয়স্কসকলে শিশু চলচ্চিত্রৰ মাজত বিচাৰি পাই অতীতত পাৰ কৰি অহা জীৱনৰ মধুৰ সময়। শিশু চলচ্চিত্র এখনে শিশুক জ্ঞান, নীতিশিক্ষা, আধ্যাত্মিক শিক্ষা আদি যোগান ধৰাৰ লগতে হাস্যৰৰো যোগান ধৰে। শিশুৰ মানসিক বিকাশত শিশু চলচ্চিত্রসমূহে যথেষ্ট সহায় কৰে।

বিশ্বত শিশু চলচ্চিত্র নির্মাণৰ ইতিহাস বৰ বেছি প্রাচীন নহয়। শিশু চলচ্চিত্র জন্মস্থানৰ ইতিহাস বিচৰ কৰিবলৈ গ'লে "লুমিয়েৰ ভাতৃদ্বয়ৰ *ৰাটাৰিং দ্য গার্ডেনাৰ* আৰু *ব্রেকফাষ্ট উইথ বেবি* লগত জনছ মেলিয়েছৰ *চিনড্রেলা, লিটিল ৰেড ৰাইডিং হুড, দ্য এষ্ট্রনমার্ছ ড্রিম বা এ ট্রিপ টু মুন*ৰ জৰিয়তে ফ্রান্সতে প্রথম শিশু চলচ্চিত্রৰ জন্ম হৈছিল বুলি নিঃসন্দেহে ক'ব পাৰি।"[১] ১৯০৮ চনত বিশ্বৰ প্রথম এনিমেশ্বন চলচ্চিত্র Emile Chol-ৰ 'Fantasmagorie' প্রকাশিত হয়। ইয়াৰ লগে লগে শিশু চলচ্চিত্র জগতত এক দিশৰ সূচনা হয়। সময় অতিক্রমৰ লগে লগে শিশু চলচ্চিত্রই বিভিন্ন পর্যায় অতিক্রম কৰে। বিভিন্ন শিশু চলচ্চিত্রৰ নির্মাণেৰে বিশ্ব চলচ্চিত্রৰ ভঁৰাল টনকিয়াল কৰিবলৈ ধৰিলে। এইক্ষেত্রত বিশ্ব চলচ্চিত্র জগতত বিশেষভাৱে খ্যাতি অর্জন কৰিব পৰা কেইখনমান শিশু চলচ্চিত্র হ'ল- 'The Blue Bird'(1918), 'Peter Pan'(1924), 'A Kiss for Chinderella'(1925), 'Uncle Tom's Cabin'(1927), 'Mickey Mouse'(1928), 'The Little Princess'(1939), 'Tom and Jerry'(1940), 'Alice in Wonderland'(1951), 'The Incredible Journey'(1963), 'Taxi Driver'(1976), 'Spider Man'(1977), 'Doraemon: Nobita's Dinosaur'(1980), 'Aladdin and the Wonderful Lamp'(1982), 'Herry Potter'(2001), 'Ben 10'(2007) ইত্যাদি।

বিশ্বৰ অন্য দেশবোৰৰ দৰে ভাৰততো শিশু চলচ্চিত্রই এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰি আহিছে। এই শিশু চলচ্চিত্রসমূহে শিশুৰ লগতে প্রাপ্তবয়স্কলোকো সকলোকো সমানে আকর্ষিত কৰি আহিছে। অতি গুৰুত্বপূর্ণ বিষয় যে ভাৰতত শিশুৰ উদ্দেশ্যে চলচ্চিত্র নির্মাণ হোৱাৰ আগতে নির্মাণ হোৱা আগতে ভালেসংখ্যক চলচ্চিত্রই প্রাপ্তবয়স্কৰ লগতে শিশুকো আকর্ষণ কৰা দেখা যায়। পৌৰাণিক কাহিনীৰ আধাৰিত ছবিবোৰ শিশুৰ উদ্দেশ্যে নির্মাণ নহ'লেও এনেবোৰ চলচ্চিত্রই কিন্তু শিশুৰ মাজতো বেচ জনপ্রিয়তা অর্জন কৰিছিল। এইক্ষেত্রত দাদা চাহেব ফাল্কেৰ নির্মিত ছবি 'Raja

Harichanda'(1913), 'Mohini Bhasmasur'(1913), 'Satyavan Savitri'(1914), 'Lanka Dahan'(1917), 'Shri Krishna Janma'(1918), 'Kaliya Mardan'(1919), 'Gangavatarn'(1937)-এ শিশুৰ মনতো এক বিশেষ স্থান কৰিছিল। তদুপৰি সেই সময়ত চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাণ কৰা চিত্ৰকাৰসকলৰ ভিতৰত বাবুৰাও পেণ্টাৰৰ 'Sairandhri'(1920), 'Sati Sabitri'(1927) চলচ্চিত্ৰই সমাদৰ লাভ কৰিছিল। চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতা চিত্ৰপু নাৰায়ণ ৰাওৰ পৌৰাণিক কাহিনীসম্বলিত চলচ্চিত্ৰ কৰে। তেখেতৰ নিৰ্মিত 'Sri Krishna Leelalu'(1935), 'Mahiravana'(1940), 'Bhakta Prahlada'(1942), 'Bhisma'(1944)-ই প্ৰাপ্তবয়স্কসকলৰ লগতে শিশুৰ মনতো বিশেষভাৱে স্থান অধিকাৰ কৰিছে।

পৌৰাণিক কাহিনীৰ পৰা ব্যতিক্ৰম কাল্পনিক কাহিনীৰে ১৯২৫ চনত নিৰ্মাণ কৰা হোমি মাষ্টৰৰ এখন উল্লেখযোগ্য চলচ্চিত্ৰ হৈছে 'Lanka Ni Laadi'। উক্ত চলচ্চিত্ৰখনকে প্ৰথম ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰূপে অভিহিত কৰিব পাৰি। সেই সময়ত চলচ্চিত্ৰখনে সকলোৰে মাজত আলোৱন সৃষ্টি কৰি সফল ব্যৱসায় কৰিবলৈ সক্ষম হয়। ইয়াৰ উপৰিও হোমি মাষ্টৰৰ দ্বাৰা নিৰ্মিত অন্য চলচ্চিত্ৰ যেনে—'Mumtaz Mahal'(1926), 'Rao Saheb'(1931), 'Gul Sanobar'(1934)-এ শিশুৰ মাজত বিশেষভাৱে জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত কাঞ্জীভাই ৰাথোড়ে ১৯২৯ চনত 'Kono Vank' নামৰ শিশু চলচ্চিত্ৰখন নিৰ্মাণ কৰে। চলচ্চিত্ৰখনৰ কাহিনীভাগত বৰ্ণনা কৰা এগৰাকী কন্যা শিশুৰ অকাল বৈধব্যৰ যন্ত্ৰণা আৰু ইয়াৰ পৰিণতি। চলচ্চিত্ৰখনৰ মৰ্মস্পৰ্শী কাহিনীয়ে শিশুৰ পৰা প্ৰাপ্তবয়স্কলৈকে প্ৰতিজনৰে মনত এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰিছে।

তদুপৰি চান্দুলাল শ্বাহৰ 'Chandramukhi'(1929), 'Sati Savitri'(1932) আদি চলচ্চিত্ৰয়ো শিশুৰ মাজত জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। বিষ্ণু পুৰাণৰ আধাৰিত শিশু কৃষ্ণৰ উৎপতীয়া বাল্যকালৰ কাহিনী লৈ ভালজি পেন্ধাৰকৰে ১৯৩২ চনত 'Shyam Sundar' নামৰ চলচ্চিত্ৰখন নিৰ্মাণ কৰে। চলচ্চিত্ৰখনত শিশু কৃষ্ণৰ সমগ্ৰ বাল্যকালৰ কাহিনীৰ লগতে স্বৰ্গীয় আকাশবাণীৰ উপৰিও পিতৃৰ সিংহাসনচ্যুতৰ হৃদয়স্পৰ্শী কাহিনী বৰ্ণিত হৈছে। চলচ্চিত্ৰখনে সমাজৰ প্ৰত্যেক শ্ৰেণীৰ দৰ্শকৰ মাজত জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। জে.বি. ৰাডিয়াই ১৯৩৩ চনত নিৰ্মান কৰা 'Lal-e-Yaman' চলচ্চিত্ৰখনত য়মনী ৰাজকুমাৰ পাৰভিজৰ লগত মাহীমাকৰ ষড়যন্ত্ৰৰ আৰু পাৰভিজৰ সাহস, চতুৰতাৰ ফলত নিজৰ লগতে ৰাজকুমাৰী পাৰজাদক মুক্ত কৰাৰ কথা বৰ্ণিত হৈছে। উক্ত চলচ্চিত্ৰখন শিশুৰ মাজত খুবেই জনপ্ৰিয় হৈ পৰিছিল। ১৯৩৩ চনতে আকৌ চি. পুলাইয়াই 'Savitri' নামৰ চলচ্চিত্ৰখন নিৰ্মাণ কৰিছিল যিয়ে শিশুৰ মাজত খুবেই জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিছিল। ইয়াৰ উপৰিও চি. পুলাইয়াইৰ নিৰ্মিত 'Gollabhama'(1947)', 'Lava Kusa'(1963) আদি চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মাজত আলোৱণৰ সৃষ্টি কৰি ছবিগৃহত সাফল্যতা অৰ্জন কৰে। তদুপৰি পি. য়াই এলেক্টাৰৰ ১৯৩৪ চনত নিৰ্মাণ হোৱা 'Dhruv' চলচ্চিত্ৰখনেও শিশুৰ মাজত বিশেষভাৱে জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিছিল। চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতা জয়ন্ত দেশাই নিৰ্মাণ কৰা 'Krishna-Sudama'(1933), 'Veer Babrubahan'(1934), 'Har Har Mahadev'(1950) আদি চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মন আকৃষ্ট কৰিবলৈ সক্ষম হয়।

১৯৩৭ চনত মধু বসুৰ চলচ্চিত্ৰ 'Alibaba'-ই প্ৰাপ্তবয়স্কৰ লগতে শিশুসকলৰ মাজতো খুবেই জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিছিল। ইয়াৰ উপৰিও আৰ. পদ্মনাভমৰ 'Garuda Garvabhangam'(1936), 'Kumari'(1952) আদি চলচ্চিত্ৰই শিশু চলচ্চিত্ৰৰ জগতত বিশেষভাৱে অৱিহনা যোগায়। তদুপৰি য়াই. ভি. ৰাওৰ পৰিচালিত 'Sati Sulochana'(1934), 'Chintamani'(1937) ইত্যাদি চলচ্চিত্ৰই প্ৰাপ্তবয়স্কৰ লগতে শিশুৰ মাজত বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰে। ফ্ৰান্স আষ্টেনে ১৯৩৯ চনত নিৰ্মাণ কৰা গ্ৰাম্য জীৱনৰ আধাৰিত 'Durga' চলচ্চিত্ৰখন উল্লেখযোগ্য শিশু চলচ্চিত্ৰৰূপে পৰিগণিত হয়। তদুপৰি ১৯৪৩ চনত মেহবুব খানৰ নিৰ্মিত হাস্যৰসিক চলচ্চিত্ৰ 'Taqdeer'-এ সমাজৰ সকলো স্তৰৰ ব্যক্তিৰ মাজতে জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিছিল। ১৯৫৪ চনত ঋত্বিক ঘটকে নিৰ্মাণ কৰা 'Bari Theke Paliye' চলচ্চিত্ৰখনো শিশুৰ মাজত খুব জনপ্ৰিয় হৈ উঠিছিল। বংগীয় চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতা সত্যজিৎ ৰয়ৰ ১৯৫৫ চনত মুক্তি লাভ কৰা 'Pather Panchali' চলচ্চিত্ৰখন শিশুসকলৰ মাজত খুব জনপ্ৰিয় হৈ উঠিছিল। তদুপৰি তেখেতৰ 'Goopy Gyne Bagha Byne'(1969), 'Sonar Kella'(1974), 'Heerak Rajar Deshe'(1980) আদি চলচ্চিত্ৰয়ো শিশুৰ মাজত জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। ইয়াৰ উপৰিও

ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰৰ বিখ্যাত কাবুলীবালা গল্পৰ আধাৰত তপন চিহ্নাই 'Kabuliwala' চলচ্চিত্ৰখন নিৰ্মাণ কৰে। ১৯৫৭ চনত চলচ্চিত্ৰখনৰ শুভ মুক্তিৰ লগে লগেই শিশুসকলৰ মাজত খুব জনপ্ৰিয় হৈ উঠিছিল। উক্ত চলচ্চিত্ৰখনে শিশুৰ লগতে প্ৰাপ্তবয়স্কসকলৰ মাজতো বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰিছিল।

১৯৬২ চনত 'King-Kong' চলচ্চিত্ৰখনৰ শুভমুক্তিয়ে ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰ জগতত এক আলোৰণপৰ সৃষ্টি। বাবুভাই মিস্ত্ৰীয়ে নিৰ্মাণ কৰা চলচ্চিত্ৰখনে শিশুসকলৰ মাজত ইমানেই জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিলে যে ই সেই সময়ত শিশুৰ আটাইতকৈ প্ৰিয় চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মাজত জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন পৰিগণিত হ'ল। বিখ্যাত পালোৱান দাৰা সিঙক লৈ নিৰ্মাণ কৰা উক্ত চলচ্চিত্ৰখন শিশু চলচ্চিত্ৰৰ জগতত এক সুকীয়া স্থান লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হ'ল। কে. ভি. ৰেড্ডিৰ নিৰ্মিত 'Sri Krishnarujna Yuddhamu'(1963), 'Satya Harishchandra'(1965) চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মাজত জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰে। ইয়াৰ উপৰিও ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰ জগতত সত্যেন বসুৰ নিৰ্মিত 'Dosti'(1964), 'Mere Lal'(1966) শিশু চলচ্চিত্ৰ কেইখনে এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰিছে। তদুপৰি এছ. এছ. বৰ্মাৰ 'Mohini Bhasmasur'(1966) চলচ্চিত্ৰয়ো শিশুৰ মাজত খলকনি তুলিছিল। চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতা এ. পি. নাগাৰঞ্জনৰ নিৰ্মিত চলচ্চিত্ৰ 'Vaa Raja Vaa'(1969), 'Sri Krishna Leela'(1977) আদি শিশু চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মাজত সমাদৰ লাভ কৰিছিল। বি. আৰ. পাথুলুৰ পৰিচালিত 'Karnan'(1964), 'Sri Krishnadevarya'(1970) 'Ganga Gowri'(1973)

ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰ জগতত বিশেষভাৱে অৰিহনা যোগোৱা শিশু চলচ্চিত্ৰ কেইখনমান হ'ল— হৃষিকেশ মুখাৰ্জীৰ 'Guddi'(1971), এম. এ. থিৰুমুগামৰ 'Haathi Mere Saathi'(1971), অৰুন্ধুতি দেৱীৰ 'Padi Pishir Barmi Baksha'(1972), কমলাকাৰা কামেশ্বৰা ৰাৱৰ 'Bala Bhharatam'(1972), এ. জগন্নাথনৰ 'Manipayal' (1973), সাঈ পৰানজ্যপেৰ 'Jadu Ka Sankh'(1974), ৰবিকান্ত নাগইচৰ 'Rani Aur Lalpari'(1975), শ্যাম বেনেগালৰ 'Charandas Chor'(1975), লক্ষ্মীৰ 'Mazhalai Pattalam'(1980), গৌৰী বৰ্মনৰ 'Akon' (1980), ফজিলৰ 'Ente Mamattukkuttiyammakku' (1983) ইত্যাদি। তদুপৰি সন্দীপ ৰায়ৰ পৰিচালিত 'Phatik Chand'(1983), 'Gopi Bagha Phire Elo'(1991), 'Bombaiyer Bombete'(2003) আদি চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ মাজত সমাদৰ লাভ কৰিছিল।

ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰ জগতত কল্পকাহিনীৰ আধাৰিত প্ৰথম শিশু চলচ্চিত্ৰখন হৈছে 'My Dear Kuttichathan'। চলচ্চিত্ৰখনে ১৯৮৪ চনত মুক্তি লাভ কৰে। জিজো পুন্নোচেৰ পৰিচালিত উক্ত চলচ্চিত্ৰখনে শিশুৰ মাজত বিশেষভাৱে সমাদৰ লাভ কৰিছিল। তদুপৰি শ্বেখৰ কাপুৰৰ পৰিচাসিত 'Masoom'(1983), 'Mr. India'(1987) ইত্যাদি চলচ্চিত্ৰই প্ৰাপ্তবয়স্কৰ লগতে শিশুসকলৰ মাজতো জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিছিল। শিশু চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাতা ৰাকেশ ৰোচনৰ পৰিচালিত 'Koi Mil Gaya'(2003) 'Krrish'(2006), 'Krrish 3' (2013) ইত্যাদি চলচ্চিত্ৰই শিশুৰ পৰা প্ৰাপ্তবয়স্কলৈকে প্ৰতিজনৰে মনত সুকীয়া স্থান অধিকাৰ কৰিছিল। তদুপৰি বিশাল ভৰদ্বাজৰ পৰিচালিত 'Makdee'(2002), 'The Blue Umbrella'(2005) আদি চলচ্চিত্ৰয়ো শিশুৰ মাজত জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। ইয়াৰ উপৰিও ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰ জগতত বিশেষভাৱে অৰিহনা যোগোৱা চলচ্চিত্ৰকেইখন হ'ল— এন. লক্ষ্মীনাৰায়ণৰ 'Bettada Hoovu'(1985), ডেনিচ জোচেফৰ 'Manu Uncle' (1988), চি. পি. মথুৰামনৰ 'Raja Chinna Roja'(1989), বুদ্ধদেৱ দাসগুপ্তাৰ 'Bagh Bahadur'(1989), ৰামা নাৰায়ণৰ 'Durga'(1990), শিৱানৰ 'Abhayam'(1991), গুণসিন্ধু হাজৰিকাৰ 'Abuj Bedana'(1993), মণি ৰত্নমৰ 'Anjali' (1991), ঋতুপৰ্ণ ঘোষৰ 'Hirer Angti'(1992), নাগেশ কুকুন্নৰ 'Rockford', পিনাকী চৌধুৰীৰ 'Ek Tukro Chand'(2001), গান্ধী কৃষ্ণাৰ 'Nila Kalam'(2001), মহেশ মঞ্জেৰ্কাৰ 'Ehsaas: The Feeling'(2001), অভিজিৎ চৌধুৰীৰ 'Patalghar'(2003), সুমিত্ৰা ৰাণাদেৰ 'Jajantaram Mamantaram'(2003), জাহ্নু বৰুৱাৰ 'Tora'(2004), পি. চেচাদ্ৰিৰ 'Thutturi'(2006), আমিৰ খানৰ 'Taare Zameen Par'(2007), ৰাজিৰ এছ. ৰুয়াৰ 'My Friend Ganesha'(2007), বিবেক শৰ্মাৰ 'Bhoothnath' (2008), সত্যজিৎ ভাটকালৰ 'Zokkomon' (2011), আমোল গুপ্তাৰ 'Stanley Ka Dabba' (2011), বিকাশ ৰাহি আৰু নিতেশ তিৱাৰীৰ 'Chillar Party'(2011), সোনম নিহাৰৰ 'Gippi'(2013), বিকাশ বাহলৰ 'Super 30'(2019) ইত্যাদি।

উপসংহাৰ ঃ

আৰম্ভণিৰে ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ ইতিহাসত ভালেসংখ্যক শিশু চলচ্চিত্ৰৰ নির্মাণ হৈছে। এনে চলচ্চিত্ৰসমূহ উপভোগ কৰিবলৈ শিশু দর্শকৰ অভাৱ নাই। মুখ্যত শিশু দর্শকসমূহৰ কথা আগত ৰাখিয়ে নির্মাতাই চলচ্চিত্ৰসমূহ নির্মাণৰ কাম হাতত লয়। ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ জগতত নির্মাণ হোৱা প্ৰতিখন শিশু চলচ্চিত্ৰই শিশু মনস্তত্ত্বৰ বিকাশৰ দিশটোৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়ে। বেছিভাগ শিশু চলচ্চিত্ৰৰ কাহিনীভাগত সহজ-সৰল গাঁৱলীয়া পৰিৱেশৰ প্ৰতিবিম্ব প্ৰতিফলিত হয়। তদুপৰি চলচ্চিত্ৰসমূহত শিশুৰ মনত হাঁহিৰ খোৰাক যোগাব পৰা হাস্যৰসৰ লগতে গভীৰ শোক প্ৰকাশ কৰিব পৰা কৰুণ ৰসে প্ৰতিজন শিশুৰ হৃদয় স্পর্শ কৰিব কৰে।

ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰই আৰম্ভণিৰ পৰা বর্তমানলৈকে বিভিন্ন পর্যায় অতিক্ৰম কৰি অহিছে। ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰ ইতিহাসত এনে কিছুমান চলচ্চিত্ৰ নির্মাণ হৈছে যিয়ে শিশুৰ পৰা প্ৰাপ্তবয়স্কলৈকে প্ৰতিজন নাগৰিকৰে দৃষ্টি আকর্ষণ কৰিবলৈ সক্ষম। ভাৰতীয় শিশু চলচ্চিত্ৰৰ এনে দক্ষতাই শিশু চলচ্চিত্ৰসমূহৰ জনপ্ৰিয়তাৰ ইংগিত বহন কৰে। ❑

প্ৰসংগটোকা ঃ

(১) হিতেশ ডেকা (সম্পা.) ঃ অসম শিশু সাহিত্য কোষ(প্ৰস্তাৱনা খণ্ড) , পৃ. ৬৪৬

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

ডেকা, হিতেশ(সম্পা.) ঃ অসম শিশু সাহিত্য কোষ (প্ৰস্তাৱনা খণ্ড),
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, প্ৰথম প্ৰকাশ ২০২০

তামুলী, শান্তনু ঃ অসমীয়া শিশু সাহিত্য সমীক্ষা,
মৌচাক প্ৰকাশন, যোৰহাট-৬, ২০১০

বৰকটকী, উপেন্দ্ৰ ঃ অসমীয়া শিশু সাহিত্যৰ সংক্ষিপ্ত ইতিহাস,
ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্টৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০২

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

লিংগ আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰৰ ভিত্তিত গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ এক অধ্যয়ন

প্ৰিয়াঙ্গী কৌশিক
গৱেষক, শিক্ষা বিভাগ,
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী- ১
৮৭২৪৯৭০২৭১
kausikpriyangee@gmail.com

ড° ফুনু দাস শর্মা
সহযোগী অধ্যাপক, শিক্ষা বিভাগ,
কটন বিশ্ববিদ্যালয়চ গুৱাহাটী- ১
phunudassarma@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

গণিত এনেধৰণৰ এটা বিষয় যি ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক আন বিষয়সমূহৰ শিকনৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সহযোগিতা আগবঢ়ায়। ইয়াৰ লগতে গণিত অধ্যয়নে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক যুক্তিপূৰ্ণ চিন্তা, জটিল বিশ্লেষণ আৰু সৃষ্টিশীল চিন্তা বিকাশতো গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। কিন্তু গণিত এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয় হোৱা সত্ত্বেও বিদ্যালয়ত পঢ়ি থকা সৰহসংখ্যক ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ বাবে গণিত এটা জটিল বিষয়স্বৰূপ হৈ পৰিছে।

গণিত বিষয়ত সন্তোষজনক শৈক্ষিক ফলাফল লাভ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত গণিতৰ প্ৰতি থকা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহে এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। সেয়েহে এই অধ্যয়নৰ যোগেদি গোলাঘাট জিলাৰ 'ছেবা' (অসম মাধ্যমিক শিক্ষা পৰিষদ)ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ উচ্চ/উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ত ২০২৩-২৪ শৈক্ষিক বৰ্ষত অধ্যয়নৰত দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ বিষয়ে সমীক্ষা কৰা হ'ল। এই অধ্যয়নটো সম্পূৰ্ণ কৰিবলৈ বৰ্ণনাত্মক জৰীপ পদ্ধতিৰ জৰিয়তে গোলাঘাট জিলাৰ 'ছেবা'ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ ছাত্ৰ আৰু ছাত্ৰী একেলগে পঢ়াৰ সুবিধা থকা ৫ খন চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত উচ্চ/উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয় আৰু ৫ খন একে প্ৰকাৰৰ ব্যক্তিগত বিদ্যালয়ৰ পৰা ৫ জনকৈ ছাত্ৰ আৰু ৫ গৰাকীকৈ ছাত্ৰী যাদৃচ্ছিকভাৱে বাছনি কৰি তেওঁলোকৰ ওপৰত গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ মাপকাঠীৰে পৰিমাপণ কৰা হয় আৰু এই পৰিমাপণৰ যোগেদি গৃহীত তথ্যসমূহ বিভিন্ন পাৰিসাংখ্যিক পদ্ধতি, যেনে— গড়, প্ৰামাণিক বিচ্যুতি আৰু 't' মান আদিৰ যোগেদি বিশ্লেষণ কৰা হয়। এই গৱেষণাত দেখা গ'ল যে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ মাজত লিংগগত পাৰ্থক্য নাই যদিও চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত গণিতৰ প্ৰতি আগ্ৰহৰ ক্ষেত্ৰত পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হৈছে।

প্ৰাধান্যমূলক শব্দ ঃ

আগ্ৰহ, দশম শ্ৰেণী, লিংগ, বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰ।

১.০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

বিদ্যালয়ৰ পাঠ্যক্ৰমত গণিতে এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। গণিত বিষয়ৰ অধ্যয়নে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত যুক্তিসংগত ক্ষমতা, জটিল বিশ্লেষণ, সমস্যা সমাধানৰ দক্ষতা, কৌতূহল, সৃষ্টিশীলতা আৰু সিদ্ধান্ত লোৱাৰ ক্ষমতা আদিৰ বিকাশত এক মুখ্য

ভূমিকা পালন কৰে। গণিত শিকনে ছাত্র-ছাত্রীক কেৱল গণিত বিষয়ত সন্তোষজনক ফলাফল লাভ কৰাতেই নহয়; ইয়াৰ উপৰি পাঠ্যক্রমৰ আন বিষয়সমূহৰ শিকন প্রক্রিয়াটো যথেষ্ট সহায় আগবঢ়ায়।

বিভিন্ন গৱেষণাৰ অধ্যয়নত পোৱা গৈছে যে বহুসংখ্যক ছাত্র-ছাত্রীয়ে গণিত এটা জটিল, আমনিদায়ক, হতাশাজনক আৰু অমূৰ্ত বিষয় বুলিয়েই ধাৰণা কৰি লয় (Bruch, 1985; Chele, 1990)। এনে ধাৰণাই ছাত্র-ছাত্রীৰ গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহ আৰু শৈক্ষিক ফলাফল দুয়োটাৰ ওপৰতে প্রভাৱ পেলায়। গণিত শিক্ষাত ছাত্র-ছাত্রীৰ শিকন আৰু আগ্রহৰ মাজত এক ওতঃপ্রোত সম্বন্ধ আছে। গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহে ছাত্র-ছাত্রীৰ সামগ্রিক শৈক্ষিক সফলতাৰ ওপৰত যথেষ্ট প্রভাৱ পেলায় (Illiyas & Charles, 2017; Schiefele, 1991; Jyoti, 2022)।

দশম শ্রেণীৰ পৰৱর্তী পর্যায়ত ছাত্র-ছাত্রীয়ে উচ্চ মাধ্যমিক পর্যায়ৰ পৰা উচ্চতৰ মাধ্যমিক পর্যায়লৈ উচ্চ শিক্ষাৰ দিশে আগবাঢ়ে। গতিকে দশম শ্রেণীটো দুয়োটা পর্যায়ৰ মাজত সম্পর্ক স্থাপন কৰা এক সাঁকোৰ দৰে। গতিকে এই পর্যায়ত গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহে ছাত্র-ছাত্রীৰ উচ্চ শিক্ষাৰ ক্ষেত্রতো প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰে। সেয়েহে দশম শ্রেণীটো পাঠ্যক্রমৰ এক গুৰুত্বপূর্ণ পর্যায় হোৱা বাবে এই অধ্যয়নৰ বাবে বাছনি কৰি লোৱা হ'ল।

গণিতৰ প্রতি ছাত্র-ছাত্রীৰ আগ্রহ বিষয়ক বিভিন্ন গৱেষণাৰ কিছুমানত লিংগভেদে গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহৰ বিশেষ পার্থক্য দেখা পোৱা গৈছে আৰু আন কিছুমান গৱেষণাত এই পার্থক্য দেখা হোৱা নাই (Eccles et at., 1983; Fredrick & Eccles, 2002; Hoffmann et al., 1998; Jacobs et al., 2002; Watt, 2004; Sarmah & Hazarika, 2012)। সেয়েহে ছাত্র-ছাত্রীৰ গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহৰ লগত লিংগৰ সম্পর্কৰ বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে বাছনি কৰি লোৱা হৈছে।

তদুপৰি ছাত্র-ছাত্রীৰ গণিতৰ প্রতি আগ্রহ আৰু শৈক্ষিক সফলতা তেওঁলোকে শিক্ষাগ্রহণ কৰি থকা বিদ্যালয়খনৰ প্রাধিকৰণ তথা পৰিচালনা আৰু নিয়ন্ত্রণৰ প্রকাৰৰ ওপৰতো নির্ভৰ কৰা দেখা যায় (Illiyas & Charles, 2017; Sarmah & Hazarika, 2012)। সেয়েহে এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে 'ছেবা'ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ ছাত্র-ছাত্রী একেলগে অধ্যয়ন কৰাৰ সুবিধা থকা উচ্চ/উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ৰ ছাত্র-ছাত্রীৰ মাজত গণিতৰ প্রতি থকা তেওঁলোকৰ আগ্রহৰ কিবা বিশেষ পার্থক্য আছে নেকি, সেই বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

১.১ আনুষংগিক গৱেষণা—লিখনি পর্যালোচনা ঃ

Frezel et al, 2010 —এ কৰা এক অধ্যয়নত পঞ্চম শ্রেণীৰ পৰা নৱম শ্রেণীলৈকে পঢ়া ছাত্র-ছাত্রীৰ মাজত একেৰাহে গণিতৰ প্রতি থকা তেওঁলোকৰ আগ্রহৰ লিংগগত পার্থক্য দেখা পোৱা গৈছে আৰু লগতে এই অধ্যয়নত ছাত্রতকৈ ছাত্রীৰ গণিতৰ প্রতি আগ্রহ নিম্নমানৰ পোৱা গৈছে।

Illiyas & Charles, 2017 আৰু Jyoti, 2012 —এ কৰা এক অধ্যয়নত দেখা পোৱা গৈছে যে উচ্চ মাধ্যমিক পর্যায়ৰ ছাত্র-ছাত্রীৰ মাজত গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহ আৰু শৈক্ষিক সফলতাৰ মাজত এক ধনাত্মক সম্পর্ক আছে।

ইয়াৰ উপৰি Illiyas & Charles, 2017 ৰ অধ্যয়নত বিদ্যালয় পৰিচালনাৰ ধৰণ বিশেষে উচ্চ মাধ্যমিক পর্যায়ত ছাত্র-ছাত্রীৰ গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহ আৰু শৈক্ষিক সফলতাৰ বিশেষ পার্থক্য পৰিলক্ষিত হৈছে।

Sarmah & Hazarika, 2012–এ কৰা অধ্যয়নতো বিদ্যালয়ৰ প্রকাৰ আৰু ছাত্র-ছাত্রীৰ লিংগ অনুযায়ী গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহৰ পার্থক্য দেখা পোৱা গৈছে।

Hyde et al. 1990; Preckel et al. 2008 ৰ গৱেষণাত তেওঁলোকে পাইছে যে ছাত্রৰ তুলনাত গণিতৰ প্রতি আগ্রহ ছাত্রীৰ কম থাকে।

আনহাতে Rajak & Gayen, 2022—এ কৰা অধ্যয়নত দেখা পোৱা গৈছে যে ছাত্র-ছাত্রীসকলৰ গণিতৰ প্রতি আগ্রহ উচ্চমানৰ। এই অধ্যয়নত গণিতৰ প্রতি আগ্রহৰ ক্ষেত্রত লিংগগত পার্থক্য দেখা পোৱা হোৱা নাই। ইয়াৰ উপৰি দেখা গৈছে যে গাঁৱলীয়া (Rural) আৰু নগৰীয়া (Urban) অঞ্চলৰ ছাত্র-ছাত্রীৰ ক্ষেত্রত গণিতৰ প্রতি আগ্রহ সমান পর্যায়ৰ অর্থাৎ গাঁৱলীয়া আৰু নগৰীয়া অঞ্চলৰ ছাত্র-ছাত্রীৰ মাজত গণিতৰ প্রতি আগ্রহৰ বিশেষ পার্থক্য নাই।

Das & Singhal, 2017 — এ কৰা অধ্যয়নত পোৱা গৈছে যে গাঁৱলীয়া অঞ্চলত গণিতত ছাত্রীৰ শৈক্ষিক ফলাফল সেই একে অঞ্চলৰ ছাত্রৰ তুলনাত নিম্নমানৰ।

ছাত্র-ছাত্রীৰ গণিতৰ প্রতি থকা আগ্রহ বিষয়ক যথেষ্টসংখ্যক গৱেষণা—লিখনি থকা সত্ত্বেও, ফলাফলবোৰত বিশেষকৈ লিংগ আৰু বিদ্যালয়ৰ প্রাধিকৰণ

তথা পৰিচালনা আৰু নিয়ন্ত্ৰণৰ প্ৰকাৰ অনুযায়ী সাদৃশ্যতা দেখা পোৱা হোৱা নাই।

ইয়াৰ উপৰি অধ্যয়নসমূহৰ প্ৰায়ভাগেই অসমৰ বাহিৰৰ। সেয়েহে অসমৰ গোলাঘাট জিলাত গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহ, লিংগ আৰু দুই প্ৰকাৰৰ বিশেষ বিদ্যালয় ('ছেবা'ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰী একেলগে পঢ়াৰ সুবিধা থকা চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ উচ্চ/উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়)ৰ ভিত্তিত অধ্যয়ন কৰাৰ অৱকাশ থাকে। সেয়েহে এই অনুসন্ধানৰ উদ্দেশ্যেৰে অধ্যয়নটো কৰা হৈছে।

১.২ সমস্যাৰ বিবৃতি ঃ

লিংগ আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰৰ ভিত্তিত গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ এক অধ্যয়ন।

১.৩ ব্যৱহৃত শব্দ বা ধাৰণাৰ কাৰ্যকৰী সংজ্ঞা ঃ

(ক) আগ্ৰহ ঃ আগ্ৰহ হৈছে মনৰ এক অন্তৰ্নিহিত অৱস্থা, যি মনোযোগ প্ৰদানৰ বাবে ব্যক্তিক প্ৰেৰণা যোগায়।

মেগডুগেলৰ মতে—"আগ্ৰহ মনোযোগৰ সুপ্ত অৱস্থা আৰু মনোযোগ আগ্ৰহৰ সক্ৰিয় অৱস্থা।"

জেমছ ৰ'চৰ মতে—"মনোযোগ আৰু আগ্ৰহ একেটা মুদ্ৰাৰ দুটা পিঠি সদৃশ।"

এই অধ্যয়নত আগ্ৰহ বুলি কওঁতে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিত বিষয় তথা গণিত শিকনৰ প্ৰতি থকা প্ৰৱণতাক বুজোৱা হৈছে। অধ্যয়নত আগ্ৰহ তুলনা কৰিবলৈ আগ্ৰহৰ মাপকাঠী ব্যৱহাৰ কৰি পোৱা মুঠ নম্বৰসমূহ লোৱা হৈছে।

উচ্চ মাধ্যমিক বিদ্যালয় ঃ সৰ্বোচ্চ দশম শ্ৰেণীলৈকে অন্তৰ্ভুক্ত বিদ্যালয়সমূহ।

উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয় ঃ সৰ্বোচ্চ দ্বাদশ শ্ৰেণীলৈকে অন্তৰ্ভুক্ত বিদ্যালয়সমূহ।

চৰকাৰী বিদ্যালয় ঃ এইসমূহ বিদ্যালয় চৰকাৰৰ দ্বাৰা প্ৰত্যক্ষভাৱে পৰিচালিত আৰু নিয়ন্ত্ৰিত। এই বিদ্যালয়সমূহে চৰকাৰে প্ৰদান কৰা সকলো সাহায্য লাভ কৰে।

প্ৰাদেশীকৃত বিদ্যালয় ঃ এইসমূহ বিদ্যালয় চৰকাৰৰ দ্বাৰা পৰোক্ষভাৱে পৰিচালিত আৰু নিয়ন্ত্ৰিত। এই বিদ্যালয়সমূহে চৰকাৰে প্ৰদান কৰা সকলো সাহায্য লাভ কৰে।

ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয় ঃ এইসমূহ বিদ্যালয় কোনো এজন ব্যক্তি বা কেইবাজনো ব্যক্তিৰে গঠিত গোটৰ দ্বাৰা চৰকাৰী নিৰ্দেশাৱলীৰ অধীনত পৰিচালিত আৰু নিয়ন্ত্ৰিত। এইসমূহ বিদ্যালয়ে কোনোধৰণৰ চৰকাৰী সাহায্য লাভ নকৰে।

১.৪ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

উদ্দেশ্য ১ ঃ গণিতৰ প্ৰতি থকা দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহ তেওঁলোকৰ লিংগৰ ভিত্তিত অধ্যয়ন কৰা।

উদ্দেশ্য ২ ঃ গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহ তেওঁলোকে অধ্যয়ন কৰি থকা চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ৰ ভিত্তিত অধ্যয়ন কৰা।

১.৫ গৱেষণাৰ আনুমানিক সিদ্ধান্তসমূহ ঃ

আনুমানিক সিদ্ধান্ত ১ ঃ গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ আৰু ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ গড়ৰ মাজত কোনো বিশেষ পাৰ্থক্য নাই।

আনুমানিক সিদ্ধান্ত ২ ঃ গণিতৰ প্ৰতি চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত বিদ্যালয় আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ত শিক্ষাগ্ৰহণ কৰি থকা দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ গড়ৰ মাজত কোনো বিশেষ পাৰ্থক্য নাই।

১.৬ অধ্যয়নৰ সীমাংকন ঃ

১. অধ্যয়নৰ নমুনাত অন্তৰ্ভুক্ত বিদ্যালয়সমূহ কেৱল—

(ক) 'ছেবা'ৰ অধীনত

(খ) অসমীয়া মাধ্যমৰ

(গ) ছাত্ৰ-ছাত্ৰী একেলগে পঢ়াৰ সুবিধা থকা বিদ্যালয়

(ঘ) উচ্চ/উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়

(ঙ) চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়

২. কেৱল দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীকহে অধ্যয়নৰ বাবে লোৱা হৈছে।

৩. লিংগ দুই ধৰণৰ লোৱা হৈছে—পুৰুষ আৰু মহিলা। অধ্যয়নত ছাত্ৰসকলক পুৰুষ আৰু ছাত্ৰীসকলক মহিলা হিচাবে বিবেচনা কৰা হৈছে।

১.৭ পদ্ধতি ঃ

এই অধ্যয়নটোত বৰ্ণনাত্মক জৰীপ পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে, কাৰণ এই পদ্ধতিয়ে জনসংখ্যাৰ বিষয়ে ভালদৰে বুজিবলৈ তথা জনসংখ্যাৰ বৈশিষ্ট্য বৰ্ণনা কৰাত সহায় কৰে।

(ক) অধ্যয়নৰ জনসংখ্যা ঃ

এই অধ্যয়নৰ জনসংখ্যাৰ বাবে গোলাঘাট জিলাৰ 'ছেবা'ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ ছাত্ৰ আৰু ছাত্ৰী একেলগে পঢ়াৰ সুবিধা থকা পাঁচখন চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত উচ্চ /উচ্চতৰ মাধ্যমিক আৰু পাঁচখন ব্যক্তিগত খণ্ডৰ একে প্ৰকাৰৰ বিদ্যালয়ত দশম শ্ৰেণীত ২০২৩-২৪ শৈক্ষিক বৰ্ষত অধ্যয়নৰত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসমূহক লোৱা হৈছে।

(খ) নমুনা ঃ

গোলাঘাট জিলাৰ 'ছেবা'ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ ছাত্ৰ আৰু ছাত্ৰী একেলগে পঢ়াৰ সুবিধা থকা পাঁচখন চৰকাৰী/ প্ৰাদেশীকৃত উচ্চ/ উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয় আৰু পাঁচখন একে প্ৰকাৰৰ ব্যক্তিগত বিদ্যালয়ৰ দশম শ্ৰেণীত ২০২৩-২৪ শৈক্ষিক বৰ্ষত অধ্যয়নৰত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসমূহৰ মাজৰ পৰা প্ৰত্যেকখন বিদ্যালয়ৰ পাঁচজনকৈ ছাত্ৰ আৰু পাঁচগৰাকীকৈ ছাত্ৰীক যাদৃচ্ছিকভাৱে বাছনি কৰা হৈছিল।

(গ) তথ্য সংগ্ৰহৰ সঁজুলি ঃ

অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচিত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসমূহৰ গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ পৰিমাণৰ বাবে ড° উমা টেণ্ডন (Dr. Uma Tendon) আৰু অশোক পাল (Ashok Pal) ৰ প্ৰতিমানীকৃত মাপকাঠী 'Mathematics Interest Scale (MIS-TUPA)' অসমীয়া ভাষালৈ অনুবাদ কৰি গ্ৰহণ (Adopt) কৰা হৈছে। ইয়াত চৌৱিছ (২৪) টা বিবৃতি আছে, যিসমূহ গণিত বিষয় আৰু গণিত শিকনৰ লগত জড়িত। এই বিবৃতিসমূহত ১২ টা ইতিবাচক বিবৃতি আৰু ১২ টা নেতিবাচক বিবৃতি আছিল, যাৰ সঁহাৰি হৈছে দৃঢ়ভাৱে সন্মত, সন্মত, অনিৰ্ণীত, অসন্মত আৰু দৃঢ়ভাৱে অসন্মত। মাপৰ নমুনা তলত দিয়া ধৰণৰ—

বিবৃতিৰ প্ৰকাৰ	দৃঢ়ভাৱে সন্মত	সন্মত	অনিৰ্ণীত	অসন্মত	দৃঢ়ভাৱে অসন্মত
ইতিবাচক বিবৃতি	৫	৪	৩	২	১
নেতিবাচক বিবৃতি	১	২	৩	৪	৫

(ঘ) তথ্য সংগ্ৰহৰ কৌশল ঃ

তথ্য সংগ্ৰহৰ বাবে মুঠ ২৪ টা বিবৃতি থকা প্ৰশ্নাৱলীখন ১০০ জন যাদৃচ্ছিকভাৱে বাছনি কৰা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ প্ৰত্যেককে একোখনকৈ ২০ মিনিটৰ বাবে দিয়া হয়। তেওঁলোকে যাতে নিৰপেক্ষভাৱে সুচিন্তাৰে উত্তৰসমূহ বাছনি কৰে, তাৰ বাবে অনুৰোধ জনোৱা হয়। তেওঁলোকৰ ব্যক্তিগত তথ্যসমূহৰ গোপনীয়তা ৰক্ষা কৰাৰ প্ৰতিশ্ৰুতি প্ৰদান কৰা হয়। ২০ মিনিটৰ পাছত তেওঁলোকৰ পৰা প্ৰশ্নাৱলীসমূহ সংগ্ৰহ কৰা হয়।

(ঙ) তথ্য বিশ্লেষণৰ কৌশল ঃ

অধ্যয়নত মূলতঃ ব্যৱহাৰ কৰা পৰিসংখ্যা কৌশলসমূহ আছিল— গাণিতিক গড় (Mean), প্ৰামাণিক বিচ্যুতি (Standard Deviation) আৰু পাৰিসাংখ্যিক পৰীক্ষা টি-টেষ্ট (t-test)। গণনাসমূহৰ বাবে উইণ্ডোজ-১০ (Windows-10)ৰ এক্সেল (Excel) ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল।

১.৮ তথ্য বিশ্লেষণ আৰু ব্যাখ্যাকৰণ ঃ

উদ্দেশ্য—১ ঃ গণিতৰ প্ৰতি থকা দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহ তেওঁলোকৰ লিংগৰ ভিত্তিত অধ্যয়ন কৰা।

উদ্দেশ্য—১ পূৰণ কৰিবলৈ নিম্নোক্ত আনুমানিক সিদ্ধান্ত—১ ৰ প্ৰণয়ন কৰা হৈছিল আৰু t- মান গণনা কৰি ফলাফল তালিকা-১ ত দিয়া হৈছে।

আনুমানিক সিদ্ধান্ত—১ ঃ গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ গড়ৰ মাজত কোনো বিশেষ পাৰ্থক্য নাই।

তালিকা—১ গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহৰ লিংগভিত্তিক গড়, প্ৰামাণিক বিচ্যুতি আৰু t- মান।

লিংগ	গড়	প্ৰামাণিক বিচ্যুতি	মুঠ ছাত্ৰ-ছাত্ৰী	স্বতন্ত্ৰতাৰ মাত্ৰা (degree of freedom)	t- মান	মন্তব্য
ছাত্ৰ	৯৩.৩	৮.৮৩	৫০			
ছাত্ৰী	৮৯.৯	৮.৯৯	৫০	৯৮	০.১৮	তাৎপৰ্যপূৰ্ণ নহয় (Not significant)

তালিকা—১ পৰা দেখা যায় যে লিংগৰ t- মান ০.১৮ যিটো তাৎপৰ্যপূৰ্ণ নহয়।

সেয়েহে আনুমানিক সিদ্ধান্ত—১ নাকচ কৰা নহ'ল। ইয়াৰ পৰা বুজা যায় যে ছাত্ৰ আৰু ছাত্ৰীৰ মাজত গণিতৰ প্ৰতি আগ্ৰহৰ বিশেষ পাৰ্থক্য নাই। এই ফলাফল Frezel et al., 2010; Sarmah & Hazarika, 2012; Hyde et al., 1990; Preckel et al. 2008 আদিয়ে তেওঁলোকৰ অধ্যয়নত পোৱা ফলাফলৰ বিপৰীত। আনহাতে এই অধ্যয়নত পোৱা ফলাফল সামঞ্জস্যতা Rajak & Gayen, 2012— এ তেওঁলোকৰ অধ্যয়নত পোৱা ফলাফলৰ সৈতে একে।

উদ্দেশ্য—২ ঃ গণিতৰ প্ৰতি দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ আগ্ৰহ তেওঁলোকে অধ্যয়ন কৰি থকা চৰকাৰী/ প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ৰ ভিত্তিত অধ্যয়ন কৰা।

উদ্দেশ্য—২ পূৰণ কৰিবলৈ নিম্নোক্ত আনুমানিক সিদ্ধান্ত -২ ৰ প্ৰণয়ন কৰা হৈছিল আৰু t- মান গণনা কৰি পোৱা ফলাফল তালিকা-২ ত দিয়া হৈছে।

আনুমানিক সিদ্ধান্ত—২ ঃ গণিতৰ প্ৰতি চৰকাৰী/ প্ৰাদেশীকৃত বিদ্যালয় আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ত শিক্ষাগ্ৰহণ কৰি থকা দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত আগ্ৰহৰ গড়ৰ কোনো বিশেষ পাৰ্থক্য নাই।

তালিকা—২ ঃ বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰ (চৰকাৰী/ প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ড) ৰ ভিত্তিত দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিতৰ প্ৰতি আগ্ৰহৰ গড়, প্ৰামাণিক বিচ্যুতি আৰু t- ৰ মান।

বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰ	গড়	প্ৰামাণিক বিচ্যুতি	মুঠ ছাত্ৰ-ছাত্ৰী	স্বতন্ত্ৰতাৰ মাত্ৰা (degree of freedom)	t-মান	মন্তব্য
চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত	৮৪.৬২	৫.২২	৫০	৯৮	২.৪৮	**p<০.০১
ব্যক্তিগত খণ্ড	৯৭.৫৮	৬.৯৯	৫০			

** ০.০১ স্তৰত তাৎপৰ্যপূৰ্ণ

তালিকা—২ ৰ পৰা দেখা যায় যে বিদ্যালয়ৰ বাবে t-মান ২.৪৮ যিটো df = ৯৮ ৰ বাবে ০.০১ স্তৰত তাৎপৰ্যপূৰ্ণ।

সেয়েহে আনুমানিক সিদ্ধান্ত—২ নাকচ কৰা হৈছে। ইয়াৰ পৰা বুজা যায় যে চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত বিদ্যালয় আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ত অধ্যয়নৰত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত তেওঁলোকৰ গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ গড়ৰ যথেষ্ট পাৰ্থক্য আছে। ইয়াৰ উপৰি চৰকাৰী/ প্ৰাদেশীকৃত বিদ্যালয়ত পঢ়া ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ গড়, ব্যক্তিগত খণ্ডৰ বিদ্যালয়ৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহৰ গড়তকৈ নিম্নমানৰ পোৱা গৈছে।

এই ফলাফলৰ সৈতে Illiyas & Charles, 2017; Sarmah & Hazarika, 2012 ৰ অধ্যয়নত পোৱা ফলাফলৰ মিল দেখা যায়। কিন্তু তেওঁলোকৰ অধ্যয়নত বিদ্যালয়ৰ প্ৰকাৰৰ ভিত্তি ভিন্ন ধৰণৰ আছিল। অৰ্থাৎ তেওঁলোকে চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডৰ ভিত্তিত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ গণিতৰ প্ৰতি আগ্ৰহৰ অধ্যয়ন কৰা নাছিল। আনহাতে এই ফলাফল Rajak & Gayen, 2022-এ অধ্যয়নত পোৱা ফলাফলৰ সৈতে একে নহয়। এই ক্ষেত্ৰত তেওঁলোকে গণিতৰ প্ৰতি আগ্ৰহৰ অধ্যয়নৰ বাবে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসমূহ গাঁৱলীয়া আৰু নগৰীয়া অঞ্চলৰ ভিত্তিতহে বাছনি কৰিছিল।

১.৯ ফলাফলৰ সাৰাংশ আৰু মতামত ঃ

অসমৰ গোলাঘাট জিলাৰ 'ছেবা'ৰ অধীনৰ অসমীয়া মাধ্যমৰ উচ্চ/উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ত ২০২৩-২৪ শৈক্ষিক বৰ্ষত অধ্যয়নৰত দশম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক গণিতৰ প্ৰতি থকা আগ্ৰহ জনাৰ উদ্দেশ্যেৰে এই অধ্যয়নটো কৰা হৈছিল। এই অধ্যয়নত দেখা গ'ল যে ছাত্ৰ আৰু ছাত্ৰীসমূহৰ মাজত লিংগ বিশেষে চৰকাৰী/প্ৰাদেশীকৃত আৰু ব্যক্তিগত খণ্ডত অধ্যয়নৰত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ মাজত আগ্ৰহৰ গড়ৰ যথেষ্ট পাৰ্থক্য আছে। ইয়াৰ কাৰণ বিদ্যালয় পৰিচালনা আৰু নিয়ন্ত্ৰণ কৰাৰ প্ৰক্ৰিয়া, বিদ্যালয়ৰ আন্তঃগাঁথনি, শৈক্ষিক সমলৰ পৰ্যাপ্ততা, প্ৰতিযোগিতামূলক পৰিৱেশ ইত্যাদিও হ'ব পাৰে। পৰৱৰ্তী গৱেষণাত এই কাৰণসমূহৰ ওপৰত ইচ্ছুক গৱেষকে অধ্যয়ন কৰিব পাৰিব। চৰকাৰ আৰু শৈক্ষিক মহলে এই বিষয়টো গুৰুত্বসহকাৰে গ্ৰহণ কৰি কেনেদৰে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ গণিতৰ প্ৰতি আগ্ৰহ বৃদ্ধি কৰিব পৰা যায়, তাৰ ওপৰত প্ৰয়োজনীয় পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰাটো অত্যন্ত প্ৰয়োজনীয়। ❑

তথ্যসূত্ৰ ঃ

Hill, J.P. & Lynch, M.E. (1983).The intensification of gender related role expectations during early adolescence. In J. Books Gunn & A.C. Peterson (Eds.), Girls at Puberty (pp. 201 228). New York: Plenum.

Brush, L.R. (1985). Mathematics Anxiety, Mathematics Achievement, Gender and Socio-economic Status among Arab Secondary students in Israel. 3 Math. Edu. SCI.Technol.21(2), 319-327.

Eccles, J.S.(1987).Gender roles and women's achievement related decisions. Psychology of Women Quarterly, 11,135 172.

Chele, M.M. (1990). An investigation of the problem of under achievement in Mathematics in Mathematics examination of West Bengal. Fifth Survey of Research in Education, Buch, vol.1, pp 3-73.

Hyde, J.S., Fennema, E., Ryan, M., Frost, L.A., and Hopp, C. (1990). Gender comparisons of mathematics attitude and affect: a meta-analysis. Psychological. Women Q.14, 299-324.

Schiefele, U. (1991). Interest, learning, and motivation. Educational Psychologist,26 (3&4), 299-323.

Jacobs, J.E., Lanza, s., Osgood, D.W., Eccles, J.S., & Wigfield, A. (2002). Changes in children's self competence and values: Gender and domain differences across grades one through twelve. Child Development, 73, 509 527.

Fredricks, J.A., & Eccles, J. (2002). Children's competence and value beliefs from childhood through adolescence: Growth trajectories in two male sex typed domains. Developmental Psychology, 38, 519 533.

Watt, H.M.G. (2004). Development of adolescents' self perceptions, values, and task perceptions according to gender and domain in 7th through 11th grade Australian students. Child Development, 75, 1556 1574.

Preckel, F., Goetz, T., Pekrun, R., and Kleine, M. (2008). Gender differences in gifted and average ability students: compairing girls' and boys' achievement, self concept, interest, and motivation in mathematics. Gifted child Q.52, 146-159.

Frenzel, A.C., Goetz, T., Pekrun, R., & Watt, H.M.G.(2010). Development of Mathematics Interest in Adolescence: Influences of Gender, Family, and School Context. Journal of Research on Adolescence 20(2010),2, pp. 507-537.

Sarmah, H.K. & Hazarika, B.B. (2012). An Analysis of Students' Interest in Mathematics in Relation to Gender of Students and Type of School. International Journal of Mathematics Research. ISSN, 0976-5840 Volume 4, Number 6(2012), p.p 707-725.

Illiyas, B.M. & Charles, M.A.A. (2017). Interest in Mathematics and Academic Achievement of High School Students in Chennai District. International Journal of Innovative Science and Research Technology, volume 2, Issue 8, August-2017. ISSN No: - 2456-2165.

Das, V., & Singhal, K. (2017). Gender Differences in Mathematics Performance: Evidence from Rural India. Paper prepared for the IARIW-ICIER Conference, New Delhi, India, November 23-25,2017, Session 3B: Education, Time: Thursday, November 23, 2017 (Afternoon).

Jyoti. (2022). Academic Achievement of High School Students in Mathematics and Their Mathematical Interest in Relation to Certain Selected Variables. Scholarly Research Journal for Humanity Research Journal & English Language, Online.ISSN 2348-3083, Impact Factor 2021: 7.278, www.Srijis.Com Peer Reviewed & Refereed Journal, Oct-Nov, 2022, vol-10/54.

Rajak, P., & Gayen, P. (2022). A Study of the Interest in Mathematics of Secondary Level Students of West Bengal. International Journal of Research Publication and Reviews, vol 3, no 6, pp 132-135, June 2022.

শর্মা, এম, আৰু শইকীয়া, পি। "গণিত শিকন-শিক্ষণৰ প্ৰতি নিম্ন-প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ৰ শিক্ষকৰ মনোভাবৰ ওপৰত এক অধ্যয়ন।" দ্বিভাষী ৰাষ্ট্ৰসেৱক, (২০২৩), সংখ্যা ঃ ৭৩ (২), পৃষ্ঠা ঃ ১০২-১০৮।

change heading with
original

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ 'অন্তৰীপ' উপন্যাসৰ চলচ্চিত্ৰ অভিযোজনা 'অগ্নিস্নান'

পূজা বৰা

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
অসমীয়া বিভাগ, কমাৰগাঁও মহাবিদ্যালয়
৯৩৬৫৮২০৭৯৯
borapooja024@gmail.com

ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়,
গুৱাহাটী- ১
kalpana.sarma2@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

সাহিত্যৰ চলচ্চিত্ৰায়ণ বা অভিযোজনা সমগ্ৰ বিশ্ব চলচ্চিত্ৰৰ পৰিমণ্ডলত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অনুষংগৰূপে ইতিমধ্যে পৰিগণিত হৈছে । এটা শিল্পকৰ্মক কলাৰ এটা বিধা (Genre) বা মাধ্যমৰ পৰা অন্য এটা শিল্প মাধ্যমলৈ ৰূপান্তৰিত কৰা সৃজনাত্মক প্ৰক্ৰিয়াটোকেই অভিযোজনাৰূপে অভিহিত কৰা হয়। বিশ্ব চলচ্চিত্ৰৰ ইতিহাসলৈ মন কৰিলে দেখা যায় যে উদ্ভৱকালীন সময়ৰ পৰাই চলচ্চিত্ৰ সাহিত্য-নিৰ্ভৰ আছিল। ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপটলৈ দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিলেও দেখা যায় যে প্ৰাৰম্ভিক পৰ্যায়ৰ প্ৰায়সংখ্যক চলচ্চিত্ৰই আছিল সমসাময়িক মঞ্চনাটৰ চলচ্চিত্ৰ ৰূপ। অসমীয়া চলচ্চিত্ৰৰ ক্ষেত্ৰতো এই বিশেষ অনুষংগটো দৃষ্টিগোচৰ হয়। জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ দ্বাৰা সৃষ্ট প্ৰথম অসমীয়া চলচ্চিত্ৰ 'জয়মতী' লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'জয়মতী' নাটকৰ অভিযোজিত ৰূপ। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত সংযোজিত হোৱা অভিযোজিত চিত্ৰৰূপসমূহে অসমীয়া চলচ্চিত্ৰ জগতত অভিনৱত্বৰ সঞ্চাৰ কৰে। অসমীয়া চলচ্চিত্ৰক এক প্ৰত্যয়জনক স্থিতি প্ৰদানৰ ক্ষেত্ৰত অগ্ৰণী ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ হোৱা চিত্ৰনিৰ্মাতাসকলৰ ভিতৰত ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়া অন্যতম। তেখেতৰ অনবদ্য সৃষ্টি 'অন্তৰীপ' শীৰ্ষক উপন্যাসৰ আধাৰত অভিযোজিত 'অগ্নিস্নান' (১৯৮৫) শীৰ্ষক চলচ্চিত্ৰখন অসমীয়া উপন্যাসৰ চলচ্চিত্ৰ অভিযোজনাৰ ক্ষেত্ৰত এক উল্লেখনীয় সংযোজন। সুগভীৰ ৰুচিবোধ, সূক্ষ্ম সংবেদনাত্মক নান্দনিক দৃষ্টিভংগী আৰু প্ৰচুৰ পৰ্যবেক্ষণ ক্ষমতাক জীৱনমুখী চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাণত বিচক্ষণভাৱে প্ৰয়োগ কৰা ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ চলচ্চিত্ৰসমূহৰ মাজেৰে সাহিত্য আৰু চলচ্চিত্ৰৰ অভিন্ন ৰূপ পৰিস্ফুট হয়। গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে 'অন্তৰীপ' উপন্যাসৰ অভিযোজিত ৰূপ 'অগ্নিস্নান'ৰ বিষয়ে এক তুলনাত্মক আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

সূচক শব্দ ঃ

চলচ্চিত্ৰ অভিযোজনা, ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়া, অন্তৰীপ, অগ্নিস্নান, নাৰী ভাবনা ইত্যাদি।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

সুস্থ, পৰিশীলিত, কলাসম্মত চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাণৰ জৰিয়তে সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক পৰিমণ্ডলৰ বিকাশ সাধনৰ বাবে যিসকল মুষ্টিমেয় ব্যক্তিয়ে জীৱনযোৱা সাধনাৰে আশাশুধীয়া প্ৰচেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছিল তেওঁলোকৰ ভিতৰত ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ নাম প্ৰাতঃস্মৰণীয়। সৰল কথিত ভাষাৰ প্ৰয়োগেৰে, সূক্ষ্মাতিসূক্ষ্ম বৰ্ণনাৰ নৈপুণ্যৰে

তেখেতে একো একোটা পৰিস্থিতিক এক চিনেমেটিক মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। বৃটিছ ঔপনিৱেশিকতাৰ শেষৰ দুটা দশকৰ সময়ৰ পটভূমিত বিধৃত এক আঢ্যৱন্ত পৰিয়ালৰ পুৰুষতান্ত্ৰিকতাৰ হাঁতোৰাই ক্ষত বিক্ষত কৰা এগৰাকী নাৰীয়ে জীৱনৰ পথ পৰিক্ৰমাত সন্মুখীন হোৱা লাঞ্ছনা, প্ৰতাৰণা আৰু অকথ্য নিৰ্যাতনে তেওঁৰ মনগহনত সৃষ্টি কৰা চৰম অসহায়তা আৰু অৰ্ন্তদ্বন্দ্বৰ ব্যঞ্জনা উপন্যাসখনৰ মাজেৰে বিধৃত হৈছে। সমান্তৰালভাৱে নিসংগ ৰাতিৰ ভয়াৱহতাই জোকাৰি যোৱা মেনকাৰ মনস্তত্বত সুদীৰ্ঘ দিন ধৰি অৱদমিত হৈ ৰোৱা ক্ষোভ, অভিমান, হতাশা আৰু পৰ্যায়ক্ৰমে সকলো সংঘাত পাৰ কৰি আহি প্ৰচণ্ড স্বাভিমানী হৈ তেওঁ সাব্যস্ত কৰা মৌন অথচ বলিষ্ঠ প্ৰতিবাদক সামৰি অগ্নিস্নানৰ কাহিনী অভিব্যঞ্জিত হৈছে।

বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

ভৌগোলিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা 'অন্তৰীপ' মানে হ'ল সাগৰৰ মাজলৈ বাঢ়ি যোৱা বহল ভূ-ভাগৰ জোঙা অংশ। অর্থাৎ যিমানেই সমুখলৈ আগুৱাই যোৱা যায়, সিমানেই দৃশ্যমান হয় কেৱল সীমাহীন জলৰাশি। পিছলৈ আহিলে প্ৰত্যক্ষমান হয় বহল ভূ-ভাগ। 'অন্তৰীপ' উপন্যাসখনতো একেদৰে মেনকাৰ জীৱনৰ গতি ক্ৰমশঃ যিমানেই প্ৰসাৰিত হৈছে সিমানেই সমুখত উন্মোচিত হৈছে পংকিল জীৱনৰ কদর্য স্বৰূপ। এনে এক ব্যঞ্জনা উপন্যাসখনৰ নামকৰণৰ মাজত প্ৰবহমান হৈ আছে। এগৰাকী পুৰুষ ঔপন্যাসিক হোৱা সত্ত্বেও সমাজত নাৰীৰ অৱস্থিতি সম্পৰ্কে সদা সচেতন ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়াই নাৰী ভাৱনাৰ যথাযথ ৰূপায়ণৰ ক্ষেত্ৰত অভূতপূর্ব প্ৰজ্ঞা আৰু দক্ষতাৰ পৰিচয় দিছে। সম্ভ্রান্তবংশীয় এগৰাকী সমাজৰ দৃষ্টিত সফল, নিয়াৰিকৈ সংসাৰ চক্ৰ ধৰি ৰখা, চাৰিটাকৈ সন্তানৰ মাতৃ 'মেনকাই' জীৱনৰ মাজভাগত সন্মুখীন হোৱা এক চূড়ান্ত অবাঞ্ছিত তিক্ততাপূর্ণ পৰিস্থিতিক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই উপন্যাসখনত সংঘাতৰ সূত্ৰপাত হৈছে।

ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়াৰ অভিনৱ আৰু ব্যতিক্ৰমী সৃষ্টি 'অন্তৰীপ' উপন্যাসৰ প্ৰথম অংশৰ কাহিনীৰ আধাৰত 'অগ্নিস্নান' শীৰ্ষক এই চলচ্চিত্ৰখন অভিযোজনা কৰা হয়। 'অগ্নিস্নান' নামটোৰ মাজতেই গভীৰভাৱে প্ৰচ্ছন্ন হৈ আছে এনে এক ইংগিতময়তা, যে এই কাহিনী, পদে পদে সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন ঘাত-প্ৰতিঘাত অতিক্ৰম কৰি নিজৰ অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ যুদ্ধত অৱতীর্ণ হোৱাৰ সংগ্ৰামৰ কাহিনী। ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়াই নিজে অভিযোজনা কৰা এই চলচ্চিত্ৰখনৰ বিষয়বস্তু মূলতঃ মেনকাক কেন্দ্ৰ কৰিয়ে আৱর্তিত হৈছে। মহাকাব্যিক চৰিত্ৰ সীতাই নিজৰ সতীত্বৰ প্ৰমাণ দিবৰ বাবে জুইৰ দাবানলৰ মাজেৰে অগ্নি পৰীক্ষা দিবলগীয়া হৈছিল। হিন্দু সমাজে দেৱীৰ মর্যাদা প্ৰদান কৰা 'সীতা'ই অৱতীর্ণ হ'বলৈ বাধ্য হোৱা এই অগ্নিপৰীক্ষাই দৰাচলতে পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত নাৰীয়ে প্ৰতি মূহুর্ত্বতে সন্মুখীন হোৱা অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ এই যুঁজখনৰ বিষয়েই ইংগিত বহন কৰিছে। দেৱীৰ আসনত উপৱিষ্ট কৰা 'সীতা'ৰ দৰে চৰিত্ৰই এনে পৰীক্ষাৰ মাজেৰে পাৰ হ'বলগীয়া হোৱাৰ দৰে ঘটনাংশৰ মাজেদি স্পষ্ট হৈ পৰে নাৰীৰ সামাজিক স্থিতিৰ পুতৌজনক অৱস্থানৰ বিষয়ে। 'অগ্নিস্নান'ৰ নায়িকা মেনকাই কিন্তু সীতাৰ দৰে জুইত জাহ দি নিজৰ পৰিত্ৰতাৰ প্ৰমাণ দিবলৈ তৎপৰ হৈ উঠা নাই। তাৰ পৰিৱর্তে জীৱন যুদ্ধত সন্মুখীন হোৱা এই প্ৰত্যাহ্বান সাহসেৰে গ্ৰহণ কৰি মেনকাই ঘোষণা কৰিছে যে 'সীতা থাকিবলৈ হ'লে ৰামো থাকিব লাগে, তেহেতু'। অগ্নিস্নানৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ মেনকাৰ এই সংলাপ বা অন্তৰীপৰ মেনকাৰ এই উক্তি নাৰীৰ প্ৰাপ্য অধিকাৰৰ হকে যুঁজাৰ আহ্বান। দেৱতা হৈও ৰামৰ মনৰ যি সংকীর্ণতা, সেই সংকীর্ণ মনোভাবেই সমাজখনতো বিৰাজমান। সেয়েহে পুৰুষতান্ত্ৰিক এই সমাজ ব্যৱস্থাত পুৰুষৰ চৰিত্ৰত হাজাৰটা দাগ থাকিলেও সমাজৰ তথাকথিত আদালতৰ বিচাৰত পুৰুষজন নিৰপৰাধী। আৰু নাৰীয়ে পুৰুষৰ সকলো দোষ-ভুল উপেক্ষা কৰি সেই চৰিত্ৰহীন পুৰুষৰ ওচৰত শৰণাপন্ন হৈ থকাই সমাজৰ তথাকথিত নিয়ম। মেনকাই এই সংকীর্ণ গণ্ডী অতিক্ৰম কৰি গোপনে হ'লেও মহীকান্তৰ বিৰুদ্ধে যি প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰিছে তাৰ মাজতেই 'অগ্নিস্নান' চলচ্চিত্ৰখনৰ সার্থকতা। 'অন্তৰীপ' উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিক ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়াই সৰলীকৃত প্ৰাঞ্জল প্ৰকাশভংগী, সাৱলীল ভাষাৰে কাহিনীক মান্যতা প্ৰদান কৰিছে। অন্যহাতে 'অগ্নিস্নান' চলচ্চিত্ৰখনত পৰিচালক ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়াই চেলুলয়দৰ ভাষাৰে, মণ্টাজৰ সুষম প্ৰয়োগ আৰু সুসংহত চলচ্চিত্ৰ দৃষ্টিভংগীৰে কাহিনীক এক নতুন ব্যাপ্তি প্ৰদান কৰিছে। উপন্যাসৰ বিষয়বস্তুক চিত্ৰৰূপ দিয়াৰ এই জটিল সৃজনীশীল প্ৰক্ৰিয়াত চিনেমাৰ প্ৰয়োজনত নিতান্তই কৰিবলগীয়া সালসলনিৰ বাহিৰে পৰিচালকে কাহিনীৰ ক্ষেত্ৰত বৰ বিশেষ একো পৰিৱর্তন কৰা নাই।

'অন্তৰীপ' উপন্যাসত কুৰিটাৰো অধিক নাৰী চৰিত্ৰ আৰু প্ৰায় সমান সংখ্যক পুৰুষ চৰিত্ৰৰ অৱতাৰণাৰে কাহিনীয়ে বিকাশ লাভ কৰা দেখা যায়। 'অগ্নিস্নান' চলচ্চিত্ৰত পৰিচালকে

চিত্রনাট্যৰ দাবীত প্রয়োজন অনুসাৰে চৰিত্রৰ বঢ়া-টুটা কৰিছে। উপন্যাসখনৰ ক্ষেত্রত কাহিনীৰ অগ্রগতিত বিশেষ ভূমিকা গ্রহণ কৰা চৰিত্রসমূহ হ'ল— মেনকা, মহীকান্ত, কিৰণ, মদন চোৰ, ইন্দ্র, ভজহৰি, ভদ্রকান্ত, মহীকান্তৰ পিতৃ, চিত্রা, পৰিতোষ মাষ্টৰ, শংকৰ, ড° বানার্জী আদি। চলচ্চিত্রখন যিহেতু উপন্যাসখনৰ প্রথম অংশৰ কাহিনীৰ ভেঁটিত নির্মিত সেয়েহে কিছুমান চৰিত্র এই ক্ষেত্রত অনুপস্থিত।

অভিযোজনা প্রক্রিয়াত মূল সাহিত্য পাঠৰ পৰা চিত্র ৰূপ দিবলৈ যাওঁতে অভিযোজকজনে প্রয়োজন সাপেক্ষে চৰিত্রৰ সংযোজন বিযোজন কৰিব পাৰে। তদুপৰি স্থান বিশেষে তথা ঘটনাৰ পৰিস্থিতি অনুসৰি চৰিত্রৰ নামৰো সাল-সলনি কৰিব পৰাকৈ তেওঁৰ স্বতন্ত্রতা থাকে। ভবেন্দ্র নাথ শইকীয়াই অন্তৰীপ উপন্যাসত প্রায় অর্ধশতাধিক চৰিত্রক চিত্রিত কৰিছে। কিন্তু অগ্নিস্নানত ঘটনা আৰু পৰিস্থিতি সাপেক্ষে অত্যাৱশ্যকীয় চৰিত্রসমূহকহে কেৱল উপস্থাপন কৰা হৈছে। উপন্যাসৰ মুখ্য নায়িকা মেনকা প্রথমাংশত এক শক্তিশালী ভূমিকাত অৱতীর্ণ হৈছে যদিও দ্বিতীয়াংশত এই চৰিত্রটো কিছু পৰিমাণে নিষ্প্রভ হৈ পৰে। কিন্তু 'অগ্নিস্নান'ত মেনকা চৰিত্রটোৱে চলচ্চিত্রখনৰ আ�ৱম্ভণিৰ পৰা শেষলৈকে এক বলিষ্ঠ কেন্দ্রীয় চৰিত্রৰূপে ক্রিয়াৰত হৈ আছে।

অগ্নিস্নানৰ অভিযোজন প্রক্রিয়াত চিত্রনির্মাতাই অনুকৰণ আৰু বিশ্বস্বতাৰ প্রসংগক আধাৰ হিচাপে গ্রহণ কৰাৰ অনুষংগ দৃষ্টিগোচৰ হয়। 'অগ্নিস্নান'ৰ কাহিনীভাগৰ ৰূপায়ণৰ ক্ষেত্রত অভিযোজকে বিশেষ কিছুমান দৃশ্যাংশৰ ক্ষেত্রত প্রয়োগ কৰা চিত্রকল্পসমূহে চলচ্চিত্রখনক এক অভিনৱত্ব প্রদান কৰিছে। মহীকান্তই কিৰণক প্রথম লগ পোৱাৰ দৃশ্যাংশৰ পিছতে সংযোজিত কৰা হৈছে এটা দৃশ্যাংশ য'ত এটা দামুৰীয়ে গাই গৰুৰ গাখীৰ খাই আছে। পৰৱর্তী সময়ত মহীকান্ত আৰু কিৰণৰ মাজত স্থাপিত হোৱা সম্পর্কৰ ইংগিতময়তা যেন সেই চিত্রকল্পৰ মাজেৰে ফুটি উঠিছে। এটা দৃশ্যত ইন্দ্রই কাগজত কম্পাছেৰে জ্যামিতি কৰি থকা দেখা গৈছে। অন্য এটা দৃশ্যাংশত ইন্দ্রৰ মহীকান্তৰ কোঠাত কাটা কম্পাছ ডাল বিচাৰি থকাৰ দৃশ্য চিত্রায়িত হৈছে। জ্যামিতি, কাটা কম্পাছ ডাল বিচাৰি থকাৰ দৃশ্য চিত্রায়িত হৈছে। জ্যামিতি, কাটা কম্পাছ আদি অনুষংগৰ মাজেৰে ক্রমশঃ বুজন হৈ অহা ইন্দ্রই যেন জীৱনৰ জটিল সমীকৰণৰ সৈতে অভ্যস্ত হ'বলৈ আৰম্ভ কৰাৰ প্রসংগ অভিব্যঞ্জিত হৈছে। অন্য এক দৃশ্যাংশত সদ্যস্নাতা মেনকাৰ ভিজা চুলিৰপৰা পানীৰ টোপাল বগা কাগজত সৰি পৰাৰ অনুষংগটোক ক্লু'জ আপ শ্ব'টৰ সহায়ত গভীৰ অর্থবহ ৰূপত উপস্থাপন কৰা হৈছে। পানীৰ টোপালৰ সৈতে মেনকাৰ চকুৰপৰা নিগৰি অহা অশ্রুৰ টোপালৰ এই আবেদনময় অনুষংগটোৰ উপস্থাপনৰ ক্ষেত্রত চলচ্চিত্রখনত কেমেৰাৰ সৃষ্টিশীল প্রয়োগ মন কৰিবলগীয়া।

উপসংহাৰ ঃ

'অগ্নিস্নান'ত নির্মাতাই মূল পাঠ 'অন্তৰীপ'ৰ আভ্যন্তৰীণ বিষয়বস্তুৰ কি ধৰণে পৰিৱর্তন সাধন কৰিছে এই সম্পর্কে আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে প্রথমেই মন কৰিবলগীয়া দিশটো হ'ল যে 'অন্তৰীপ'ৰ প্রথম অংশৰ কাহিনীভাগহে তেখেতে অভিযোজনা কৰিছে। পৰিস্থিতি অনুযায়ী কৰিবলগীয়া সালসলনিৰ বাহিৰে কাহিনী বা বিষয়বস্তুৰ ক্ষেত্রত ব্যাপক পৰিৱর্তন কৰা দেখা নাযায়। অৱশ্যে চিত্র নির্মাতাই কাহিনীৰ ভাৱবস্তুৰ সংক্ষিপ্ত ৰূপত উপস্থাপন কৰিবলৈ চেষ্টা নকৰা নহয়।

মূলৰ ঘটনাক্রম অভিযোজনা প্রক্রিয়াত একেধৰণেৰে ৰাখি মূল বক্তব্য বিষয়ৰ নিকটতম ৰূপ দর্শকৰ আগত দাঙি ধৰিবলৈ ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়া পুৰামাত্রাই সক্ষম হৈছে বুলিব পাৰি। 'অন্তৰীপ' শব্দৰ ব্যঞ্জনাই মানুহৰ জীৱনৰ আভ্যন্তৰীণ দিশৰ সত্যতাক উন্মোচিত কৰিছে। আনহাতে 'অগ্নিস্নান' শব্দৰ মাজত অভিব্যঞ্জিত হৈ আছে জীৱনৰ নানা ঘাত-প্রতিঘাতৰ মাজেৰে জীৱন যুঁজত অৱতীর্ণ হোৱাৰ দুঃসাহসিক দৃষ্টিভংগী। এনেদৰে বিচাৰ কৰিলে দেখা যায় যে দুয়োটা শিল্পকর্মই অভিযোজনাৰ মাধ্যমেদি এক নতুন মাত্রা লাভ কৰিছে। ❑

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

দত্ত, উৎপল। *চলচ্চিত্রৰ ৰসাস্বাদন*। গুৱাহাটী: পূর্বায়ন প্রকাশন, ২০১৯। প্রকাশিত।

শইকীয়া, ভবেন্দ্রনাথ। *অন্তৰীপ*। গুৱাহাটী: লয়ার্চ বুক ষ্টল, ১৯৮৬। প্রকাশিত।

শইকীয়া, ভবেন্দ্রনাথ। *অগ্নিস্নান*। সম্পা.। উৎপল দত্ত। গুৱাহাটী: ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্ট'ৰচ্, ২০০৯। প্রকাশিত।

গোঁহাই, হীৰেণ। *চলচ্চিত্র আৰু বাস্তৱতা*। গুৱাহাটী ঃ পদাতিক, ২০১৬। প্রকাশিত।

শর্মা, অপূর্ব। *অসমীয়া চলচ্চিত্রৰ ছাঁ-পোহৰ*। গুৱাহাটী ঃ আঁক-বাক, ২০১৪। প্রকাশিত

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

অসমীয়া সাধুকথাৰ ভাষাশৈলী ঃ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

ৰবী কলিতা

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
থংনকবে মহাবিদ্যালয়
ডকমকা, কাৰ্বি আংলাং
পিন-৭৮২৪৪১
৮৪৮৬১৭১৬০৯
bobykalita666@gmail.com

০.০০- অৱতৰণিকা ঃ

লোক সাহিত্যৰ এটি গুৰুত্বপূর্ণ শাখা হিচাপে সাধুকথা অন্যতম। সাধুকথা লোকসাহিত্যৰ লোকগীত, ফকৰা-যোজনা, প্রবাদ-প্রবচন, লোককথা, সাথৰ, মন্ত্র - এইকেইটা ভাগৰ অন্তর্গত। লোককথাক পুৰাকথা (Myth), কিংবদন্তি বা জনশ্রুতিগত কথা (legend) আৰু সাধুকথা (folktale) এনেদৰে ভাগ কৰা হৈছে।

সাধুকথা কিছুমান কাল্পনিক কাহিনী। এই কাল্পনিক কাহিনী সমূহৰ ৰচক অথবা ৰচনাকাল সম্পর্কে কোনো সঠিকতথ্য পোৱা নাযায়। জনসমাজত মুখে মুখে এটা প্রজন্মৰ পৰা আন এটা প্রজন্মলৈ স্মৃতিৰ মাধ্যমেৰে এই কাহিনীসমূহ বর্তি আহিছে। অসমৰ জনজীৱনত অতীজৰে পৰা সাধুকথা কোৱা আৰু শুনা পৰম্পৰা প্রচলিত। কথকজনৰ ৰুচি-অভিৰুচিৰ লগতে শ্রোতাৰ মনোজগতৰ স্থিতিৰ ওপৰত কাহিনী কথন প্রক্রিয়া নির্ভৰশীল। সাধুকথাৰ প্রকাশভংগীত বৈচিত্রময় ৰূপ লক্ষ্য কৰা যায়। সাধু কওতাজনৰ দৰে সাধুকথা সংগ্রহ কৰোতাঁ আৰু লিপিবদ্ধ ৰূপ দিওতাজনেও পাঠকৰ ৰুচি-অভিৰুচিৰ লগতে সমকালীন ভাষিক ৰূপৰ প্রতি লক্ষ্য কৰি সাধুকথাৰ গঢ়-গঠন নির্ধাৰণ কৰে। মৌখিক সাহিত্যৰ পৰম্পৰাগত কথনশৈলী আৰু অন্যফালে সমকালীন ভাষিক ৰূপৰ প্রভাৱ - এই দুয়োটাৰ সংমিশ্রিত লিখিত ৰূপ প্রাপ্ত সাধুকথাৰ উপস্থাপনশৈলী অতি বৈচিত্রময় আৰু বৈশিষ্ট্যপূর্ণ।

বীজশব্দ ঃ

পুৰাকথা (Myth), সাধুকথা (folktale), কিংবদন্তি কথা (legend)।

০.০১- অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

সাধুকথাসমূহে বিষয় আৰু প্রকাশ ৰীতি উভয় দিশৰ মাজেৰে লোকজীৱনৰ বিভিন্ন দিশ প্রতিফলিত কৰে। অসমীয়া সাধুকথাত বিভিন্ন প্রসংগত ভাষাৰ কৌশলী প্রয়োগ ঘটিছে। প্রসংগভেদে ভষিক উপাদান ধ্বনি, ৰূপ, বাক্যৰ প্রয়োগ বৈশিষ্ট্য বিচাৰ কৰাটো এই অধ্যয়নক মূল লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য।

০.০২ - অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

এই আলোচনা পত্রখনিত বিষয়বস্তুৰ সংগতি ৰাখি বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্রহণ কৰা হৈছে।

০.০৩ - বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ঃ

সাধুকথা কাল্পনিক নীতিমূলক কাহিনী। বিশেষকৈ শিশুসকলে সাধুকথা শুনি বা পঢ়ি বেছি আমোদ পায়। আকর্ষণীয় উপস্থাপনশৈলীৰ লগতে মনোগ্রাহী কাহিনীৰ বাবে ই জনপ্রিয়। সাধুকথাত জীৱ-জন্তুৰ লগতে জগতৰ সকলো প্রাণীয়ে সমান স্থান লাভ কৰে। সম্ভৱ-অসম্ভৱ সকলোকে সাধুকথাই সামৰি লয়। কাহিনীসমূহক কথকে কথাৰেও বাখ্যা কৰে, গীতেৰেও উপস্থাপন কৰে। সাধুকথাত সকলোৱে মানুহৰ দৰে কথা কয়, নাচে, যুদ্ধ কৰে, সকলো যেন মানুহৰ দৰেই আৱেগ-অনুভূতিৰে পূর্ণ। সাধুকথাসমূহত কল্পনা আৰু বাস্তৱৰ সমাহাৰ ঘটা দেখিবলৈ পোৱা যায়। এনে বর্ণনাই শিশুসকলৰ কোমল মনত এক কল্পজগতৰ আনন্দ আৰু কৌতুহল জগাই তোলে। সাধুকথাৰ প্রকাশভংগী গদ্য ধর্মী হ'লেও গদ্যৰ মাজে মাজে গীতি ধর্মীৰূপ এটিও বিচাৰি পোৱা যায়। বর্ণনাৰ লগত খাপ খোৱাকৈ গীত আৰু পদ্যৰ উদ্ধৃতি নতুবা ফকৰা-যোজনাৰে বিষয়বস্তু আগবঢ়াই নিয়া দেখিবলৈ পোৱা যায়। এনে গীতিধর্মীতাই সাধুকথা কোৱা আৰু শুনা দুয়োটা কার্যকে আকর্ষণীয় কৰি তোলে। আনহাতে সাধুকথাৰ কথোপকথন মূলক উপস্থাপন ৰীতি ভাষাশৈলীৰ এক অন্যতম দিশ সাধুকথাৰ কাহিনীক কথোপকথনৰ মাজেৰে তুলি ধৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। দীঘলীয়া কথোপকথনৰ মাজেৰে বিষয়বস্তুক আগবঢ়াই নিয়াৰ প্রৱণতা প্রায়বোৰ সাধুকথাৰ বিশেষ লক্ষণ। এনে উপস্থাপনে বিষয়বস্তুক নাটকীয়তা দান কৰে। আনহাতে, সাধুকথাৰ আৰম্ভণি আৰু সামৰণিৰ একৰূপতা লক্ষ্য কৰা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে -

"এজন বুঢ়াৰ সাতজন ল'ৰা আৰু এজনী ছোৱালী আছিল।"

আৰম্ভণিৰ দৰে সকলো সাধুকথাৰ একেধৰণৰ পৰিসমাপ্তি দেখিবলৈ পোৱা যায়। সফল পৰিসমাপ্তি সাধুকথাৰ অন্যতম লক্ষণ।

সাধুকথাসমূহ স্বাভাৱিকতে গীতিধর্মী। মৌখিক গীতিধর্মী সাহিত্য হিচাপে শুনিবলৈ শুৱলা হোৱাটো সাধুকথাৰ প্রকাশভংগীৰঅন্যতম দিশ। শ্রুতিমধুৰতাৰ ক্ষেত্রত পদ, পংক্তিৰ পুনৰুক্তিয়ে ছন্দমিলাত সহায় কৰে। ফলত লোককথা বা সাধুকথাসমূহৰ কথন প্রক্রিয়াত বহুসময়ত পুনৰুক্তি ঘটা দেখা যায়।

আনহাতে সাধুকথাৰ ভাষাশৈলী অধ্যয়নত বাগ্‌ধাৰা বিশ্লেষণ বা কথা বিশ্লেষণ অত্যন্ত প্রয়োজন। বাগ্‌ধাৰা হৈছে বাক্যতকৈ বিস্তৃত পৰিসৰত ভাষাৰ একোটা গোট বা একক। স্বতন্ত্র বাক্যৰ মাজেৰে স্পষ্ট নোহোৱা প্রসংগক স্পষ্ট কৰিবলৈ বাগ্‌ধাৰা বিশ্লেষণৰ আৱশ্যক। সাধুকতাৰ বক্তব্যৰ অভিপ্রেত অর্থ উপলব্ধি কৰিবলৈ একোটা উক্তি বা বাক্যই যথেষ্ট নহয়। কিছুমান ঐক্যবদ্ধ বাক্যৰ সমষ্টি অধ্যয়ন কৰিও বক্তব্যৰ ভাৱবস্তু অনুধাৱণ কৰিব পাৰি। এই ক্ষেত্রত সাধুকথাৰ বাগ্‌ধাৰা বিশ্লেষণৰ যথেষ্ট প্রাসংগিকতা আছে। অসমীয়া সাধুকথাৰ প্রকাশভংগীৰ ক্ষেত্রত গদ্য, পদ্যৰ, সংমিশ্রিত ৰূপ আছে। কথকে কাহিনীক আকর্ষণীয় আৰু ৰসাল কৰিবলৈ পৰিৱেশ, চৰিত্রৰ ৰেহ-ৰূপ অনুযায়ী উপস্থাপন কৰে। অসমীয়া সাধুকথাত বিশেষকৈ ব্যাখ্যামূলক, কাব্যধর্মী আৰু সংলাপধর্মী বাগ্‌ধাৰাৰ জৰিয়তে প্রকাশ ঘটিছে। ব্যাখ্যামূলক বাগ্‌ধাৰাৰ জৰিয়তে কথকে কাহিনীক শ্রোতা বা পাঠকৰ সন্মুখত দাঙি ধৰে। কাহিনীৰ কোনো অনির্দিষ্ট চৰিত্র, পৰিৱেশ অথবা সময়ৰ কথাৰে আৰম্ভ কৰা হয়। মৌখিকৰূপত বর্তি থাকোতে ইবিলাক একে বহাতে সম্পূর্ণ কৰিবলগীয়া হৈছিল। গতিকে কাহিনীক কথকে সাধ্য অনুসৰি বিচিত্র ধৰণেৰে শ্রোতাৰ মন জয় কৰিব পৰাকৈ বর্ণনা কৰিছিল। আনহাতে, সাধুকথাত ব্যাখ্যাৰ উপৰি চৰিত্রৰ অভিব্যক্তিক জীৱন্ত কৰিবলৈ চৰিত্রৰ পোনপটীয়া কথা-বতৰা তুলি ধৰে। চৰিত্রৰ সামাজিক স্থান, মর্যদা ইত্যাদিয়ে সংলাপক প্রভাৱিত কৰে।

অসমীয়া সাধুকথাৰ মাজত বিভিন্ন ধৰণৰ পদ, পংক্তি, যোজনা, গীত আদিৰ সমাহাৰ ঘটিছে। কাহিনীৰ বিকাশত ইবিলাকৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূর্ণ।

আনহাতে, ভাষাত ব্যৱহৃত পদসমূহৰ নির্দিষ্ট ক্রম আছে। বাক্যত এনে ক্রমৰ সুনির্দিষ্ট বিন্যাসে ভাৱক স্পষ্টতা দান কৰে। কিন্তু পদৰ এনে ক্রমবদ্ধতা বহুসময়ত ভংগ হয়। পদৰ স্থান পৰিৱর্তন হয়। এনে পৰিৱর্তনে বিশেষ ভাবক অধিক স্পষ্ট আৰু অর্থপূর্ণ কৰি তোলে। বাক্যত পদৰ ক্রমৰ এনে পৰিৱর্তনকেই বাক্যগত বিচ্যুতি বোলা হয়। সাধুকথাৰ মাজতো বিচ্যুতি লক্ষ্য কৰা যায়। অসমীয়া সাধুকথাৰ ভাষাশৈলী অধ্যয়ন কৰিলে সাধুকথাত অর্ন্তগঠনৰ বিচ্যুতি আৰু বর্হিগঠনৰ বিচ্যুতি দুইধৰণৰ বিচ্যুতি পোৱা যায়। অর্ন্তগঠনৰ বিচ্যুতিৰ ভিতৰত ভাষামুদ্রা আশ্রিত বিচ্যুতি আৰু শব্দার্থগত বিচ্যুতি - এই দুইধৰণৰ বিচ্যুতি ঘটিছে। লোক সাহিত্য হোৱাৰ বাবে

স্বাভাৱিকতে কেতবোৰ ভকতীয়া পৰিৱেশ, ঘৰুৱা অন্তৰংগ পৰিৱেশৰ ছবি সাধুকথাৰ মাজত আছে। ভাষামুদ্রা আশ্রিত বিচ্যুতিৰ ফলত এনেধৰণৰ পৰিৱেশ ফুটি উঠা দেখা যায়। আনহাতে, শব্দার্থগত বিচ্যুতি লোকসাহিত্যৰ জতুৱা প্রকাশভংগীত সততে বিৰাজমান। এনে এক দৃষ্টিৰে সাধুকথাতো বিভিন্ন প্রসংগত শব্দার্থগত বিচ্যুতি ঘটা পৰিলক্ষিত হয়। বর্হিগঠনৰ বিচ্যুতিয়ে সাধুকথাৰ গঠন সজ্জাক অনন্য কৰি তোলাৰ লগতে বিষয়বস্তুক সাৱলীল আৰু ৰসগ্রাহী কৰি তোলে।

ভাষাশৈলীৰ আলোচনাত ধ্বনিৰ গুৰুত্ব যথেষ্ট। অসমীয়া সাধুকথাত ধ্বণিৰ বৈশিষ্ট্য পূর্ণ প্রয়োগে সাহিত্যিক অর্থবহ, নান্দনিক গুণ সমৃদ্ধ কৰি তুলিছে। ভাবৰ মূর্ত ৰূপ ফুটাই তোলাত ধ্বনাত্মক শব্দৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূর্ণ। সাধুকথাসমূহত সচৰাচৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ চিনাকি ছবি একোখন অথবা পৰিচিত ভাব ফুটাই তুলিবলৈ এই ধ্বন্যাত্মক প্রয়োগ লক্ষ্য কৰা যায়। মূলত ঃ মৌখিক সাহিত্য যদিও সময়ৰ সোতঁত লিখিত ৰূপত সংৰক্ষণ কৰা হয়। সেয়ে প্রাচীন আৰু অর্বাচীন দুয়োধৰণৰ শব্দ সাধুকথাৰ মাজত তৎসম, তদ্ভৱ, বিদেশী শব্দ, লোকভাষাৰ শব্দ, অনুৰূপ শব্দ, জতুৱা শব্দ, খণ্ডবাক্য আদিৰ প্রয়োগ দেখা যায়।

০.০৪ - উপসংহাৰ ঃ

'অসমীয়া সাধুকথাৰ ভাষাশৈলী' শীর্ষক বিষয়টোৰ জৰিয়তে অসমীয়া সাধুকথাৰ প্রকাশভংগীত প্রয়োগ হোৱা নিজস্ব ভাষিক বৈশিষ্ট্য আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। সাধুকথাৰ উদ্ভৱ, বিকাশ আৰু প্রচলন সম্পর্কে কেতবোৰ আলোচনা হৈছে যদিও সাধুকথাৰ ভাষাশৈলীৰ এই পাঠটিৰ দিশত অধিক অধ্যয়নে অন্য বহুতো নতুন দিশ উন্মোচন কৰাৰ অৱকাশ আছে। ❑

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ-

গগৈ, লীলা ঃ অসমৰ সংস্কৃতি, বনলতা, ডিব্রুগড়, ১৯৬৪

গগৈ, ইন্দ্রশ্রী ঃ বিশ্বসাহিত্যৰ এশটা সাধুকথা (আখ্যান আৰু ঐতিহাসিক গল্প), ১ম খণ্ড, ইন্দুশ্রী প্রকাশ

গোস্বমী, প্রফুল্ল দত্ত ঃ অসম দেশৰ সাধু, অসম প্রকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ২০১৪

চক্রৱর্তী, জয়চন্দ্র ঃ পঞ্চতন্ত্রৰ সাধু, কিতাপ সমলয়, গুৱাহাটী, ২০১৪

শর্মা, শসী ঃ অসমৰ সাধুকথা, বুকহাইভ, গুৱাহাটী, ১৯৭৪

change heading with
original

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান ঃ এক বিশ্লেষণ

অৰ্ণৱ শৰ্মা

, সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
এছ বি দেওৰা মহাবিদ্যালয়
৮০১১৪৮০৭০৪
arnabsarmah13@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

শিশুৰ মনস্তত্ত্বক খোৰাক যোগাই সাহিত্য ৰচনা কৰা শিশু সাহিত্যসমূহ অন্যান্য সাহিত্যিক ধাৰাসমূহৰপৰা বহুখিনি ক্ষেত্ৰত পৃথক। কিয়নো শিশু সাহিত্য ৰচনা কৰাৰ পূৰ্বে লেখকে শিশুৰ মনস্তত্ত্বক ভালদৰে উপলব্ধি কৰিব লাগিব। শিশুৰ যি বিচিত্ৰ মানসিক জগত, সেই জগতখনক অনুধাৱন কৰি, তাৰ অনুৰূপ সাহিত্য ৰচনা কৰা সহজ নহয়। অসমীয়া শিশু সাহিত্য, বিশেষকৈ শিশু উপন্যাস ৰচনাৰ প্ৰচেষ্টাটো বহুদিনীয়া নহয় যদিও অতি কম সময়ৰ ভিতৰতে ই এক শলাগিবলগীয়া স্তৰ লাভ কৰিছে। ১৯২৯ পাঠশালাৰ বজালী অঞ্চলৰ বাসিন্দা হৰগোবিন্দ শৰ্মাই ১৯২৯ চনত প্ৰকাশ হোৱা 'আৱাহন' আলোচনীৰ সম্পাদক দীননাথ শৰ্মাৰ সহযোগত কলিকতাত প্ৰথম অসমীয়া শিশু উপন্যাস 'পাতালপুৰী' ৰচনা কৰিছিল। তাৰ পিছৰেপৰা অসমীয়া শিশু উপন্যাসৰ ধাৰাটোৱে বিভিন্ন লেখকৰ হাতত বিশেষ সমৃদ্ধি লাভ কৰি আহিছে। অসমীয়া শিশু উপন্যাসৰ ধাৰাটোৰ আদি স্তৰতে সংযোজিত হোৱা এখন বিশেষ শিশু উপযোগী গ্ৰন্থ হ'ল পূৰ্ণচন্দ গোস্বামীৰ 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'। যদিও অসমীয়া শিশু উপন্যাসৰ শাৰীত হোৱা এক সংযোজন বুলি এই উপন্যাসখনক ধৰা হয়, তথাপিও একাংশ সমালোচকে ইয়াক উপন্যাসৰ সলনি উপন্যাসিকা হিচাপেহে অভিহিত কৰিছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনত উপন্যাসখনৰ লগত জড়িত এই দিশসমূহ বিচাৰ কৰি চোৱাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

সূচক শব্দ ঃ

শিশু সাহিত্য, উপন্যাস, চুটিগল্প, উপন্যাস, ফেণ্টাচি।

১.১ আৰম্ভণি ঃ

অতি আকৰ্ষণীয় নামৰ এই উপন্যাসখনিৰ ৰচক হ'ল পূৰ্ণ চন্দ্ৰ গোস্বামী। মূলতঃ ফেণ্টাচি গ্ৰন্থখনৰ প্ৰথম প্ৰকাশ হৈছিল ১৯৫৩ চনত। সেই সময়ৰ বিখ্যাত প্ৰকাশন গোষ্ঠী পুথিতীৰ্থ প্ৰকাশনে এই গ্ৰন্থখন প্ৰকাশ কৰি উলিয়ায়। মন কৰিবলগীয়া যে, কৃষকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়ে প্ৰনয়ন কৰি উলিওৱা 'অসম শিশু সাহিত্য' কোষৰ উপন্যাসৰ খণ্ডটোত অন্তৰ্ভুক্ত কৰি এই পুথিখনক একে আষাৰে উপন্যাসৰ মৰ্যাদা প্ৰদান কৰিছে। লগতে, অন্যান্য ক্ষেত্ৰসমূহতো পূৰ্ণচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ এই শিশু উপযোগী গ্ৰন্থখনক উপন্যাস হিচাপে মৰ্যাদা প্ৰদান কৰিছে। সেয়া হ'লেও উপন্যাসৰ বৈশিষ্ট্যলৈ লক্ষ্য কৰি পূৰ্ণচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ এই ৰচনাক এখন পূৰ্ণ উপন্যাসৰ

স্বীকৃতি দিব পৰা নাযায় যেন অনুভৱ হয়। আমাৰ দৃষ্টিত ই হৈছে চুটিগল্প আৰু উপন্যাস সংমিশ্রণ, য'ত ফেণ্টাচীৰ বহুগ সানি পাঠকৰ মনোযোগ আকর্ষণ কৰা হৈছে।

১.২ 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'ৰ উপন্যাস হিচাপে বৈশিষ্ট্য বিচাৰ ঃ

প্রথমেই চোৱা হওক উপন্যাসৰ ক্ষেত্রত পৰিলক্ষিত হোৱা একেবাৰে সাধাৰণ বৈশিষ্ট্যসমূহ। উপন্যাস এখন সাধৰণতে চুটিগল্পতকৈ দীঘল হয়। অৱশ্যে কেতিয়াবা কিছুমান চুটিগল্প সংজ্ঞাই দাবী কৰা ধৰণে একে বহাতে পঢ়ি শেষ কৰিব পৰা বিধৰ নহয় যদিও তাৰ উপস্থাপন ৰীতি, আৰম্ভণি, সামৰণি, চৰিত্র সৃষ্টি আদি প্রতিটো দিশলৈ চাই দীঘল গল্প এটাকো উপন্যাস বা উপন্যাসিকা নুবুলি চুটিগল্প আখ্যা দিব পাৰি। সি যি কি নহওক, চুটিগল্পৰ সৃষ্টিয়ে হৈছিল আধুনিক মানুহৰ অতি ব্যস্ততাপূর্ণ জীৱনযাত্রালৈ লক্ষ্য কৰিয়ে চুটিগল্পৰ জন্ম দিয়া হৈছিল। উপন্যাস এখন পঢ়ি শেষ কৰিবলৈ ইয়াৰ বৃহৎ কলেবৰৰ বাবে যথেষ্ট সময়ৰ প্রয়োজন হয়। আধুনিক যুগৰ মানুহৰ হাতত ব্যস্ততাপূর্ণ জীৱনযাত্রাৰ বাবে ইমান সময় নাথাকে। সেয়েহে মানুহক কাহিনী কথনৰ মাদকতা প্রদান কৰিবৰ বাবে লেখকসকলে গল্পৰ সৃষ্টি কৰিলে। কিন্তু 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান' ৰচনাখন কলেবৰৰ দিশৰ পৰা এটা চুটিগল্পৰ সমপর্যায়ৰ হ'ব। আনকি ভবেন্দ্রনাথ শইকীয়া বা সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ এনে কেইবাটাও চুটিগল্প আছে, যিবোৰৰ কলেবৰ আলোচ্য ৰচনাখনতকৈ বেছি হ'ব। গতিকে, কলেবৰৰ দিশৰ পৰা এই ৰচনাখনক কোনোপধ্যে উপন্যাসৰ অন্তর্ভুক্ত কৰিব নোৱাৰি। অৱশ্যে এই প্রসংগত এটা কথা উল্লেখ কৰি থোৱাটো প্রয়োজনীয়। ৰচনা এখন উপন্যাস নে গল্প হিচাপে বিবেচিত হ'ব, সেয়া কলেবৰতকৈও বহু পৰিমাণে নির্ভৰ কৰে ইয়াৰ ৰচনাশৈলীৰ ওপৰত। আর্নেষ্টহেমিংৱেৰ 'দিওল্ডমেন এণ্ড দিছী' উপন্যাসখন কলেবৰত সৰু যদিও এইখন বর্তমানেও বিশ্বৰ এখন অন্যতম শ্রেষ্ঠ উপন্যাসৰ শাৰীত ধৰা হয়।

দ্বিতীয়তে, উপন্যাস এখনত অনেক চৰিত্রৰ অৱতাৰণা কৰা হয়। যদি উপন্যাসখন কলেবৰত সৰুও হয়, তেতিয়া হ'লেও চৰিত্রৰ সংখ্যা অতি সীমিত হ'লেও একাধিক যে হয় সেয়া নিশ্চিত। আমাৰ অলোচ্য ৰচনাখনত চৰিত্র বুলিবলৈ কেৱল দুটা — এটা লেখক বা বক্তা নিজে আৰু আনজন হ'ল দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধত অংশগ্রহণ কৰা সৈনিকজন। গোটেই ৰচনাখনৰ ঘটনাক্রম সৈনিকজনক কেন্দ্র কৰিয়েই আগবাঢ়িছে, ইয়াত অন্য কোনো চৰিত্রৰ ভূমিকা নাই। সাধাৰণতে উপন্যাস এখনত নায়ক বা নায়িকাৰ উপৰিও নায়ক-নায়িকাৰ জীৱনৰ লগত সম্পর্কিত বিভিন্ন ঘটনা প্রৱাহৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা একাধিক পার্শ্ব চৰিত্রৰ চিত্রণ কৰা হয়। মূল চৰিত্রৰ সৈতে এই পার্শ্ব চৰিত্রসমূহক কেন্দ্র কৰিয়েই উপন্যাসৰ ঘটনাপ্রৱাহ আগবাঢ়ে। ইয়াৰ বিপৰীতে চুটিগল্প এটাত চৰিত্রৰ সংখ্যা একেবাৰে কম হয়। মূল চৰিত্রৰ লগত একেবাৰে নহ'লে নোহোৱা এটা বা দুটা চৰিত্র অৱতাৰণা কৰি কাহিনী আগবঢ়াই লৈ যোৱা হয়। গতিকে এই দিশৰ পৰা চাবলৈ গ'লে 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান' চুটিগল্প এটাৰ সমধর্মী।

আকৌ পৰিৱেশ চিত্রণৰ ক্ষেত্রতো উপন্যাস এখনত থাকিবলগীয়া বর্ণনা এই ৰচনাখনত নাই। অন্য উপন্যাসলৈ নাযায় 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'ৰ পূর্বৱর্তী অতুল চন্দ্র হাজৰিকাৰ 'নীলাচৰাই' উপন্যাসখনৰ লগত তুলনা কৰিলেই পৰিৱেশ চিত্রণৰ ক্ষেত্রত ব্যাপক তফাৎ দেখিবলৈ পোৱা যায়। 'নীলা চৰাই' উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণি হৈছে এইদৰে —

"এহাল ভাই-ভনী। নামতি লতিল আৰু মিতিল। দুয়ো বৰ লগ। পর্বতত নামনিত সজা এটা এমূৰীয়া পঁজাঘৰত সিহঁত থাকে। সেইপঁজা ঘৰৰ গৰাকী হৈছে এজন খৰিকটীয়া। তাৰ নাম বাখৰ। বাখৰৰ দিন-ভিক্ষা প্রাণ-ৰক্ষা। সিদিনটো খৰি কাটি আবেলি ভাৰ বান্ধি ওচৰৰ নগৰলৈ লৈ যায় আৰু সেই খৰিভাৰ বেচি যি আধলিটো পায়, তাৰেই কোনোমতে টুক্‌টাক্ কৰি ঘৰখন চলায়। ঘৰখনত চাৰিটি প্রাণী। খৰিকটীয়া বাখৰ নিজে, তাৰ ঘৈণীয়েক সোণতৰা, সিহঁতৰ পুতেক-জীয়েক তিলতিল আৰু মিতিল।"ৰ আনকি অসমীয়া শিশু উপন্যাস ধাৰাটোত দ্বিতীয় সংযোজন হিচাপে স্বীকৃত ভীমশেখৰ বৰুৱাৰ 'ৰাণীহেলেন' উপন্যাসখনৰো পৰিৱেশ চিত্রণৰ দিশটো বিশেষভাৱে গুৰুত্বপূর্ণ। এই উপন্যাসখনত কমল বৰুৱাই কৰা অভিযানৰ ব্যাখ্যাৰ প্রসংগত ঔপন্যাসিকে নগা পাহাৰ, বিশেষকৈ আংগামী নগাসকলৰ সংস্কৃতি আৰু ভৌগোলিক ক্ষেত্রৰ বিশেষ বর্ণনা আগবঢ়াইছে। কিন্তু ইয়াৰ বিপৰীতে 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'খনত পৰিৱেশ চিত্রণ বুলিবলৈ বিশেষ একো নাই। মাত্র লেখকে আকাংক্ষিত ফেণ্টাচীৰ সৃষ্টি কৰিবলৈ প্রয়োজনীয় যিখিনি বর্ণনা আৰু ঘটনাপ্রৱাহ, তাৰ উল্লেখ কৰিছে। তাৰ বাহিৰে আৰম্ভণিৰ পৰা শেষলৈ পৰিৱেশ চিত্রণৰ ক্ষেত্রত লেখকে বিশেষ গুৰুত্ব প্রদান কৰা যেন ভাৰ নহয়। গতিকে পৰিৱেশ চিত্রণৰ দৰে বিশেষ

দিশ এটাৰ উপস্থিতি নথকা লেখা এটাক কিদৰে উপন্যাস বুলিব পাৰি নে নোৱাৰি সেয়া এক বিতৰ্কৰ বিষয়। আকৌ উপন্যাসৰ শাৰীত নাৰাখি ইয়াক গল্পৰ ক্ষেত্ৰখনৰ লগতো সম্পৰ্কিত কৰিব নোৱাৰি। কিয়নো উপন্যাসৰ দৰে ব্যাপক নহ'লেও চুটিগল্পত বাস্তৱানুগ পৰিৱেশ চিত্ৰণ থাকে। কিন্তু 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জু�ৰণীয়া উপাখ্যান'ত ফেণ্টাচীৰ কাহিনী এটাৰ সমৰ্থনত অতি প্যাঁণতম পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰা হৈছে। উপন্যাস এখনত কাহিনীৰ যি বৈচিত্ৰ্য থাকিব লাগে, সেয়া 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'ত দেখা নাযায়। সাধাৰণতে দেখা যায় যে প্ৰতিখন উপন্যাসত এটা কেন্দ্ৰীয় কাহিনী থাকে আৰু এই কাহিনীটোৰ লগত সম্পৰ্কযুক্ত একাধিক উপকাহিনী থাকে। মূলকাহিনী আৰু ইয়াৰ বিভিন্ন প্ৰশাখা বা উপকাহিনীসমূহ লগহৈয়ে এখন গতানুগতিক পূৰ্ণাংগ উপন্যাস নিৰ্মাণ হয়। 'নীলা চৰাই' বা 'ৰাণীহেলেন' উপন্যাস দুখনত আধুনিক উপন্যাসত থকাৰ দৰে একোটা পূৰ্ণদৈৰ্ঘ্যৰ উপ-কাহিনী পোৱা নগ'লেও, কাহিনী দাবী কৰা ধৰণে সীমিত পৰিসৰৰ ক্ষুদ্ৰ-ক্ষুদ্ৰ কেইবাটাও উপ-কাহিনী সংযোজন কৰিছে। কিন্তু, 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'ত তেনে কোনো উপ-কাহিনীৰ প্ৰয়োগ নাই। কেৱল মাত্ৰ এজন সৈনিকৰ ফেণ্টাচীসুলভ কাহিনী আৰু তেওঁৰ অগতানুগতিক আচৰণৰ বাহিৰে ইয়াত কোনো সৰু-সৰু কাহিনীৰ প্ৰশাখা দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। এই দিশৰপৰাও 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'ক একাষাৰে উপন্যাস বোলাটো আমাৰ দৃষ্টিত সমৰ্থনযোগ্য নহয়।

চুটিগল্পসমূহ সাধাৰণতে সম্পূৰ্ণৰূপে বাস্তৱ আধাৰিত হোৱা দেখা যায়। কিছু কল্পনাৰ পৰশ থাকিলেও সম্পূৰ্ণ অবাস্তৱ বা ফেণ্টাচীৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি চুটিগল্প ৰচনা কৰা নহয়। ইয়াৰ চৰিত্ৰ, কাহিনী, পৰিৱেশ সকলো বাস্তৱ অভিজ্ঞতাপ্ৰসূত হয়। গতিকে দৈৰ্ঘ্যৰ দিশৰ পৰা চাই কোনোৱে 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপখ্যান' ৰচনাখনক উপন্যাস নুবুলি চুটিগল্প বুলিলেও এইমতক সমৰ্থন কৰিব নোৱাৰি। কিয়নো সম্পূৰ্ণ ফেণ্টাচীযুক্ত তথা সম্পূৰ্ণ বাস্তৱ বিমুখ এখন ৰচনা কেতিয়াও চুটিগল্প হ'ব নোৱাৰে। চুটিগল্পৰ প্ৰতিষ্ঠিত বৈশিষ্ট্যবোৰেও সেয়া সমৰ্থন নকৰে । সেইদৰে চুটিগল্পৰলেখীয়াকৈ ইয়াৰ কাহিনীত থাকিবলগীয়া ইংগিত ধৰ্মিতাও নাই। ৰচনাখনৰ শেষত উৰণীয়া অভিজ্ঞতা লাভ কৰা সৈনিকজনে ৰহস্যৰ আৱৰ্তত ৰাখি নিজৰ কথাখিনি শেষ কৰি উঠি যোৱাৰ পিছত স্বাভাৱিকতে পাঠকৰ ক্ষেত্ৰত থাকিবলগীয়া চিন্তাৰ খোৰাকৰ সলনি এটা ৰহস্য ৰহস্য যেন লগা পৰিৱেশৰহে সৃষ্টি কৰা হৈছে। গতিকে এইদিশৰ পৰাও ৰচনাখনত এটা সাৰ্থক চুটিগল্পৰ শাৰীত পেলাব নোৱাৰি।

দৈৰ্ঘ্য, কাহিনীকথন, চৰিত্ৰবিন্যাস আদি সকলো দিশ পৰ্যালোচনা কৰি পূৰ্ণচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপখ্যান'খনত একে আষাৰে উপন্যাস আখ্যা দিব নোৱাৰি। কিন্তু সেইবুলি যে এটা চুটিগল্পৰ শাৰীত এই ৰচনাখনক ৰাখিব পাৰি, তেনেও নহয়। গতিকে আমাৰ বোধেৰে এই ৰচনাখনক এখন উপন্যাসিকা (novella) বোলা অধিক সমীচিন হ'ব। উপন্যাসিকা (novella)ৰ সংজ্ঞা বিভিন্ন ঠাইত এনেদৰে পোৱা যায় —

১। "A novella is a narrative prose fiction whose length is shorter than that of most novels, but longer than most short stories."২

২। Merriam-Webster অভিধানত novella ক "a work of fiction intermediate in length and complexity between short story and novel" হিচাপে আখ্যা দিছে।

উপন্যাসিকা এখনত পৰিলক্ষিত হোৱা বিভিন্ন বৈশিষ্ট্যসমূহ আলোচনা কৰিলে আমি দেখিম যে 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপখ্যান'খন বহু পৰিমাণে এখন পূৰ্ণাংগ উপন্যাসিকাৰ ওচৰ চপা। এখন উপন্যাসিকাত পৰিলক্ষিত হোৱা বৈশিষ্ট্যসমূহ হ'ল —

ক। উপন্যাসিকাসমূহ একোটা কল্পকাহিনীৰ ওপৰত প্ৰতিষ্ঠিত হয়। আমাৰ অলোচ্য 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপখ্যান'খনতো এটা সম্পূৰ্ণৰূপে কল্পকাহিনীৰ উল্লেখ আছে। আনকি কল্পনাৰ আতিশয্য ইমানেই বেছি হৈছে যেই এখন ফেণ্টাচীৰ ৰূপ লৈছে।

খ। উপন্যাসিকাসমূহ গদ্যত ৰচিত হয়। কাব্যিক গদ্য ইয়াত পাৰ্যমানে পৰিহাৰ কৰি চলা হয়। পূৰ্ণচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ উপন্যাসখনৰ গদ্যও গতানুগতিক গদ্যৰ অন্তৰ্ভুক্ত। এই গদ্য কাব্যিকতা দেখা নাযায়।

গ। উপন্যাসিকাসমূহ সাধাৰণতে এটা বা দুটা বহাত সমাপ্ত কৰিব পাৰি। ইতিমধ্যে এই কথাকৈ অহা হৈছেযে 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'খন এখন যথেষ্ট সৰু ৰচনা। যিকোনো ব্যক্তিয়ে অনায়াসে এই ৰচনাখন একে বহাই অধ্যয়ন কৰিব পাৰিব।

ঘ। এখন পূৰ্ণাংগ উপন্যাসৰ তুলনাত উপন্যাসিকা এখনত একেবাৰে সীমিত পৰিমাণৰ দ্বন্দ্ব তথা উপকাহিনী

থাকে। কাহিনীৰ আলোচনাৰ প্ৰসংগত ইতিমধ্যে উল্লেখ কৰা হৈছে যে পূৰ্ণচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ উপন্যাসখনত কোনো স্পষ্ট উপকাহিনী নাই। মূল কাহিনীৰ লগত সংগতি ৰাখিয়ে দুই — এটা ঘটনাপ্ৰৱাহৰ সূচনা কৰাৰ বাহিৰে এই ৰচনাত পূৰ্ণ উপন্যাসৰ কাহিনীৰ বিশেষত্ব দেখিবলৈ পোৱা নাযায়।

ঙ। সাধাৰণতে উপন্যাসিকসমূহৰ অধ্যায় বিভাজন কৰা নহয়। এই বৈশিষ্ট্য আমাৰ আলোচ্য উপন্যাসখনতো দেখা যায়।

চ। উপন্যাসিকাসমূহত এটাই মাথো প্লট থাকে। সেই প্লটটোকে আশ্ৰয় কৰি এই শ্ৰেণীৰ সৃষ্টিশীল সাহিত্য নিৰ্মাণ কৰা হয়। 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'খনো দ্বিতীয় মহাসমৰৰ সময়ত হিমালয়ৰ আকাশত বিধ্বস্ত হোৱা বিমান এখন বৈমানিক আৰু তেওঁৰ অজ্ঞাত ঠাই ভ্ৰমণৰ কিছুমান ফেণ্টাচী কাহিনীৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি ৰচনা কৰা হৈছে।

ছ। উপন্যাসিকাসমূহত থকা চৰিত্ৰৰ সংখ্যাও অত্যন্ত সীমিত হয়। সাধাৰণতে মূল চৰিত্ৰৰ লগত একেবাৰে নহ'লে নোহোৱা এটা বা দুটা চৰিত্ৰ সৃষ্টি কৰিয়েই ঔন্যাসিকে উপন্যাসিকাখন ৰচনা কৰে। এইক্ষেত্ৰত আমাৰ অলোচ্য শিশু ৰচনাখনো ব্যতিক্ৰম নহয়।

গতিকে এই আটাইবোৰ বৈশিষ্ট্যৰ উপস্থিতিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি আমি ক'ব পাৰোঁ যে পূৰ্ণচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান'খন এখন সাৰ্থক উপন্যাসিকাহে। আমাৰ আলোচনাৰ আধাৰগ্ৰন্থ 'অসম শিশু সাহিত্যকোষ'ত উপন্যাসৰ ভিতৰত এই ৰচনাখন অন্তৰ্ভুক্ত কৰি সম্পাদকমণ্ডলীয়ে ইয়াক 'লেখকৰ এখন ফেণ্টাচি উপন্যাস' বুলি স্পষ্টভাৱে কৈছে যদিও এই মতটো সমৰ্থন কৰিব নোৱাৰি। সি যি কি নহওক, পূৰ্নাংগ উপন্যাস নহৈ এখন সাৰ্থক উপন্যাসিকা হ'লেও শিশুসাহিত্য হিচাপে ইয়াৰ গুৰুত্বক কোনোপধ্যে অস্বীকাৰ কৰিব নোৱাৰি।

'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান' শীৰ্ষক উপন্যাসিকাখনিৰ চৰিত্ৰ বুলিবলৈ মাথোঁ দুটা — লেখক নিজে আৰু সৈনিকজন। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ সময়ত সৈনিকজনে বিমানেৰে গৈ বিভিন্ন ঠাইত বোমা পেলাইছিল। কেৱল যে সৈনিকজনেই বোমা পেলাইছিল তেনে নহয়, তেওঁৰ লগৰ আন কেইবাজনো বৈমানিকে বিমানেৰে গৈ বোমা পেলাই আক্ৰমণকৰাকাৰ্যতনিয়োজিতআছিল। এইসকলোৰে ভিতৰত বিমানচালনাত সুদক্ষ আছিল উপন্যাসিকাখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ হিচাপে অৱতাৰণাকৰা সৈনিকজন। যিমানেই সুদক্ষ নহওক লাগিলে আক্ৰমণ-প্ৰত্যাক্ৰমণৰ এই কাৰ্যটোত যথেষ্ট মৃত্যু ভয়ো আছিল। সৈনিকজন কৰ্মসূত্ৰে অসমত আছিল আৰু ৰৈয়া বিমাঘাটিটো তেওঁলোকৰ শিবিৰ আছিল। এবাৰ সৈনিকজনক এক অজান দেশত বোমা পেলাবলৈ যাবলৈ উৰ্ধতন কৰ্তৃপক্ষৰ পৰা নিৰ্দেশ আহিল। নিৰ্দেশ লাভ কৰাৰ লগে-লগে সৈনিকজনে বিমান লৈ আকাশলৈ উৰা মাৰিলে। তলত ৰাডাৰৰ পৰা লাভ কৰা নিৰ্দেশ অনুসৰি তেওঁ বিমানখন ওপৰলৈ লৈ গৈ থাকিল। তাৰ পাছত এটা সময়ত তেওঁৰ বিমান হিমালয় পৰ্বতৰ ওপৰেৰে উৰিবলৈ ধৰিলে। এনেদৰে কিছুদূৰ যোৱাৰ পাছত সৈনিকজনে ৰাডাৰৰ পৰা সংযোগ হেৰাই গ'ল আৰু বিমানখন দূৰ্ঘটনাৰ সন্মুখীন হ'ল। তেওঁ দূৰ্ঘটনাগ্ৰস্ত বিমানখনৰ পৰা ওলাই আকাশত ওপঙি ফুৰিবলৈ ধৰিলে, যেন পানীত মাছেহে সাঁতুৰি আছে। তেওঁ শূন্যতে উৰি উৰি গৈ এটা সময়ত কিছুমান উৰণীয়া মানুহ দেখিলে আৰু তেওঁলোকৰ পিছে পিছে গৈ নিজকে এখন ৰম্যপুৰীত আৱিষ্কাৰ কৰিলে। ৰম্যপুৰীখনত মন যোৱা ধৰণে উপঙি ফুৰিব পাৰি; আনকি পানীবোৰোকে নিওনপৰিশূন্যতে ফোৱাৰাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। তাত এনেকৈয়ে নাচি-বাগি সৈনিকজনে বহুদিন কটালে। কিন্তু হঠাৎ এদিন সেই ঠাইখনত নাথাকো বুলি ভাৰি ওলাই আহিল। শূন্যৰ মাজেৰে গৈ গৈ তেওঁ এখন নতুন ঠাই পালে। কিন্তু এই ঠাইখন আৰু ইয়াৰ বাসিন্দাসকল আগৰ ঠাইখনৰসম্পূৰ্ণ বিপৰীত আছিল। তেওঁলোকে সৈনিকজনক বন্দী কৰিলে আৰু বিপদ কঢ়িয়াই অনা বুলি তেওঁও ওপৰত ৰাজহুৱা বিচাৰ বহুৱালে। পৰৱৰ্তী সময়ত কথোপকথনৰ পৰা জনা গ'ল যে সৈনিকজনে প্ৰথমে যোৱা দেশখনৰ নাম আছিল সুন্দৰ দেশ আৰু বৰ্তমান থকা দেশখনৰ নাম হ'ল অৱপদেশ। অনেক কাল ধৰি এহ'দুয়োখন দেশৰ মাজত মিল নাই। দুয়োখন দেশৰ বাসিন্দাসকলৰ মাজত অহা-যোৱা সম্পূৰ্ণৰূপে বন্ধ। যদি কিবা কাৰণত কোনোবাই আহে বা আনখন দেশলৈ যায়, তেন্তে ইয়াৰ পৰিণাম অত্যন্ত ভয়ানক হয়। গতিকে সৈনিকজনক সুন্দৰ দেশৰ মানুহে যুদ্ধৰ আশংকা কৰি পঠোৱা বুলি ভাৰি তেওঁলোকে বন্দী কৰিছে। কিন্তু যেতিয়া সৈনিকজনে নিজৰ বিমান দূৰ্ঘটনাৰ কথা আৰু পাকচক্ৰত পৰি ক'ব নোৱৰাকৈ সুন্দৰ দেশ গৈ পোৱাৰ কথা ক'লে, তেতিয়া তেওঁৰ পৰা কোনো বিপদ নেদেখি সকলোৰে সৈনিকজনক চৰ্তসাপেক্ষে মুকলি কৰি দিলে। চৰ্ত অনুসৰি ভৱিষ্যতৰ শান্তি বিঘ্নিত নহ'বলৈ দুয়োখন দেশৰ সীমা পাৰ

হৈ যাবলৈ নির্দেশ দিলে। সেই অনুসৰি সৈনিকজনক এজন বাসিন্দাই সীমাপাৰ কৰাই থৈ আহিলে। এইবাৰ সৈনিকজনে নিজকে হিমালয়ৰ শৃংগত আৱিষ্কাৰ কৰিলে আৰু কেইগৰাকীমান পর্বতাৰোহীক লগ পালে। কিন্তু আচৰিত ধৰণে সৈনিকজনক পর্বতাৰোহী কেইজনে দেখা নাপালে। এইসময়ত সৈনিকজনক এজন অশৰীৰী আত্মাৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। এনেদৰে এৰাতি কটোৱাৰ পিছত পিছদিনা পুৱাতেওঁ বহি থকা বৰফৰ ছটা এটা বৰফৰ ওপৰেৰে চলি গৈ থকা আৱিষ্কাৰ কৰিলে। কেইবাদিনো এনেকৈ যোৱাৰ পাছত এদিন বৰফৰ টুকুৰাটো তিব্বতৰ এঠাইত ৰ'ল। তাৰ মানুহখিনিয়ে সৈনিকজনক স্থানীয় লামাৰ ওচৰলৈ লৈ গ'ল আৰু লামাজনে সৈনিকজনৰ সকলো কাহিনী শুনাৰ পাছত সন্তুষ্ট হৈ তেওঁক নেপললৈ পঠিয়াই দিলে। সৈনিকজনৰ ভাষাত নেপালৰ ৰজাজন বৰ মৰমিয়াল আছিল। তেওঁ কর্মচাৰী এজনৰ লগত উৰাজাহাজত সৈনিকজনক দিল্লীলৈ পঠিয়াই দিলে আৰু দিল্লীৰ হোটেলত লেখক লগ পাই উক্ত কাহিনীটো তেওঁৰ আগত বিৱৰি ক'লে। সৈনিকজনে লেখকৰ ওচৰৰপৰা 'গধূলি আকৌ কথা হমহিহঁক' বুলিকৈ আঁতৰি গ'ল যদিও চাৰিদিন অপেক্ষা কৰাৰ পাছতো লেখকে সৈনিকজনক দুনাই লগ নাপালে। আৰু শেষত লেখকে ঘৰমুৱা উৰাজাহাজত ১৩-৮-৫৩ চনত ঘূৰি আহিলে।

১.৩ সামৰণি ঃ

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা এটা কথা স্পষ্ট হয় যে কাহিনীটোত আদিৰ পৰা অন্তলৈ কেৱল অলৌকিক কথাৰ পয়োভৰ আছে। বিমান দূর্ঘটনা হৈ মাধ্যাকর্ষণ শক্তিৰ পৰা বাহিৰ হৈ দুখন নতুন দেশত উপস্থিত হোৱা, অশৰীৰী আত্মাৰ ৰূপত আত্মপ্রকাশ কৰা, বৰফৰ ছটাত কেইবাদিনো যাত্রা কৰা, আকৌ তিব্বতলৈ ঘূৰি অহা, তাৰপৰা নেপাল আৰু শেষত দিল্লীলৈ উৰাজাহাজেৰে উভতি অহা আদি প্রতিটো কথালৌকিক তাৰ বাহিৰত। কিন্তু শিশুৰ পৃথিৱীখনত এই অলৌকিক কথাও যেনলৌকিক হৈ পৰে। সিহঁতে মাধ্যাকর্ষণ শক্তিৰ প্রভাৱৰ বাহিৰহৈ যোৱা কথা বুজি নাপায় যদিও বতাহত উপঙি নাচি — বাগিফুৰা, পানীত সাঁতুৰাৰ দৰে শূন্যত উপঙি ফুৰা, এখন নতুন দেশত উপস্থিত হোৱা, তাত শূন্যতে পানীৰ হুদত থাফোঁৱাৰাৰ সৃষ্টি হোৱা আদি কথাবোৰে শিশুক নিশ্চিতভাৱে যে আমোদ দিব, তাত কোনো সন্দেহ নাই। লেখকে শিশুমনে বিচৰা ধৰণে ফেণ্টাচিৰ সৃষ্টি কৰি এই উপন্যাসিকাখনি লিখি উলিয়াইছে। এই দিশৰ পৰা লিখক সম্পূর্ণ সার্থক হোৱা বুলিব পাৰি। 'ৰাণীহেলেন' নামৰ ভীমশেখৰ বৰুৱাৰ উপন্যাসখনৰ লগত এইখন উপন্যাসিকাৰ তুলনা কৰি ক'ব পাৰোঁ যে 'ৰাণীহেলেন'খন শিশুৰ উপৰি প্রাপ্তবয়স্কলোকে পঢ়িও আমেজ ল'ব পাৰে। এইক্ষেত্রত আমি 'নীলা চৰাই'কো ৰাখিব পাৰোঁ।কিন্তু 'উৰণীয়া সৈনিকৰ জুৰণীয়া উপাখ্যান' হৈছে এনে এখন ৰচনা যিখনৰ ফেণ্টাচিয়ে মূলতঃ শিশুমনকহে আকর্ষণ কৰিব পাৰে। প্রাপ্তবয়স্ক লোকৰ মনত এই উপন্যাসিকাখনৰ কাহিনীয়ে বাস্তৱত ইয়াৰ সাম্ভাব্য অস্তিত্ব সম্পর্কে প্রশ্ন চিহ্নৰ উদয় কৰি উপন্যাসিকাখনি অধ্যয়নৰ মাদকতাও হ্রাস কৰিব পাৰে। ❑

টীকা

১। অসম শিশু সাহিত্যকোষ, পৃষ্ঠা - ২৩

২। en.m.wikipedia.org/wiki/novella

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী

অসমীয়া ঃ

১। ডেকা, হিতেশ (সম্পা.) : অসম শিশু সাহিত্যকোষ (দ্বিতীয় খণ্ড, উপন্যাস — ১ কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, প্রথম প্রকাশ, ২০২০ চন

২। ডেকা, হিতেশ (সম্পা.) : অসম শিশু সাহিত্যকোষ (প্রস্তাৱনা খণ্ড), কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, প্রথম প্রকাশ, ২০২০চন

৩। নেওগ, ডিম্বেশ্বৰ : নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, শুৱনী প্রকাশ, নৱম সংস্কৰণ, ২০০৮

৪। নেওগ, মহেশ্বৰ : অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, চন্দ্র প্রকাশ, পাণবজাৰ, দ্বাদশ সংস্কৰণ, ২০১২

৫। শর্মা, সত্যেন্দ্রনাথ : অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, সৌমাৰ প্রকাশ, ৰিহাবাৰী, দশম সংস্কৰণ, ২০২০

ইংৰাজী

১। Grandby, M.O. : Children's LiteratureÊ, Edinburgh University Press, 2008

২। Obsertein, Karrin Lesnik : Issues in Children's Literature Criticism, July, 1993

৩। Salvacion, Predrick (e-book version) : Introduction to the World of Children's Literature

घोषणा-पत्र

1.	प्रकाशन का स्थान	:	असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
2.	प्रकाशन की अवधि	:	मासिक
3.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
	क्या भारतीय हैं	:	हाँ
	पता	:	असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
4.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं	:	हाँ
	पता	:	असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
5.	प्रधान संपादक का नाम	:	डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं	:	हाँ
	पता	:	असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
6.	स्वामित्व	:	असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की ओर से समिति के मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

मैं डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

अप्रैल, 2024
गुवाहाटी-781032

स्वा/- डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
प्रकाशक के हस्ताक्षर

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होग।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary	: Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No.	: 0853010182614
Name of Bank & Branch	: Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code	: PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 30th April, 2024 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
arpsguwahati.com rastrasewak51@gmail.com 9101541395/9101541380